भागपञ्चके प्रथमो भागः

वर्षषट्कपरिश्रमेण दशसहस्रमुद्राव्ययेन
च जातानुभवफलरूपः

अर्थात्

छः वर्ष के परिश्रम और १० हजार रुपया खर्च से
प्राप्त हुए अनुभव का फल।

ग्रन्थकर्ता—

दी श्यामसुन्दर-रसायनशाला, गायघाट, काशी।

तृतीयावृत्ति २१००] १९३५ अक्टूबर [मूल्य ५) रु०

प्रकाशकः—
उमेदीलाल वैश्य, अध्यक्षः—
दी श्यामसुन्दर-रसायनशाला
गायघाट, बनारस सिटी।

विशेष सूचना

हमें अपनी प्रकाशित रसायनसार तथा अनुपानविधि-अनुभूतयोग आदि आयुर्वेदोपयोगी पुस्तकों के अधिक प्रचारार्थ पुस्तक-विक्रेताओं व प्रचारकों (एजेन्टों) की आवश्यकता है।

आयुर्वेद-विद्यालयों तथा लाइब्रेरीयों को भी खास रियाअत है।

कमीशन आदि पत्र द्वारा पूछिये।

मुद्रकः—
मा० रा० काले
श्री लक्ष्मीनारायण
जतनबर, काशी

श्रीमते रामानुजाय नमः
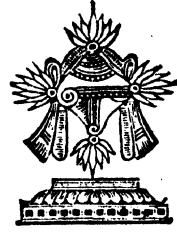
तादृक्षासुरकोटिभारितभुवं स्वस्थीकरिष्यन्कलौ ।
प्रादुष्यन्निह वासुदेवसुयशाः श्रीसात्त्वताग्रेसरः ॥
सद्वृन्दावननित्यसंस्थितिजुषं तीर्थं श्रितो यामुनं ।
श्रीरङ्गार्यपदास्पदो विजयते **रामानुजः** श्रीगुरुः ॥

(१) रसायनशाला (देखो पृ० ९)
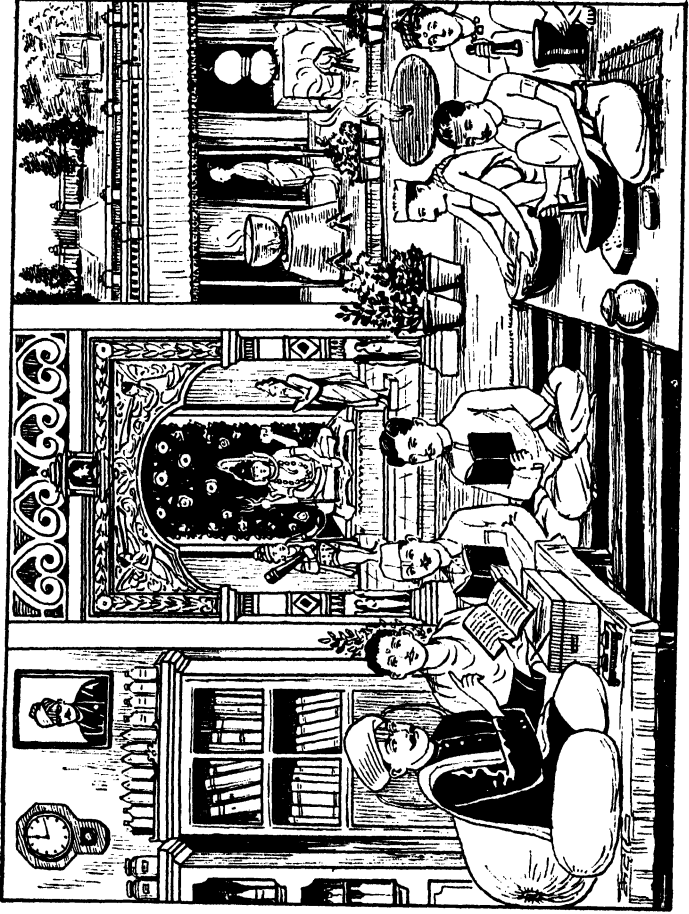
(२) बालुकायन्त्र-भ्राष्ट्री (चन्द्रोदयादि बनाने वाली) (देखो पृ० १६)

आधी खड़ी काट का चित्र
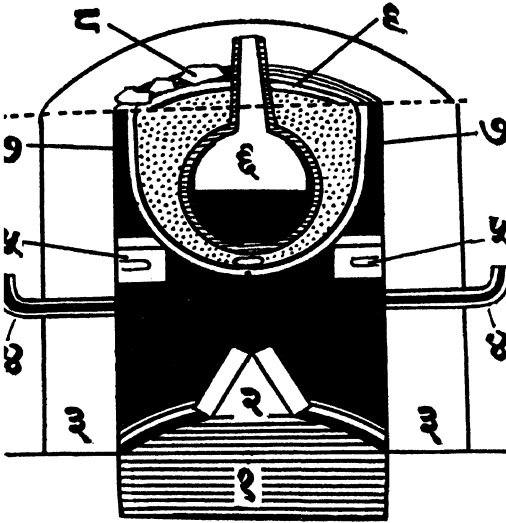
(१) गड्ढा (२) दरवाजा (३) दीवाल (४) धूम्र निकलने वाली नलियाँ २ (५) नांद रखने वाली, बाहर निकली हुई ईंटें २ (६) सुसज्जित बालुकायन्त्र (७) भट्ठी और नांद के बीच का अवकाश (८) अवकाश को पाटने वाले ठीकरे (९) ठीकरों पर गूढी मिट्टी से लीपा हुआ।

(३) क्वाथकरी-भ्राष्ट्री (देखो पृ० १९)

(चित्र का माप १ इंच बराबर १ हाथ है)

क से ख तक दो हाथ दीवाल की ऊँचाई। क से ग तक आधे भाग पर ८ लोहे के छड़। घ से च और च से छ तक २० अंगुल का लम्बा चौड़ा दरवाजा (१) ख से ग तक ऊपरी भाग के दीवाल में दूसरा दरवाजा (२) कपरमिट्टी की हुई नांद (३) ईंटें (४) अग्नि।
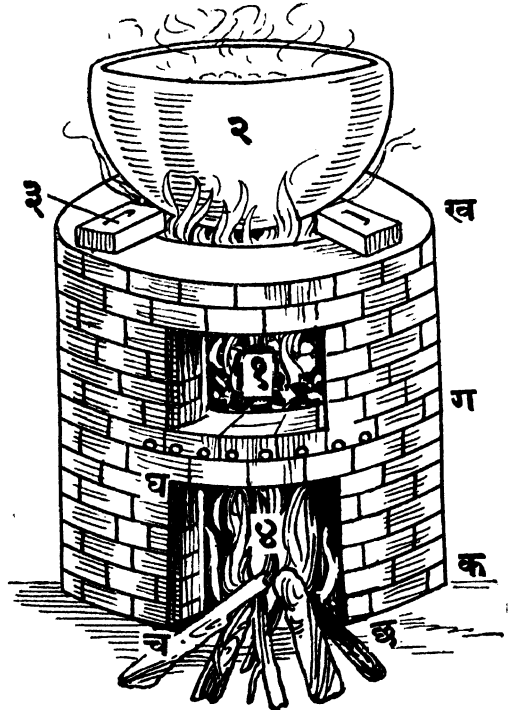
(४) शोधनार्थ-भ्राष्ट्री (देखो पृ० २३)

(१) रसायनशाला की दीवाल।

क से ख तक भट्ठी का भितरी अवकाश एक हाथ की लम्बाई चौड़ाई।

(२) ८ अंगुल भट्ठी का तैयारी दीवाल।

ख से ग तक १ हाथ दीवाल की ऊँचाई।

ख से घ तक ८ अंगुल गड्ढा भट्ठी के भीतर जमीन में।

ख-घ-ग-कुल १ हाथ ८ अगुल।

(३) पूर्व दिशा वाला लकड़ी जलाने का दरवाजा।

(४) भट्ठी के माप का छिद्रयुक्त छत

(५) लोहे की मोटी चादर का ढक्कन

(६) अटारी में पूर्व की ओर एक छोटा दरवाजा

(७) लोहे के छड़ का अटारी पर बड़ेरा

(८) अटारी का छप्पर

(९) रसायनशाला और भट्ठी की दीवाल में छूटी हुई गली को बन्द करने वाली पतली दीवाल

(१०) उत्तरी खिड़की से निकलता हुआ धूआँ।

(५) तालादिभस्मकरी-आष्ट्री (देखो पृ० २९)
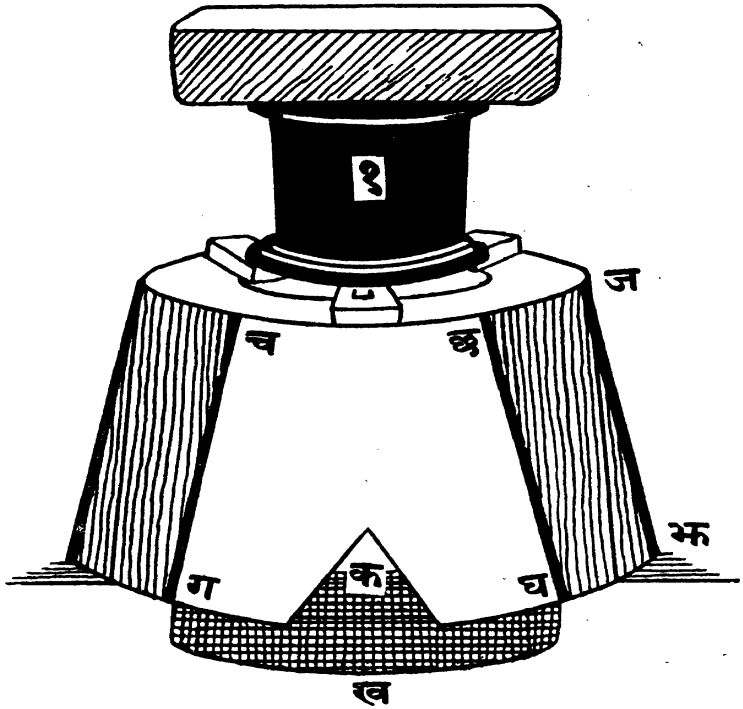
(१ इंच का ९/१२ भाग बराबर है १ अंगुल के)

क से ख तक जमीन में ६ अंगुल का गड्ढा

ग से घ तक अभ्यन्तर तलभाग १८ अंगुल

च से छ तक अभ्यन्तर ऊपरी भाग ११ अंगुल

ज से झ तक भट्ठी की पूरी ऊँचाई १८ अंगुल

(१) सुसज्जित खल्वसुधादि-यन्त्र

(६) सर्वार्थकरी-भ्राष्ट्री (देखो पृ० ३०)

(सामने का चित्र)

(चित्र का माप १ ईंच बराबर १ हाथ के है)

क से ख तक १½ हाथ का अभ्यन्तर तलभाग

ग से घ तक १ बिलांद का गड्ढा

च से छ तक २२ अंगुल का अभ्यन्तर ऊपरी भाग

छ से ज तक १ हाथ चौड़ी कच्ची ईंटों की दीवाल

ज से झ तक १ हाथ ४ अंगुल दीवाल की ऊँचाई

झ से ट तक १८ अंगुल पर लोहे का डंडा

ठ से ड तक १ हाथ का लोहे का डंडा

ड से ढ तक ६ अंगुल दीवाल के बाहर भट्ठी के भीतरी ओर निकला हुआ डंडा

त से थ तक २२ अंगुल गोलाई की जाली

द से ध तक १ हाथ लम्बी नली

(१) चूल्हा (२) क्वाथ आदि की नाँद (३) पूड़ी आदि बनाने वास्ते कड़ाही

(७) गजपुट (देखो पृ० ३४)

(देखो पृ० ३४)
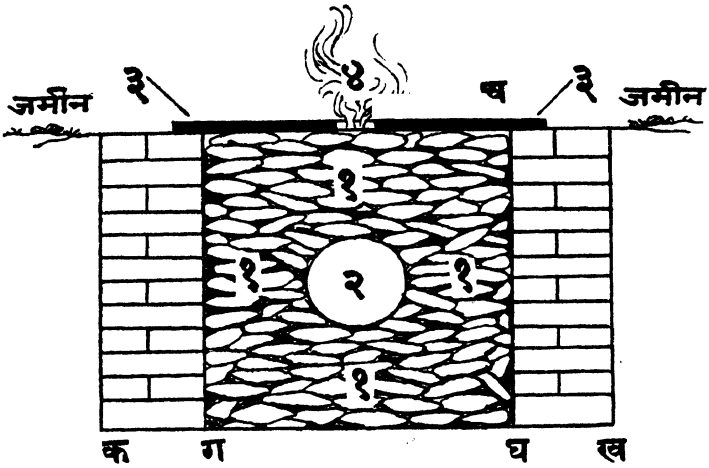
क से ख तक २½ हाथ का गोल गड्ढा
ख से ग तक १ बिलांद चौड़ी कच्चे ईंटों की दीवाल
ग से घ तक १½ हाथ गड्ढे की लम्बाई चौड़ाई
च से छ तक १½ हाथ गड्ढे की गहराई

(१) उपले (२) सम्पुट (३) गड्ढे के माप का, लोह की मोटी चादर का ढक्कन (४) ढक्कन के बीच में हाथ घुसने लायक छिद्र ।

(८) बालुकायन्त्र (देखो पृ० ४८)
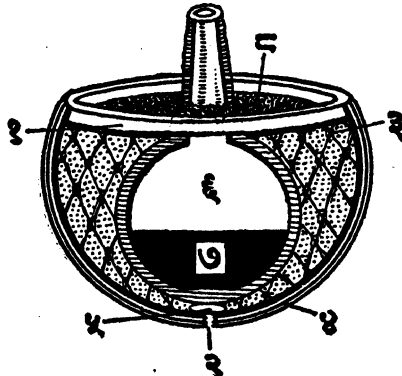
(१) नांद (२) छिद्र तलभाग में (३) लपेटे हुये लोहे के तार (४) कपरमट्टी (५) छिद्र पर ठिकरा या अभ्रक पत्र (६) आतशीशीशी कपरौटी की हुई (७) कजली (८) बालू

नोट— वराहपुट—गजपुट के नकशे की भांति ही बनेगा परन्तु प्रमाण में आधा हो। कुक्कुटपुट— भी वैसा ही बनेगा परन्तु प्रमाण में वराहपुट से आधा हो।

(९) दोलायन्त्र (देखो पृ० ४९)
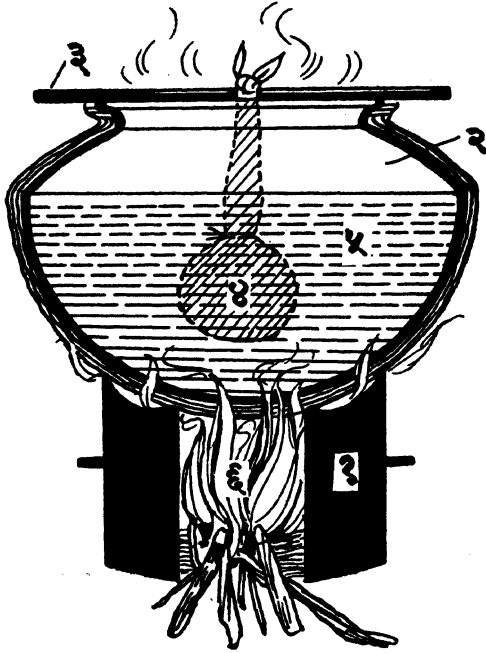
(१) चूल्हा (२) कपरौटी की हुई हांड़ी (३) डंडा (४) स्वेदनीय द्रव्य की पोटली (५) गोमूत्रादि (६) अग्नि

(१०) खल्वसुधादि यन्त्र (देखो पृ० ५०)
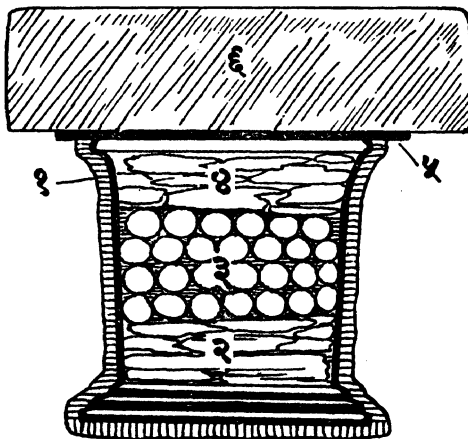
(१) कपरौटी की हुई १ लोहे की खरल (२) चूना (३) हरितालादिक की टिकिया (४) पुनः चूना (५) लोहा का ढक्कन (६) भारी पत्थर

(११) बालुकागर्भ- पातालयन्त्र (देखो पृ० ५१)
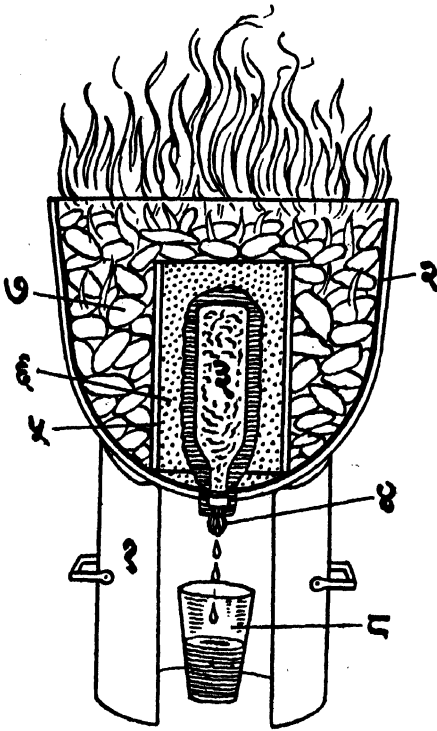
(१) चूल्हा (२) तलभाग में छिद्रयुक्त कपरौटी की हुई बड़ी नाँद (३) औंधी शीशी कपरमट्टी की हुई औषधि सहित (४) जाली का काग शीशी के मुख पर (५) महाबली (६) बालू (७) गोहरा (८) गिलास

(१२) तलपात-यन्त्र (देखो पृ० ५३)
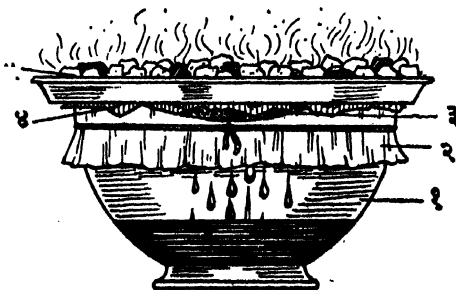
(१) १ कटोरा चीनी आदि का (२) नवीन पतला कपड़ा बाँधा हुआ (३) कपड़े पर मध्य में दवा (४) किनारों पर अभ्रक के टुकड़े (५) अंगारों से भरी हुई थाली।

(१३) पाताल - यन्त्र (देखो पृ० ५४)
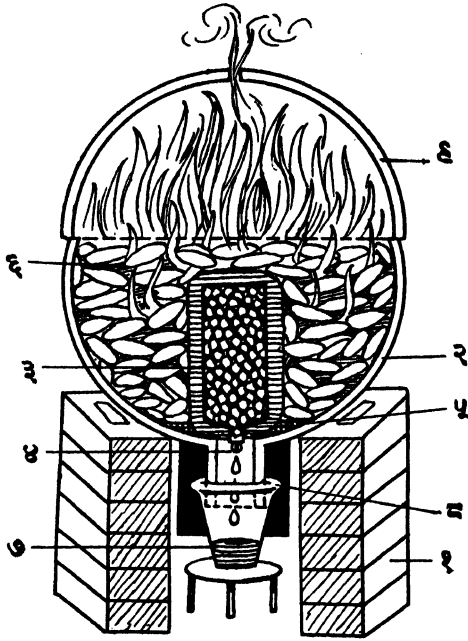
(१) ईंटों का चूल्हा (२) तलभाग में लोह नाली जड़ी हुई लोह की नाँद (३) आँत्री लोह शीशी कपरमिट्टी की हुई औषधि सहित (४) लोह के तार के जाली का काग (५) शीशी व नाँद के सन्धि पर वज्र-मुद्रा (६) उपले (७) १ चौड़े मुँह का शीशे का गिलास जिसमें लोह नाली घुसी है (८) नली व गिलास के दर्ज में भीजा हुआ कपड़ा (९) तलभाग में छिद्र-युक्त कपरौटी की हुई नाँद का ढक्कन।

(१४) डमरू-यन्त्र (देखो पृ० ५५)

(१) चूल्हा (२) कपरौटी की हुई नीचे की हंडी (३) कज्जली (४) कपरौटी की हुई ऊपर की हंडी (५) दोनों हंडियों के मुख के जोड़ पर वज्रमुद्रा आदि (६) अग्नि (७) उड़ा हुआ द्रव्य
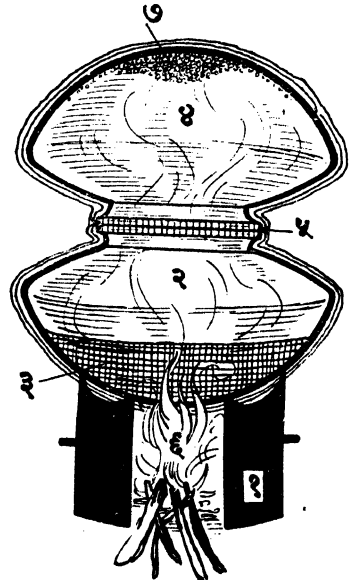
(१५) नलिका-डमरू-यन्त्र (देखो पृ० ५६)
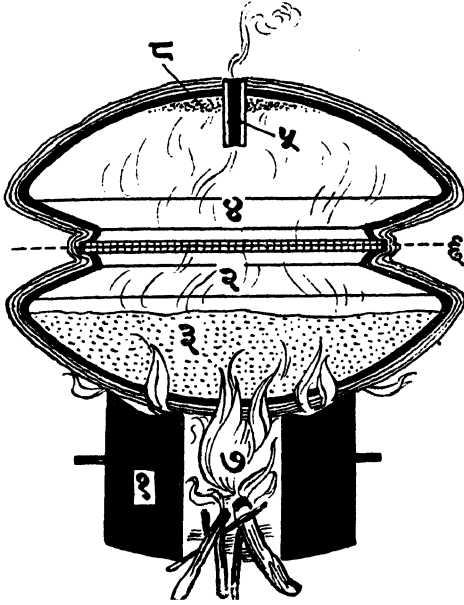
(१) चूल्हा (२) कपरौटी की हुई नीचे की हांडी (३) कज्जली आदि (४) छिद्रयुक्त कपरौटी की हुई ऊपर की हांडी (५) खड़ियामट्टी की बनाई हुई नली (६) वज्रमुद्रा (७) अग्नि (८) उड़ा हुआ द्रव्य ।

(१६) उष्म-यन्त्र (देखो पृ० ५७)

(१) चूल्हा (२) कपरमिट्टी की हुई हांड़ी (३) काँजी, सिरका आदि (४) डंडा (५) औषध की पोटली (६) अग्नि (७) उष्मा (भाप)
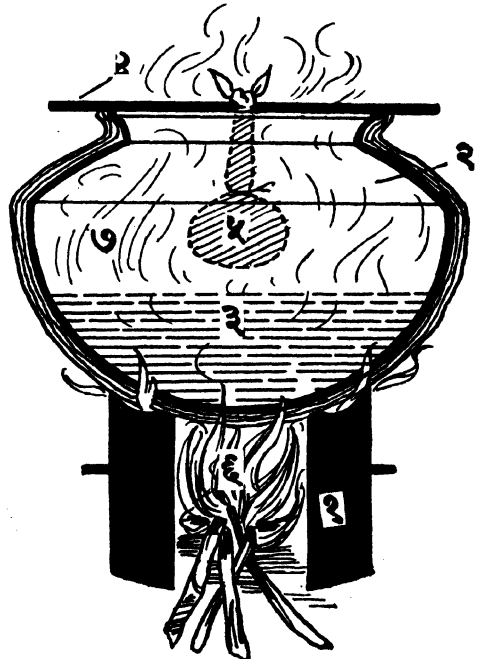
(१७) स्वरस-यन्त्र (देखो पृ० ५८)
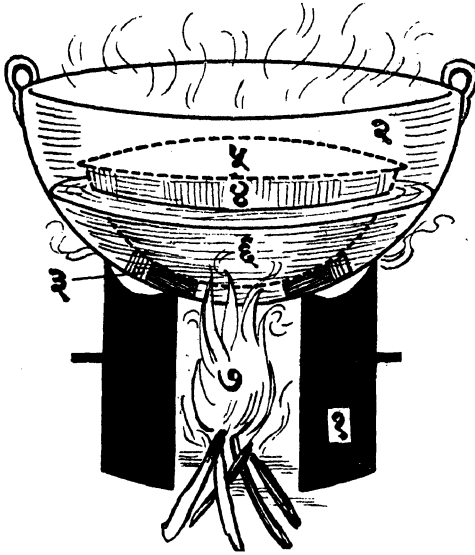
(१) लोह का चूल्हा (२) कड़ाही (३) ईंटें ३ कड़ाही में (४) औषधि भरा हुआ लोह का तसला (५) तसले पर ढका हुआ लोह का तवा (६) पिटारी से नीचे तक कड़ाही में भरा हुआ जल (७) अग्नि

(१८) नलिका-यन्त्र (भबका) (देखो पृ० ५९)

(१) चूल्हा (२) कलई किया हुआ ताम्बे का पात्र (३) ढक्कन में जड़ा हुआ औंधा कटोरा (४) औंधे कटोरे पर जड़ा हुआ ढक्कन (५) औंधे कटोरे में से लगी हुई नल जिसके द्वारा अर्क निकलता है (६) ढक्कन में भरा हुआ ठंडा जल (७) अग्नि (८) गरम जल मिकालने वाली नली (९) बोतल जिसमें अर्क इकट्ठा होता है
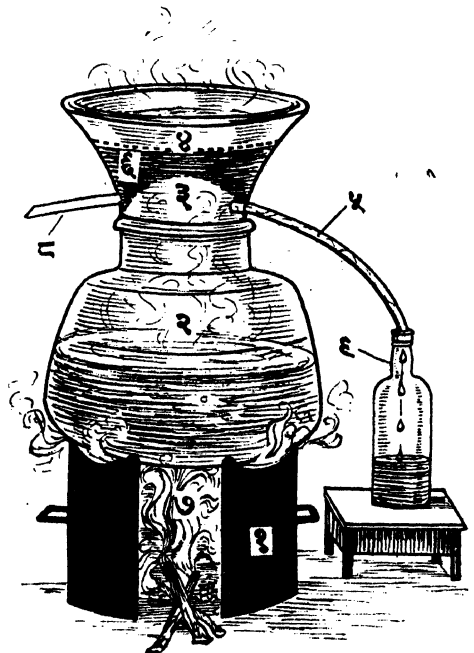
नोटः—अर्क इकट्ठा होने वाली बोतल को किसी जल से भरे हुए पात्र में रखना चाहिये। तथा शीशी और नली के मुख के जोड़ पर भीगा कपड़ा लपेट देना चाहिये।

(१९) क्षार-स्रुति (देखो पृ० ६५)
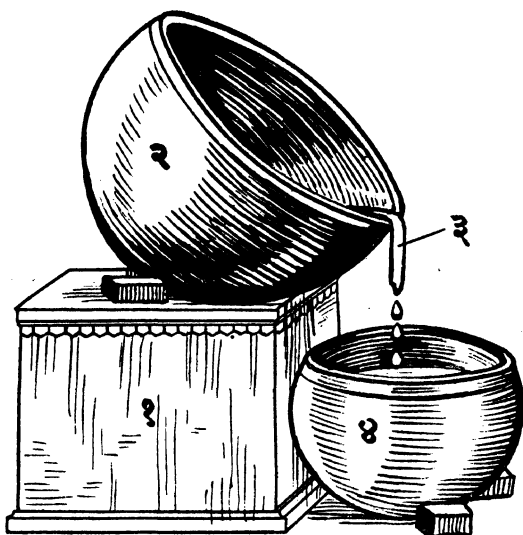
(१) डेढ़ हाथ ऊँचा चबूतरा (२) क्षार वाली नाँद (३) कपड़े द्वारा क्षार का जल टपकता है। (४) नाँद जिसमें क्षार गिरता है।

(२०) पिठर-यन्त्र (लोह का) (देखो पृ० ३२८)
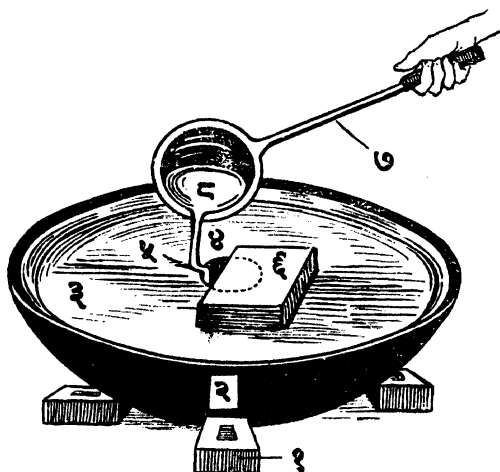
(१) ईंटों का औंठगन (२) लोह का तसला (३) तसला को थाली नुमा ढक्कन (४) ढक्कन के ठीक बीच में १ छिद्र (५) छिद्र के किनारे का नीचा हिस्सा (६) छिद्र को ढाँकने वाला पत्थर (७) कलछा (८) द्रुत (पिघला हुआ) धातु

(२१) पिठर- यन्त्र (मट्टी का) (देखो पृ० ३३३)
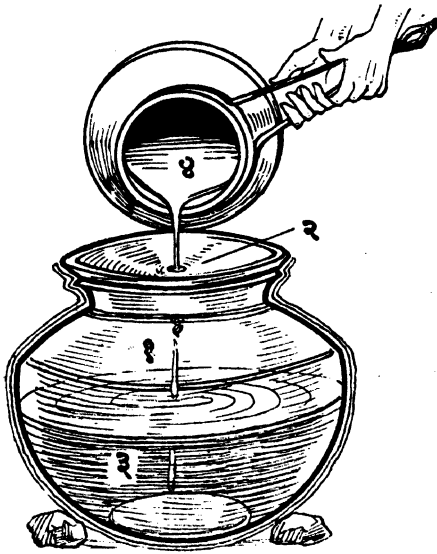
(१) लोह के तारों से बाँधी और कपरौटी की हुई मट्टी की हंडी (२) बीच में छिद्र और कपरौटी किया हुआ मट्टी का सकोरा (ढकन) (३) क्वाथ स्वरस आदि (४) कपरौटी की हुई हाँड़ी में द्रुत धातु ।

तृतीयावृत्ति की प्रस्तावना

काशी के सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री स्वर्गीय पंडित श्रीश्यामसुन्दराचार्यजी वैश्य ने छः वर्ष के परिश्रम तथा दस हजार रुपये खर्च करने के उपरान्त आयुर्वेदीय "रसशास्त्र और भैषज्यकल्पना" में जो अनुभव प्राप्त किया; उसकी सम्पूर्ण रिपोर्ट देने वाले उन्हीं के श्लोकबद्ध लिखे हुए महत्वपूर्ण ग्रन्थ जिसकी भाषा टीका भी स्वयं उन्हों ने ही की है। उस रसायनसार की तृतीयावृत्ति की प्रस्तावना के रूप में उनके दौहित्र श्री उमेदीलालजी वैश्य के उत्साह को देख कर इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता तथा वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में मैं भी अपने विचार पाठकों के सन्मुख उपस्थित करता हूँ। वैसे तो इस ग्रन्थराज की दो आवृत्तियों के अल्प समय में समाप्त होने से ही इसकी उपयोगिता स्पष्टतया सिद्ध हो चुकी है। तथापि इस तृतीयावृत्ति में कागज, छपाई, बाइंडिंग और उपयोगी यन्त्रों के चित्र आदि विषयों में पहले की अपेक्षा बहुत कुछ सुधार करते हुए भी मूल्य के न बढ़ाने से इस ग्रन्थ की लोकप्रियता और भी बढ़ गयी है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मुझे पूर्ण आशा है कि परीक्षार्थी छात्र तथा आयुर्वेदानुरागी सज्जन इस ग्रन्थ की एक एक प्रति अपने पास रखकर इससे अमित लाभ उठा सकेंगे।

ग्रन्थ तथा ग्रन्थकर्ता के सम्बन्ध में कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। अष्टांगहृदय-कर्ता वाग्भट के दिये हुए लक्षणों के अनुसार स्वर्गीय पण्डित श्यामसुन्दराचार्यजी "दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो "दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक्" होने के कारण सर्वगुण-सम्पन्न वैद्य थे। तत्कालीन काशी की विद्वन्मण्डली से आपने न्याय-सांख्य-व्याकरणादि शास्त्रों एवं साथ ही साथ सम्पूर्ण आयुर्वेद का भी अध्ययन किया था। तत्पश्चात् चिकित्साशास्त्र में भी आपने सिद्धि प्राप्त कर ली थी। स्व० पण्डितजी के समकालीन काशीस्थ तथा अखिल भारतवर्ष के प्रमुख पण्डितों ने आपकी योग्यता पर मुग्ध होकर कई मानपत्र तथा उपाधियाँ आपको समर्पित की हैं। उनमें से कुछ इस पुस्तक में छपी हैं जिनको

पढ़ने से आपके पाण्डित्य तथा ग्रन्थ कर्तृत्व के सम्बन्ध में लिखने के लिये कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता।

किन्तु मेरी दृष्टि से शास्त्रीजो का श्रेष्ठत्व केवल उनके पाण्डित्य के ही कारण नहीं है परञ्च आपको आयुर्वेदीय रसशास्त्र में विशेष प्रेम होने के कारण आपने रसौषधियों के निर्माण में जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसको संसार के सामने खुल्लम् खुल्ला रख दिया है यही बात आपके वैशिष्ट्य की द्योतक है। कई शताब्दियों से स्वयं स्वतन्त्र प्रयोग करके ग्रंथरचना करने के गुण का भारतवर्ष में लोप सा हो गया है। अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक ग्रन्थों से उपयुक्त अंश को लेकर संग्रह ग्रन्थ बनवा कर तथा पुराने ग्रन्थों पर टीका टिप्पणियाँ लिखकर विद्वान लोग अपना पाण्डित्य प्रकट करते आये हैं। किन्तु पण्डित श्यामसुन्दराचार्यजी स्वतन्त्र बुद्धि के पण्डित होने के कारण इन्होंने प्राचीन रसग्रन्थों को पढ़ कर उनमें से महत्व-पूर्ण अंश को लेकर उसको प्रयोगों के कसौटी पर कस लिया; उत्तमोत्तम औषधियों को बनाने की सरल, सुगम तथा धन और समय की बचत करने वाली विधियाँ ज्ञात कर लीं; क्लिष्ट और जटिल प्रयोगों को सुलझाने की चेष्टा की; और जो कुछ आपको ज्ञात हुआ उसको वैसा ही लिख कर इस ग्रन्थ के रूप में संसार के सामने उपस्थित कर दिया। उसमें न तो कुछ बढ़ाया है न घटाया है। आपकी प्रतिज्ञा है कि (देखिये रसायनसार पृष्ठ ६५) *"बिना मानं कथं नाम श्रद्दध्याच्छ्यामसुन्दरः"*— अर्थात् बिना प्रमाण की बातों में श्यामसुन्दर श्रद्धा नहीं कर सकता; तथा (पृष्ठ १२२ पर देखिये)। *"बिना अनुभूत किये लिखना मेरी आदत नहीं है"*।

आपके इस परिश्रम से जारण आदि जटिल तथा क्लिष्ट विषय सरल हो गये हैं; जो बातें पहले से हो सरल तथा सुगम थीं, उनके निर्माण में समय तथा धन के बचाने के उपाय सोच कर प्रयोगों द्वारा उन्हें सिद्ध कर दिया; और बिना किसी बात को छिपाये अपना ज्ञान-भाण्डार संसार के हित के लिये सबके सामने इस ग्रन्थ के रूप में खोल दिया है। जिन सज्जनों ने उनके लेख पर आक्षेप किये, उनका बड़े प्रेम तथा विनय से खण्डन किया है, इस शास्त्रार्थ का भी वर्णन जो इस ग्रन्थ में दिया है बड़े ही महत्व का है।

आपके लेखों के सच्चे प्रयोगों की भित्ति पर खड़े होने के कारण जगह २ आपके प्रतिस्पर्धियों को ही हार माननी पड़ी है, और उन प्रतिस्पर्धियों ने जब स्वयं प्रयोग करके देखा तब शास्त्री जी के कार्य का श्रेष्ठत्व उनको प्रत्यक्ष ही अनुभूत हो गया* । आपके कार्य को महत्त्व-पूर्ण समझ कर कतिपय विद्वानों ने आपको 'नव्य नागार्जुन' 'रसायन-भास्कर' 'रसायनशास्त्री' 'रसायनविशारद' आदि उपाधियाँ भी दी हैं, वे सब मेरी सम्मति में पूर्णतया यथार्थ हैं। समस्त आयुर्वेदीय विद्वानों ने आजतक यदि इस दृष्टि से कार्य किया होता, और अपने अनुभव संसार के सामने सत्यस्वरूप में रख प्रसिद्ध कर दिये होते तो भारतवर्ष में स्वराज्य के न होते हुए भी आज चिकित्सा संसार में आयुर्वेद ही अत्युन्नत अवस्था में दिखलाई देता। नवीन प्रयोगों द्वारा ही किसी शास्त्र की उन्नति होती है। मुझे विश्वास है कि शास्त्री जी ने संसार के लिये जो कुछ कर दिखाया है उसके लिये हम लोग आपके कृतज्ञ रहकर यदि आपका अधूरा कार्य पूरा करने को

* रसायनसार तृतीयावृत्ति पृष्ठ १४२ पर भारत के मान्य वैद्यराज श्री जीवाराम कालीदास, गौंडल से जो स्वर्गीय शास्त्रीजी का शास्त्रार्थ छपा हुआ है, उसके विषय में ग्रन्थ (तृतीयावृत्ति) मुद्रित होने की खबर सुन कर मान्यवर वैद्यराज ने हमें एक पत्र द्वारा सूचित करने की कृपा की है कि उनका शास्त्रार्थ के समय जो स्वर्ण-ग्रास के विषय में मत था; उसे रसायनसार कथित अनुभव करने के पश्चात् उन्होंने बदल दिया है और वे अब स्वर्गीय शास्त्रीजी के मत से पूर्णतया सहमत हैं। हमें खेद है कि उक्त पत्र ग्रन्थ के मुद्रित हो चुकने पर हमें मिला। इस कारण हम उसे यथास्थान प्रकाशित न कर सके, अतः हम उक्त पत्र का सारांश यहाँ प्रकाशित कर देते हैं। **प्रकाशक—**

······मुझे मालूम हुआ है कि रसायनसार की तृतीयावृत्ति छप रही है। इसके विषय में सूचित करता हूँ कि सन् १९११ में मेरे जो सिद्धान्त थे वे अब नहीं हैं। उस समय मैंने मान रखा था और सिद्ध भी करने की कोशिश की थी कि पारद सोने का भक्षण नहीं कर सकता। परन्तु इधर लगभग १६ वर्षों से मैं शास्त्रीजी के सिद्धान्तों से ही सहमत हो गया हूँ················यदि ग्रन्थ छप चुका हो तो अन्त में मेरा यह वक्तव्य प्रकाशित कर दें, यदि यह भी सम्भव न हो तो मैं अपने पत्र में ग्रन्थ की समालोचना करते समय स्वर्गीय शास्त्रीजी से सहमत होने की बात प्रकाशित कर दूँगा।

कटिबद्ध हो जायँगे तो आपकी स्वर्गस्थ आत्मा को अवश्य ही शान्ति मिल जायगी।

अपने अनुभवों को पाँच भागों में लिखने के लिये शास्त्रीजी का प्रथम संकल्प था। उसमें से केवल एक ही भाग प्रसिद्ध होने के बाद आपका स्वर्गवास हो गया यह बड़े ही खेद की बात है। आपके असामयिक देहावसान से आयुर्वेद रसशास्त्र को अमित हानि हुई है। मुझे यह भी आशा है कि शास्त्रीजी के कागज पत्रों को ढूँढने से अवश्य कुछ ऐसी बातें मिल जायेंगी जिनसे दूसरा भाग सरलता से बन सकेगा।

इस ग्रन्थ की तृतीयावृत्ति के प्रकाशक शास्त्रीजी के दौहित्र श्री उमेदीलालजी वैश्य बड़े ही उत्साही तथा कर्तव्यपरायण व्यक्ति हैं। संभव है कि वे शास्त्रीजी के अप्रकाशित कार्य का भी शीघ्र ही प्रकाशन करके आयुर्वेद संसार को कृतज्ञ बनाने का प्रयत्न करेंगे।

'रसायनसार' की तृतीयावृत्ति को प्रस्तावना लिखने के लिये प्रवृत्त कर मुझे शास्त्रीजी के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पण करने का जो अवसर दिया है, उसके लिये मैं श्री उमेदीलालजी वैश्य को बहुत ही धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे अपने पूज्य मातामह के अपूर्ण कार्य को तन मन तथा धन लगा कर पूरा करने के लिये तत्पर होंगे।

विजयादशमी
सम्वत् १९९२

दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी एम्०एस्-सी०
आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर, आयुर्वेदिक कालेज;
हिन्दू- विश्वविद्यालय, काशी।

तृतीयावृत्ति पर प्रकाशक का निवेदन

प्रिय वैद्यवृन्द ? रसायनशास्त्री गोलोकवासी पूज्य मातामह पं० श्यामसुन्दराचार्यजी वैश्य कृत रस औषधि निर्माण की विधियों पर उनके द्वारा किये गये अनुभवों के सार रूप इस अनुपम ग्रन्थ-रत्न (रसायनसार) को तृतीय बार प्रकाशित कर आप सज्जनों की सेवा में रखते हुये मुझे अपार हर्ष होता है।

प्रथम और द्वितीय आवृत्तियों को जिस प्रकार आप महानुभावों ने हाथों हाथ उठा लिया तथा उनके समाप्त हो जाने पर शीघ्र ही तृतीय मुद्रण न करा सकने पर जिस प्रकार हम वैद्य मण्डली के खेद और कोप के भाजन बने उसने हमारे उत्साह को अत्याधिक जागृत कर दिया। जिससे कि हमने इस आवृत्ति में यथेष्ट द्रव्य व्यय करके अनेक नूतन संशोधन और परिवर्तन किये हैं। जिन कतिपय अनिवार्य कारणों से हम इधर दो वर्ष तक इस ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण न कर सके, उन्हें यहाँ पर लिखना पाठकों के लिये कुछ प्रयोजन की वस्तु सिद्ध न होगी। हम इस विलम्ब के लिये प्रिय पाठकों से क्षमा माँग कर ही संतोष किये लेते हैं।

पूर्व संस्करणों में तत्कालीन परिपाटी के अनुसार लीथो के चित्र और बोल-चाल की भाषा और क्षेपकों तथा ब्राकिटों की भरमार थी जिनसे आजकल के पाठकों को असुविधा तथा भ्रम होने की शिकायत थी। मैंने यथाशक्ति इन्हें हटा कर और अर्थ असङ्गत न हो, इसका ध्यान रखते हुये परिमार्जित भाषा में सम्पादन किया है, तथा ख्याति प्राप्त चित्रकारों द्वारा भ्राष्टी यन्त्र इत्यादि के चित्र बनवा कर यथा स्थान लगा दिये हैं। पूर्वापेक्षया कागज जिल्द इत्यादि में सुमनोहर परिवर्तन करके अब इस ग्रन्थ को मैंने आधुनिक रुचि के अनुकूल बना दिया है। इतना सब करते हुये भी दो बातों पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। १— ग्रन्थ की प्राचीन विशेषताएँ कम न हों। २— ग्रन्थ का मूल्य बढ़े नहीं।

हमें हर्ष है कि इन दोनों बातों में हमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है और उसका साक्षी यह ग्रन्थ आपके करकमलों में उपस्थित है।

हमारा नम्र निवेदन है कि इसमें जो त्रुटियाँ आपको दिखलाई पड़ें; उन्हें सूचित करने की कृपा अवश्य करें, जिससे आगे सुधार किया जा सके।

अन्त में हम श्रीमान् आयुर्वेदाचार्य दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी M. Sc. प्रोफेसर आयुर्वेदिक कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस संस्करण पर प्रस्तावना लिख देने की कृपा की है। ग्रन्थ को आधुनिक रूप में उपस्थित करने में, आचार्य श्री नरदेवजी शास्त्री चीफ मेडिकल आफिसर आर. बि. एस. रबर मील्स कलकत्ता, एवं "वनौषधि" तथा संस्कृत के "सुप्रभातम्" पत्रों के विद्वान् सम्पादक पं० श्री केदारनाथ जी शर्म्मा वैद्य से हमें जो सहायता मिली है उसके लिये हम इन सज्जनों के पूर्ण कृतज्ञ हैं। काशी के प्रसिद्ध चित्रकार पं० केदारनाथ शर्म्मा के हम बहुत कृतज्ञ हैं जिन्होंने इसके चित्रों की रचना में अपने कौशल का सुन्दर परिचय दिया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में हमें अपने और और जिन मित्रों से सहायता मिली है उनके भी हम हृदय से कृतज्ञ हैं।

वैद्यों का सेवक—

शरद पूर्णिमा
१९९२

प्रिय पाठकगण ! आप लोगों को भली भाँति विदित है कि इस असार संसार क्षेत्र में अवतीर्ण प्राणियों के लिये धर्म्म, अर्थ, काम वो मोक्षरूपी चार पुरुषार्थ सम्पादन करना वेदादि-धर्म्मशास्त्रों द्वारा सिद्धान्तित है। पर वे सर्व पुरुषार्थ आरोग्य के ऊपर निर्भर है जैसा कि कहा है:—"*धर्म्मार्थकाम मोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्*"।

अतएव परमकारुणिक परमात्मा ने लोकोपकारार्थ ऋग्वेद के उपवेद आयुर्वेद नामक महारत्न की रचना की। अनन्तर जैसे जैसे सृष्टि का विस्तार हुआ वैसे वैसे रोगों की अधिकता से प्रजाओं को बचाने के लिये परम दयालु महात्मा जगत्पिता ब्रह्माजी, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, चरक, सुश्रुत आदि महानुभावों ने और रसायनशास्त्र के प्रणेता शङ्करजी, नागार्जुन आदि महर्षियों ने आयुर्वेद की उत्तम संहिता बना कर काल के गाल में जाने से प्राणियों की रक्षा कर वे असीम यशोधर्म्म के भागी हुए। अनन्तर "*नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण*" इस महाजनोक्ति के अनुसार जब भारतवर्ष का दौर्भाग्य समय उपस्थित हुआ तब अनेक दुर्घटनाओं से आयुर्वेद के ग्रन्थ लुप्त हो गये, द्रव्यों का परिज्ञान गायब हो गया। परन्तु जब परमात्मा की कृपा से परम शान्तिदायक न्यायी बृटिश गवर्नमेंट सरकार का शुभागमन हुआ। और सब किसी को अपने अपने कर्म-धर्म्म करने में स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। तब परम प्रशंसनीय आयुर्वेद के प्रेमियों ने बड़े परिश्रम से जहाँ तहाँ खोज ढूंढ़ कर बचे बचाये ग्रन्थों को जहाँ तक हो सका संशोधन तथा अनुवादादि द्वारा समलङ्कृत तथा प्रकाशित

कर संसार में प्रचार किया। जिनके सहारे से हम लोगों को तद्विषयक सन्दर्भ लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब विचारणीय यह है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा दो प्रकार से होती है एक जङ्गल की औषधों से और दूसरी रसायनों से। उन में से भी ऋषियों ने —

"अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचरेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिकोरसः" ॥
"रसवैद्यःस्मृतोवैद्यो मानुषो मूलकादिभिः।
अधमःशस्त्रदाहाभ्यां सिद्धवैद्यस्तु मान्त्रिकः" ॥

इत्यादि प्रमाणों से रस चिकित्सा को श्रेष्ठ माना है। पर प्रथम तो रसों का बनाना ही मुशकिल है क्यों कि आजकल के सङ्कुचित हृदय वाले वद्यगण बहुत शुश्रूषा तथा धन दान करने पर भी अपनी क्रियाओं के बतलाने के लिये कभी तैयार नहीं होते। और बिना उपदेशक स्वयं ग्रन्थ देख कर क्रिया करने में द्रव्य भी अधिक लगता है, परिश्रम भी पड़ता हैं। और माल नुकसान होने पर वैद्य लोग हताश होकर बैठ जाते हैं। इन्हीं अभावों को दूर करने के लिये मैंने अनुभव करने में दश हजार रुपये खर्च करके इस ग्रन्थ (*रसायनसार*) का निर्माण किया है। और मूल ग्रन्थ के साथ साथ सुस्पष्ट हिन्दी भाषा टीका भी कर दी है। जिस में सर्व साधारण इस ग्रन्थ को देख कर बड़े बड़े चन्द्रोदय आदि रसों को आसानी से बना कर इस लोक में धन धर्म व सुयश तथा परलोक में परमानन्द के भागी हों।

इस ग्रन्थ में चन्द्रोदय, मकरध्वज, स्वर्णसिन्दूर, रसकपूर, सिन्दूर-रस तथा सर्वधातुपधातु शोधन मारण और चिकित्साकाण्ड सब मेरी अनुभूत हैं। इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह वैद्य लोग न करके क्रियाओं का आरम्भ करें, यही मेरी प्रार्थना है।

विनीत—

श्यामसुन्दराचार्य वैश्य, काशी।

धन्यवाद

अखिल ब्रह्माण्ड-नायक परम-कारुणिक परमात्मा सच्चिदानन्द-कन्द शङ्करजी को कोटिशः धन्यवाद है कि जिनकी असीम कृपा से यह *"रसायनसार"* नामक ग्रन्थ छप कर तैयार हो गया। पुत्रवत्प्रजा-पालक परम-न्यायी दयासागर श्री बृटिश गवर्नमेण्ट सरकार को लक्षशः धन्यवाद है कि जिनके शान्तिमय-राज्य में मुझे स्वतन्त्रता से काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

सर्वशास्त्रपारङ्गत— पूज्यपाद– श्री सम्प्रदाय के परमाचार्य महा-महोपाध्याय बैकुण्ठवासी श्री ६ स्वामी भागवताचार्य्य जी महाराज को सहस्रशः धन्यवाद है कि जिन्हों ने रसायनसार के प्राथमिक लेखो में अनेक शिक्षा पूर्ण उपदेशों से मुझे प्रोत्साहित कर आज *"ग्रन्थकर्ता"* पद से भूषित किया है। शास्त्रविशारद जैनाचार्य्य श्री विजयधर्म्मसूरिजी महाराज को भी सहस्रशः धन्यवाद है कि जिनके आशीर्वाद से इस कार्य्य को मैंने उठाया और मैं सफल-मनोरथ हुआ। और महाराज योगनिष्ठ -जैनाचार्य्य श्री बुद्धिसागर-सूरिजी को भी सहस्रशः धन्यवाद है कि जिनकी सेवा में अध्याप-नार्थ तीन वर्ष रहने से मुझे जैनागम के लक्षावधि श्लोक अवलोकित हुए तथा रसायनशाला की सहायतार्थ तीन हजार रुपये और स्वर्ण पदक सहित मानपत्र मिले।

परमधार्मिक वैश्यवंशावतंस विद्यानुरागी रसायनशाला के प्रेसीडेन्ट काशी के प्रसिद्ध रईस श्रीमान् बाबू विश्वेश्वरप्रसाद जी बाबू मङ्गतराय जी को भी शतशः धन्यवाद है; जो तन मन धन से आयुर्वेद की उन्नति चाहते हैं। तथा रसायनशाला के छात्र-रत्न पं० अर्ज्जुनदत्त शर्मा आयुर्वेदविशारद महाशय को, और रसायनशाला के भूषणस्वरूप साधुशील गया प्रदेशान्तर्गत दौलतपुर-निवासी काव्यतीर्थ पं० श्रीकान्त शर्मा वैद्यशास्त्री जी को, एवं बलिया प्रदेशान्त-र्गत नशरथपुर वास्तव्य सज्जनशिरोमणि व्याकरण मीमांसाचार्य्य श्रीयुत पं० रघुनन्दन पाण्डेय जी को शतशः धन्यवाद है, कि जिन

महोदयों ने समय समय पर रसायनसार सम्बन्धी उपयोगी सम्मति तथा रसायनसार के लिखने में साहाय्य प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया है।

मुक्तकण्ठ से धन्यवाद के पात्र "श्री भारतजीवन" काशी, "श्री वेंकटेश्वरसमाचार" बम्बई, "श्री वैद्यकल्पतरु" अमदाबाद, "श्री वैद्यकपत्रिका" पूना, तथा "सुधानिधि" प्रयाग के सम्पादक महाशय, तथा खण्डन मण्डन करने वाले वैद्यराज महोदय भी हैं। जिनकी कृपा से रसायनसार का जन्म हुआ। जिससे अनेक औषधों को अनुभूत करके प्रसिद्ध करने का मुझे उत्साह हुआ। तथा इन ही महात्माओं की ऐसी ही उदारता से रसायनसार के शेष चार भागों के भी परिपूर्ण होने की आशा है।

तथा कलिकालधन्वन्तरि श्री १०८ कविरत्न श्री मदुमाचरणजी कविराज, पं० अर्जुन जी वैद्य प्रभृति ३५ गुरु महाराज एवं विद्या के स्तम्भरूप महामहोपाध्याय श्री १०८ श्री शिवकुमार शास्त्री, श्री तात्या शास्त्री प्रभृति काशी के सर्व विद्वानों को कोटिशः धन्यवाद है; जो इस दास को पुत्र से भी बढ़ कर समझते हुए, अहैतुक असाधारण कृपा रखते हैं।

रसायनसार के उपकारी और भी इतने महात्मा हैं कि जिनकी नामावली लिखने से एक निबन्ध बन सकता है, अतः उन महापुरुषों की पवित्र मूर्त्तियों को हृदय में ध्यान करता हुआ—कोटिशः धन्यवाद प्रदान करता हूँ कि जिन्हों ने मेरे जैसे अल्पज्ञ पुरुष को सद्बोध से बोधित किया। और आप लोगों की नामावली भी यथावसर रसायनसार के अन्य भागों में प्रकाशित करूँगा।

आप लोगों का चिरकृतज्ञ—
श्यामसुन्दर वैश्य,

रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य जी वैश्य

रचित-

अनुपानविधि और अनुभूतयोग

के विषय में कतिपय वैद्यक पत्रों का मत

सुधानिधि— वर्ष १९ अङ्क ४ प्रयाग लिखता है:— स्व० पं० श्यामसुन्दराचार्य्य जी रसायनशास्त्री ने औषधियों और भस्मों की तैयारी अपने ढंग पर नई तरकीब से की थी उन्हीं का इसमें अनुपान दिया हुआ है। साथ ही उनके अनुभव किये हुये नुसखे भी इसमें दिये गये हैं। कई नुसखे मार्के के हैं।

वैद्य— वर्ष १५ संख्या १०-११ मुरादाबाद लिखता है:— इस पुस्तक में ग्रन्थकार ने चन्द्रोदय, स्वर्ण, रौप्य, लोह, अभ्रक, प्रवाल आदि भस्मों की अनुपानविधि उन पर अपने अनुभव और कितने ही अनुभूत योग लिखे हैं। पुस्तक अच्छी है। वैद्यों के सिवाय साधारण लोग भी इसको पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं।

आरोग्यसिन्धु— वर्ष १ संख्या ३ फिरोजाबाद लिखता है:— इस पुस्तक में रसायनादि धातुओं की अनुपानविधि बड़ी सरलता के साथ लिखी है। जो प्रयोग लेखक महोदय जी ने रसायनसार में दिये हैं उन्हीं की अनुपानविधि विशेषतया लिखी गई है। अन्य प्रयोग स्वयं अनुभूत, साधारण तथा अच्छे हैं। पुस्तक अच्छी है। लेखक महोदय जी को धन्यवाद है।

वैद्यकल्पतरू— वर्ष ३३ अङ्क ८ अहमदाबाद लिखता है:— पुस्तक में ८१ प्रयोग अनुभव सिद्ध हैं।

श्री वेंकटेश्वर समाचार— ३१-८-२८ के अङ्क में लिखता है;— पुस्तक अच्छे ढंग से लिखी गई मालूम होती है और काम की है।

समर्पणपत्रिका—

विदितमेवास्ति विदुषां यदायुर्वेदो नाम धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थाद्वैत-साधनाऽऽरोग्यसम्पादनसम्भाराऽऽसागर ऋग्वेदोपवेदः करुणावरुणालयेनाऽनन्त-कोटिब्रह्माण्डनायकेन जगदीश्वरेण संसृष्टात्मीयसकलप्रजासन्तानसंरक्षणाय जगति प्राकाश्यमानीयतेति। तमेवायुर्वेदमहार्णवं वर्षषट्कं यावद् दशसहस्रमुद्राव्ययपुरस्सरं महताऽऽयासेनाऽनन्यकर्मणा मया निजमानसमन्दरेणाऽनवरतमुन्मथ्याऽऽनन्दकन्द-नन्दनन्दनकृपाकटाक्षतः समासादितमिदं **रसायनसार**रूपमपूर्वं रत्नम्। तच्चानुभू-तानेकचन्द्रोदय-मकरध्वज—स्वर्णसिन्दूर— रससिन्दूर— सर्वधातूपधातुशोधनमारण—चिकित्साकाण्डाद्यऽप्रतिमगुणगणगुम्फितममूल्यं महारत्नं "योग्यं योग्येषु योजयेत्" इत्यभियुक्तोक्तन्यायमार्गानुसारतः सकलश्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासशब्दसाहित्यकवि-त्वसाङ्ख्ययोगमीमांसावेदान्ताद्यखिलविद्या काननपञ्चाननानां ग्रीष्मभीष्मप्रचण्ड-मार्त्तण्डप्रबलप्रतापपरितापिताऽशेषवैरिजनानां शारदशशाङ्कसन्तानसमुज्ज्वलय-शोवितानसम्भाजितभुवनानां निखिलमहार्हमौक्तिकादिरत्नभोगभाग्यभाजनानां गाम्भीर्यौदार्याऽऽद्यसङ्ख्यगुणगौरवान्वितान्तःकरणानां समस्तभूमण्डलाऽऽखण्डलाय-माननृपानुकरणीयसद्गुणानां गीर्वाणवाणीसम्मानसन्दानसन्ततबद्धपरिकराणां सुतनिरवशेषसम्पूर्णप्रजापालनलालन शिक्षणदीक्षणाद्यावश्यकीयकार्यकरणाजस्रत-त्पराणाम् अनाथबालवनितागोब्राह्मणाऽद्वितीयशरणानां सर्वतन्त्रस्वतन्त्रगुरु-वरमहामहोपाध्यायपण्डितस्वामि**राममिश्र शास्त्रि**महोदयाऽमन्दस्निग्धसुहृद्वराणां तद्वदेव निरवशेषवात्सल्यकृपाकराक्षसंवर्द्धित**स्वामि केशवदेव**प्रभृत्यस्माद्दक्षवाल-जनानां शास्त्रविशारदजैनाचार्य पदोत्सवपदार्पणकशीपशुशालाऽऽश्रयदानादि-कर्माऽऽकर्षित**श्रीविजयधर्मसूरि**प्रोत्साहितसमस्तभारतवर्षीयश्वेताम्बरजैनसम्प्रदा-यभक्तिसम्मानितमङ्गलमूर्तीनां द्विजकुलकमलदिवाकरधर्मावतार-दयागार-विद्वद्वर-हृदयहार—श्रीमन्महाराजाधिराज-काशीराज—श्रीश्रीश्री १००८ सर **प्रभुनारा-यणसिंह** शर्मदेववीरपुङ्गवानाम् (जी. सी. आई. ई.) पदविभूषितानां सच्चरित्र-परमपवित्र-करालकलिकालकल्पिताऽपारदुःखपारावारनिमग्नदीनजनवहित्र-गुणिजन-सम्मानसम्मित्रेषु पाणिपयोजेषु सादरं बद्धकरयुगलं समर्प्य कृतकृत्यतामुपगच्छा-मिआशासेच महापूरुषकोषे संरक्षितं **रसायनसार**रत्नं लोकानां रसरक्तादि-दारिद्र्यदलनेन चिरन्तनाभ्युदयमानेष्यतीति, प्रभुवराश्चतद्दूरीकृत्य मां समनु-ग्रहीष्यन्तीति प्रार्थयमानो—

भवतां सर्वथाऽऽज्ञाधीनसेवकः—

श्यामसुन्दराचार्यो वैश्यः

(रसायनसार ग्रन्थकर्त्ता) काशीवास्तव्यः।

श्रीमान् महाराज सर प्रभुनारायणसिंह बहादुर, जी. सी. आई. ई., काशीनरेश ।

गामाक्रम्य कृतार्थिताऽखिलजनः सत्याश्रितः सत्स्तुतः ।
सद्भूत्या परिभूषितोऽवनिभृतोऽध्यास्योत्तमाङ्गं स्थितः ॥
नागेन्द्रालिविराजितो मनसिजाऽहङ्कारहर्त्ताऽपरो ।
राजद्राजकलः कुमारसहितः काशीश्वरो राजते ॥१॥

अनेन श्रीकाशीराजस्य शिवसाम्यं गम्यते ।

पंडितवर महामहोपाध्याय श्री स्वामी राममिश्र शास्त्री

वैदिकस्मार्तमन्त्रौघैर्गर्जन् काश्यां च युक्तिभिः—
तर्जञ्छास्त्राहवे काँस्कान् राममिश्रोऽमृतोऽभवत् ॥१॥
विद्यां दुःखार्जितं स्वं च पात्रसाद् विष्णुसात् क्रियाम् ।
कृत्वा लक्षावधिश्लोकान् राममिश्रोऽमृतोऽभवत् ॥२॥
श्रीनृसिंहचतुर्दश्यां ध्यायन्प्रह्लादरक्षकम् ।
भक्षकं दैत्यसम्पत्ते राममिश्रोऽमृतोऽभवत् ॥३॥
ईदृशाः शास्त्रपारीणाः पूरुषाः पूरुषार्थिनः ।
इते कलौ जनिष्यन्ते किमर्थं मोक्षगामिनः ॥४॥

स्व० रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्यो वैश्यः (रसायनसार ग्रन्थकर्त्ता) योहि-

सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां रामभिश्राख्यशास्त्रिणाम् ।

विष्णोः कलावतीर्णानां शिष्यः काशिनिवासिनाम् ॥१॥

ग्रंथकार के प्रशंसापत्र-

प्रशंसापत्रम्-

श्रीहरिर्जयति ।

कल्याणाभिनिवेशी नन्वेष भरतपुरराजधान्यां कामवने लब्जन्मा श्रीश्यामसुन्दर गुप्तो विद्वान् सदाचारसम्पन्नश्चास्तीति बाढं प्रमोदामहे । अभ्युदयनिश्श्रेयसनिदानभूतानामान्वीक्षिकीत्रयीवार्त्तादण्डनीतीनां चतसृणामपि विद्यानां समुल्लासस्य कृते शश्वत्सिद्धोर्वराऽपीयं भारती भूर्यदा नामाऽद्यत्वे करालकालव्याजृम्भणवशादूषरेव संलक्ष्यते, परमपूरुषमुखभूता ब्राह्मणा अपि च ज्ञानविज्ञानबहिष्कृताः प्राकृता इव प्रायो भवन्ति, तदा केव कथा क्षत्रियवैश्ययोरिति यादृशी दशा शाश्वतिकविद्यासम्प्रदायविच्छेदमुपेयुषो संप्रति भारतभुवि व्यतिवर्त्तते न सा कस्यापि परीक्षकस्य परोक्षेति कृतं भूरिणा वाचां विसर्गेण ।

श्रीश्यामसुन्दरगुप्तः परमयमीदृशेऽपि करालकाले वैश्यकुलोत्पन्नः सन्नपि लौकिकव्यापारेष्वदत्तदृष्टिर्व्याकरणन्यायसाहित्यादिनिबन्धेष्वासादितव्युत्पत्तियोगो यावज्जैनाऽऽगमेऽपि लब्धप्रबोध इति तोषस्थानम् । ततोऽपि विशिष्टमेतत् यत् सदाचारनिष्ठश्चायमस्ति यदेतदस्मत्समक्षसाक्षिकमेव भवति । अथो एवंविधिः सन्नपि ब्रह्मण्यदेवे ब्राह्मणेषु च भक्तिभावादऽबहिर्भूतान्तरङ्ग इति निखिलं विमृशतां परितोषः परमादधाति पदं हृदये नः ।

तदेवंगुणगणसम्पन्नायास्मै काञ्चनपदकाञ्चितं पारितोषिकपत्रमेतद्वितरन्ति विद्याहितहेतोः प्रसेदिवांसः श्रीकाशीस्थप्रधानविद्वत्संस्थामास्थिता विद्वज्जनाः । यद्येतद् दृष्टान्तावष्टम्भतो गतानुगतिगकतयाऽप्यन्ये ब्राह्मणातिरिक्ता अपि क्षत्रियवैश्यजनाः शास्त्रेऽभियुञ्जीरन्, कामं विजानीयुः कियता हि परिश्रमेण ब्राह्मणा विद्यासम्प्रदायं परिरक्षितवन्तो यथासम्भवं परिरक्षन्ति च साम्प्रतमपि "*विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जन-*

परिश्रमम् । वन्ध्या नहि विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्"
इत्यलम् । श्रीरामनवमी सं० १९६३

महामहोपाध्याय श्रीराखालदास न्यायरत्नः ।
महामहोपाध्याय पं० श्रीशिवकुमार शास्त्री ।
महामहोपाध्याय श्रीकैलासचन्द्रशिरोमणिः ।
महामहोपाध्याय श्रीगङ्गाधर शास्त्री सी० आई० ई०
महामहोपाध्याय स्वामि राममिश्र शास्त्री ।
महामहोपाध्याय श्रीतात्या शास्त्री ।
महामहोपाध्याय स्वामि भागवताचार्यः ।
तर्कवागीश नकछेदराम शास्त्री ।
महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषणः
(एम० ए० पी० एच० डी० प्रिन्सिपल-
कलिकाता राजकीय संस्कृतकालेज) ।
श्रीसीताराम शास्त्री तार्किकशिरोमणिः ।
महामहोपाध्याय श्रीसुधाकर द्विवेदी ।
महामहोपाध्याय पं० श्रीदामोदर शास्त्री ।
श्री पं० पद्मनाभ शास्त्री दर्शनशास्त्राध्यापकः ।
श्री पं० नित्यानन्दमीमांसकः ।
महामहोपाध्याय पं० श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री श्रोत्रियकर्मठः ।
महामहोपाध्याय पं० केशव शास्त्री ।

श्रीयशोविजय जैन पाठशाला बनारस की षाण्मासिक परीक्षा ।

यह पाठशाला अनुमान तीन वर्ष से स्थापित हुई है, इस पाठशाला का मुख्य उद्देश विद्वान् तैयार करने तथा संस्कृत भाषा की वृद्धि करने का है। इस पाठशाला में न्याय, व्याकरण, काव्य, साहित्य तथा जैन-शास्त्रादि पढाये जाते हैं। इस पाठशाला में इस समय ४० विद्यार्थियों

नोट—१ केषांचिद् विदुषां हस्ताक्षराणि पुस्तकमुद्रणकालेऽपि जातानि ।

को भोजन वस्त्र तथा पुस्तकादि दिये जाते हैं, और योग्यतानुसार हाथ खर्च भी दिया जाता है। पाठशाला में जैन विद्यार्थियों के अतिरिक्त उदासी, निर्मल सन्यासी तथा ब्राह्मण आदि अन्यमतावलम्बी भी पढ़ जाते हैं, अभी तक इस पाठशाला का प्रबन्ध श्रीयुत साधु धर्मविजयजी महाराज के पुरुषार्थ से उत्तम चला आया है। विद्यार्थियों की परीक्षा वर्ष में दो दफे होती है। प्रथम षाण्मासिकपरीक्षा श्रीयुत पण्डितवर पद्मनाभ शास्त्री जी ने ली। द्वितीय काशी क्वीन्सकालेज के अध्यापक सुप्रसिद्ध श्रीयुत (महामहोपाध्याय) पण्डित तात्या शास्त्री जी और न्यायरत्न तर्कवागीश जगद्विख्यात पण्डित सीताराम शास्त्री जी ने ली। तृतीय श्रीमन्महामहोपाध्याय पण्डिताग्रणी शिवकुमार शास्त्री जी के शिष्य श्रीयुत पण्डित रघुनन्दन शास्त्री जी ने ली। चतुर्थ श्रीमन्महामहोपाध्याय सर्वतन्त्रस्वतन्त्र स्वामी राममिश्र शास्त्री जी ने ली।

तथा पञ्चमी परीक्षा वर्त्तमान मास की ता० २४, २५, २६ को हुई। इस परीक्षा के परीक्षक श्रीमन्महामहोपाध्याय राममिश्र शास्त्री जी के शिष्य श्रीयुत पण्डित श्यामसुन्दराचार्य वैश्य थे। परीक्षा में विद्यार्थियों ने अच्छा संतोष दिया, जिससे संतुष्ट हो कर पण्डितजी ने सर्व विद्यार्थियों को अपने पास से इनाम बाँटा, और अपना बड़ा संतोष प्रकट किया। हमको बड़ा हर्ष होता है कि हमारी वैश्य-जाति में भी ऐसे सुयोग्य विद्वान् उत्पन्न हुए हैं। पण्डितजी को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं, और आशा करते हैं कि इस पाठशाला पर पण्डितजी ऐसी कृपा हमेशा करते रहेंगे। हमारी सर्व वैश्य-भाइयों से प्रार्थना है कि पण्डितजी का उदाहरण लेकर इसी प्रकार विद्या में उन्नति करेंगे। पण्डितजी का परीक्षा विषयक संतोष निम्नलिखित है—

अनादिकालाद्यावधि विद्वत्प्रसूतिरनेकतीर्थङ्करजननी पवित्रतमाऽनायासलब्धगङ्गाप्रवाहा काशी पुरुषार्थचतुष्टयं यच्छतीति सर्वशास्त्रेषु प्रसिद्धमस्ति। तामध्यासीना उदासीनाश्च संसृतेरकारणकरुणास्साधवः श्रीधर्मविजयमहात्मानः प्रबध्नन्ति जैनपाठशालां, यदीयांश्छात्रान् सुखलाल-व्रजलाल-हरगोविन्द-वेचरदास प्रभृतीन् षट्त्रिंशत् गृहस्थान् द्वौ साधू श्रीमङ्गलविजयश्रीवल्लभविजयनामानौ च न्यायव्याकरणादिशास्त्रेषु

परीक्ष्य जातानन्दातिरेकस्य मे हर्षोऽमृतधाराभिरासिक्तं चेतः। एवमेव यदि गृहिबालकांश्छात्रान् अमृत वर्षिण्या स्वदृष्ट्या सिञ्चन्तः श्रीधर्मविजयसाधुवर्य्या अध्यापनार्थं प्रभन्त्स्यन्ति तदा जैन धर्मावलम्बिष्वपि पञ्चषैरेव नवदशैरेव वा वर्षैः शतपण्डिती द्रक्ष्यत इति सम्भावयति पण्डित श्यामसुन्दरो वैश्यः आशास्ते चेदानीन्तनवदध्ययने छात्राणां परिश्रमम्। अत्रत्याध्यापकाश्च विद्वत्सदसि लब्धादराः श्रीयुताऽम्बादत्त-वाणीशझा-हरनारायणशास्त्रि प्रभृतयो महाविद्वांसः सम्यगध्यापयन्तीति तेषां जैनधर्मिभिःकृतज्ञैर्भवितव्यम्। अन्येच वृहस्पतेरन्यूनाः श्रीमहा-महोपाध्यायसर्वतन्त्रस्वतन्त्राः श्री ६ राममिश्रशास्त्रिप्रभृतयो महानुभावा इमां पाठशालां स्वीयां मन्यन्त इति महाँल्लाभः॥ जैनपाठशालां स्वत्वाभिमन्ता पण्डित श्यामसुन्दरोवैश्यः।

गत त्रयोदशी चतुर्दशी और अमावस्या के रोज पण्डिताचार्य मि० श्यामसुन्दरजी वैश्य ने श्रीयशोविजय जैन पाठशाला बनारस के विद्यार्थियों की परीक्षा ली। मौखिक और लेख परीक्षा में विद्यार्थियों ने अच्छा परितोष दिया। जिससे प्रसन्न होकर परीक्षक महाशय ने लब्धपूर्णाङ्क विद्यार्थियों को एक एक रुपया, दूसरों को अर्ध अर्ध रुपया और चन्द्रिका सारस्वत वाले छोटे छोटे बच्चों को एक एक चवन्नी अपने पाकेट से पारितोषिक दिया था। यह बात किसी को मालूम नहीं थी, जब पण्डितजी ने विद्यार्थियों को बुला कर सब के हाथ पर रजत मुद्रा का प्रक्षेप करना शुरू किया तब विद्यार्थी बड़े खुश हुए, और मुनिराज श्रीमान् धर्मविजयजी ने पण्डित श्यामसुन्दराचार्य जी को धन्यवाद दिया। बेशक हमारे जैन भाइयों को ऐसे उत्साही परीक्षक और विद्यार्थियों की चतुरता पर बहुमान का अवसर है। द. सम्पादक "आत्मानन्द पत्रिका" अङ्क ६८ पौष संवत् १९६२ लाहौर।

नोट १ काशी और पालीताणे की यशोविजय जैनपाठशाला के संस्थापक-काशी पशुशाला के जन्मदाता और संरक्षक-समस्त भारतवर्षीय विद्वतसमाज से लब्ध "शास्त्रविशारदजैनाचार्य" पदवीक "जैनशासन" के प्रवर्त्तक-व्याख्यान-वागीश-विद्वच्छिष्यप्रशिष्यावृत-दयार्द्रहृदय-महाराज श्रीश्रीश्री १०८ श्रीविजय-धर्मसूरिजी।

"ओन्नमः सिद्धेभ्यः"

मि. भा. सु. ७ सं० १९६३

श्रीसत्सम्प्रदायाचार्य्य सारस्वतसाम्राज्यदीक्षणविचक्षणादि ६४ चतुष्षष्टिविशेषणावच्छिन्न, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-महामहोपाध्याय पण्डित स्वामि राममिश्र शास्त्री जी के प्रधान शिष्य कामवन निवासी पण्डित श्याम-सुन्दराचार्य जी वैश्य। अहमदाबाद।

आज बड़ा हर्ष का समय है कि आपने यहाँ पधार कर शिक्षण और उपदेश दिया सो हमने स्वीकार किया। हमारे ऊपर जो आपने अहैतुक परोपकारता प्रेमपूर्वक दरशाई उसको हम कभी नहीं भूलेंगे। उसका बदला देने को हम असमर्थ हैं। केवल आप से यह प्रार्थना है कि "सेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द दिगम्बर जैन बोर्डिङ्ग स्कूल" की तरफ से आप को सम्मानपत्र दिया जाता है। सो आशा करते हैं कि आप स्वीकार करेंगे। यद्यपि श्री काशी के बड़े बड़े महामहोपाध्याय प्रधान विद्वज्जनों से आप को सुवर्ण का चाँद और सार्टिफिकेट मिला है उसके मुकाबले पर हमारा सम्मानपत्र नहीं है तथापि मान का पान भी सज्जन स्वीकार कर लेते हैं। आपका युक्तियों से भरा हुआ पाण्डित्य और वाक्चातुर्य्य हमने श्रवण किया उस आनन्द को हम हमेशा याद रक्खेंगे। और जिस प्रकार काशीस्थश्वेताम्बर श्रीयशो-विजय जैनपाठशाला के आप शिक्षक परीक्षक निरीक्षक हैं और उन ५० विद्यार्थियों को अपना मानते हैं उसी प्रकार इस स्कूल के ६० विद्यार्थियों को अपने बालक समझ कर हमेशा कृपा दृष्टि रक्खेंगे। हम को आप से बड़ी बड़ी आशा है कि जिस प्रकार श्रीयोगनिष्ठ मुनिराज श्रीबुद्धिसागरजी महाराज आप से अष्टसहस्री स्याद्वादरत्नाकरावता-रिकादि महान् ग्रन्थ पढ़ रहे हैं उसी प्रकार कभी दिगम्बर विद्यार्थी भी आप के द्वारा तैयार होंगे। और ता० १-८-१९०६ के २९ अङ्क जैनगजट देखने से हमें मालूम हुआ कि आप को श्रीदिगम्बरस्या-द्वादपाठशाला काशी की तरफ से भी प्रार्थना की गई है कि "आप

से निवेदन है कि काशीस्याद्वादपाठशाला की ओर भी कृपा दृष्टि करें और उसका भी परीक्षक होना स्वीकार करें।"

आपका आज्ञाकारी — सुप्रिन्टेन्डेन्ट, गङ्गाशङ्कर करुणाशङ्कर भट्ट,
दिगम्बर जैन बोर्डिंग स्कूल अहमदाबाद।
एवं, धर्मशास्त्राध्यापक भगवानदास जैन
दि. जै. बो. स्कूल अहमदाबाद।

श्री कामवननिवासि वैश्यकुलभूषण पण्डित श्यामसुन्दराचार्येभ्यो-

धन्यवादपत्रम्।

ॐ नमो वीतरागाय वीरजिनेश्वराय।

श्रीकाशी श्वेताम्बर जैनपाठशाला के अवैतनिक शिक्षक, निरीक्षक, परीक्षक व्याकरणाद्याचार्य वैश्यकुलभूषण शास्त्री श्यामसुन्दराचार्य जी,

जिस समय हमने अहमदाबाद में चातुर्मास्य किया था, हमें शास्त्राभ्यास कराने के लिये बुलाये गये थे। अष्टसहस्री, तत्त्वार्थवृत्ति, सम्मतितर्क, विशेषावश्यकटोका इत्यादि जैन-न्याय शास्त्र पढ़ाने में आपका अपूर्व चातुर्य देख कर हमें बहुत सन्तोष हुआ। व्याकरण शास्त्र पढ़ाने में भी आप बहुत निपुण हैं। जैन-दर्शन शास्त्र बाँचने तथा पढ़ाने से उनकी उत्तमता देख कर आप बहुत प्रसन्न हुए। यद्यपि आप वैष्णव हैं तथापि निष्पक्ष स्वभाव के होने के कारण जैन धर्म के सम्बन्ध में भी आपके विचार अच्छे हैं। इसी लिये अपने गुरु काशी निवासी सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहोपाध्याय पण्डित स्वामी राममिश्र शास्त्री जी से आपने जैन धर्म की उत्तमता सूचक सुजन-सम्मेलन नामक एक ग्रन्थ बनवाया। वैदिक और जैन सम्प्रदाय में प्रेम उत्पन्न कराने के अभिप्राय से समस्त भारतवर्ष के धुरन्धर पण्डितों के द्वारा शुद्धाचरण तथा शास्त्र सम्पन्न मुनिराज श्रीधर्मविजयजी महाराज को आपने ही 'शास्त्रविशारद जैनाचार्य' की बड़ी पदवी दिलाने के लिये प्रयत्न किया था, और उसमें आप सफल मनोरथ भी हुए। इसका मुख्य कारण आप की गुणग्राहकता है। आप में एक अपूर्व गुण यह भी है कि आप वेतन के भी बहुत लोभी नहीं हैं।

अपने सद्गुणों के कारण आप श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के माननीय हैं। आप की प्रकृति शान्त और मिलनसार है। आपके पढ़ाने की पद्धति इतनी उत्तम है कि आपके विद्यार्थी उससे बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं। हमारी समझ में आपके समान उत्तम रीति से शास्त्र पढ़ाने वाले और जैनधर्म से प्रेम रखने वाले बहुत ही बिरले महानुभाव होंगे। आपके सदाचार और सद्गुणों को देख कर हम आपको यह सम्मानपत्र देते हैं। यद्यपि आपके सद्गुणों की ओर ध्यान दिया जाय तो आप अनेक पदकों के अधिकारी हैं तथापि आपको यह एक स्वर्णपदक दिया जाता है। यह पदक आत्मोपासक मण्डल में एकत्रित सम्पूर्ण श्रीश्वेताम्बरजैनसङ्घ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) की ओर से सम्मानपत्र के सहित आपको दिया जाता है। हमारी हार्दिक इच्छा है कि जैनधर्म के तत्त्व प्रकाश करने में आप एक सामर्थ्यवान् विद्वान् प्रतीत हों, शास्त्र पढ़ा कर पुण्य के भागी हों, और चिरकाल तक इस संसार में रहकर धर्म की अमूल्य सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करें। अन्त में हम अपनी ओर से आपकी विद्वत्ता और सम्मान के लिये "*जैनव्याकरणन्यायशास्त्रपाठक*" पदवी वाला यह स्वर्णपदक आपको देते हैं और आशा करते हैं कि आप अनुग्रहपूर्वक इसे स्वीकार करेंगे!

श्रीशब्दागमतर्कपण्डितमणिं काशीस्थशालास्थिता-
नन्तेवासिगणान् परीक्ष्य विविधान् संजातहर्षावलिम्।
सच्छास्त्रप्रकरप्रभूतमणिभिर्देदीप्यमानोरसम्
संप्रेक्ष्यैव सुशान्तदान्तविमलं धर्मादिकृत्योत्सुकम्॥ १॥
योगनिष्ठमुनिबुद्धिसागरा जैनसङ्घपटवस्तथापरे।
मानपत्रमिदमर्पयन्ति ते श्यामसुन्दरबुधाय सादरम्॥ २ युग्मम्॥

मि० श्रावणकृष्ण १२ रवि विक्रम सं० १९६४ गुजराती। वीर संवत् २४३४। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ली० मुनि बुद्धिसागर माणसाग्राम।
अहमदाबाद।

नोट—१ संस्कृत गुजराती भाषा में मनोहरगद्यपद्यमय अध्यात्मविषयक

वाराणस्यायुर्वेदविद्यालयस्य प्रतिष्ठापत्रम्—

भरतपुरमण्डलान्तर्गतकामवनग्रामवासी श्रीयुक्तनन्दकिशोरगुप्तमहाशयात्मजः श्यामसुन्दरगुप्तो वाराणस्यामस्मत्तश्चरकसुश्रुताद्यायुर्वेदशास्त्रमधीत्य व्युत्पन्नश्चिकित्साकुशलश्च संवृत्तः। अतोऽस्मै शीलवते धार्मिकायाऽधीतकाव्यव्याकरणदर्शनादिशास्त्राय सानन्दमिदं प्रतिष्ठापत्रं स्वर्णपदकयुतं "*रसायनशास्त्री*" त्युपाधिश्च दीयते दील्लीलाहौरमद्रासकालेजानामायुर्वेदीयोपाधिपरीक्षापरीक्षकेण कविरत्नोपनामक श्रीमदुमाचरण भट्टाचार्यकविराजेन।

काशीदशाश्वमेधे मार्गशीर्षमासस्य पञ्चमीदिवसे शुक्लपक्षे विक्रम सं० १९६६

प्रतिष्ठादाने श्रीकाशीस्थविदुषां सम्मतिः—

श्रीकाशीधामवास्तव्येन श्यामसुन्दराचार्यवैश्येनाऽऽयुर्वेदोक्तविशुद्धरीत्या बहुव्ययेन चन्द्रोदयादिविविधौषधानि शीघ्रफलप्रदानि निर्मितानीति प्रमोदामहेऽनुमोदामहे चोपाधिदाने वयम्।

महामहोपाध्याय श्रीभागवताचार्यो राजकीयसंस्कृतपाठशालाध्यापकः।
महामहोपाध्याय श्रीसतीशचन्द्र विद्याभूषणः एम० ए० पी० एच्० डी०।
महामहोपाध्याय श्रीसुधाकरद्विवेदी राजकीयसंस्कृतपाठशालाध्यापकः।
श्रीवैद्यराज गणेशदत्त त्रिपाठी। मि० मार्ग सु० ५ सं० १९६६
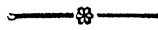
नोटिस—माननीय महाशय!

सविनय निवेदन है कि रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य जी को मानपत्र देने का जलसा भाद्र वदि ३ बुधवार ता: २१। ९। १९१० को रात्रि के ७॥ बजे श्री जैनश्वेताम्बरमन्दिर के नीचे के हाल में श्रीयुत गुलाबचन्द्र जी ढड्ढा एम्० ए० के सभापतित्व में होगा उस समय

---

४० ग्रन्थों के रचयिता—"बुद्धिप्रभा" के प्रवर्त्तक—मूर्तिपूजकजैनश्वेताम्बरबोर्डिङ्ग के संस्थापक—काशीस्थमहामहोपाध्यायादि समस्त विद्वन्मण्डली से लब्ध "जैनाचार्य" पदवीक—बरौदा आदि की धुरन्धर विद्वन्मण्डली से अनुमोदित चतुर्विध-जैनसंघद्वारा "सूरिपट्ट" पर स्थापित—किये हुए शिष्यप्रशिष्यावृत-व्याख्यानवाचस्पतियोगिराज-शान्तमूर्ति-श्रीश्रीश्री १०८ श्रीबुद्धिसागरसूरि जी महाराज।

आप समस्त सेठ लोग पधारेंगे ऐसी प्रार्थना है। द० आप लोगों का सेवक– गांधी डाह्याचन्द्र त्रिभुवन आनरेरी सेक्रेटरी जैनभाषण सभा रंगून। ता० २०। ९। १०

मानपत्र–

पण्डित शिरोमणि वैश्यवंशावतंस शास्त्री श्रीयुत श्यामसुन्दराचार्य जी वैश्य।

आप न्याय– व्याकरण–साहित्यादि शास्त्रों में अतिपाण्डित्य धारण करते हैं। उस पर भी जैन-दर्शन में भी आपकी गम्भीर विद्वत्ता है। आपके उत्तम अनुकरणीय गुण प्रत्येक मनुष्य के मन को हरण करते हैं। और आपने अनुपम बुद्धि के बल से थोड़े ही समय में आजतक नहीं होने वाली चमत्कारक गवेषणाओं को सर्वसाधारण जनता में प्रसिद्ध करके भारतवर्ष के ऊपर अति उपकार किया है। और आपके अनेक सद्‌गुणों को देख कर काशी के अनेक धुरन्धर विद्वानों ने तथा अन्य मुनिगण तथा सज्जनों ने आपको अनेक पारितोषिक पत्र दिये हैं। और आपने भी जैनमत के अहिंसादयामयादि सद्‌गुणों को देख कर उसकी उन्नति में रात्रि दिवस प्रयास किया है। इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि हमारी यशोविजय जैनपाठशाला जसी वास्तविक उन्नति करने वाली महा संस्था में किसी प्रकार के बिना स्वार्थ अद्वितीय शिक्षक निरीक्षक परीक्षक पद का काम कर रहे हो। और उसकी सहायता के लिये इतनी दूर (समुद्र टापू में) आकर अपने अमूल्य समय को खर्च कर रहे हो। आदि आदि आपके सद्‌गुणों से आकर्षित होकर यह "*श्रीजैनभाषणसभा*" की तरफ से आपको मानपत्र दिया जाता है इसको स्वीकार करके हमको हर्षित कीजियेगा।

द० गुलाबचन्द्र ढढ्ढा एम्० ए० सभापति—

जैनभाषण सभा रंगून (जैनश्वेताम्बर कान्फरेन्स के प्रेसीडेन्ट)

नोट— वैद्यों तथा रोगियों के हजारों सार्टिफिकेटों से, सैकड़ों पृष्ठ भर जाते, इसलिये उनमें से एक भी नहीं छपाया है। रसायनसार से रोगियों तथा वैद्यों को जो आश्वासन मिलेगा वही एक भारी सार्टिफिकेट है। ग्रन्थकर्त्ता

रसायनसार के समस्त चित्रों की सूची

विषय-सूची

चिकित्साकाण्ड प्रकरणम्—

२५०) रु० में १०००) रु० की प्राप्त होने वाली औषधियों की लिस्ट नं० १

नाम औषध	तौल	मूल्य	नाम औषध	तौल	मूल्य
चन्द्रोदय रस	१ तोला	६०)	सुवर्णभस्म	१ तोला	४५)
बृहचन्द्रोदय रस	२ माशा	१६॥)	चाँदीभस्म	२ तोला	१०)
कर्पूरसिन्दूर श्वेत	२ माशा	८॥)	लोहभस्म शतपुट (मृतोत्थापन)	१ तोला	५०)
विषचन्द्रोदय रस	६ माशा	५०)	लोहभस्म	१ तोला	२०)
मल्लचन्द्रोदय रस	६ माशा	५०)	जस्ताभस्म	४ तोला	४)
४० गुण गन्धक-जारित-सिन्दूर रस	४ मासा	२५)	सीसाभस्म	४ तोला	८)
महाकनकसिन्दूर रस	६ मासा	२५)	बङ्गभस्म	४ तोला	८)
			ताम्रभस्म	५ तोला	१०)
षड्गुण गन्धक जारित सिन्दूर रस	२ तोला	४०)	अभ्रकभस्म नं० १	१ तोला	३०)
रससिन्दूर	१० तोला	१००)	अभ्रकभस्म नं० २	६ माशा	१२)
शिलासिन्दूर रस	२ तोला	२०)	अभ्रकभस्म नं० ३	६ माशा	१०)
तालसिन्दूर रस	२ तोला	२०)	श्वेताभ्रक भस्म	५ तोला	२०)
कर्पूरसिन्दूर रस	२ तोला	२०)	शंखभस्म	४० तोला	२०)
विषसिन्दूर रस	५ तोला	५०)	कौड़ीभस्म	२० तोला	१०)
मल्लसिन्दूर रस	५ तोला	५०)	सीपभस्म	४० तोला	२०)
मल्लभैरव रस	६ मासा	१०)	मण्डूरभस्म	२० तोला	२०)
अर्कलोकेश्वर रस	१० तोला	२०)	सुवर्णमाक्षिक भस्म	१० तोला	२०)
स्वर्णमृगाङ्क	१ तोला	२०)	शंखियाभस्म	२ तोला	२०)
पञ्चामृतपर्पटी	२ तोला	२०)	त्रिबङ्गभस्म	४ तोला	८)
गृध्रदृष्टि अंजन	२ तोला	६)	काचभस्म	६ मासा	१०)
शुक्राञ्जन	२ तोला	४)	प्रवालभस्म	१० तोला	२०)
ग्रंथिभेदन क्षार	२ तोला	४)	सूर्यप्रभा बटी	१०० गोली	६)

पता— उपरोक्त ४३ औषधियों का मूल्य १०००) रु० ।

रसायनसारः ।

मङ्गलाचरणम् ।

वेदैरशेषैरपिवेद्य एको वैद्योऽनवद्यो भवरोगभाजाम् ।
श्रीविश्रमोऽनन्तशयोमदन्तर्दीव्यात्सदेवः पुरुषः पुराणः॥१॥

अर्थ—सम्पूर्ण वेदों से जानने योग्य, अद्वितीय, संसार रूपी रोग से ग्रस्त प्राणियों के प्रशंसनीय चिकित्सक, लक्ष्मी के आश्रय, शेषशायी, पुराण-पुरुष (परमात्मा) मेरे हृदय में प्रकाशित हों ॥ १ ॥

आलोक्यलोकं सकलं समक्षं दारिद्र्यरोगै रतिपीड्यमानम् ।
क्रोशन्तमत्यर्थमनाथवद्यः सूतेस्मसूतं जयतात्सशूली॥२॥

जिन महादेवजी ने अपने सामने दरिद्रता और अनेक रोगों से पीड़ित, अनाथ की तरह चिल्लाते हुए सम्पूर्ण लोक को देखकर ही सर्वतापनाशक पारद को उत्पन्न किया वह शूल धारण करनेवाले सदा शिवजी महाराज विजय को प्राप्त हों ॥ २ ॥

सूते हि यः स्वर्णमयं च राशिं ताम्रादि धातौ विनिमग्नएव ।
निषेवितोलोहमयं च कायं द्रष्टुः परां पुण्यमयीं च सिद्धिम्३॥

जो पारद ताम्रादि धातुओं को सुवर्ण बना देता है, (जिससे दरिद्रता दूर होती है) और रोग दूर करने के लिये निरन्तर सेवन

करने से शरीर को पुष्ट बना देता है तथा दर्शन करने से उत्कृष्ट पुण्य प्रदान करता है ॥ ३ ॥

सूते चंद्रोदयमुखरसैः सद्‌गुणान् स्वास्थ्यवत्सु ।
भग्नप्रायानऽपिजनगणान् संहितान् यो विधित्सुः ॥
सेवार्चाद्यैरपि सुविनृणां सर्वदा शङ्करिष्णुः ।
कल्याणं वो दिशतु भगवान् पारदः पारदित्सुः ॥४॥

जो पारद चन्द्रोदय आदि रसरूप होकर निरोग पुरुषों में श्रेष्ठ गुण पैदा करता है और टूटे अङ्गवाले पुरुषों के शरीर को जोड़ देता है तथा शिवलिङ्गादि द्वारा पूजा करनेवाले लोगों का कल्याण करता है, अधिक क्या ! संसार समुद्र से निस्तार कर देता है, वह सदाशिवस्वरूप पारद आप लोगों का सदा कल्याण करे ॥ ४ ॥

पीयूषकुम्भमुपधाय करेणयोऽय-
माविर्बभूव मथितात् पयसां पयोधेः ।
देवोदयोदयतरङ्गितचित्तवृत्तिः
श्रेयांसिवः सदिशताज्जगदेकबन्धुः ॥ ५ ॥

जो जीवों के ऊपर दया करके मथे जाते हुए क्षीरसमुद्र से अमृत के घड़े को हाथ में लिये हुए आविर्भूत हुए वह संसार के ऊपर अकारण करुणाकर सुश्रुतोपदेष्टा भगवान् धन्वन्तरि आप लोगों को कल्याण दें ॥ ५ ॥

पारे परार्द्धमनिशं परिबभ्रमीति
ब्रह्माण्डमण्डलमधिप्रतिरोम यस्य ।
देवः सएव धृतनिर्भरमास्थितोयं
क्षेमङ्करः सभवताद् भगवानऽनन्तः ॥ ६ ॥

जिस परमात्मा के प्रत्येक रोम में (परार्द्ध संख्या से भी अधिक)

अनन्त ब्रह्माण्ड भलीभाँति घूमा करते हैं उन अनन्त ब्रह्माण्ड धारी परमेश्वर को जो अपने ऊपर शयन कराते हैं, वह अनन्त (यथा नाम तथा गुण) शेषावतार चरकशास्त्र के प्रणेता भगवान् पतञ्जलि आप लोगों के कल्याणकारी हों ॥ ६ ॥

शब्दात्मकं भगवतोदधतः स्वरूपं
स्वर्गापवर्गविधिदेशनदेशकेन्द्राः ।
विप्रा जयन्ति खलु जङ्गमतीर्थरूपाः
प्रत्यक्षदैवतकुलानि सुमङ्गलानि ॥ ७ ॥

वेद पुराणादिरूप भगवान् के स्वरूप को धारण करनेवाले, तथा स्वर्ग वा मोक्ष सम्बन्धी उपदेश देने में परमाचार्य, जङ्गम तीर्थ (डोलते फिरते ठाकुर) प्रत्यक्ष देव, ब्राह्मणगण जयवन्त हों। अर्थात्—काशी प्रयाग आदि तीर्थ तो स्थावर होने के कारण समीप में आये हुए ही पुरुषों को पवित्र करते हैं; किन्तु ब्राह्मणदेव तो आलस्यादि ग्रस्त प्राणियों के ऊपर कृपा कर उनके घर पर स्वयं जाकर पवित्र कर देते हैं। विष्णु ब्रह्मादि देव तो प्रत्यक्ष न होने के कारण परोक्ष देव हैं, परन्तु ब्राह्मणदेव तो सब किसी को प्रत्यक्ष होने से प्रत्यक्ष देव ही हैं ॥ ७ ॥

वैद्या विना मार्गनिदर्शकेन रसक्रियायान्न वहूत्सहन्ते ।
इत्याकालय्यैव मयाकृतोऽयं रसायनानामनुभूतसारः ॥८॥

जब तक कोई रसायन क्रियाओं का पथ-प्रदर्शक नहीं मिलता है तब तक शास्त्रों को जानने पर भी वैद्य लोग रसायन क्रियाओं में नितान्त प्रोत्साहित नहीं होते हैं; क्योंकि बहुत द्रव्यव्यय वा परिश्रम करने पर भी क्रियासिद्धि में आशंका लगी रहती है। इस बात को विचार करके मैंने शास्त्रपर्यालोचन, द्रव्यव्यय तथा परिश्रम द्वारा जिन रासायनिक विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव किया है उन ही विषयों का संग्रहरूप "रसायनसार" नामक यह ग्रन्थ वैद्यों को उत्साह प्रदानार्थ बनाया है ॥ ८ ॥

प्रार्थना (अपील)—

ग्रन्थस्याऽस्यसमाप्तौ च प्रचारे चिरसंस्थितौ ।
भूयासुर्भूसुराः शश्वदाशीर्वादप्रयोजकाः ॥ १ ॥

अपील—

अर्थ—मैंने वैद्य तथा रोगियों के उपकारार्थ रसायनसार ग्रन्थ बनाने का जब से प्रारंभ किया तभी से "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" इस न्याय से अनेक विघ्न उपस्थित हुए थे, अन्त में गृध्रसीपिशाची ने तो मुझे ऐसा पछाड़ा कि उससे निश्चय हो गया था कि मैं अब न बचूंगा, उसके प्रतीकार के लिये बहुत दवाइयाँ की गईं जिनको मैं आगे चल कर लिखूंगा, परन्तु "चिकित्साकर्म कुर्वीत दैवकर्मण्यपाश्रयम्" इस वचन का भी अनुसन्धान करके यह परमात्मा से अपील (प्रार्थना) की उसको भी पाठक लोगों की सेवा में निवेदन करना अच्छा समझता हूँ वह यह है—इस ग्रन्थ के समाप्ति के लिये और प्रचार तथा चिरकाल तक बने रहने के लिये ब्राह्मणगण आशीर्वाद देवें ॥ १ ॥

प्रत्यहर्लक्षलक्षञ्च विष्णोर्नामान्यहं जपन् ।
आसंतत्पुण्यमेतस्मिन् ग्रन्थेस्तादुपधायकम् ॥ २ ॥

विष्णु भगवान् के लक्ष २ नाम प्रतिदिन जपने का जो मेरा नियम था वह पुण्य भी आज इस ग्रन्थ में सहायक होवे ॥ २ ॥

मूलरामायणस्याऽपि यत्पाठानेकविंशतिम् ।
कृत्वाऽभुञ्जितदप्यस्तु पुण्यं ग्रन्थार्थसाधकम् ॥ ३ ॥

मूल रामायण के इक्कीस २ पाठ करके ही मैं भोजन किया करता था, वह पुण्य इस ग्रन्थ में सहायता देवे ॥ ३ ॥

जगदीशस्ययात्राऽपि ज्वालादेव्याश्चभक्तितः ।
पद्भ्यांनिष्पादिता साऽपि घटतामत्र कर्मणि ॥ ४ ॥

कामवन से चल कर श्रीजगन्नाथजी की तथा कोटकांगड़ेवाली

ज्वालादेवी की यात्रा बड़ी भक्ति के साथ मैंने किसी प्रकार की सवारी में नहीं बैठ करके पैरों से ही की थी, वह यात्रा भी आज इस कार्य में घटक होवे ॥ ४ ॥

फाणीश्वरीश्च काणादीर्वाणीरभ्यसितुंमया ।
वैशारदीश्चशास्त्रीयां विश्वविद्यालयाश्रयाम् ॥ ५ ॥
व्याकृतेर्न्यायशास्त्रस्य परीक्षां काशिसंश्रयाम् ।
दातुं पञ्चाधिकात्रिंशद्गुरवः सेवितायदि ॥ ६ ॥
भक्त्यासरस्वतीदेवी ब्रह्मचर्य्यव्रतेन चेत् ।
आराधिता तदप्यस्तु पुण्यं कर्मणि जागृवि ॥ ७ ॥

शेषावतार भगवान् पतञ्जलि की कही हुई वाणी (व्याकरण, महाभाष्य, योगशास्त्र, चरकशास्त्र,) तथा कणाद ऋषि की कही हुई वाणी (न्याय वैशेषिक) के अभ्यास करने के लिये तथा पञ्चनदीयविश्वविद्यालय के आश्रित विशारदपरीक्षा और शास्त्रीपरीक्षा, तथा काशीस्थराजकीयसंस्कृत पाठशाला (क्विन्सकालिज) में न्याय और व्याकरण की परीक्षा देने के लिये यदि मैंने ३५ पैंतीस गुरुओं की भक्ति से उपासना की हो, तथा सरस्वती देवी की ब्रह्मचर्य व्रतधारण करके आराधना की हो, तो वह पुण्य भी इस ग्रन्थ के निर्माण में जागरूक हो ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

विप्राणां बालकाञ्जैनान् साधून्बालांस्तथाऽपरान् ।
अध्यर्द्धशतसंख्याकान् पाठनक्रिययायदि ॥
निश्छलोऽतूतुषं तेऽपि यच्छन्त्वाशीर्गिरः शुभाः ॥८॥

यदि मैंने ब्राह्मणों के बालक, तथा जैन मत के महात्मा साधु जन, और जैनबालक एवं सन्यासी आदि कुल डेढ़ सौ छात्रों को बिना छल छिद्र के निष्कपट भाव से विद्या पढ़ा कर सन्तुष्ट किया हो, तो ये सब छात्रगण भी इस ग्रन्थ की समाप्ति के लिये शुभ आशीर्वाद देवें ॥८॥

श्रीमद्भागवते शास्त्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ।
आदृता तुष्यतात्तेन गोविन्दोऽत्र क्रियाक्रमे ॥ ९ ॥

श्रीमद्भागवतशास्त्र में जो मैंने स्थिर भक्ति की थी उससे श्रीकृष्ण-भगवान् प्रसन्न हों, जिससे ग्रन्थ शीघ्र निर्विघ्न समाप्त हो ॥ ९ ॥

यच्छुक्रसेवयावाऽपि पुण्यानां राशिरर्जितः ।
आशुतोषश्शिवस्तेन प्रीयताम्भक्तवत्सलः ॥१०॥

जिनके शुक्र (पारद) की सेवा से जो मैंने पुण्यों की राशि इकट्ठी की है (पारद की सेवा से "यावद्दिनानि देवेशि ! वन्हिस्थो धार्यते रसः । तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते" इत्यादिशास्त्र वचन सिद्ध पुण्य राशि होती है) उससे शीघ्र प्रसन्न होने वाले भक्तवत्सल शंकरजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ १० ॥

देवेन्द्रः स्वेष्टिरोधाद् व्रजप्रलयविधौ प्रेषयामास रुष्टोऽ-
हङ्कारान्मेघमालाः सुकरिकरमिता वारिधाराः क्षरन्तीः ।
तास्वेकालम्बमाना हरिजनप्रथितेरानभिज्ञ्याद्रवर्षाऽ-
बिन्धाल्पत्त्वात्तदीयं चरणमपि लिहंश्चक्रएव्यंररक्ष ॥११॥
तश्चेद्गोवर्द्धनं प्रेम्णादण्डवन्निपतन् भुवि ।
परिक्रान्तोऽस्मि तेनासौ निःशिष्याद्विघ्नशेषताम् ॥१२॥

जब कृष्णभगवान् ने इन्द्रयज्ञ को बन्द करके गोवर्धन पूजा जारी की थी, उससे इन्द्र ने बहुत क्रुद्ध होकर ब्रज के डुबाने के लिये तथा गोवर्धन को बहा कर समुद्र में फेंक देने के लिये हाथी की सूँड़ के समान धाराओं से बरसने वाली मेघ मालाओं को भेजा था, उन मेघ मालाओं में एक प्रलयकाल की मेघमाला भगवान् के सुदर्शनचक्र से रक्षित, हरिजन एवं गोवर्द्धनपर्वत की महिमा को न जान कर मूसलाधार गति से झुक २ कर बरसने लगी । परन्तु सुदर्शनचक्र की वह आकाशगामिनी प्रचन्ड ज्वाला उस अगाध जल राशि को

भस्मीभूत कर बदले में उलटे उस मेघमाला को ही लंगड़ा कर गई ऐसे सुदर्शनचक्रधारी जिसके रक्षक हैं उस गोवर्द्धन (गिरिराज) की यदि मैंने बड़े प्रेम के साथ सात सात कोस की दण्डवती परिक्रमा की हो, तो वे सङ्कटहारी गिरिराज मेरे विघ्नों को निश्शेष करें ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥

मज्जन्मभूकामवने क्षमो यो बन्ध्यान्धकुष्ठित्त्वविनाशनाय।
श्रीतीर्थराजो विमलाभिधानस्तदीयसोपानविमार्जनाय १३
स्नानाय नत्यै च परिक्रमाय शीतेऽपिकाले च निरस्य निद्राम्।
ब्राह्ममुहूर्ते यदि सेवितःस्यान्मया स वध्यात्खलुगृध्रसीं मे१४

जो मेरी जन्मभूमि कामवन में आज ऐसे कठिन कलिकाल में भी बन्ध्याओं को सन्तान देने वाले, अन्धों को आँख देने वाले, श्री विमल तीर्थराज विद्यमान हैं उनकी सीढ़ियों पर झाड़ू दे, स्नान कर एक सौ आठ दण्डवती परिक्रमा करना तथा कठोर शीतकाल में भी निद्रा को छोड़ कर ब्राह्म मुहूर्त (बहुत प्रातःकाल) में यदि मैंने उपरोक्त सेवाएँ सच्चे हृदय से की हों तो वे विघ्ननाशक तीर्थराज आज मेरी गृध्रसी (कटि से जानु तक होने वाली वातव्याधि) को नष्ट करें ॥ १३ ॥ १४ ॥

कस्याग्रतो रोदिमि दीनबन्धो !
शृणोति कश्चाऽपि मदीयदुःखम् ।
पश्यामि यं यं सहि मामपेक्ष्य
दुःखी पुरो रोदिति मे वराकः ॥१५॥

हे दीनबन्धो ! तीर्थराज आपके सिवाय मैं किसके सामने अपने दुःख को रोऊँ ? और सुनने वाला भी कौन है ? मैं जिसकी तरफ देखता हूँ वह बेचारा मेरे से भी दुःखी मेरे सामने अपने दुःख रोने लगता है ॥ १५ ॥

आयुर्वेदोपदेष्टॄणां गूरूणामनुरागतः ।
याः क्रियावेद्मिलोकानामारोग्याय समाश्च ताः ॥१६॥
छात्रानऽबूबुधंवा चेत् स्वस्मिन्निरवशेषयन् ।
सफलो मनोरथो मे स्तादेतद्ग्रन्थविनिर्मितौ ॥१७॥

आयुर्वेद के उपदेशक गुरुजनों की कृपा से मनुष्यों को निरोग करने वाली जिन २ क्रियाओं का मुझे अनुभव है उन समस्त क्रियाओं को यदि मैंने अपने पास कुछ न छिपाकर विद्यार्थियों को बता दी हों, तो आज इस ग्रन्थ के समाप्ति से मेरा मनोरथ सफल हो ॥ १६ ॥ १७ ॥

चन्द्रोदयादिनिर्माणं धातुशोधनमारणे ।
चेदहं विगतच्छद्मा देशसेवावशंवदः ॥ १८ ॥
विना परिचयश्चाऽपि सर्वांल्लोकानजिग्रहम् ।
प्रयच्छत्वाशिषस्तेन देशाधिष्ठातृदेवता ॥ १९ ॥

चन्द्रोदय आदि का बनाना और धातुओं का शोधन मारण यदि मैंने निष्कपट भाव से देश की सेवा समझकर, अपरिचित लोगों को भी बतला दिया हो, तो उससे देश की अधिष्ठात्री देवता (भारत माता) प्रसन्न होकर आशीर्वाद दें ॥ १८ ॥ १९ ॥

आतुरा भिषजो वा येलप्स्यन्तेऽतः फलं शुभम् ।
तेषां सुकृतसम्भारैर्न्यूनताऽत्र परास्यताम् ॥ २० ॥

इस ग्रन्थ के बन जाने से रोगी तथा वैद्य गण जो उत्तम फल लाभ करेंगे उन्हीं के पुण्यसमूह से इस ग्रन्थ में कुछ भी कसर न रहे ॥ २० ॥

देशे देशान्तरे वा ये वैकुण्ठप्रियसाधवः ।
पुनन्तोऽलसकाञ्जन्तू नटन्तः सन्तु शर्मदाः ॥ २१ ॥

इस देश में या देशान्तर में हरि के लाड़ले महात्माजन आलसियों को पवित्र करते हुए घूमते हैं, वे आज हमारे कल्याणकर्ता हों ॥ २१ ॥

रसायनशाला विधिः—

रसायनस्य शालायाः प्रकारं वच्मि पूर्वतः ।
विनाधारं क्रिया काचित् सिद्धिन्नायाति कर्हिचित् ॥१॥

अर्थ—रसायनशाला बनानेका प्रकार सबक्रियाओंसे पहले लिखता हूँ क्योंकि बिना आधार के कोई क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥

नगरस्याऽऽविदूर्य्येण पवित्रे दोषवर्जिते ।
जलाशयोपपन्ने च वास्तुन्येताम्प्रकल्पयेत् ॥२॥

नगर से थोड़ी दूर पर पवित्र दोषरहित (श्मशानादि भूमि का सम्बन्ध जहाँ न हो) तथा तालाब, नदी, कूप इत्यादि जलाशय के सन्निकटप्रदेश में रसायनशाला बनावे ॥ २ ॥

नगराभ्यन्तरे शालां यदि कुर्य्याद्भिषग्वरः ।
प्रत्यासन्नजनोद्वेगो भवेत्तर्हि सुनिश्चितम् ॥३॥

यदि नगर के भीतर रसायनशाला बनाई जायगी तो पड़ोसियों को औषध सम्बन्धी गंधेले धूम से अवश्य उद्वेग होगा ॥ ३ ॥

नगरादतिदूरे चेद्भेषजाऽलाभगर्हिता ।
प्रत्यासन्नजलाभावे जलकष्टकरी भवेत् ॥४॥

यदि नगर से बहुत दूर (कोस दो कोस पर) बनायी जायगी तो शहर से दवा लाने में बहुत कष्ट होगा। इसलिये नगर से कुछही दूर पर बनावे । यदि जलाशय के निकट नहीं बनाई जायगी तो जल का बहुत कष्ट होगा ॥ ४ ॥

विशुद्धजलराहित्ये क्वाथादेरविशुद्धिकृत् ।
वाटेन वेष्टिता चैवाऽपेत्तितैर्वीरुदादिभिः ॥५॥

यदि अच्छा जल (ताजा मीठा) नहीं मिलेगा तो धातुशोधनार्थ काथादि अच्छे नहीं बनेंगे और रसायनशाला में रहने वाले मनुष्यों को

विशुद्ध जल नहीं मिलने के कारण स्वास्थ्य दूषित होगा । रसायनशाला के चारों तरफ प्राकार (चाहारदीवारी) होना चाहिये जिससे अनुपयुक्त व्यक्तियों का आगमन न हो, तथा आवश्यकीय लता कन्द मूल इत्यादि वस्तुओं का भी योग हो ॥ ५ ॥

तैस्तैर्विशेषैस्सम्पन्ना शालिका मञ्जुदर्शना ।
उपयुक्तैर्बहुविधैश्छादनैरन्वितोज्वला ॥६॥

इसी प्रकार अनेक छावनी (छत) भी होना चाहिये जिनपर चारोपयोगी अनेक औषध सूखा करेंगी । इसी तरह और और भी उपयोगी भोजन गृह, स्नानगृह, शान्तिसदन इत्यादि योग्यस्थानों में बने रहें, जिससे रसायनशाला के विद्वानों को सब प्रकार सुभीता रहे । रसायनशाला को नितान्त स्वच्छ उज्वल तथा मनोहर रखना चाहिये जिससे आगन्तुक तथा स्थायी पुरुषों के चित्त प्रसन्न रहा करें ॥ ६ ॥

चतुःसंजवनोपेता सर्वोपकरणान्विता ।
उपयोगानुसारेण घटितभ्राष्ट्रिकायुता ॥७॥

रसायनशाला में आने जाने के लिये चार दरवाजे रहें जैसा रेलवे स्टेशन और मन्दिरों में प्रायः रहा करते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि यदि रसायनशाला के काम के लिये विशेष आदमी भी रहा करेंगे तो उनको आने जाने में दिक्कत न होगी तथा दैववश यदि कभी बनते हुए चन्द्रोदयादि की शीशी फूट जाय तो जिस दरवाजे से जिसको सुभीता होगा बाहर निकल जायगा जिससे औषध के दूषित धूम के लग जाने से कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा ।

इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के उपयोगी सामान यथा—खरल, हिमामदस्ता, ओखली मूसल, चक्की, शिल बट्टा, सूप, चालनी, नाद, कुंडे, सकोरा, पुरवा, कुल्हाड़ी, गड़ासी, बसूला, भट्ठी से अग्नि वा राख, निकालने के लिये फट्टा, लोहे का छड़, चीमटा, सड़सी इत्यादि तथा टेबुल, कुरसी, बेञ्च, चौकी, पलंग एवं सिंगरफ, पारा, गन्धक, सोना,

चांदी, रांगा, तामा, शीशा, लोहा, अभ्रक, हरिताल, मनशिल, त्रिफला, त्रिकटु, आदि २ सब सञ्चित रहें, जिससे समय पर तत्काल बाजार दौड़ना न पड़े और जो २ उपयोगी वक्ष्यमाण भट्टियाँ हैं वे भी युक्तस्थानों में बनायी जायँ ॥ ७ ॥

शुष्कोपयुक्तकाष्ठाना मेकतः कूटसम्भृता ।
जाङ्गलैर्गोमयैः शुष्कैरन्यतस्समलङ्कृता ॥८॥

सूखी बंबूल वगैरह की पुरानी लकड़ियाँ एवं जंगली (बिनुआँ) कण्डा अथवा पुराने सूखे उपला (गोइठा) राशिरूप से सञ्चित रहें ॥ ८ ॥

जलसम्भृतकुण्डैश्च सारिणीनलिकान्वितैः ।
पिधानोद्घाटनार्हैस्तु ह्युपपन्नासुखावहा ॥९॥

एक तरफ जल से भरी हुई नांद, गोल कुण्डे भी रखे रहें, जिनमें जल निकालने तथा खार चुलाने के लिये नलिकायें लगी रहें, और उनके ऊपर काष्ठ या लोहे के ऐसे ढक्कन भी रहें जिनको हटा भी सकें और लगा भी रुकें। जल क्वाथादि को ढाकने का अभिप्राय यह है कि धूम, तृण, जन्तु वगैरह जल और क्वाथ में नहीं गिरें ॥ ९ ॥

अपेक्षितम्पतेद्यत्र वात आतप एव च ।
ग्रीष्मादौ न च बाधेत तथा द्वारादिभिर्युता ॥१०॥

रसायनशाला में जहाँ तहाँ खिरकी, गवाक्ष वगैरह भी बनाना चाहिये जिससे अपेक्षित वायु, आतप (धूप) का गमनागमन हुआ करे ॥ १० ॥

चतुश्शालस्य मध्ये तु देवतायतनम्भवेत् ।
तत्र धन्वन्तरिर्देव आयुर्वेदप्रवर्त्तकः ॥ ११ ॥
भैरवप्रमुखाश्चान्ये शङ्करश्च जगद्गुरुः ।
रसायनागमस्याद्याचार्य्यैः प्रयतमानसैः ॥ १२ ॥

रसायनार्थिभिः पूज्या जगताममृतप्रदाः ।
तेषामेवान्तिके स्थाप्या ग्रन्थाः श्रीचरकादयः ॥१३॥
रसायननिबन्धाश्च विविधाचार्य्यनिर्मिताः ।
देवतायतनस्याग्रे भवेत्पाठालयः शुभः ॥ १४ ॥

रसायनशाला के मध्यभाग (आँगन) में देव मन्दिर रहे जिसमें आयुर्वेद प्रवर्तक श्रीभगवान् शङ्करजी तथा भैरव, अग्निवेश, पतञ्जलिप्रभृति महर्षियों की मूर्त्तियाँ स्थापित रहें। जिनका पूजन प्रतिदिन रसायनार्थी चिकित्सकगण दत्तचित्त होकर किया करें, जिससे रसायनादिक औषधों की सिद्धि हो और वे अमृततुल्य गुण-कारी हों। इनही देवताओं के समीप में चरकसुश्रुतादि ब्राह्मीचिकि-त्साके ग्रन्थ और नागार्जुनीय, रसरत्नाकर, रसार्णव, रसहृदय प्रभृति शैवीचिकित्सा के रसायन ग्रन्थ स्थापित रहें। जिससे भगवत्पूजन के साथही शास्त्रों के पूजन द्वारा सरस्वती देवी की आराधना भी होती रहेगी। उसी देव मन्दिर के सम्मुख अध्यापन स्थान होना चाहिये, जिससे देवताओं के सान्निध्य में अध्ययन करने से जो गहन विषय भी उपस्थित होगा उसकी पूर्त्ति आचार्यों की कृपा से हो जाया करेगी ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

दैशिकान् समये सम्यगुपपन्नाँश्च शिक्षयेत् ।
उपनीतान् द्विजान् योग्यान् सुश्रुतोक्तविधानतः॥१५॥

जहाँ पर बाहर से आये हुए तथा समीपवर्त्ती उपनीत (जातो-पनयनसंस्कार) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, छात्रों को विद्याभिलाषी, तथा बुद्धिमान् एवं सत्स्वभाव समझ कर सुश्रुतोक्त रीति से अनुकूल समय पर भलीभांति समझा कर अध्यापक महाशय (रसायनशास्त्री) आयु-र्वेद की शिक्षा दिया करें ॥ १५ ॥

सम्यक्परीक्षितं शूद्रमपि मन्त्रादिवर्जितम् ।
अध्यापयेत्सुधीर्वैद्यो विद्यासंसिद्धिहेतवे ॥ १६ ॥

तथा अच्छी तरह परीक्षा द्वारा जान लें कि यह पढ़ने लायक है तब आयुर्वेद के प्रचारार्थ शूद्र को भी मन्त्रोपदेश (त्रिजन्मत्वसंस्कार) के बिना आयुर्वेद पढ़ावें। आयुर्वेद की ऐसी पद्धति है कि जिनका द्विजन्मत्व (उपनयन) संस्कार हो चुका है, उन्हीं का आयुर्वेदपठनार्थ त्रिजन्मत्व संस्कार किया जाता है, इससे उस संस्कार के शूद्र अधिकारी नहीं हैं ॥ १६

रसायनादिकान् सर्वान् विधीन् याञ् शिक्षयेद्भिषक् ।
गहनाँस्तान् स्वशिष्यैस्तु कारयेन्निर्दिशन् स्वयम् ॥ १७॥

रसायन शास्त्र में जो २ गहन विषय आवें, जिनको बिना देखे विद्यार्थीगण ठीक नहीं समझ सकें, उन विषयों को स्वयं बतलाते हुए अध्यापक महाशय छात्रों से करवावें ॥ १७ ॥

एवंकृते प्रवचनाल्लब्धार्थानां विनिर्णयः ।
आगन्तुयुक्तिलाभश्च जायते दृष्टकर्म्मता ॥ १८ ॥

ऐसा करने से शास्त्रों से मिले हुए गहन विषयों का निर्णय भी हो जायगा और कार्य्य करते करते बहुत सी नवीन युक्तियों का भी लाभ होगा, जिनके द्वारा नये नये रस कल्पना करने की भी योग्यता प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार दृष्टकर्मता होने से "अज्ञातशास्त्रसद्भावाञ् छास्त्रमात्रपरायणान्। वर्जयेत्तान् भिषक्पाशान् पाशान् वैवश्वतानिव" यह दोष भी निकल जायगा ॥ १८ ॥

चन्द्रोदयमुखानां च रसानां सिद्धिहेतवे ।
एकतो भ्राष्ट्रिका कार्या तृणच्छादनवर्जिता ॥ १९ ॥

चन्द्रोदयादि रसों की सिद्धि के लिये एक तरफ तृण छादन रहित (जिसके ऊपर घास फूस का छप्पर न हो) स्थान में भट्ठी बनावे ॥ १९ ॥

धातुसंशोधनार्थाय क्राथादेः साधिकाऽन्यतः ।
शिलातालादिभस्मार्थं करणीया तथा परा ॥ २० ॥

एक तरफ धातुओं के संशोधन के निमित्त क्वाथादि बनाने वाली "कषायकरी भ्राष्ट्री" (भट्ठी) बनावे तथा मनःशिला, हरिताल, संखिया, इत्यादि की भस्म बनाने के लिये एक तरफ "तालादिभस्मकरी" भट्ठी बनावे, एक स्थान में गजपुट कुक्कुटपुट वा वराहपुट बनावे, जो काम पड़ने पर उघार लिये जाँय और काम हो जाने पर शिलाओं से ढांक दिये जाँय इसलिये कि कोई आदमी गिर न जाय ॥ २० ॥

सम्मुखे कर्म्मदेशस्य तिष्ठेदुच्चासने भिषक् ।
विनिर्दिशेत्स्वयं छात्रान् सम्पश्यन् कर्म कुर्वतः ॥२१॥

जहाँ पर बैठने से सम्पूर्ण कार्य्य नजर के सामने पड़े, ऐसे स्थान में तख्त (चौकी) बिछाकर गद्दी तकिया लगाकर वैद्यराज बैठें, और जो छात्र चन्द्रोदयादि बनाने में प्रवृत्त हो रहे हैं, उनको देखते हुए स्वयं कार्य्य क्रम बतलाते रहें ॥२१॥

यद्धीनमतिरिक्तं वा विपरीतमथापि वा ।
निश्छलश्च निरालस्यं विस्पष्टम्पुत्रवद्दिशेत् ॥ २२ ॥

यदि कोई छात्र जहाँ पर जितनी आँच देनी चाहिये उससे कम दे रहा हो या अधिक देता हो, अथवा किसी कार्य्य को मनमाना उलटा पलटा कर रहा हो, तो वैद्य को चाहिये कि छल रहित तथा आलस्य रहित होकर स्पष्ट रूपसे पुत्र की तरह बतादे जिससे किसी कार्य्य में छात्रों का अज्ञान न रह जाय ॥ २२ ॥

शिष्या अपि विशुद्धान्तःकरणाः श्रद्धयान्विताः ।
गुरूक्तौ बहुमानाढ्याः चापलालस्यवर्जिताः ॥२३॥
समाहितान्तःकरणाः कर्म्म कुर्युर्यथाविधि ।
अनुपासितशास्त्रस्याऽनभ्यस्तप्रक्रियस्य च ॥ २४ ॥
पाठश्रवणमात्रेण न सिद्धिर्जातु जायते ।
एतादृशेषु शिष्येषु कदाचित् यदि कस्यचित् ॥२५॥

हस्तात्कर्म्मच्युतिः कार्य्ये ह्यापते त्तत्र सद्गुरुः ।
द्रव्यायासक्षयं पश्यन् प्रतिक्रुध्येन्न शिष्यकम् ॥२६॥

शिष्यों को भी चाहिये कि शुद्धान्तःकरण, श्रद्धायुक्त तथा एकाग्र मन होकर गुरुजी के वचन में बहुमान करते हुए चञ्चलता वा आलस्य को छोड़कर विधिपूर्वक कार्य्य करें। क्योंकि जिसने शास्त्राध्ययन नहीं किया और क्रिया क्रम को भी नहीं देखा, वह केवल पाठश्रवणमात्र से सिद्धिको नहीं प्राप्त हो सक्ता है। ऐसे उत्तम शिष्यों में से किसी के हाथ से यदि कभी चन्द्रोदयादि की शीशी फूट जाय तो द्रव्य वा परिश्रम का ख्याल करके अध्यापक महाशय छात्र पर अत्यन्त क्रोध न करें ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

नचापि शिष्यो गुरुणा धिक्क्षिप्तो विमना भवेत् ।
वणिक्संव्यवहारेण प्राकृतेन न जात्वपि ।
दृष्टादृष्टार्थसुखदा विद्यावाप्तिः प्रजायते ॥ २७ ॥

छात्र को भी चाहिये कि यदि कर्मच्युति होने से गुरुजी ललकारें फटकारें, तो भी उदासीनचित्त न हो क्योंकि आज-कल की प्रायः ऐसी प्रणाली देखी जाती है कि अध्यापक महाशय तो समझते हैं कि विद्यार्थी दो चार वर्ष हमारे यहाँ फसा रहेगा तो हमारी सेवा होती रहेगी और विद्यार्थी महाशय समझते हैं कि जहाँ तक अपना दाव लगे वहाँ तक जल्दी विद्या लेलो, "गुरु अरु चेला लालची, दोनों खेलें दाव" ऐसा परस्पर प्राकृतबनियों की तरह कपट व्यवहार करने से उभयलोक सुखदायिनी विद्या नहीं मिल सक्ती है, और न अध्यापक की प्रतिष्ठा ही हो सक्ती है ॥२७॥

शाला दिग्दर्शनं दिष्टं विद्वद्बुद्धिप्रसारकम् ।
यदपेक्ष्यं भवेदन्यद् बुद्ध्या तदपि कल्पयेत् ॥२८॥

यह रसायनशाला बनाने का दिग्दर्शन कर दिया है जिसमें विद्वानों को कल्पना करने का मौका मिले इसी प्रकार और भी जो विषय रसायनशाला के उपयोगी हों उनको वैद्य महाशय स्वयं कल्पना करलें ॥२८॥

अथ भ्राष्ट्रीविधिप्रकरणम्

बालुकायन्त्रभ्राष्ट्री ।

यावत्युच्चास्ति नान्दी द्विगुणपरिमितो-
च्छ्रायभाग् भ्राष्ट्रिकाऽतः
स्याच्चास्या यत्तलार्द्धं भवति हि
भिषजो वह्निदानोपयोगि ।
यस्त्वर्द्धश्चोर्द्धभागस्स तु भवति
परं नान्दिकास्थापनार्थो-
नैरालम्ब्येन नान्दी कथमिव
विधृता स्यात्तदर्थोऽथ यत्नः ॥ १ ॥

बालुकायन्त्र भट्ठी विधि ।

अर्थ—चन्द्रोदयादि रस बनाने के लिये बालुकायन्त्र भ्राष्ट्री (भट्ठी) इस प्रकार बनावे कि जितनी ऊँची नाँद हो उससे द्विगुण ऊँची भट्ठी बनावे, अर्थात् जैसे एक बिलांद ऊँची नांद हो तो दो बिलांद ऊँची भट्ठी बनावे। उसका कायदा ऐसा है कि नाँद को पृथ्वी में औंधी रखकर चारो तरफ नाँद को दो दो अंगुल छोड़कर भट्ठी की दीवार बनावे। परन्तु जमीन को आठ अंगुल खोद कर गढ्ढा बना देना चाहिये। जिसमें सुलगे हुए कोयले जमा रहेंगे। नान्दी से दूनी ऊँची भट्ठी बनाने का यह अभिप्राय है कि भट्ठी के नीचे के आधे भाग में आँच लगाई जायगी और ऊपर के आधे भाग में नान्दी रखी जायगी, परन्तु यहाँ यह आशङ्का हो सक्ती है कि बिना अवलम्ब के नान्दी किस प्रकार भट्ठी के अन्दर रहेगी, उसके लिये यह उपाय करना चाहिये ॥ १ ॥

आग्नेय्याः स्थूला श्च तिस्रः सुघटितसुपरीपाकिमा श्चेष्टकास्स्युः
तिर्यक् स्थित्या समुत्थाःसमतलविततः सन्निवेश्या द्राढिम्ना।
तासा मग्राणि कोष्ठीजठरतटगतान्येव निर्य्यान्ति च स्युः
सत्वार्य्येवाऽङ्गुलानि स्थिति मिह भजते गौरवाढ्यापि नान्दी

कि—भट्ठी बनाने के समय नंबरी खूब पकी हुई तीन ईंट आड़ी करके दीवार में इस प्रकार मजबूती से लगा दें कि चार अंगुल तो भट्ठी के मध्यभाग में निकलती रहें और अवशिष्ट भाग दीवार में दबा रहे। इन्हीं निकली हुई तीन ईंटों के अग्रभाग पर नान्दी रखी जायगी। ईंटों को आड़ी करके लगाने का अभिप्राय यह है कि बालू से भरी हुई भारी नाँद भी ईंटों पर ठहर सके, यदि पट्ट (चौड़ाई के रूप में) करके लगाई जाती तो भट्ठी भी ज्यादा घिर जाती जिससे आँच ठिकाने से नहीं लगती और कमजोर होने से नान्दी के बोझ से टूट जाने की भी शङ्का थी॥ २॥

दातव्या धूमगत्यै ततमुखनालिका हस्तमानाश्च तिस्रो-
नान्द्याः पार्श्वे समन्ताद्वहि रथ न परिस्प्रष्टु मर्हाऽस्ति कोष्ठी
तेन स्याद्व्यङ्गुलोऽस्यां परित इह कृतो रन्ध्रभागावकाशः-
ऊर्द्ध्वं दत्त्वा कपाली स्तदुपरि स पुनर्लेपनीयो मृदा स्यात्॥३॥

जब भट्ठी आधी बन जाय तब कुछ तिरछी करके लोहे की तीन नलिकायें धूम निकलने के लिये रेल के इञ्जन की तरह ऊपर मुख करके लगा दें, यदि नली नहीं लगाई जातीं तो धूआँ निकलने की जगह न होने से अग्नि बुझ जाती। भट्ठी के मध्य में जो तीन ईंटों के अग्रभाग निकले हुए हैं उन पर नाँद रख कर देख ले कि नाँद व भट्ठी की भीत के मध्य में चारों तरफ दो दो अगुंल का अवकाश रहना चाहिए और सम्पूर्ण नाँद भट्ठी के अन्दर इस प्रकार प्रविष्ट हो जाना चाहिये कि जिसमें नाँद का शिरा व भट्ठी का शिरा समान (बराबर) रहे, उस अवकाश के ऊपर ठिकड़े रख कर गूढी मिट्टी से (चिकनी मिट्टी में घोड़े

की लीद मिला कर तीन दिन रख छोड़ते हैं, उसीको गूढ़ी मिट्टी कहते हैं। घोड़े की लीद नहीं मिले तो जव का भूसा अथवा गोबर से भी काम चल सकता है) लीप दे जिसमें भट्ठी की गरमी व धूआँ उस अवकाश के द्वारा कुछ बाहर नहीं निकलने पावे ॥ ३ ॥

आष्ट्र्या द्वारं वितस्तिप्रमित मिह भवेत्तिर्य्यगूर्द्धञ्च तत्र-
द्वे देये सङ्गताग्रोत्थितशिखरसमारम्भिके इष्टके च ।
एतेनेदं सुसिद्धं न यदनलपरिज्वालशङ्का न काष्ठत्त्या-
धिक्यं न नान्यामथ भवति समाघातशङ्केन्धनस्य ॥४॥

भट्ठी का दरवाजा दो नम्बरी ईंटों को तिरछी जोड़कर बनावे जिसमें एक बिलांद चौड़ा और एक बिलांद ऊँचा तीन खूँट का दरवाजा बने। सम्पूर्ण लेखका सार यह हुआ कि इस भट्ठी के मध्य भाग में लगी हुई तीन ईंटों के अग्रभाग पर नाँद रक्खी जायगी, और नीचे क आधे भाग में आँच लगेगी, तथा धूम निकलने के लिये तीन नलिकायें लगी रहेंगी, और एक दरवाजा ऐसा रहेगा जिसमें दो तीन लकड़ियों से अधिक लकड़ी नहीं लग सकें। यदि बड़ा दरवाजा रक्खा जाता तो कोई बेसमझ आदमी अधिक लकड़ी लगा कर शीशी को तोड़ देता, इस प्रकार से बनी हुई भट्ठी से यह फल सिद्ध हुआ कि लकड़ियों का खर्च कम होगा, और रुकी हुई अग्नि चारों तरफ से यन्त्र में ठिकाने से लगेगी, तथा वैद्य को गर्मी नहीं व्यापेगी, एवम् नाँद में लकड़ियों की ठोकर लगने की भी आशङ्का नहीं है ॥ ४ ॥

जो लोग खुली हुई भट्ठी पर चन्द्रोदय बनाते हैं, उनके यहाँ पचासों मन लकड़ियाँ जल जाती हैं, और गर्मी के मारे भट्ठी के पास बैठा नहीं जाता है। कभी कभी अधिक आँच लगने से शीशियाँ फूट भी जाती हैं, तब वैद्य लोग हतोत्साह होकर रसक्रिया से विरक्त हो जाते हैं। वैद्यों का ऐसा मन्तव्य है कि शीतऋतु में चन्द्रोदयादि रस बनाना चाहिये परन्तु मैंने इस भट्ठी के प्रताप से बारहों महीना रसायनशाला का काम जारी रखा तो भी कुछ क्लेश नहीं उठाना पड़ा।

वालुकायन्त्र द्वारा चन्द्रोदय, मकरध्वज, तालसिन्दूर, मल्लसिन्दूर, विषसिन्दूर आदि रस इसी भट्ठी में बनाये जायँगे, इसी कारण इस भट्ठी का नाम "बालुकायन्त्रभ्राष्ट्री" रखा है ।

क्वाथकरी भ्राष्ट्रीः—

हस्तद्वयोन्मानमिता विधेया स्याद्भ्राष्ट्रिका क्वाथकरीति तस्या।
पक्केष्टकानिर्मितभित्तिकाया अधस्तले द्वारमरत्निमानम्।१॥
प्रभञ्जनस्यापगमागमार्थं कुर्वीत तेनाग्निरतिज्वलन् स्यात्।
अर्द्धेऽङ्गुलद्वन्द्वमितान्तरेषु लोहार्गलां चाष्टमितां प्रसार्य्य ॥

क्वाथकरी भट्ठी—

धातुओं के शोधने के लिये वैद्य लोग चूल्हे या साधारण भट्ठी के ऊपर क्वाथ बनाया करते हैं परन्तु उसमें अधिक लकड़ियों का खर्च व विशेष परिश्रम करना पड़ता है । यदि आधसेर या पावभर धातुओं का शोधन करना हो तो बेशक थोड़ा परिश्रम सहकर भी उक्त प्रकार से काम चला सकते हैं । परन्तु जब मनों धातुओं के शोधन निमित्त वीसों मन क्वाथ की आवश्यकता पड़ेगी तब हमारी निकाली हुई "क्वाथकरीभ्राष्ट्री" के बिना कथमपि काम नहीं चल सक्ता है । आजकल वैद्यलोग अनेक औषधों का क्षार इसलिये नहीं बनाते हैं कि उनके बनाने में बहुत परिश्रम, विशेष खर्च तथा अधिक काल की आवश्यकता होती है । परन्तु यदि इस भट्ठी को वैद्यलोग अपनी अपनी रसायनशाला में बनाकर रख छोड़ेंगे, तो उक्त समस्त कार्य्य आसानी से बहुत कम खर्च में शीघ्र हो जाया करेंगे । अतः उक्त भट्ठी बनाने का प्रकार लिखता हूँ—क्वाथकरी भट्ठी दो हाथ ऊँची उठानी होगी, इसलिये उसकी दीवार पक्की नम्बरी ईंटों से बनाना शुरू करे । भट्ठी के निचले आधे भाग में अरत्नि (२० अंगुल) प्रमाण लम्बा तथा चौड़ा दरवाजा रखकर दीवार बनावे । अरत्नि प्रमाण दरवाजा रखने का यह अभिप्राय है कि जब सत्त्वप्रधान अभ्रकभस्म (जिसको मैं

श्रीवेंङ्कटेश्वरादि समाचारपत्रों में प्रसिद्ध कर चुका हूँ और जिसके ऊपर खूब खण्डन मण्डन भी हो चुका है) बनानी होगी तब अभ्रक सत्त्व पातन के लिये इसी दरवाजे के द्वारा लोहे का तसला या थाली भट्ठी में घुसाई जायगी जिसमें सत्व गिरेगा। यदि छोटा दरवाजा बनाया जाता तो कोयले सुलगाने को तो सुभीता बना रहता, परन्तु छोटे दरवाजे के कारण भट्ठी के अन्दर अन्धकार रहता तो सत्व गिरने न गिरने का पता नहीं लगता, और बड़ा पात्र भी सत्व रखने को नहीं घुस सक्ता था। इस दरवाजे के द्वारा वायु का पूर्ण सञ्चार होने से अग्नि खूब जलती रहेगी, इस प्रकार जब आधी भट्ठी तैय्यार हो जाय तब दो दो अंगुल का अवकाश छोड़कर आठ लोहे के छड़ भट्ठी की दीवार पर बिछा दे ॥ १ ॥ २ ॥

कोष्ठं द्वितीयं च दृढं प्रकुर्य्यादूर्द्ध्वार्द्धभागे खलु कोष्ठिकायाः। द्वारं विदध्यादिह चापि वैद्य इङ्गालदानार्थमुतापनुत्त्यै ॥३॥

अनन्तर उसके ऊपर भट्ठी के ऊपर के आधे भाग में नीचे की तुल्य गोल २० अंगुल चौड़ा कोष्ठ बनावे। इस कोठे में भी एक दरवाजा बना दे जिसके द्वारा पत्थर के कोयले घुसाकर अधिक अग्नि कर दी जायगी और कम अग्नि की आवश्यकता होगी तो जलते हुए कोयले बाहर निकाल दिये जायँगे। यदि यह दरवाजा नहीं बनाया जाता तो कोयलों के देने तथा निकालने का दूसरा रास्ता नहीं मिलता क्योंकि भट्ठी के मुख पर कपायकरी नाँद रखी है। इस दरवाजे को नम्बरी ईंटों से बन्द रखना चाहिये जब काम पड़े तब ईंटों को हटा ले ॥ ३ ॥

समीरणाश्मन्तनिभामितीत्थं आष्ट्रीं तदूर्द्ध्वस्थितकोष्ठभागे। तामावपेदश्ममयैश्च कालाऽङ्गारैस्तुपर्य्यासमथोपरिष्टात् ॥४॥

इस प्रकार जब दमचूल्हे की ऐसी भट्ठी बनकर तैय्यार हो जाय तब ऊपर वाले कोष्ठ में पत्थर के कोयले ऊपर तक खूब भर दे ॥ ४ ॥

पक्वेष्टकाभिः कृतपीठिकायां संस्थापयेत् क्वाथकरीञ्च नान्दीम्।
त्रिःपञ्चकृत्वोऽथ समृत्पटां तां क्वाथ्यैः प्रपूर्य्याथ ददीत वह्निम् ५

अनन्तर भट्ठी के मुख पर नम्बरी तीन चार ईंट फासले से रखकर क्वाथ द्रव्य वाली नाँद को उनही ईंटों पर बैठा दे। ईंट रखने का यह अभिप्राय है कि चारों तरफ अग्नि को लपट निकलती रहे जिससे नाँद में पूर्ण आँच लगे। पर इतनी आँच को मिट्टी की नाँद नहीं सह सक्ती है, अतः उस पर टाट की तीन कपरौटी अथवा कपड़े की पाँच कपरौटी करके नाँद को सुखा लेना चाहिये। तब उसमें क्वाथ्यद्रव्य देकर और द्रव्य से अठगुना पानी भर कर ईंटों पर रख दे और नीचे के दरवाजे से कोयलों को सुलगाने के लिये लकड़ी की आँच दे। जब पानी आठवाँ हिस्सा रह जाय तब उस क्वाथ को धातुओं के शोधने के काम में लावे॥ ५॥

यामत्रयश्चात्र निधानयन्त्रं सिन्दूरपाकाय च बालुकाख्यम्।
स्वप्याच्च कामं ननु वैद्यवर्य्यो रसास्स्वयं सिद्धियुता भवेयुः॥६

इस भट्ठी के द्वारा दूसरा काम यह भी निकलता है कि बिना परिश्रम के सिन्दूररस बनाना हो तो कपरौटी की हुई आतशीशीशी में अथवा चार चार पैसे वाली कुछ हरे रंग की शीशी में कज्जली भरकर हंडी के बालुकायन्त्र में रखकर भट्ठी पर चढ़ा दे और वैद्यजी आनन्द से घर में जाकर शयन करें, भट्ठी के पास बैठने की आवश्यकता नहीं है। तीन पहर आँच लगने पर सिन्दूरादि रस तैय्यार पाए जायँगे। एक बार हमारी रसायनशाला में धौलाने के वैद्य पं० मथुराप्रसादजी कुछ रस तैयार करने को पधारे थे। उस अवसर पर मथुरा निवासी पं० क्षेत्रपाल जी ने आयुर्वेद की बहुत त्रुटि दिखलाते हुए यह भी एक त्रुटि दिखलाई थी, कि सिन्दूरादिरस बनाने का सुलभ प्रकार आजतक वैद्यों ने नहीं निकाला है। इस बात को सुनकर मैंने इस भट्ठी के द्वारा उक्त कार्य को आसानी से सिद्ध कर दिया था। तब

से जब हमको जल्दी होती है तो इसी प्रकार सिन्दूरादि रस तैयार कर लिया करते हैं ॥ ६ ॥

यद्यप्यत्र गुणैरल्पः सिन्दूरादिरसः कृतः ।
तथापीशेश्वरीयोगो रोगोन्मूलविधौ क्षमः ॥७॥

यद्यपि इस प्रकार तैय्यार किए हुए सिन्दूरादि रस कुछ कम गुण वाले होते हैं पर तो भी शिवशुक्र पारद व पार्वती रजो गन्धक का योग रोगों के नाश करने में काष्ठादि औषधों की अपेक्षा कहीं अच्छा है ॥७॥

शुद्धगन्धकसूताभ्यां निर्मिता भावितौषधैः ।
कज्जली क्षमते रोगान् हन्तुं किमुत पाचिता ॥८॥

क्योंकि जब शुद्ध पारद व शुद्ध गन्धक की बनी हुई तथा अनेक औषधों से भावित कज्जली ही रोगों को दूर करने में समर्थ है तो उसके पकाने (सिन्दूरादि बनाने) पर उसके गुण का क्या कहना है ॥ ८ ॥

अत्रैव चाभ्रं निहितं प्रजह्याच्चान्द्रीश्च योगेन सुटङ्कणस्य ।
सत्वं च मुञ्चेदथ ताम्रधातुर्द्रवेत्प्रचण्डाग्निबलेन सम्यक् ॥९॥

तीसरा फायदा इस भट्ठी का यह भी है कि वैद्य लोग अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म बनाने के लिये पचासों पुट देते हैं तो भी चन्द्रिका नहीं जाती परन्तु इस भट्ठी में एक ही बार पुट देने से अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है, इस विषय को अभ्रक भस्म प्रकरण में लिखेंगे, और चौकिया सुहागे के योग से अभ्रक का सत्व भी इस भट्ठी के द्वारा निकलता है। इस भट्ठी में इतनी प्रचण्डाग्नि रहती है कि ताम्रधातु भी तुरन्त द्रुत हो जाती है॥ ९ ॥

क्षाराश्चास्यामनायासैर्जायन्ते भुक्तिपाचनाः ।
शोधना रोचनाश्चापि मन्दाऽग्नौ चातिपूजिताः ॥१०॥

इस भट्ठी का चौथा फायदा यह भी है कि जिन औषधियों का क्षार निकालने का प्रयोजन होगा वह क्षार भी इस भट्ठी के द्वारा

आसानी से निकलेगा, जिसकी विधि परिभाषा प्रकरण में लिखूँगा। यह क्षार अन्नपाचन, उदरशुद्धि तथा रुचि एवं मन्दाग्नि में बहुत उपयोगी है। हमारी रसायनशाला में हजारों मन वनस्पतियाँ काम में लाई गयी थीं, उन सबों का क्षार इसी भट्ठी के द्वारा निकाला गया था ॥ १० ॥

प्रवासोत्थापनीया चेदेषा लोहस्य चुल्लिका ।
यत्रतत्रापि वैद्यस्य सिन्दूरादिविधौ क्षमा ॥ ११ ॥

इस भट्ठी की अधिक प्रशंसा क्या की जाय यदि ऐसी ही लोहे की छोटी भट्ठी बनाई जाय तो उसको सफर में भी रख सकते हैं और प्रयोजन पड़ने पर अल्पावकाश में मुसाफिरखाने में भी बैठ कर वैद्यराज सिन्दूरादि रस तैय्यार कर सकते हैं। इसका प्रकार सिन्दूररस विधि में लिखेंगे। इस प्रकार लाभ की बहुत सी युक्तियाँ निकल सकती हैं, परन्तु परमेश्वर की कृपा से वैद्यों का उत्साह बढ़ना चाहिये ॥ ११ ॥

शोधनार्थभ्राष्ट्रीविधिः—

खात्वा पूर्वं धरित्रीं वसुपरिमितता यान्ति यत्राङ्गुलानि
मुक्त्वा शालीयभित्तिं पवनगतियुतां हस्तमानावकाशम् ।
भ्राष्ट्रीभित्तिं सुवैद्याः! कुरुत हि परितो मृत्स्नया हस्तमानाम् ।
तस्या देयोपरिष्टाच्छदिरथ सुदृढा मृत्स्नया लिप्यमाना ॥ १ ॥

सच्छिद्रा धूमगत्यै ह्यपरिगतमथो तापरक्षार्थमस्याः ।
हर्म्याकारं खलु प्रावरणमथ गतिर्यत्र धूमानिलानाम् ॥
शोष्याणां सम्पुटानां गतय इह सदा द्वार एवं च तिस्रः
तस्या भूमेस्समन्तात्कुरुत सुभिषजो मृत्स्नया छिद्ररोधम् ॥ २

तस्याश्च कोष्टयाः खलु काष्ठदाने द्वारद्वय श्चान्यदपि क्रियेत-
तृतीयमस्मिन् परिशोधनी स्याद्देया सुलोहस्य दृढा हि दर्वी ॥३

शोधनार्थ भ्राष्ट्री की विधि—

आजकल वैद्य लोग स्वर्णादि धातुओं को तैलादि वर्ग में शोधनार्थ कोयलों पर रखकर धौंकनी से अग्नि में निष्टप्त करते हैं, क्योंकि "इङ्गालैः प्रधमेद्धातून्" इत्यादि रसायनाचार्य्यों के वचन मिलते हैं, उन वचनों का यह अभिप्राय है कि जब तक धातुओं को अग्नि में अति निष्टप्त नहीं करेंगे तब तक शोधन द्रव्य तैलादि को पूर्णतया आत्मसात् (ग्रहण) नहीं करने से धातुओं का दोष समूल नष्ट नहीं हो सकता। अतः गुण वृद्धि भी नहीं हो सकती। इसलिये खूब धमाने से जब स्वर्णादि धातु अग्निमय हो जायँ तब शोधन द्रव्य में बुझाना चाहिये। परन्तु इस शोधन-प्रक्रिया में कोयलों का अधिक खर्च है और धौंकनी धमाने वाले तथा शोधने वाले अनेक मनुष्य अग्नि की गरमी से इतने खिन्न हो जाते हैं, कि जिससे कितने ही वैद्य तो सामान्य शुद्धि करने के समय सात सात बार की जगह तीन तीन बार ही शुद्धि करके रह जाते हैं, तथा कुछ लोग सामान्य शुद्धि बिलकुल ही न करके विशेष शुद्धिमात्र ही से निश्शेष शुद्धि मान बैठते हैं। परन्तु जब तक धातुओं की सामान्य तथा विशेष शुद्धि पूर्ण रूप से नहीं की जायगी तब तक यथार्थ गुणकारी नहीं हो सकतीं।

अतः धातुशोधनार्थ भट्टी बनाने की विधि लिखता हूँ—चिकनी मट्टी में जौ का भूसा मिलाकर पानी से सानकर दस दिन तक पड़ी रहने दे। मट्टी का पानी सूख जाय तो और डाल दे। ऐसा करने से अग्नि लगने पर मट्टी फटती नहीं है। इस मट्टी को भी "गूढी" मिट्टी कहते हैं। इसी मिट्टी से ल्हेसे हुए कच्चे मकान बहुत दिन तक मजबूत रहते हैं। रसायनशाला की दीवार से एक हाथ का अन्तर (फासला) छोड़कर भट्ठी की दीवार बनावे। उस दीवार का आसार (चोड़ाई में) डेढ़बिलांद (१८ अंगुल) होना चाहिये, जैसा हवन करने के लिये अग्निकुण्ड होता है। वैसी चारकूंट की भट्ठी पृथ्वी से एक हाथ ऊँची बनावे, आठ आठ

अंगुल ऊँचा आसार तीन तीन दिन के बाद उठाना चाहिये। यदि एक ही दिन में एक हाथ ऊँचा आसार उठाया जायगा तो भट्ठी गिर जायगी, क्योंकि विना ईटों के केवल मिट्टी की दीवार नहीं ठहर सकती है इसलिये कुछ कुछ सूखने पर दीवार को उठाना चाहिये। जब दीवार एक हाथ ऊँची चारों तरफ से उठजाय और कुछ सूखीसी हो जाय तब अठारह अंगुल के आसार को भीतर बाहर खुरपे से छील छील कर आठ अंगुल चौड़ा रहने दे, दस अंगुल को खुरच डालने से आठ अंगुल सार-भाग निकल आता है। फिर एक हाथ का डण्डा लेकर भट्ठी को अन्दर से नाप ले, चौड़ाई तथा लम्बाई में एक हाथ अवकाश रहे, जिसमें अग्नि जलाई जायगी। परन्तु यह स्मरण रहे कि भट्ठी की दीवार बनाने से पहले आठ अंगुल गहरा गड्ढा पृथ्वी में खोद कर खूब ठोकदे, और गूढ़ी मट्टी से लीप दे। भट्टी के अन्दर गड्ढा खोदने का यह अभिप्राय है कि जली हुई लकड़ियों के कोयले उसी गड्ढे में जमा रहेंगे तों भट्ठी में ताव खूब आवेगा। यदि गड्ढा नहीं खोदा जायगा, और कोयलों से भट्ठी भर जायगी तो भट्ठी में ताव नहीं आवेगा। इस प्रकार एक हाथ ऊँची भीत और आठ अंगुल गहरा गड्ढा मिलकर एक हाथ आठ अंगुल ऊँची भट्ठी हुई। इस भट्टी के पूर्व दिशा और पश्चिम दिशा की तरफ भट्ठी के कोने के पास आमने सामने पृथ्वी से सम्बद्ध-दो दरवाजे इतने बड़े बना दे जिसमें पतली लकड़ी दो और मोटी लकड़ी एक घुस सके। मोटी लकड़ी का प्रमाण आदमी के पैर की पिंडली सा समझना चाहिये। भट्ठी के कोनों के पास दो दरवाजा बनाने का यह अभिप्राय है कि दोनों तरफ से दो दो पतली लकड़ियाँ जलें जिससे आँच खूब लगे और दक्षिण दिशा की तरफ भट्ठी की दीवार के बीच में पृथ्वी से छः अंगुल ऊँचे पर एक बिलांद लम्बा चौड़ा चौखूटा तीसरा दरवाजा और बना दें। जिसके द्वारा धातुओं के शोधने के लिये लोहे का कलछा घुसाकर रक्खा जायगा, इस प्रकार जब तीन दरवाजे वाली, एक हाथ आठ अंगुल ऊँची भट्ठी बनकर तैय्यार हो जाय, तब उसी गूढी मिट्टी की बनी, तथा सूखी

हुई, भट्ठी के नाप की एक छत (ढक्कन) से भट्ठी के मुख को ढाँक दे। ढक्कन के मध्य में इतना बड़ा एक छिद्र रहना चाहिये, जिसमें बालक का हाथ घुस सके। अनन्तर गूढ़ी मिट्टी से ढक्कन व भट्टी के दरवाजे को चारों तरफ से अच्छी तरह बन्द कर दें जिससे किसी स्थान से अग्नि की लपट तथा धूम नहीं निकल सके। छत में छिद्र बनाने का यह अभिप्राय है कि उसी के द्वारा भट्टी का धूआँ निकला करेगा, क्योंकि और कोई दूसरा रास्ता धूम निकलने का नहीं है। शोधन के निमित्त दस पाँच कलछे बनवाकर रसायनशाला में तैयार रखने चाहियें, क्योंकि अग्नि में जलने के कारण एक कलछा पांच छः दिन तक काम देता है। हमने एक मन पन्दरह सेर स्वर्ण, रजत, इत्यादि धातुओं की भस्म बनाई थी, जिनके शोधने में दस कलछे बेकाम हो गये थे। एक कलछे का कटोरा ४ सेर और छड़ ३ सेर होने से ७ सेर का भारी कलछा होता है। कटोरा इतना बड़ा होना चाहिये, जिसमें दो सेर जल अट जाय। कलछे का गज तीन हाथ लम्बा रहे, जिसमें वैद्य को उठाने में तकलीफ न हो। भट्टी के दरवाजे में कलछा घुसा कर दरवाजे को एक लोहे के ढक्कन से ढांक देना चाहिये, जिससे अग्नि की ऊष्मा भट्टी के अन्दर ही रहे। दरवाजे का ढक्कन लोहे की मोटी चादर का होना चाहिये। उस ढक्कन के सिर पर एक छोटासा छिद्र रहे जिसमें लोहे की शलाका घुसाकर ढक्कन को उठाने तथा रखने में सुभीता पड़े। छिद्र नहीं रहेगा तो अग्निमय निष्टप्त ढक्कन किस प्रकार उठाया जायगा ? और उस ढक्कन के तल भाग को थोड़ा काट देना चाहिये, जिससे कलछा की डंटी ढक्कन के रखने में प्रतिबन्धक न हो। इस प्रकार भट्टी तो बनकर तैय्यार हुई। परन्तु भट्ठी के छतवाले छिद्र से इतनी जोर से धूम तथा अग्नि की लपट निकलती है कि वहाँ बैठना मुशकिल होता है और बहुत धांस भी उठती है, अतः उससे बचने का उपाय लिखता हूँ—जिस प्रकार कोठे के ऊपर अटारी बनाते हैं, उसी प्रकार भट्टी की छतपर मैरी (अटारी) बना दे। उस अटारी की पूर्व दिशा में एक छोटासा दरवाजा बना दे जिसके द्वारा

हवा जाया करेगी और एक दरवाजा पश्चिम की ओर कुछ बड़ा बना दे जिसके द्वारा सुखाने के लिये सम्पुट अटारी में रखे जायगें। तीसरा दर्वाजा उत्तर की ओर रहे जिससे भट्ठी का धुआं (जो छत के छिद्र से निकलता है) निकलता रहेगा। और धातु शोधने के निमित्त वैद्यमहाशय भट्ठी के दक्षिण तरफ उत्तर की ओर मुख करके बैठेंगे। अतएव धूआँ निकलने का दरवाजा उत्तर की तरफ रक्खा है जिससे वैद्य को धुआं नहीं लगे। अटारी का बरेंड़ा (निष्कम्भ) लोहे की छड़ का बनावे उसका एक भाग रसायनशाला की भीत में लगा दिया जायगा जिससे गिरने का भय नहीं रहेगा और बरेंडे का दूसरा भाग अटारी की भीतपर रहेगा: उसीपर अटारी का छप्पर (जोकि गूढ़ी मिट्टी का बना है) रखा जायगा। बाद सम्पूर्ण-अटारी व छप्पर को गूढ़ी मिट्टी से लहेस दे जिससे अग्नि के वेग से अटारी गिर नहीं सके। और धूम तथा ऊष्मा नहीं निकलने से भट्ठी में ताव खूब आवे। भट्ठी की दीवार व रसायनशाला की दीवार के बीच में जो एक हाथ की गली छोड़ दी गई है उसको मिट्टी से भर न दे किन्तु इधर उधर पतली दीवार बना कर वायु का मार्ग बन्द कर दे। और जहां पर वैद्यजी बैठे हैं वहाँ पर रसायनशाला की दीवार में एक खिड़की रहनी चाहिये जिससे वैद्यराज को बाहर की हवा लगती रहे और भट्ठी का धूम तथा धांस नहीं सता सके। रसायनशाला की दीवार व भट्ठी की दीवार के बीच में गली रखने का यह अभिप्राय है कि धमारे से निकली हुई भट्ठी की महोष्मा गली तक फैल जाने से अटारी को फोड़ नहीं सके। अटारी के पश्चिम का दर्वाजा ढका रहना चाहिये जिससे सम्पुट भी जल्दी सूखें और ऊष्मा के अन्दर ही रहने से भट्ठी में ताव भी खूब रहेगा।

उपरोक्त कुल लेख का सारांश यह हुआ कि भट्ठी में तीन दरवाजे रहेंगें, जिनमें पूर्व व पश्चिम वालों से आँच दी जायगी, और दक्षिण वाले से धातु-शोधनार्थ कलछा घुसाया जायगा और अटारी में भी तीन दरवाजे बने हैं, जिनमें पूर्व की तरफ छोटे दर्वाजे से हवा जायगी और उत्तर दरवाजे से धूम निकलेगा तथा पश्चिम की तरफ कुछ बड़े दर्वाजे के

द्वारा सम्पुट रखे जायँगे। ऐसी भट्ठी बनाने से वैद्य आसानी से सब धातुओं का शोधन अल्प-व्यय व अल्प-परिश्रम तथा बिना किसी दूसरे आदमी की सहायता के कर सकते हैं। इस भट्ठी में पतली दो दो लकड़ियाँ और मोटी एक एक लकड़ियों की आँच देने से दो मन लकड़ी की सी आँच लगा करती है। इस बँधी हुई अग्नि के लगने से चाँदी, काँसा वगैरह थोड़ी देर में बिना सुहागा डाले ही द्रुत हो जाते हैं। मेरे यहाँ रसायनशाला में इस भट्ठी की रचना देखने के लिये सैकड़ों मनुष्य आया करते थे।

भारतधर्ममहामण्डल के संस्थापक परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामीज्ञानानन्दसरस्वती जी महाराज तथा महामहोपाध्याय प्रातःस्मरणीय बैकुण्ठवासी श्री भागवताचार्य्य स्वामीजी महाराज प्रभृति महाशय इस भट्ठी को देखकर कहते थे कि हम भी लोगों को उपदेश करेंगे जिससे वैद्यलोग ऐसी ऐसी कल्पना करके भारतवर्ष में आयुर्वेद विद्या का प्रचार करें। श्री काशीधाम के प्रसिद्ध रईस मेरे परममित्र आनरेबुल बाबू मोतीचन्दजी भी इस रसायनशाला के ढंग को देखकर कहते थे कि हमारे बाग में भी ऐसा प्रबन्ध हो जाय तो हम भी अभ्रक, रजत प्रभृति भस्म बनवावें। यह भट्ठी हमने केवल मिट्टी की बनाई है। ईंट एक भी नहीं लगाई है। इसका अभिप्राय यह है—मट्टी की भट्ठी बनाने से भट्ठी की ऊष्मा बाहर नहीं निकलती। एक बार (पहले) चन्द्रोदय की भट्ठी मट्टी की बनाई थी तो ग्रीष्म ऋतु में भी पैंसठ शीशी उतारलीं तो भी उतनी गर्मी नहीं लगी, फिर एक बार जल्दी भट्ठी तैय्यार करने के लोभ से नम्बरी पक्की ईंटों की भट्ठी बनाइ थी तो शीत ऋतु में भट्ठी इतनी तप्त रहती थी की बिना वस्त्र के लेटे रहने पर भी शीत नहीं लगता था ॥१॥२॥३॥

चेदियं क्रियतां भ्राष्ट्री सर्वधातुविशोधनी ।
अवश्यं सुकरां शुद्धिं मन्यते श्यामसुन्दरः ॥ ४ ॥

अतः मेरा विचार यह है कि यदि उक्त प्रकार की भट्ठी बनाई जायगी तो सैकड़ों मन धातुओं की शुद्धि वैद्य लोग आसानी से कर

लिया करेंगे । वैद्यों को अनुभव है कि एक सेर धातु शोधन करने में कितनी तकलीफ उठानी पड़ती है, वे सब क्लेश इस भट्ठी (शोधनार्थ भ्राष्ट्री) के प्रताप से पास भी नहीं आ सकते ॥ ४ ॥

तालादिभस्मकरी भ्राष्ट्रीः—

सार्द्धा वितस्तिः परिमाणतोऽस्या-
स्तलेगलेत्वस्ति वितस्ति कल्पा ।
क्रमेण चैनां कुरु सङ्कटाग्रां
षडङ्गुलान्यत्र च यान्तु गर्ते ॥ १ ॥

तालादिभस्म बनानेवाली भट्ठी—

वैद्य लोग हरिताल, संखिया, मैनशिल आदि की भस्म चूल्हे पर तथा दूसरी भट्ठियों पर यन्त्र रखकर किया करते हैं । परन्तु वैसा करने में लकड़ियों का अधिक खर्च व परिश्रम एवं विशेष समय तथा अधिक ताप से बहुत क्लेश उठाना पड़ता है । अतः सुगमता से तालादिक द्रव्यों की भस्म बनाने के लिये तालादि भस्मकरी भ्राष्ट्री का प्रकार लिखता हूँ—इस भट्ठी का भीतरी तलभाग डेढबिलांद (१८ अंगुल) चौड़ा रहना चाहिये; और ऊपर एक बिलांद से कुछ (१ अंगुल या दो अंगुल) कम रहना चाहिये । अर्थात् इस भट्ठी को इस प्रकार बनावे जो क्रमसे ऊपर को सकड़ी होती जाय । इसके तलभाग में (जमीन में) छ अंगुल का गहरा गड्ढा खोद दे, जिसमें जली हुई लकड़ियों की आँच खूब भरी रहेगी । जिसके सहारे से एक लकड़ी भी खूब जलती रहेगी ॥ १ ॥

पक्वेष्टकाभ्यां मुखसंयुताभ्यां द्वारं विदध्यात्तलविस्तृताभ्याम् ।
पादोनहस्तोपरिभूमितः स्यात्तालादिभस्मार्थमियञ्च कोष्ठी ॥ २

नोट—१ बिलांद बराबर ९ इञ्च । १ अंगुल बराबर ½ इञ्च ।

इस भट्ठी का दरवाजा पकी हुई दो नम्बरी ईटों को ऊपर से मुख जोड़कर और नीचे भाग को फैलाकर त्रिकोण बनावे। ऐसा सकरा दरवाजा बनाने का यह अभिप्राय है कि लकडियां अधिक नहीं घुस सकें और भट्ठी की भाफ बाहर नहीं आवे। यह भट्ठी पृथ्वीतल से ऊपर तक पौन हाथ (१८ अंगुल) ऊँची रहेगी। इससे भीतर छ अंगुल गहरा गड्ढा व अठारह अंगुल भट्ठी की भीत मिलकर एक हाथ ऊँची भट्ठी बनेगी। इस भट्ठी में हरिताल, संखिया, मैनशिल, इत्यादि की भस्म आसानी से तैय्यार होंगी। जिसकी विधि हरितालादि भस्म प्रकार में लिखूंगा ॥ २ ॥

कर्पूरसिन्दूरचलारिसर्पिस्तैलादिसिद्धौ निहितेयमस्ति ।
कूष्माण्डपाकादिविधावपि स्याद्ग्रंथिच्छिदक्षारविनिर्मितौ च ॥
इतीमे वक्ष्यमाणाश्च प्रयोगास्सिद्धिहेतवे ।
अस्यामेव प्रसाध्यन्ते रोगनिर्मूलनक्षमाः ॥४॥

इस भट्ठी में कर्पूरसिन्दूर, वातनाशक घृत, वातारि तैल, कूष्माण्डपाक, घृतकुमारीपाक, और प्लेग की गिलटी, गण्डमाला इत्यादि ग्रन्थियों को फोड़कर बहानेवाला क्षार तथा और भी अनेक वक्ष्यमाण प्रयोग जो तत्काल फ़ायदा करने वाले होंगे, बनाये जायँगे ॥ ३ ॥ ४ ॥

सत्वार्थकरी भ्राष्ट्री विधिः—

अध्यर्द्धहस्तामितकाष्ठनिवेशनार्हां पूर्वं
लिखेत्तु खलु कुंडलनीं सुवैद्यः ।
कुर्य्याद्वितस्तिमितगर्तवतीश्च मध्ये
भित्तिं च तां परित आरचयेद् द्राढिम्ना ॥ १ ॥
अष्टादशाङ्गुलमिते खलु मध्यदेशे
भित्तिश्च लोहमयदण्डचतुष्टयेन ।

जुष्टान्तथा विरचयेच्च यथा यथेष्टं दण्डाः
प्रवेशमुपयान्ति च भित्तिमध्ये ॥ २ ॥

सर्वार्थकारी आष्ट्री विधिः—

पहले पृथ्वी में एक कुण्डलना (गोलाकार रेखा) ऐसी खींच दे जिसमें डेढ़ हाथ का डंडा अट जाय। उस कुण्डलना के मध्य भाग में एक बिलांद गड्ढा खोद दे । उसमें पानी डालकर मिट्टी को खूब कूटकर पक्का कर दे । फिर गढ़े के किनारे से कच्ची ईंटों की भीत बनाना शुरू करे । भट्ठी की भीत कुल २८ अंगुल (१ हाथ चार अंगुल) ऊँची ले जानी होगी । उसमें से अठारह अंगुल जब भीत चुन जाय तब ४ लोहे के एक एक हाथ लम्बे डण्डे भीत में चारों तरफ से इस प्रकार ढीले लगावे कि काम पड़ने पर भीत से बाहर भी निकाल सकें, और काम न रहने पर भीत के अन्दर भी घुसाये जा सकें ॥ १ ॥ २ ॥

दण्डेषु चैषु परितिष्ठति लोहजाली
या सम्पुटप्रति निवेशनकार्य्यहेतोः ।
तीव्राग्निदानविधये परितः प्रकुर्य्या-
दङ्गारराशिमिह सम्पुटभाजनन्तत् ॥ ३ ॥

'लोहार्गलादुपरि चैव दशाङ्गुलां तां
भित्तिं पुनर्विरचयेत्क्रमसङ्कटाग्राम् ।
स्याद्द्व्यङ्गुलोनकरसम्मितवक्त्रयुक्तां
द्वारद्वयञ्च विदधीत वितस्तिमानम् ॥ ४ ॥

भित्तेरधः सुदृढमिन्धनदानहेतो-
रेकां नलीञ्च सुदृढां विनिवेशयेत ।
आष्ट्र्यां समुच्छ्रितवतीं दरतिर्यगग्रां
याऽधोमुखे भवति मुष्टिनिवेशयोग्या ॥ ५ ॥

इन डंडों को भीत से छः छः अंगुल निकालकर इनके ऊपर लोह जाली रक्खेंगे, जैसी दमचूल्हे में रखी जाती है। इस लोह जाली पर किसी औषध के सम्पुट को रखकर यदि तीव्राग्नि देनी होगी तो सम्पुट के चारों तरफ पत्थर का कोयला या लकड़ी के पक्के कोयले रखकर भट्ठी के नीचे से आंच लगाना होगा। बाद डंडों के ऊपर दस अंगुल भीत और चुने। भीत को आरम्भ ही से इस प्रकार सकरी करता हुआ उठावे जिसमें दो अंगुल कम, एक हाथ (२२ अंगुल) चौड़ी लोह जाली आजाय। एक एक बिलांद लम्बे चौड़े मजबूत आंच देने के लिये दो दरवाजे भीत के अधो भाग में बनावे। भट्ठी में एक हाथ लम्बी लोहे की नली ऊपर को उठी हुई कुछ तिरछी करके लगावे। उस नली की बनावट ऐसी होनी चाहिये कि जो भाग भट्ठी के अन्दर रहेगा जिसमें अग्नि की लपटें घुसेंगी वह इतना पोला होना चाहिये जिसमें मुट्ठी घुस जाय ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

किञ्चाङ्गुलत्रय मुखा ननु योपरिष्टा-
न्मध्याग्निदानविधये निहितेयमस्ति ।
मृद्वग्निदानविधये विदधीत धीमान्
स्वार्थार्हरन्ध्रयुतमध्यगसंपिधानम् ॥ ६ ॥
ऊर्द्ध्वे मुखे खलु ददीत यथा मृदुःस्याद्
भ्राष्ट्र्यग्रतश्च निदधीत विशालचुल्लीम् ।
एतेन वारणमुपैति हि वह्नितापः
पाको भवेच्च हरितालमुखस्य चुल्याम् ॥ ७ ॥

उस नली के ऊपर का मुख जिसके द्वारा अग्नि की लपट बाहर निकलेगी, वह तीन अंगुल पोला होना चाहिये। यह नली अन्तर्धूम चन्द्रोदयादि रस पकाने में मध्याग्नि देने के लिये रक्खी गई है। यदि मन्दाग्नि की आवश्यकता हो तो नली के ऊपरवाले तीन अंगुल पोले छिद्र में एक मट्टी की डाट बनाकर ठोकदें; उस डाट में इतना

बड़ा छिद्र करदें जितनी आँच देने की आवश्यकता हो। ऐसा करने से मन्दाग्नि का कार्य्य यथेष्ट सिद्ध हो जायगा। हरिताल इत्यादि की भस्म बनाने के लिये भट्टी के ऊपर एक लोहे का बड़ा चूल्हा रख दें। उसी के ऊपर हरितालादि युक्त "खल्वसुधायन्त्र" (परिभाषा प्रकरण में देखिये) रक्खा जायगा। जिससे भट्टी के अन्दर लोहजाली पर कोई अभ्रकादि की भस्म भी बनती रहेगी और ऊपर अनायास हरितालादि की भस्म तैयार हो जायगी। ऐसा करने से क्रियाप्रवृत्त वैद्य को ऊष्मा भी नहीं लगेगी, और कार्य्य भी ठिकाने से सिद्ध हो जायगा ॥ ६ ॥ ७ ॥

संशोधनाय खलु धातुगणस्य कुर्य्याद्
आष्ट्र्यामिहैव तु वितस्तिमितश्च रन्ध्रम् ।
द्वारद्वयादितरपार्श्वगतं तदन्त-
र्दर्वीं निवेशयति धातुविशोधनाय ॥ ८ ॥

स्वर्णादि धातुओं के शोधने के लिये इसी भट्टी के दोनों दरवाजों के बीच में एक बिलांद लम्बा चौड़ा एक दरवाजा और बना दे; जिसके द्वारा धातुओं को निष्टप्त (पिघलाने आदि) करनेके लिये कलछा घुसाया जायगा ॥ ८ ॥

चुल्लेरुपर्य्यपि कषायकरी च नान्दी
स्थाप्यान्तरेऽभ्रकमुखस्य विपाचनाय ।
वैद्योपयुक्तनिखिलार्थकरीयमेका
सम्पद्यते विविधयुक्तिभिरर्थभाजाम् ॥ ९ ॥

जब धातुओं के शोधन निमित्त क्वाथ की आवश्यकता होगी तब मिट्टी की नाँद के ऊपर तीन कपरौटी करके भट्टी के ऊपर रखे हुए लोहे के चूल्हे पर रख देंगे, और नाँद में क्वाथ्य द्रव्य व पानी भर देंगे। चूल्हे के अभ्यन्तर (भीतर) में कोयलों पर अभ्रकादि के चार पाँच सम्पुट भी रख सकेंगे। इस प्रकार अनेक युक्तियों से वैद्यों के सम्पूर्ण

कार्य्य करने वाली यह भट्ठी है। आयुर्वेद में प्रायः ऐसी कोई दवा न होगी जो इस भट्ठीसे तैय्यार न हो सके। जैसे—गजपुट का काम हो तो लोहे के चारों डंडों को अन्दर घुसा कर व लोहजाली को निकाल कर तथा दरवाजों को बन्द करके मध्य भाग में सम्पुट रखकर ऊपर नीचे आँच देने से गजपुट का काम ले सकते हैं। वाराहपुट की आवश्यकता होगी तब भट्ठी के ऊपर लोहे का चूल्हा रखकर लोहजाली पर उपला भरकर चूल्हे के अन्दर सम्पुट रखकर अवशिष्ट भाग को उपलों से भरकर आँच दे देंगे और चूल्हे के दरवाजे को ईंटों तथा लोह ढक्कन से ढाँक देंगे। यदि कुक्कुटपुट की आवश्यकता होगी तो लोहजाली पर ही सम्पुट रखकर काम चला लेंगे, ऊपर लोहचूल्हा रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि वैद्यों को क्रियासक्त होने के कारण रोटी बनाने का अवकाश नहीं मिले तो नली के छिद्र पर ही कढ़ाई रखकर साग पूरी इत्यादि भोज्य वस्तु बनाकर काम चला सकते हैं ॥ ९ ॥

ईश्वरानुग्रहेणैषा वैद्यपुण्यचयैस्तथा ।

श्रीसर्वार्थकरी भ्राष्ट्री जातेति श्यामसुन्दरः ॥१०॥

ऐसी भट्ठी बनाने के उद्योग में मैं वर्षों से लगा हुआ था। अन्त में ईश्वर की कृपा से अथवा यों कहिये कि वैद्यों के सुकृत सम्भार से यह "सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री" बनकर तैय्यार हो गई ॥ १० ॥

गजपुटम्—

अध्यर्द्धहस्तमितगर्तमितस्ततश्चे-

दामेष्टकाभिरभितः कुरु कूपतुल्यम् ।

तन्मानतुल्यमपिधानमुपर्य्यपि स्याद्

वायूद्गमाय बिलयुक्तमिदं गजाख्यम् ॥ १ ॥

तीव्राग्निदानाय पुटं गजाख्यं

लोहादिधातावुपयोगकारि ।

गजपुट विधि-

आजकल प्रायः बहुत से वैद्य; लोह, अभ्रकादि में पुट (बँधी-हुई आँच) देने के लिये यों ही गड्ढा खोदकर नीचे ऊपर उपला रखकर बीच में सम्पुट रख दिया करते हैं। इस प्रकार सौ या पचास बार आँच देकर शतपुटी या पञ्चाशत्पुटी भस्म मान लिया करते हैं। परन्तु इस प्रकार अग्नि देने से पूर्ण पाक नहीं होता है। क्योंकि अग्नि की ऊष्मा इधर उधर पोली जमीन में प्रविष्ट हो जाती है तथा ऊपर से शीघ्र निकल जाती है। कितने वैद्य गड्ढे को चिकनी मिट्टी से ल्हेस भी देते हैं तौ भी अग्नि के वेग से दो चार बार ही पुट देने से गर्त की मिट्टी गिर जाती है और गर्त बहुत बड़ा हो जाता है। अतः गजपुटादि बनाने का प्रकार लिखता हूँ—

गजपुट बनाने के लिये ढाई हाथ दुसरा का गोल गड्ढा खोद ले। फिर उस गड्ढे के अन्दर कच्ची ईंटों से एक एक बिलांद की चौड़ी दीवार ऊपर तक बना दें। जिसमें कुएँ के समान गोलाकार गड्ढा बन जाय। यह गड्ढा गहराई तथा लम्बाई व चौड़ाई में डेढ़ हाथ का होना चाहिये। जब इस प्रकार गड्ढा तैयार हो जाय तब उसीके नाप से लोहे की मोटी चादर का ढक्कन बनवा लें। ढक्कन के बीच में इतना बड़ा छिद्र करवा लें जिसमें हाथ घुस सके। ढक्कन बनाने का अभिप्राय यह है कि—जब पुट दिया जायगा तब इसी ढक्कन से गजपुट को ढाँक देंगे; जिससे सम्पुट में अग्नि बँधी हुई लगेगी, और दो-दो तीन-तीन दिन तक आँच बनी रहेगी। यदि ढक्कन नहीं रक्खा जाता तो आँच दो तीन पहर में ही बुझ जाती और औषध का परिपाक ठीक नहीं होता। ढक्कन में छिद्र रखने का अभिप्राय यह है कि—छिद्र के द्वारा वायु का सञ्चार रहे जिससे अग्नि बुझे नहीं। जब पुट न देना होगा तब गड्ढे को ढक्कन से ढाँक देना चाहिये; जिससे कोई आदमी गिरे पड़े नहीं, अथवा ऐसे स्थान में बनावे जहाँ मनुष्यों का संचार न हो। शास्त्रकारों ने डेढ़ हाथ के गजपुट बनाने की आज्ञा दी है, और आजकल के सद्वैद्य भी डेढ़ हाथ के गड्ढे को गजपुट मानते

हैं । हमारी रसायनशाला में भी इतना ही बड़ा गजपुट बनाया गया है । गजपुटादि के विषय में मतभेद भी हैं जो आगे दिखलावेंगे । लोह, अभ्रक, इत्यादि भस्मों में जब तीव्राग्नि से पुट देना हो तब इसी गजपुट में देना चाहिये ॥ १ ॥

वाराहपुटम्—

पुटाद्गजाख्यात्पुटमर्द्धमाहुर्वाराहकं मध्यमवह्निहेतोः ॥२॥

वाराहपुट विधि—

वाराहपुट को गजपुट के ऐसा बनावे परन्तु प्रमाण में उसका आधा हो । जिस औषध में मध्यम आँच देने की आवश्यकता हो उस औषध को इसी वाराहपुट में फूँकना चाहिये । परन्तु लोहे की चादर का बना हुआ, मध्य में छिद्रवाला ढक्कन इस पर भी रहे ॥२॥

कुक्कुटपुटम्—

यत्रोपयुज्येत मृदुस्तु वह्निःकुर्य्याद् वराहादपि कुक्कुटाख्यम् ।
अर्द्धं पुटं चोपरिरन्ध्रयुक्तं पिधानमस्याग्निसुरक्षणाय ॥३॥

कुक्कुटपुट विधि—

कुक्कुटपुट को वाराहपुट के ऐसा बनावे, परन्तु प्रमाण में उसका आधा हो । अर्थात् वाराहपुट का प्रमाण अठारह अंगुल का था, तो कुक्कुटपुट की गहराई, चौड़ाई व लम्बाई नौ अंगुल की हो । परन्तु अग्नि की रक्षानिमित्त और पुटों के ऐसा इस पुट के ऊपर भी छिद्रयुक्त लोहे का ढक्कन रखना चाहिये । जिस औषध में मृदु अग्नि देने की आवश्यकता हो उस औषध को इस पुट में पकावे । यद्यपि पुटों का प्रमाण मैंने शास्त्रानुसार रखा है पर वैद्य लोग कार्य्यानुसार उक्त पुटों को न्यूनाधिक भी बना सकते हैं । आयुर्वेद में किसी विषय के लिये राजाज्ञा नहीं है कि इस कार्य को ऐसा ही करें । शास्त्रकारों ने स्वयं लिख दिया है कि वैद्य लोग कार्य्यानुसार प्रत्येक योगों में युक्ति द्वारा अनेक प्रकार की न्यूनाधिकता कर सकते हैं । जैसे—क्षारों का अथवा लवण का पाचक बनाना हो तो नाँदों का डमरूयन्त्र बनाकर नीचे ऊपर मंदार के पत्ते

भर कर बीच-बीच में लवण इत्यादि को रख-रख कर तीन हाथ के लम्बे, चौड़े गड्ढे में उपलों की आँच दे। इसी प्रकार और भी कल्पना कर लेनी चाहिये ॥३॥

पुटविषये मतभेदाः-

कोचिद्वदन्ति विबुधाः पुटमानमेत-
यस्मिन् विशेद्गजइदञ्च पुटं गजाख्यम्।
कोलास्थितेः परिमितन्तु पुटं वराहं,
दत्तस्थितिं भजति साधु पुटं तदाख्यम् ॥१॥
अन्वर्थसंज्ञा मुनिभिः पुटानां,
कृतेति जानन्ति न ये यथार्थम्।
धातोः परीपाकविधौ स्खलन्ति,
भिषग्ब्रुवास्तेऽकुशलाः क्रियासु ॥
अन्यथा प्राणिभिस्संज्ञा कथङ्कारं कृतर्षिभिः।
सत्येऽसत्येऽत्र विद्वांसः प्रमाणं फलदर्शिनः ॥ २ ॥

पुटों के विषय में मतभेद-

कितने विद्वानों का कथन है कि पुटों का प्रमाण इस प्रकार होना चाहिये कि—जिस गड्ढे में हाथी बैठ सके उतने बड़े गड्ढे को गजपुट कहते हैं, और जिस गड्ढे में सूकर बैठ सके उस गड्ढे को वाराहपुट कहते हैं व जिस गर्त में मुर्गा बैठ सके उसको कुक्कुटपुट कहते हैं ॥१॥

इस प्रकार गजपुट, वाराहपुट, माहिषपुट, कुक्कुटपुट इत्यादि मुनियों ने जो पुटों की संज्ञायें रक्खी हैं वे अन्वर्थ (यथानाम तथागुण) हैं। इस बात को जो अज्ञ वैद्य नहीं जानते हैं, वे क्रिया में कुशल नहीं होने से धातुओं के परिपाक में वञ्चित हो जाते हैं, और व्यर्थ ही शास्त्रों के ऊपर आक्षेप करते हैं कि अमुक क्रिया शास्त्र में लिखी है पर बनती नहीं। यदि ये अन्वर्थ संज्ञा नहीं होती तो महर्षिगण प्राणियों के नाम से इनके नाम क्यों रखते।

इस मतभेद के विषय में मैं विशेष कुछ न कहकर विद्वान् वैद्यों के ऊपर ही छोड़ता हूँ। ऐसा गजपुट आदि बनाकर फल देखने से, सत्यासत्य का निर्णय कर लें। यदि इतने बड़े गजपुटादि से अधिक फलसिद्धि हो तो इसी मत को निर्णीत समझें, क्योंकि मैं प्रथम लिख चुका हूँ कि आयुर्वेद में कोई राजाज्ञा नहीं है, जिस प्रकार अधिक फलसिद्धि हो वैसा ही करना चाहिये।

मैं तो शास्त्ररीत्या अनुभूत विषय को लिखता हूँ जो उचित समझें उसे वैद्यगण अपने व्यवहार में लावें ॥ २ ॥

इति भ्राष्टी, पुट प्रकरणम् ।

अथ परिभाषा प्रकरणम्

सामग्रीसञ्चयोपदेशः—

संचिते सर्वसम्भारे सर्वरोगविनाशिनी ।
रससिद्धिः कृतप्राया पुराऽतस्तं समाहरेत् ॥१॥

सामग्री सञ्चय का उपदेश—

जिस वैद्य को चन्द्रोदय, तालचन्द्रोदय, मल्लचन्द्रोदय, विषचन्द्रोदय आदि रस तैयार करने हों, तथा सुवर्णादि सब धातुओं का शोधन, मारण करना हो, उनको चाहिये कि पहले उन रसों की सामग्री को एकत्रित कर लें। क्योंकि बीच में किसी चीज़ की आवश्यकता पड़ेगी तो उसको संग्रह करने में बहुत काल लगेगा, और मुख्य कार्य्य में आघात पहुँचेगा। जब कुल सामग्री इकट्ठी रहेंगी तब सर्वरोग नाशक, चन्द्रोदयादि सब ही रस आसानी से बन सकेंगे। जैसे—जिस वैद्य के औषधालय में स्वर्णादि धातुओं की भस्म तैयार रहती हैं, एवं खलबट्टा लोढ़ा वगैरह संगृहीत रहते हैं तो हिरण्यगर्भपोटली, बसन्तमालती, लक्ष्मीविलास, आदि अनेक रस जब चाहें तब ही बना लेते हैं।

यदि उन रसों को बनाने के लिये धातुओं का शोधन मारण करने बैठें तो वही कहावत चरितार्थ होगी कि "दिल्ली से हींग आवे तब बड़े बनें" इसलिये वैद्यों को सब सामग्री पहले ही इकट्ठी कर लेनी चाहिये । बाद चन्द्रोदयादि रस बनाना आरम्भ करें ॥१॥

नान्दी—

लोहनान्दी न निर्मेया बालुकायन्त्रकर्मणि ।
मृन्मयी यत्नसंसिद्धा विधेया सिद्धिहेतवे ॥१॥

नाँद—

चन्द्रोदयादि रस बालुकायन्त्र में बनाये जाते हैं अतः उस यन्त्र के योग्य कैसी नाँद लेनी चाहिये उसको लिखता हूँ—कितने ही वैद्यों को मिट्टी की नाँद में बनाने में भय लगता है कि कदाचित् मिट्टी की नाँद फूट जायगी तो हमारा चन्द्रोदयादि रस नष्ट हो जायगा। इसलिये वे लोग लोहे की नाँद बनाते हैं, परन्तु लोहे की नाँद थोड़ी ही अग्नि लगने से अतितप्त हो जाती है । इससे अग्नि के मन्द, मध्यम, व तीव्र जो तीन प्रकार के क्रम शास्त्रकारों ने रखे हैं, उनका यथार्थ पालन नहीं होता, क्योंकि थोड़ी ही आँच में जब लोहनान्दी अधिक तप्त हो जाती है, तब मन्दाग्नि के समय तीव्राग्नि लगती है और तीव्राग्नि के समय तीव्रतमाग्नि लगती है, तब अग्निक्रम की जाँच नहीं पड़ती प्रत्युत तीव्रतमाग्नि लगने से शीशी उछल कर बालुकायन्त्र से बाहर गिर जाती है । कदाचित् दैवयोग से चन्द्रोदयादि बन भी जाय तो विदग्ध रूप में बनता है । उस चन्द्रोदयादि से रोगी का उचित उपकार न होने से चन्द्रोदय ऐसे उत्तम रस की बदनामी होती है । इसलिये लोहे की नाँद कभी भी न बनाना चाहिये । लोहे की नाँद पाँच सात बार चढ़ाने से जल जायगी तो फिर दूसरी बनाने में पैसा खर्च करना पड़ेगा। अतः बालुकायन्त्र के लिये मिट्टी की ही नाँद लेनी चाहिये । इसमें द्रव्यव्यय भी उतना नहीं है । परन्तु मिट्टी की नाँद में फूटने की आशङ्का अवश्य है उसका प्रतिकार लिखता हूँ ॥ १ ॥

सच्छिद्रा तलभागे या कण्ठे चायसतन्तुभिः ।
पंचषावृत्तिभिर्नद्धा चतुर्भिर्मृत्पटैर्वहिः ॥ २ ॥
आलिप्ताभ्यन्तरे मृत्स्नामात्रेणापि दृढीकृता ।
काचकूपीगलोच्छ्राया ऽभग्ना नान्दीह शस्यते ॥३॥
षण्मासानग्निदानेपि नितरां कर्म्मसाधिका ।
वैद्योपयुक्तमूर्च्छादौ रसगन्धादियोगतः ॥४॥

नान्दी जब फूटेगी तब या तो पेंदे से या किनारे से, पेंदे से न फूटने का उपाय यह है कि—पेंदे में इतना बड़ा छिद्र करदें जिसमें से रुपया निकल जाय। इस छिद्र को पत्थर आदि मारकर न बनावे, नहीं तो नाँद फूट जायगी। किन्तु लोहे की कील से घिस घिस कर बनावे इस छिद्र के रहने से अग्नि का वेग नान्दी को फोड़ नहीं सकता। जब नान्दी में शीशी रक्खे तब इस छिद्र को पतले ठिकड़े से बन्द कर मिट्टी से दर्ज बन्द कर दे जिससे बालू भट्टी में गिरे नहीं। किनारे से नहीं फूटने का उपाय यह है कि—नाँद के किनारे पर चारों तरफ लोह के तारों से पाँच छः लपेटा देकर मजबूत बाँध दे। कदाचित् महीने दो महीने अग्नि लगाने पर पेंदे व किनारे से अन्यत्र कहीं फूट जाय ? इसलिये चिकनी मिट्टी में बराबर का बालूरेता डालकर पेंदे से किनारे तक नाँद के ऊपर चार कपरौटी कर दे। बालूरेता मिलाने का यह अभिप्राय है कि मिट्टी पपड़ावे नहीं। कदाचित् नान्दी को भीतर से बालूरेता खाजाय इससे भीतर भी उसी मिट्टी से लेप कर दे। सारांश यह हुआ कि पेंदे में छिद्र, किनारों पर लोह के तारों से बाँधना, बाहर कपरौटी, और भीतर लेपमात्र करने से नान्दी खूब मजबूत हो जाती है। इस नान्दी को बेशक छः महीने तक रात दिन अग्नि पर स्थापित करे पर, नान्दी कभी नहीं फूटेगी। परन्तु दस पन्द्रह शीशी उतारने पर देखले, कदाचित् कहीं से कपरौटी शिथिल हो गई हो तो पुरानी कपरौटी को खुरच कर दूसरी चढ़ा दे। चार पैसे की मिट्टी की नाँद का ऐसा इलाज

करके मैंने चन्द्रोदयादि रसों की पचास शीशियाँ उतारी थीं पर नाँदो में कुछ भी खराबी नहीं आई थी। यदि और भी पचास शीशियाँ उतारनी होंगी तौ भी वही नान्दी बराबर काम देगी। कुम्हार के यहाँ से जब नान्दी लावे तो बजा के देखले जो नान्दी बजाने से "टन्टन्" शब्द करे उसी को ले। इतने उपाय करने पर भी कदाचित् कच्ची होने के कारण किसी अंश से नान्दी तड़क जाय तो दूसरी बदल दे।

नान्दी का प्रमाण ऐसा होना चाहिये कि जिस शीशी में चन्द्रोदयादि बनाना हो उसको नाँद में रख कर देखले, शीशी के गलेतक का भाग नान्दी के अन्दर रहे, और गले से ऊपर की नाल नांद से बाहर निकलती रहे अर्थात्—शीशी यदि अठारह अंगुल लम्बी हो तो बारह अंगुल तो नाँद में बालू से ढकी रहे, और छः अंगुल बालू से बाहर दीखती रहे। जो वैद्य नाँद में शीशी नहीं उतार कर हंडी में उतारना चाहें तो हंडी को भी नान्दी की तरह चारों उपाय (तल में छिद्र, कपरौटी, तारों से बाँधना, व अन्दर लेप) से मजबूत कर लें। परन्तु हंडी इतनी चौड़ी रहनी चाहिये जिसके अन्दर शीशी के चारों तरफ बालू चार चार अंगुल भर सके ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

कज्जली—

रसेन्द्रे गन्धकं दत्त्वा मर्दयेत्खल्वके शनैः।
कज्जल्याभा भवेत्तेन कज्जली प्रोच्यते बुधैः ॥१॥

कज्जली—

खरल में पारद व गन्धक देकर धीरेधीरे मर्दन करे जिससे पारद उछल न जाय, इस प्रकार घोटने से जब काजल के समान चिकनी व काले रंग की हो जाय तब उसको कज्जली कहते हैं ॥ १ ॥

भावना—

कज्जल्यां वौषधीकल्केऽनेकौषधकषायकान्।
शोषयेन्मर्दनैरेषा भावनोक्ता गुणार्थिनी ॥१

भावना-

कज्जली में, या किसी औषध के कल्क में, अनेक औषधियों के कषायों को डालकर मर्दन करके सुखाले इसको भावना कहते हैं । भावना औषध में गुण वृद्धि के लिये की जाती है ॥ १ ॥

बालुका:-

चालनीमध्यगां जह्याद् वस्त्राच्चापि विनिस्सृताम् ।
वालुकाम्बालुकायन्त्रे हेयत्वेन विनिश्चिताम् ॥ १ ॥
नातिस्थूला नवा सूक्ष्मा बालुका मध्यवर्त्तिनी ।
पावकोष्मप्रवेशार्हा सर्वकर्म्मसु पूजिता ॥ २ ॥

बालुका-

नान्दी (नाँद) या हांडी का बालुकायन्त्र बनाना हो तो उसमें भरने के लिये ऐसी बालू लेनी चाहिये कि बालू को पहले चलनी में छान ले जो मोटा अंश चलनी में रह जाय उसको खराब समझ कर फेंक दे । फिर चलनी से निकली हुई बालू को कपड़े में छान ले । कपड़े से निकली हुई बारीक बालू को भी फेंक दे, किन्तु वस्त्र के ऊपर बची हुई न बहुत मोटी न बहुत बारीक बालू को बालुका यन्त्र के काम में लावे । क्योंकि बहुत मोटी कङ्कड़ पत्थर मिली हुई बालू, और कपड़े से निकली हुई बहुत बारीक बालू अग्नि के वेग को रोक लेती है इससे दवा में आँच ठीक नहीं लगती है । ऊपर कही हुई साधारण बालू को बालुकायन्त्र में भरने से चन्द्रोदय, मृगाङ्क, ताल-सिन्दूर, मल्लसिन्दूर, प्रभृति सब औषधों का पाक ठीक होता है । यदि चौमासे (बरसात) में सूखी बालू नहीं मिले तो, नदी के किनारे से गीली बालू लाकर कड़ाही में डाल कर भूँजले, जब पानी सब जल जाय, और बालू खूब सूखी हो जाय तब चलनी या कपड़े में छान ले । ऐसी बनी हुई बालू रसायनशाला में मन दो मन जमा रहनी चाहिये ।

कपड़मिट्टी करने के लिये चिकनी मिट्टी में जो बालू डाली जाती है वह भी इसी में से लेनी चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

मुद्रा–

कवलीकूपिकावक्त्रे सन्धीयेते मृदादिभिः।
डमरूयन्त्रहण्ड्योर्वा वक्त्रयोर्भिषगुत्तमैः ॥ १ ॥
सन्धिः सन्धीयते यच्च मुद्रया तद्धि भण्यते ॥

मुद्रा–

डाट वा शीशी का मुख मिट्टी से, किसी स्थल में गुड़ चूना से, किसी जगह सहत चूना से जो बन्द किया जाता है उसको मुद्रा कहते हैं। अथवा डमरूयन्त्र की हंडियों के मुखों को किसी स्थान में मिट्टी से, और किसी स्थल में मिट्टी, मण्डूर, (लोहकिट्ट) रूई, राख, चारों को खूब कूटकर बनाए हुए कल्क से जोड़ दिया जाता है, और ऊपर से लोह के तारों से बाँधकर, ऊपर से कपड़मिट्टी (कपरौटी) की जाती है, उसको भी मुद्रा कहते हैं। अर्थात् दोनों मुखों को अच्छी तरह जोड़ दिया जाय जिसमें अग्नि व धूम नहीं निकले, और पारदादि औषध नहीं उड़े, उसको मुद्रा कहते हैं ॥ १॥

मृत्पटः (कपरौटी)–

मृत्सावालुकायुक्तवस्त्रेणाऽऽवेष्ट्यते क्वचित्।
शीशी हण्डी शरावो वा मृत्पटेनोच्यते बुधैः ॥१॥

मृत्पट (कपरौटी)–

चिकनीमिट्टी व ऊपर कही हुई बालू इन दोनों के साथ साने हुए वस्त्र को शीशी के ऊपर, हण्डी के ऊपर, या शराव (सकोरों) के ऊपर, जो लपेटा जाता है उसको मृत्पट (कपड़मिट्टी) कहते हैं।

सम्पुटम्-

मल्लादिपात्रयोर्मध्ये सम्यक् पाकार्थमौषधम्।
धृत्वा सन्दधते वक्त्रं सम्पुटन्तद्विदुर्बुधाः ॥१॥

सम्पुट-

मिट्टी के २ शरावों (सकोरों) के मध्य में या हण्डी वा शराब के मध्य में दवा रखकर अच्छी तरह पकाने के लिये जो मुद्रा की जाती है, उसको सम्पुट कहते हैं। जैसे—शराव सम्पुट, हण्डिका सम्पुट, नान्दी सम्पुट, इत्यादि ॥ १ ॥

स्वाङ्गशीतम्-

आष्ट्र्यां चुल्ल्यां गजाख्ये वा पुटे वाराहसंज्ञके।
वह्निदाने समाप्ते तु स्वयं शीतीभवेच्च यत् ॥
गुणवृद्धिहितार्थाय स्वाङ्गशीतं तदुच्यते ॥१॥

स्वाङ्गशीत-

वैद्य ने किसी दवा को भट्ठी में, किसी को चूल्हे में, किसी को गजपुट में रखकर पकाई, तथा किसी को वाराहपुट में दी, जब अग्नि पूर्णरूप से लग चुके, तब उस दवा को तुरंत न निकाल ले, किन्तु गुण वृद्धि के लिये उसको खूब ठंढी हो जाने दे, तब निकाले इसी को स्वाङ्गशीत कहते हैं। तात्पर्य्य यह है कि—जैसे कोई आदमी गरमी में काम करके गरमाया हुआ आता है, तो उसको तुरंत भोजनादि किसी कार्य्य में नहीं लगाते हैं, जब वह ठंढा हो जाता है तब उसको भोजनादिक कार्य्य में लगाते हैं, इससे उसका स्वास्थ्य बना रहता है। ठीक इसी तरह दवा को ठंढी न होने पर ही निकालने से वह दवा यथार्थ गुण नहीं कर सक्ती है ॥ १ ॥

वज्रमुद्रा–

अश्वस्थनिर्यासउतापि चूर्णं लोहस्य तूलञ्च समं समस्तम् ।
चतुर्गुणा मृल्लवणञ्चतुर्थं मत्स्नार्द्धमाना ननु बालुकापि॥१॥
पानीययोगेन दिनत्रयञ्च कुट्टेद्यथा स्निग्धतरम्भवेत्तत् ।
अस्यैव कल्कस्य ददीत मुद्रां वज्राभिधानां रसरोधनाय॥२॥

वज्रमुद्रा–

पीपल की गोंद १ तोला, लोह का चूर्ण या भस्म १ तोला, रुई १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला, मुलतानी या चिकनी मिट्टी ४ तोला, वालूरेता २ तोला, इन सब में थोड़ा पानी डालकर हथौड़ा से घन पर कूटे अथवा मजबूत सिल पर लोढ़े से कूटे। ३ दिन तक कूटते कूटते जब चिकना कल्क बन जाय, तब इसी की डमरूयन्त्र पर मुद्रा देने से पारद उड़ता नहीं है। इसी मुद्रा को वज्रमुद्रा कहते हैं। इस वज्रमुद्रा को, डमरूयन्त्र द्वारा हिङ्गुल से पारद निकालने में और रसकपूर बनाने में या जहाँ पर पारद उड़ जाने की आशङ्का हो वहाँ काम में लाना चाहिये। इस मुद्रा के लगाने से पारद उड़ने नहीं पाता है॥ १ ॥ २ ॥

वज्रमुद्रायां मतभेदः–

निर्यासतूले ननु लोहभस्म मृत्सेति च द्रव्यचतुष्टयस्य ।
वज्राभिधानां प्रवदन्ति मुद्रां विनापि सिन्धूद्भवमन्यथान्ये।१।

वज्रमुद्रा में मतभेद–

पीपल की गोंद, रुई, लोह भस्म, या लोहचूर्ण, चिकनी मिट्टी इन चारों चीजों को पानी के साथ दो तीन दिन तक कूटकर चिकना कल्क बना लेते हैं, इसमें सेंधानोन नहीं डालते हैं, इससे बनी हुई मुद्रा को भी कितने ही वैद्य वज्रमुद्रा कहते हैं। वज्रमुद्रा

के विषय में बहुत से मत और भी हैं, परन्तु मैंने वही लिखा है जिसको मैं काम में लाता हूँ ॥ १ ॥

दृढमुद्रा–

सारघेण गुड़ेनोत मिश्रिता पयसा सुधा।
तया दद्याद् दृढां मुद्रां सूतमूर्छाविधौ मताम् ॥१॥

दृढमुद्रा–

शहत, चूना अथवा गुड़, चूना दोनों को कुछ जल के साथ मिलाकर (सांनकर) शीशी और डाट की दर्ज को बन्द कर देते हैं, उसको दृढमुद्रा कहते हैं। जब चन्द्रोदय या सिन्दूररस इत्यादि बनाना हो तब इस मुद्रा को काम में लावें ॥ १ ॥

मध्यममुद्रा–

पटुमृत्साकरीषोत्थभस्मयोगेन दीयते।
मुद्रा मध्याभिधानेयं ज्वरशूलहरादिषु ॥ १ ॥

मध्यममुद्रा–

सेंधानोन, चिकनी मट्टी, जंगली उपलों की भस्म, तीनों चीज समान भाग लेकर थोड़े जल के साथ कीचड़ सी बनालें। इसीसे ज्वर शूल-हर आदि योग बनाने में मुद्रा करें। इस मुद्रा को मध्यम मुद्रा कहते हैं ॥१॥

साधारणमुद्रा–

गोमयेन युता मृत्सा पटुना केवलापि वा।
तया साधारणीं मुद्रां कुर्य्याद् विद्वान् समृत्पटाम् ॥२॥

साधारणमुद्रा–

चिकनी मट्टी में गोबर मिलाकर, या नोन मिलाकर, अथवा केवल चिकनी मिट्टी को पानी में सांनकर, अभ्रकादि के सम्पुट पर जो मुद्रा

की जाती है उसको साधारण मुद्रा कहते हैं, परन्तु इस मुद्रा को देकर ऊपर से ३-४ कपड़मट्टी कर देना चाहिये और वज्रमुद्रा, दृढ़मुद्रा व मध्यम मुद्रा देकर भी ऊपर से ३-४ कपड़मट्टी अवश्य कर देना चाहिये। ऊपर कपड़मट्टी कर देने से मुद्रा मजबूत हो जाती है, कहीं से फटती नहीं है ॥ १ ॥

सिकतासितामुद्रा-

बालुका सेटमाना स्यात्तदर्द्धा शर्करा भवेत् ।
द्वयोः संमिश्रणं कृत्वा हण्ड्यावक्त्रे प्रपूर्यते ॥१॥
अङ्गुलद्वयमानं चेदङ्गारैः परितापते ।
तालभस्मादिसिद्ध्यर्थं मुद्रेयं सिकतासिता ॥२॥

सिकतासितामुद्रा-

१ सेर बालू, आध सेर खाँड़ दोनों को मिलाकर हाँडी के मुख पर (जिसमें ऊपर नीचे चार भर के बीच में हरिताल आदि की टिकिया रक्खी है) दो दो अङ्गुल भर के लोह की चादर के ढक्कन से ढाँक कर ऊपर से अङ्गार रख कर खूब तपावे जिसमें बालू और खाँड (चीनी) तपकर वज्रमय हो जाय, (जिससे हरतालादि के निकलने का अवकाश न मिले) इसको "सिकतासिता" मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा हरितालादि की भस्म बनाने के काम आती है ॥ १ ॥ २ ॥

मुद्राविषये नियमाभावः-

यद्वा यत्र क्रियायोगे यादृशीष्टकरी भवेत् ।
मुद्रां प्रकल्पयेदेतां स्वबुद्ध्या शतधापि भुत् ॥ १ ॥
मृत्पटानपि युञ्जीत मुद्रारक्षार्थमूर्द्धगान् ।
यत्रतत्रापि ताञ्जानन् व्यर्थप्रायांस्त्यजेदपि ॥ २ ॥

मुद्राओं के विषय में वैद्यों की स्वतन्त्रता-

अथवा बुद्धिमान् वैद्य को चाहिये कि जिस प्रयोग में जैसी मुद्रा देने से सरलता व उत्तमता से कार्य्य सिद्ध हो वहाँ पर वैसी वैसी सैकड़ों मुद्राओं की कल्पना कर ले। मुद्राओं के ऊपर कपड़मिट्टी की आवश्यकता समझें तो लगावें नहीं तो व्यर्थ समझकर न लगावें। जैसे दृढ़मुद्रा में कपड़मिट्टी नहीं करने से भी काम चल जाता है। क्योंकि अग्नि पाकर गुड़ चूना या शहत चूना इतने सख्त हो जाते हैं कि शीशी के फूटने पर भी मुद्रा नहीं खुलती ऐसे स्थान पर कपड़मिट्टी करना व्यर्थ है। इस बात के लिखने का अभिप्राय यह है कि—वैद्य लोग हमारे लिखने पर ही निर्भर न रहें अपनी बुद्धि से सैकड़ों नई नई कल्पना करके रसायनसार जैसे अनेक ग्रन्थ बना डालें। जिन महर्षियों की आज्ञा में हम लोग सर्वतोभाव से बद्ध हैं; उन महापुरुषों ने भी जब वैद्यों को कल्पना करने का स्वातन्त्र्य दिया है तब उनके सामने हमारा रसायन-सार क्या चीज है। किन्तु मैंने आयुर्वेद की सेवा जिस प्रकार से की है, उसी प्रकार को आप लोगों की सेवा में उपस्थित किया है ॥ १ ॥ २ ॥

बालुकायन्त्रम्-

कूपीकण्ठान्तमानामभितइतइतो नान्दिकां बालुपूर्णाम्
हण्डी वा मध्यमांशे भवति सुनिहिता कूपिकाऽऽकण्ठमस्याः
कूपीनाली तु धूलेर्बहिरथ निसृता दीयते यत्र वह्निः
सम्यक्पाकाय वैद्या अभिदधत इदं बालुकायन्त्रसंज्ञम्॥१॥

बालुकायन्त्र-

चन्द्रोदयादि रस तैय्यार करने के लिये बालुकायन्त्र बनाना चाहिये। उसमें नाँदी या हण्डी इतनी बड़ी रहनी चाहिये जो शीशी के गले तक ऊँची हो और पूर्वोक्त नान्दी विधि से नान्दी या हण्डी बनाई गई हो, उसमें उक्तविधि से कपरौटी की हुई शीशी रखकर शीशी के चारों तरफ बालुका भर दे। जिससे शीशी कण्ठ तक बालू के अन्दर दब

जाय। सीसी की नली (नाल) बालू से बाहर निकलती रहे। इस विधि से चन्द्रोदयादि रस ठीक बनकर तैय्यार हो जाते हैं। इस यन्त्र को भट्ठी पर रखकर मन्द, मध्यम व तीव्र अग्नि क्रम से दी जाती है, इसीको वैद्य लोग "बालुकायन्त्र" कहते हैं। कोई वैद्य सिन्दूरादि रस तैय्यार करने के लिये नाँद के बीच (तलभाग) वाले छिद्र को ठीक तरह से नहीं ढककर उसी पर सीसी रख देते हैं। जिसमें सीसी को साक्षात् आँच लगे और नाँद के छिद्र द्वारा बालू नहीं निकलने के लिये सीसी के चारों तरफ थोड़ी मिट्टी से दर्ज बन्द कर देते हैं। और कोई २ वैद्य उस छिद्र के ऊपर अभ्रक पत्र रखकर उसके ऊपर सीसी रखते हैं जिसमें सीसी को साक्षात् आँच भी न लगे और तेज भी लगे॥ १॥

दोलायन्त्रम्—

चतुर्गुणाम्बरे सूतं बद्ध्वा हण्ड्यां च लम्बयेत्।
स्पृशेद् यथा तलं नास्याः पोटली जलमध्यगा॥१॥
दीयते मन्दमन्दाग्निः सम्यक् स्वेदार्थं मौषधे।
दोलावल्लम्बनाद् वैद्या दोलायन्त्रमिदं जगुः॥ २॥

दोलायन्त्र—

कपड़े की चार तह करके उसमें पारा आदि स्वेदनीय द्रव्य रखकर तागे से पोटली को बाँध दे। फिर कपरौटी की हुई हण्डी पर एक डंडा रखकर उस डंडे के बीच में पोटली को बाँधकर इस प्रकार हंडी के अन्दर लटका दे कि जिसमें पोटली हण्डी के तल तक नहीं पहुँचे किंतु बीच में ही लटकती रहे। उस हण्डी में गोमूत्र, काञ्जी, लवण, क्षार, वगैरह जो अपने को इष्ट हो भरकर मन्दमन्द अग्नि दे। जिसमें गोमूत्रादि उफन कर बाहर न जाय। इस यन्त्र में पारद इत्यादि स्वेद-नीय द्रव्य झूला के तरह झूलते रहते हैं, इसी से वैद्य लोग इसको दोला-यन्त्र कहते हैं। दोलायन्त्र बनाने का तात्पर्य्य यह है कि यदि पारद को

पोटली में बाँधकर योंही हण्डी के तलभाग में रखकर अग्नि दी जाती तो अग्नि की तेजी से पारा कुछ उड़ जाता और यदि पारद की पोटली को चालनी में रखकर हंडी पर रख देते, और नीचे आँच लगाते, तो काञ्जी आदि द्रव्य से पारद ऊँचा पड़ जाता अतः उसमें पूरी आँच नहीं लगती । और दूसरी बात यह भी है कि—पारद गरम होकर काञ्जी आदि द्रव्यों के गुण को भी ग्रहण करता है । यदि उन द्रव्यों से संयोग न होता तो वे गुण भी पारद में नहीं आ सकते । इसलिये मध्य में पारद की पोटली को लटकाना महर्षियों को इष्ट है ॥१।२॥

खल्वसुधादियन्त्रम्—

तालादिभस्मार्थविधौ विधित्सुर्यन्त्रञ्च मृद्धण्डिकया करोति ।
चेद् वैद्यवर्य्यो धृतमध्यतालां सुधामथो मञ्जरितामपन्नम् ॥१॥
सोराभिधानं गतपक्षमेव त्वारम्भरेत्तत्र घनप्रयत्नैः ।
मृत्पात्रमग्नेः परितापतस्स्याद्भग्नं तथा चेच्छिथिलम्भरेत २॥
उड्डीयते तालमुखं तदाऽतः खल्वम्भवेत्तत्र तदर्थकारि ।
समृत्पटश्चापि पिधानयुक्तं मणार्द्धभारेण समाश्रितञ्च ॥३॥
एतद्योग्यतमभ्राष्ट्रयां यन्त्रे यद्दीयतेऽनलः ।
खल्वचूर्णादियन्त्रेति संज्ञा तस्मात्प्रकीर्त्तिता ॥ ४ ॥

खल्वसुधादयन्त्र—

हरितालादि भस्म बनाने के बहुत प्रकार हैं, जिनको भस्म प्रकरण में लिखूँगा । यहाँ चूना व छिन्नपक्ष (छिन्नपक्ष करने की विधि भस्मप्रकरण में लिखूँगा) कलमीसोरा के साथ यन्त्र द्वारा जो भस्म तैय्यार की जाती है उस यन्त्र को बनाने की विधि लिखता हूँ—प्रथम एक लोहे के खरल के ऊपर तीन कपरौटी कर ले, फिर उसमें नीचे ऊपर बिना बुझाया हुआ चूना या छिन्नपक्ष कलमीसोरा और बीच में अनेक औषधों के योग से बनी हुई हरिताल, शंखिया, मैनशिल, इत्यादि

की टिकियाओं को रखकर यन्त्र को लोहे के ढक्कन से ढाँक दे, ऊपर से आध मन पक्का भारी पत्थर रख दे। इस यन्त्र के योग्यतम भट्ठी (अर्थात् तालादिभस्मकरी भ्राष्ट्री) के ऊपर यन्त्र को रखकर क्रम से अग्नि दे। इस यन्त्र को "खल्वसुधादि यन्त्र" कहते हैं। इस यंत्र में चूना इत्यादि वस्तु खूब दाबदाब कर भरी गई हैं तथा ऊपर भारी पत्थर रखा गया है, तो भी अग्नि के वेग से टूटने फटने का कोई डर नहीं है। बहुत से वैद्य मिट्टी की हण्डी में चूने के साथ हरितालादिक को रखकर फूँकते हैं पर अग्नि लगने पर चूना इत्यादि फूलकर हण्डी को तोड़ देते हैं और यदि हण्डी में चूने इत्यादि को शिथिलता से भरते हैं तो हरितालादि उड़कर चुने आदि में मिल जाते हैं। अतः भस्म भी तैयार नहीं होती, और वैद्य लोग उत्साहहीन भी हो जाते हैं। अतः उपर्य्युक्त प्रकार से यन्त्र बनाना उचित है ॥ १ । २ । ३ । ४ ॥

बालुकागर्भपातालयन्त्रम्—

अध्यर्द्धहस्तोन्मितनान्दिका या तले कृतच्छिद्रगलप्रबद्धा ।
समृत्पटा तत्र निवेशयेत तैल्याढ्यकूपीमुखमायसैश्च ॥ १ ॥
सूत्रैः कृतग्रासमपि प्रगाढं तैलस्रुतेस्तैल्यनिरोधहेतोः ।
वितस्तिपादं च कृतावकाशां कूप्यास्समन्तान्निदधीत नालीम्
तत्रावकाशं ननु नालिकायाः प्रपूर्य्य रेतोभिरतिप्रगाढम् ।
ददीत वह्निमभितोनलीञ्च स्थापयेत
नान्दीं ननु लोहचुल्ल्यां ॥ ३ ॥
बालुकागर्भपातालयन्त्रं तैलस्रुतौ क्षमम् ।
तदन्वर्थाभिधानत्वाद् व्यवहारार्थसाधकम् ॥ ४ ॥

बालुकागर्भपातालयन्त्र—

रसायनबिन्दु, नपुंसकत्वारि, लवङ्गादि तैल, "बालुकागर्भपाताल यन्त्र" द्वारा अति सुगमता से निर्विघ्न निकल जाते हैं। अतः उस यन्त्र

के बनाने का प्रकार लिखता हूँ—डेढहाथ चौड़ी तथा गहरी मिट्टी की एक नांद ले। उसके तल भाग में इतना बड़ा छिद्र कर दे जिसमें शीशी का मुखमात्र ऐसा घुस सके, जिसमें कहीं दर्ज न रहे। नांद के किनारों को लोहे के तारों से खूब मज़बूत चार-पांच लपेटा देकर बाँध दे। जिसमें नांद किनारे से फूट न सके और बाहर से तीन कपरौटी भी करदे। फिर तीन कपरौटी की हुई शीशी में तैल्य (जिनका तेल निकालना है) पदार्थों को कूट कर भर दे। शीशी के मुख में लोहे के बारीक तारों की गोली सी बनाकर घुसा दे, जिससे तेल टपकता रहे, और तैल्यपदार्थ बाहर न गिर सकें। उस शीशी को औंधी करके उसका मुख नान्दी के तलभागवाले छिद्र में घुसा दे। शीशी को इतनी बड़ी नली से ढाँक दे जिसमें शीशी व नली के बीच में तीन-तीन अंगुल अवकाश चारों तरफ रहे। उस अवकाश में खूब दाब-दाब कर बालू भर दे। नली की ऊँचाई इतनी रहनी चाहिये कि जिसमें शीशी से चार अंगुल ऊपर तक उठी रहे। अर्थात् काली बोतल जो छः छः पैसे में बाजार में मिलती है, उसकी ऊँचाई सोलह अंगुल हुआ करती है, जिसमें दो अंगुल तो नान्दी में घुस जायगी और चौदह अंगुल ऊपर दीखती रहेगी, उसमें भी दो अंगुल बालू से दबी रहेगी, शेष बारह अंगुल बोतल दीखती रहेगी, अतः सोलह अंगुल ऊँची नली रहनी चाहिये। इस यन्त्र को बड़े लोहे के चूल्हे पर अथवा तीन २ नम्बरी ईंटों को तीन तरफ रखकर उस पर रख दे। नान्दी व नली के बीच में जो महावकाश है, उसमें उपले भर कर आँच दे। इस यन्त्र को "बालुका-गर्भपातालयन्त्र" कहते हैं। यह संज्ञा यथानाम तथागुण है।

वैद्य लोग अनेक प्रकार से पातालयन्त्र बनाकर तैल निकाला करते हैं, मैंने भी पाँच सात प्रकार के यन्त्रों की आजमाइश की है। पर प्रायः सब ही यन्त्रों में शीशी फूटना, तैल कम निकलना, माल कच्चा रह जाना, इत्यादि अनेक आपत्तियाँ हुआ करती हैं। परन्तु इस यन्त्र में कोई भी खटका नहीं है। आसानी से यन्त्र के नीचे चूल्हे में रखे हुए पात्र में सब तैल टपक जाता है। एक बार काशी के रईस बाबू रायकृष्णदासजी को किसी तैल की आवश्यकता पड़ गयी थी तब मैं इसी यन्त्र की

रचना उनके बगीचे में कर आया था वे बहुत बुद्धिमान् पुरुष हैं उन्होंने उसी विधि से तैल निकाल लिया था ॥१।२।३।४॥

तलपातयन्त्रम्–

पात्रस्य वक्त्रं प्रगुणीकृतेन वस्त्रेण चाच्छाद्य दृढीकृतेन ।
तैल्यं लवङ्गादिमुखं प्रसार्य्य पात्रान्तभागेऽग्निनिरोधनाय॥१॥
अभ्रस्य पत्राणि ददीत तेषु पात्रीमथाङ्गारवतीञ्च धीमान् ।
होरैकमात्रेण परिस्रुतं स्यात्तैलन्तदेतत्तलपातयन्त्रम् ॥२॥

तलपातयन्त्र–

यदि वैद्य लोगों को थोड़े समय में तथा थोड़ा तैल निकालना हो तो पूर्वोक्त "बालुकागर्भपातालयन्त्र" न बनाकर इस तलपातयन्त्र से ही काम निकाल लें । इस यन्त्र के बनाने का प्रकार यह है कि—एक चीनी या लोहे के या पीतल के कटोरे के मुखपर नवीन पतला (छिरछिरा) कपड़े का टुकड़ा फैला कर मज़बूती से बाँध दे । उस कपड़े के मध्य भाग में लवङ्गादि जिन वस्तुओं का तैल निकालना हो, उनको कूटकर फैला दे और कटोरे के किनारों पर सफेद अभ्रक के टुकड़े चारों तरफ रख दे । बाद अंगारों से भरी हुई थाली को उन टुकड़ों पर रख दे । अभ्रक के टुकड़े बिछाने का अभिप्राय यह है कि–यदि अंगारों से भरी हुई थाली कपड़े पर ही रख दी जाती तो वस्त्र जल जाता व तैल्य पदार्थ नीचे गिर जाता, तो तैल नहीं निकलता । अभ्रक पत्रों के रखने से अग्नि की ऊष्मा पत्रों से रुक जाने के कारण कपड़े तक नहीं पहुँच सकती। इस प्रकार एक घंटा अग्नि लगने पर सब तेल वस्त्र द्वारा टपक-कर कटोरे में पहुँच जायगा । यदि थाली की अग्नि ठंढी पड़ जाय तो पंखे से हाँकता जाय । एक घंटे के बाद बहुत होशियारी से थाली को उतार ले और अभ्रक पत्र तथा कपड़े को सावधानी से हटा ले, कटोरे में तेल मिलेगा। परन्तु इस विधि से तेल निकालने में आधा तेल निक-लता है, आधा तेल औषधी में रह जाता है । इन औषधों से भी बाकी

बचे हुए तेल को निकालना हो तो "बालुकागर्भपातालयन्त्र" में अथवा वक्ष्यमाण "पातालयन्त्र" में औषधी को भरकर निकाल ले। इस यन्त्र को "तलपातयन्त्र" कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

पातालयन्त्रम्—

लोहस्य नान्धां विदधीत नालीं छिन्द्रान्विते तत्तल भागएव।
लोहस्य कूपीं निदधीत तत्र चाधोमुखीं तैल्यपदार्थजुष्टाम्॥१॥
समृत्पटां रुद्धमुखीं च नाल्या अधोविभागं खलु काचपात्रे।
प्रवेशयेत् सन्धिनिरोधनं च कृत्वा जलार्द्रेण पटेन सम्यक्॥२॥
धूमोष्मरोधाय ततः प्रदद्यादग्निं समन्तात्खलु कूपिकायाः।
नान्दीं पिदध्यादपि तापवृद्धयै तैलं स्रुतं स्यादपि वाजिमन्थात्

पातालयन्त्र—

तैलाश्रित पदार्थ लवङ्गादि का तैल तो उपर्युक्त यन्त्र से भी निकल जाता है पर शुष्कप्राय चना, यव, गेहूँ वगैरह का भी यदि तैल निकालना हो तो इस पातालयन्त्र से निकाले। पहले एक लोहे की नांद बनावे उसके नीचे के तलभाग में चार अंगुल का छेद करा ले, उस छेद में एकबिलांद लम्बी लोहे की नाली जड़वा दे। लोह की नाली का मुख इतना चौड़ा होना चाहिये कि जिस कांच के गिलास में तेल टपकेगा, उस गिलास के मुख में आधा अंगुल प्रविष्ट हो जाय। (गिलास बाजार में ऐसे मिलते हैं जो नीचे से सकड़े होते हैं और मुख पर चौड़े होते हैं) फिर कपरौटी की हुई एक लोहे की शीशी में तैल्यपदार्थ भरकर लोह के तारों से शीशी के मुख को बन्द कर दे, जिसमें तेल निकल सके, और तैल्य पदार्थ (जिनका तैल निकालना हो) भी न गिरे। उस शीशी को औंधो कर के नांद के भीतर नाली के ऊपर रख दे। और वज्रमुद्रा से दर्ज बन्द कर दे। जब मुद्रा सूख जाय तब उस नान्दी को एक ऊँचे चूल्हे पर रख दे तथा एक काँच का गिलास (जैसा कि ऊपर लिखा है) नीचे रखकर नली से मिला दे और नली

व गिलास के दर्ज में भीगा हुआ कपड़ा भर दे, जिसमें अग्नि की ऊष्मा व धूम नहीं निकलने पावे। धुआँ निकलता रहेगा तो तेल कभी नहीं निकलेगा। फिर नान्दी के अन्दर कूपी के चारों तरफ उपला भर कर आग लगा दे व ऊपर तक खूब उपला और भी भर दे। जब निर्धूम हो जाय, और अग्नि भी कुछ बैठ जाय, तब पांच सात और उपले रखकर तल भाग में छिद्र की हुई दूसरी नांद से ढक दे। ढकने का अभिप्राय यह है कि आँच बंधी हुई लगे जिससे तेल बिलकुल निकल जाय। ढक्कन की नांद में छिद्र रहने का यह अभिप्राय है कि अग्नि बुझे नहीं। इस प्रकार इस पातालयन्त्र द्वारा चने आदि शुष्कप्राय पदार्थों का भी तेल निकल जाता है। परन्तु चने आदि को एक रात पानी में भिगो दे बाद आधा घण्टा धूप में फरैरे (कुछ सूखे) करदें तब तेल निकालें। सर्व वस्तुओं में तेल और क्षार होता है ॥१।२।३॥

डमरूयन्त्रम्—

हण्ड्योर्मुखे श्लक्ष्णशिलातलेज्ञः पानीययोगेन शनैश्शनैश्च।
सङ्घर्षयेत्तन्मुखमेल नान्तं ततो द्वयोर्हण्डिकयोर्विधाय॥१॥
त्रीन्मृत्पटांस्तानुत सप्तकृत्वः
संशोष्य सूर्योष्मणि हण्डिकायाम्।
भृत्वौषधञ्चेतरहण्डिकां
तु न्युब्जां ददीताथ तयोर्मुखे च ॥२॥
सन्धाय तत्सन्धिनिरोधनञ्च वज्रादिमुद्रान्यतमेन कृत्वा।
प्रज्वालयेदग्निमिदं तु शास्त्रे यन्त्रं डमर्वाख्यमुशन्ति वृद्धाः ॥३॥

डमरूयन्त्र—

शिंगरफ से पारा निकालने के लिये तथा शंखिया, मैनशिल, हरितालादि के सत्व (फूल) निकालने के लिये व रसकर्पूरादि बनाने के लिये डमरूयन्त्र की आवश्यकता पड़ती है। अतः उसके बनाने का

प्रकार लिखता हूँ—डमरूयन्त्र बनाने के लिये कुम्हार के यहाँ से दो हण्डी बराबर की ठोक बजा कर ले; जो कहीं से फूटी न हो। उन दोनों हण्डियों के मुख को चिकने पत्थर पर पानी दे देकर धीरे-धीरे घिसे, जिसमें फूटे नहीं, और दोनों के मुख अच्छी तरह मिल जाँय। फिर दोनों हण्डियों पर उक्त विधि से तीन अथवा सात बार कपरौटी करदे। फिर धूप में खूब सुखा ले, अनन्तर एक हण्डी में सिंगरफ आदि औषध भर कर ऊपर से दूसरी हण्डी को औंधी करके रख दे, व दोनों हण्डियों के मुख को जोड़ कर वज्रमुद्रा आदि किसी मुद्रा से (जहाँ जैसी मजबूती की आवश्यकता हो) दर्ज बन्द करदे। यदि और भी अधिक मजबूती करनी हो तो हण्डियों के किनारों को लोहे के तारों से कस, ऊपर से कपरौटी करदे। सूखजाने पर चूल्हे पर रखकर यन्त्र के नीचे अग्नि दे। इस यन्त्र को विद्वान् लोग डमरूयन्त्र कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

नलिकाडमरूयन्त्रम्—

डमरूयन्त्रोर्द्धहण्ड्यान्तु छिद्रं कृत्वैकमङ्गुलम् ।
वेदाङ्गुलमितां नालीं रसरोधकरीं भिषक् ॥ १ ॥
प्रवेश्य सन्धिरोधञ्च कृत्वा सम्यक्प्रशोषयेत् ।
ख्यातं नलीडमर्वाख्यं यन्त्रं सूतार्गलोपमम् ॥ २ ॥

नलिकाडमरूयन्त्र—

पारद, गन्धक की कज्जली, संखिया, हरिताल, मैनशिल, रसकपूर इत्यादि के योग से सोना, चाँदी, तांमा आदि अनेक धातुओं की भस्म वैद्यलोग गजपुटादि में देकर बनाया करते हैं पर उस विधि से भस्म तो तैय्यार हो जाती है परन्तु पारद, संखिया, हरितालादि उड़ जाते हैं। यदि इनमें पारद आदि का योग नहीं दिया जाय तो भस्म अच्छी नहीं बनती है। यदि डमरूयन्त्र में रखकर बनावें तो गन्धकादिक के धूम को निकलने का रास्ता नहीं मिलने से यन्त्र फूट जाता

है । ऐसे ऐसे अन्तराय (कठिनाइयाँ) उपस्थित होने से वैद्यों को उत्साह-हीन होना पड़ता है, अतः "यथायथान्तरायः स्यात्प्रतीकारस्तथातथा" इस न्याय से उक्त दोषों को दूर करने के लिये "नलिकाडमरूयन्त्र" लिखता हूँ—उक्त विधि से डमरूयन्त्र बनाकर ऊपर वाली हण्डी के पंदे में एक अंगुली घुसने योग्य छिद्र करके उस छिद्र में चार अंगुल की लम्बी खड़ियामिट्टी की बनाई हुई नली लगा दे । खड़ियामिट्टी को चाकू से छील–छीलकर अपने कार्य्य योग्य नली बना ले । उस नली के बीच में धूआँ निकलने के लिये सूजा अथवा चाकू से छोटा छिद्र बना दे । इस नली को हण्डी के छिद्र में इस प्रकार घुसा दे जिसमें हण्डी के ऊपर नली का किनारा समतल होजाय और बाकी सम्पूर्ण नली हण्डी के अन्दर लटकती रहे । स्वर्णसिन्दूर आदि रस इसी नाली के चारों तरफ जमेंगे । फिर हण्डी व नली के दर्ज बन्द करके सुखा दे । इस यन्त्र को "नलिकाडमरूयन्त्र" कहते हैं । इस यन्त्र में सभी धातुओं की भस्में आसानी से हो जाती हैं और पारदादि कोई वस्तु उड़ती नहीं है प्रत्युत उनका भी रस बनकर तैय्यार हो जाता है । इस प्रकार के यन्त्र बनाने के लिये मैंने बहुत प्रकार के यन्त्र बना बना कर आजमाये परन्तु किसी से भी मैं सफल मनोरथ नहीं हुआ था आखिर में यह प्रकार बहुत उत्तम निकला सो यह भी आपलोगों के पुण्य का परिचय है ॥१॥२॥

ऊष्मयन्त्रम्–

हण्ड्यां समृत्पटायां तु भृत्वाकाञ्ज्यादि लम्बयेत् ।
शुष्कप्रायौषधं बद्ध्वा वस्त्रे दोलासमं कृती ॥ १ ॥
अधो मन्दाग्नियोगेन स्विन्नप्रायं भवेद्यदा ।
सौकर्य्येण रसस्तैलं निस्सरेदूष्मयन्त्रतः ॥ २ ॥

ऊष्मयन्त्र–

बिल्वपत्रादि शुष्कप्राय औषधों के कासकुठारादि रसों में भावना देने के लिये स्वरस निकालना हो अथवा बादाम, पिस्ता, चिरौंजी

आदि का तेल निकालना हो तो "ऊष्मयन्त्र" से निकाले । उसकी विधि यह है—हण्डी पर तीन कपरौटी करके सुखा ले, बाद उस हण्डी में काञ्जी, सिरका अथवा केवल जल (जो उपयोगी हो) भर दे । पुनः औषध को कूटकर कपड़े में बाँधकर दोलायन्त्र की तरह लटका दे। पर दोलायन्त्र व इस यन्त्र में विशेषता यह है कि दोलायन्त्र में औषध, काञ्जी आदि के अन्दर डूबी रहती है, और इस यन्त्र में काञ्जी आदि के ऊपर जहाँ पर ऊष्मा मात्र लगे वहाँ लटकती रहती है । काञ्जी आदि द्रव्य का गुण ऊष्मा द्वारा औषध में आता है। इस प्रकार मन्दाग्नि से स्वेदन करने से जब औषध पसीज जाय और रसादिक विश्लिष्टप्राय हो जाय, तब पोटली को निकालकर निचोड़ डाले, स्वरस या तैल जो कुछ होगा सो निकल आवेगा। इस यन्त्र को "ऊष्मयन्त्र" कहते हैं ॥१॥२॥

स्वरसयन्त्रम्—

धृत्वौषधं लोहमयेऽल्पपात्रे सङ्कुट्य तापेन पिधाय कामम् ।
एतत्करण्डं निदधीत लोहकटाहिकायां कृतपीठिकायाम्॥१॥
द्रवज्जलञ्चापि भरेत तत्र यन्न स्रुतं स्याच्च करण्डमध्ये ।
एनां कटाहीं निदधीत चुल्यां ततो दद्दीताग्निमितिक्रियातः२

स्वरसयन्त्र—

निम्बपत्र, पान, तुलसी, भृङ्गराज आदि औषधों को तो कूटकर कपड़े में रखकर निचोड़ने से स्वरस निकल आता है। पर बिल्वपत्र, अडूसा, पीयाबाँसा, तालपत्र, खर्जूरपत्र, आदि जो शुष्कप्राय (अल्प स्वरसवाली) औषध हैं उनका स्वरस कितना ही कूटकर निचोड़ो पर पर्य्याप्त नहीं निकलता, इसलिये "स्वरसयन्त्र" की विधि लिखता हूँ— जिस वस्तु का स्वरस निकालना हो उसको लोह या पत्थर के खरल में खूब कूटकर एक लोहे के तसले में भर दे और उसके ऊपर लोहे का तवा रख दे, जिसमें कहीं संद न रहे, यह एक करण्ड (पिटारी) सा हो

जायगा। बाद एक बड़ी कड़ाही में तीन ईंट रखकर, उनपर इस पिटारी को रखदे। तीन ईंट रखने का अभिप्राय यह है कि पिटारी इधर उधर ढुलके नहीं सीधी रखी रहे। दूसरा अभिप्राय यह है कि अग्नि पाकर पानी बहुत उछलकर पिटारी के अन्दर नहीं जा सके। फिर उस कड़ाही में इतना पानी भरे कि जिससे पिटारी में न चला जाय। इस कड़ाही को चूल्हेपर रखकर अग्नि दे। ऐसा करने से पहले कड़ाही का पानी गर्म होगा, फिर पिटारी गर्म होगी, फिर पिटारी में रखी हुई औषधी गर्म हो जायगी। इस प्रकार आधा घण्टा आँच लगने से औषधियाँ रस निकालने योग्य सीज जायगीं ॥१।२॥

उष्णाम्भसा तत्र करण्डिकायां
स्विन्नौषधं सार्य्यरसञ्च विद्यात् ।
एतत्स्वरसयन्त्रेण स्विन्ने जाते तदौषधे ।
वस्त्रपीडनतो गाढं स्रावयेत्स्वरसं सुधीः ॥३॥

तब औषध को निकाल कर कपड़े में रखकर खूब जोर से निचोड़े। जैसे स्नान करने के बाद धोती निचोड़ते हैं। ऐसा करने से सब स्वरस निकल जायगा। यदि कांटे वाली वस्तु कटेली आदि का स्वरस निकालना हो तो उस औषधी को कूटकर सन के टाट में चार-पाँच लपेटा देकर लपेट दे जिसमें कांटे हाथ पर्य्यन्त नहीं पहुँच सकें तब उक्त प्रकार से निचोड़े। इस यन्त्र को "स्वरसयन्त्र" कहते हैं ॥३॥

नालिकायन्त्रम्—

ताम्रस्य भाण्डे खुरकोपलिप्ते छन्नेऽपि तन्मानपिधानकेन ।
नलीद्वयाढ्येन भृतेन चापि शीताद्भिरकौषधमावपेत ॥१॥
जलस्य पादांशमितं ददीत मुद्रां दृढां माषमृदादिचूर्णैः ।
मन्दाग्नियोगेन पचेत चुल्यामुष्णं जलं सम्परिवर्तयेत ॥२॥

नलेरधस्तादपि सन्निदध्यादाधारपात्रं जलपातहेतोः ।
एवं विधानेन च गन्धतालतैलस्रुतिं कुष्ठहरीं प्रयुञ्ज्यात् ३
ज्वरकासादिनाशार्थं तत्तद्भेषजसंग्रहात् ।
नलीयन्त्रेण पानीयं पातयेद्रोगितुष्टये ॥४॥

नली (भभका) यन्त्र–

यह नलीयन्त्र (भभका) भारतवर्ष में सब ही वैद्यों के यहाँ प्रसिद्ध है । जिन द्रव्यों का अर्क निकाला जाता है वह इसी यन्त्र के द्वारा निकालते हैं । परन्तु कोई मिट्टी के बनाते हैं और कोई कलई किये हुये ताँबे का बनाते हैं । उसके बनाने की विधि लिखता हूँ—एक ताँबे का पात्र जितना बड़ा अपने को इष्ट हो बनवा ले; और उसके अन्दर कलई करवा ले, फिर उसके नाप का ताँबे का ढक्कन ऐसा बनवावे जिसके अन्दर एक औंधा कटोरा जड़ा रहे और उसमें आमने सामने दो नली लगी रहें । जिनमें एक नली तो कटोरे के अन्दर रस निकालने के लिये जड़ी रहे और दूसरी नली कटोरे के ऊपर (कटोरे को छोड़ कर) ढक्कन में जड़ी रहे, जिसके द्वारा गर्मजल निकाला जायगा । दोनों नलियों में एक-एक बिलांद या एक-एक हाथ की नली लगा दी जाय जिनके द्वारा अर्क तथा गर्म जल दूर निकलता रहे । बाद नीचे के पात्र में जल से चतुर्थांश औषध भरे, और पात्र से चतुर्थांश पानी भरे अर्थात् भभका में आठ सेर पानी अटता हो तो दो सेर पानी भरे और आध सेर औषध भरे । पश्चात् ढक्कन रखकर उरद के आटे या चिकनी मिट्टी को पानी में सानकर मुद्रा कर दे, और सूख जाने पर नीचे आंच दे, ज्यों ज्यों पानी गर्म होता जाय त्यों त्यों नली के द्वारा निकालता जाय । दूसरी नली के नीचे एक पात्र रखा रहे जिसमें अर्क गिरता रहेगा ।

इस रीति से ज्वर, कास, आदि रोगों की जो-जो औषध (चूर्णादि) शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, और जिन्हें फाँकने में रोगियों को अरुचि मालूम हो तो उनके सन्तोशार्थ इस नली यन्त्र से उन औषधों का अर्क निकाल कर दें । जो औषधें गीली मिलें उनको तो तत्काल

कूटकर अर्क निकाल ले और जो औषध सूखी हों उनको एक रात पानी में भिगोकर, उसी पानी के योग से अर्क निकाल ले। अर्क निकालने से रोज रोज काथ की खटपट भी नहीं करनी पड़ती है। किन्तु यह वैद्यों को स्मरण रहे कि अर्क की अपेक्षा काथ अधिक फायदा करते हैं। इसी यन्त्र से गन्धक हरितालादि के योग से कुष्ठादि व्याधियों को दूर करने के लिये तेल भी निकाला जाता है। जिसको कुष्ठचिकित्सा प्रकरण में लिखूँगा परन्तु हरिताल, गंधक, मैनशिल आदि के तेल निकालने से कलई नष्ट हो जाती है, इस लिये इस काम के लिये दूसरा नलीयंत्र बनवा कर रख छोड़ें ॥१।२।३।४॥

यन्त्रोपसंहार—

एवं यन्त्रसहस्त्राणां कल्पनां कल्पयेद्धिया।
तत्तत्कार्य्यानुसारेण प्रत्युपपन्नमतिर्भिषक् ॥१॥

यन्त्रोपसंहार—

इस प्रकार कार्य्यानुसार हजारों यन्त्रों की बुद्धिद्वारा कल्पना हो सकती है, यदि वैद्य महाशय तत्काल कल्पना कर सकें ॥१॥

अथ काञ्जी विधिः—

राजिका सेटमानाख्या द्विगुणश्चापि सैन्धवम्।
सेटद्वयकुलित्थस्य कषायः पक्वओदनः ॥ १ ॥
सैन्धवेन समानाश्च तण्डुलानां निशारजः।
सेटार्द्धं वंशपत्राणि तावन्ति पादसेटके ॥ २ ॥
शुण्ठीजीरे पृथक्हिङ्गु पलञ्चार्द्धतृतीयकम्।
कूटनार्हाणि सङ्कुट्य मृत्पात्रे निक्षिपेत्सुधीः ॥ ३ ॥

सार्षपात्के मणार्द्धञ्च पानीयं तत्र दीयताम् ।
सेटार्द्धमाषपिष्टेश्च वटकांस्तत्र पातयेत् ॥ ४ ॥
मुखमुद्रां भाजने दत्त्वोपेद्यतां दिनसप्तकम् ।
ग्रीष्मे दिनानि चत्वारि काञ्जीयं धातुशोधिनी ॥५॥
स्वेदार्थं पारदस्यापि गृह्यते भिषगुत्तमैः ।
अम्लक्षाराढ्यवस्तूनां सूतस्य गुणकृत्त्वतः ॥ ६ ॥

काञ्जी विधि–

काञ्जी बनाने की यह रीति है कि एक सेर राई, दो सेर सेंधानोन, कुलथी का काढा चार सेर, (दो सेर कुथली अन्न में १६ सेर पानी डाल कर पकावे जब चार सेर रह जाय तब कपड़े में छान कर डाले) दो सेर चावल का पका हुआ मांड सहित भात, आध सेर हलदी का चूर्ण, आध सेर बांस का पत्ता, पावभर सोंठ, पावभर सफेद जीरा, १० तोला हींग, इनमें कूटने योग्य द्रव्यों को कूट कपड़छन करके और दूसरे द्रव्यों को यों ही मिट्टी के बड़े हंडे में (जिसमें सब चीज अट जायँ) भर दे, परन्तु भरने के पहले ही हण्डे को अन्दर से सरसों के तेल से पोत दे। फिर २० सेर पक्का पानी डाल कर सबको चला दे जिससे सब मिल जाँय। यदि पानी कम मालूम होय तो और डाल दे। कोई कोई वैद्य १० सेर मट्ठा भी डालते हैं। बाद आध सेर उरद की पिट्ठी के बड़े सरसों के तेल में बनाकर डाल दे। पश्चात बर्त्तन के मुख को ढक्कन से ढांककर मुद्रा करदे इस प्रकार सात दिन रहने दे। परन्तु गर्मी के दिनों में चार दिन में ही काञ्जी बहुत खट्टी बन जाती है। इसको कपड़े में छानकर इसी काञ्जी में धातुओं का शोधन करे। और कपड़े में जो किट्ट भाग निकले उसको भी फेंक न दे। किन्तु रसायनशाला की छतपर सुखाकर क्षार बनाने के लिये रख छोड़े। इसका बहुत पाचक क्षार बनता है। जिसे आगे लिखूँगा। इस काञ्जी में पारद का स्वेदन भी होता है, क्योंकि जितनी अम्ल व

क्षार वस्तुएँ हैं वे सब पारद में गुणदायक हैं यथा—"क्षारा मुखकरास्सर्वे सर्वेह्यम्लाः प्रबोधकाः" । इति ॥१।२।३।४।५।६॥

क्षारविधिः—

सप्तैव धातूनपि शोधयित्वा द्रव्यं द्रुतञ्चापि घनं वशिष्टम् ।
प्रज्वाल्य कोष्ठ्यां भसितं प्रकुर्यात्काष्ठानि यान्यत्र विदाहितानि
वनस्पतीनामथ चेतरासां संशुष्कदग्धत्वसुजातभस्म ।
नान्द्यां समानीय जलेन सर्वं दिनान्युपेक्ष्याणि च पञ्चषाणि
स्रुतं जलं निर्मलमाददीत पचेदयःश्लक्ष्णकटाहमध्ये ।
लोहस्य दर्व्या यतचित्तवैद्यः सञ्चालयेद् यावदिदं घनं स्यात्
स्वेदार्थं पारदस्येमे क्षारा वक्त्रकराः समे ।
निष्पद्यन्ते रुजार्त्तानां मन्दाग्नौ चातिपूजिताः ॥ ४ ॥
रसशालीयवस्तूनामुपयोगोपि जायते ।
वैद्यानां क्षेपणार्थं हि किञ्चिद्‌द्रव्यं न दृश्यते ॥ ५ ॥

क्षारविधि—

"क्षारा मुखकरास्सर्वे सर्वे ह्यम्लाः प्रबोधकाः" इस न्याय से पारद के स्वेदन संस्कार में क्षारों की बहुत आवश्यकता होती है । और हाजमाचूर्ण बनाने के लिये भी क्षार बहुत उपयोगी चीज़ है । अतः इसके बनाने का प्रकार लिखता हूँ—तक्र, गोमूत्र, काञ्जी, कुलथी, केले की जड़ का स्वरस, सूरण आदि जितने पदार्थ स्वर्णादि धातुओं के शोधने में आते हैं, उन पदार्थों के (शोधने के बाद) जो द्रुत गोमूत्र, क्वाथ आदि अवशिष्ट भाग रह जायं उनको फेंके नहीं किन्तु साफ लोहे के चिकने कड़ाहे में भरकर "कषायकरी भ्राष्ट्री" के ऊपर रख कर दर्वी (लोहे के बड़े कलछे) से चलाता जाय । कलछे से चलाने का अभिप्राय यह है कि—पेंदे में क्षार जम न जाय, नहीं तो निकालना मुशकिल

होगा। जब वे पदार्थ कुछ गाढ़े होजायं, तब कड़ाही को उतार कर सब-क्षार को किसी मिट्टी के पात्र में रखकर सुखादे। सूख जानेपर सम्पुट में रख कर वाराहपुट में आँच दे। कालापन निकल जायगा और सफेद क्षार रह जायगा। क्वाथ को छानने से जो किट्टभाग निकला है अथवा काञ्जी को छानने पर जो मसाला बचगया हो, या केला सूरण आदि के कन्द को कूटकर छानने पर जो कतवार बचगया है, जिसको वैद्य लोग फेंक दिया करते हैं; उन सबों को जुदा जुदा या इकट्ठा संग्रह कर के रसायनशाला की छतपर रखकर सुखा ले। जब सूख जाय तब उनको जलाकर भस्म बनाले। यदि कोई चीज ऐसी हो जो दियासलाई लगाने से नहीं जले जैसे—काञ्जी का मसाला, कुथली का अन्न आदि, उनको जब लकड़ियों की आँच से भट्ठी खूब निष्टप्त हो रही हो तब थोड़ा थोड़ा भड़बूजों की तरह झोंक-झोंककर जलाले। साथ में दो एक लकड़ी भी लगती रहे, जिनके सहारे से मसाला जलता रहे और अग्नि बुझे नहीं। इस मसाले के बीच में एक दो लोह अभ्रक आदि के सम्पुट भी रखदे। जब झोंकने से भट्ठी बिलकुल भर जाय तब लकड़ी लगाना बन्द करदे, और भट्ठी के दरवाजे को लोह के ढक्कन से बन्द कर दे। भट्ठी का मुख यदि कुछ खाली रहा हो तो उसको भी खूब मसाले से भरकर छोड़ दे। कम से कम आठ नौ रोज में भट्ठी ठंडी होगी। सब मसालों की भस्म तैयार हो जायगी और सम्पुट भी पककर तैय्यार हो जायँगे। इस प्रकार बनी हुई भस्म को नान्दी में भर कर रख छोड़े।

और भी आपामार्ग आदि जिन वनस्पतियों का क्षार बनाना हो उनको भी सुखा कर जिस प्रकार जलसकें जलाकर भस्म बनालें। रसायनशाला में हजारों रुपये की लकड़ियाँ जलती हैं उनकी भस्म को भी फेंके नहीं किन्तु जैसे और भस्म सुरक्षित रखी हैं वैसे ही इसको भी रखे। बाद जिस नान्दी में २ मन पानी अटता हो उसमें २० सेर भस्म डालकर ऊपर तक नान्दी के पानी भरदे और लकड़ी से सब राख को पानी में घोल दे। पाँच छः दिन तक उस नाँद को यों ही छोड़ दे, छू छा न करे। जब पानी खूब साफ निर्मल होजाय, तब उस क्षार वाली नाँद से एक दो हाथ नीचे खाली नाँद रखकर जहाँ तक गदला पानी नहीं हो, वहाँ तक

पुरवे से भर भर कर साफ पानी को खाली नाँद में डालता जाय और जब थोड़ा पानी रहने के कारण मट्टी आने की शङ्का हो, तब क्षारवाली नाँद को थोड़ी टेढ़ी कर के एक हाथ लम्बी कपड़े की चीर इसप्रकार लगा दे कि जिसमें चीर का आधा हिस्सा ऊपरवाली नाँद के पानी में डूबा रहे और दूसरा हिस्सा नीचेवाली नाँद में लटका रहे (जैसा चित्र में दिखाया गया है) । ऐसा करने से सब निर्मल पानी कपड़े के द्वारा टपक टपक कर नीचेवाली नाँद में आ जायगा । कतवार सब ऊपर की नाँद में रह जायगा । बाद उसी कतवार में बीस सेर पानी और डाल दे । अहोरात्र के बाद उस पानी को चीखकर देख ले, यदि खारा मालूम पड़े तो फिर पूर्ववत् टपका ले, इसीप्रकार सब भस्मों का निर्मल पानी निकाल ले । उस पानी को साफ कड़ाही में रखकर कषायकरी भ्राष्ट्री में पत्थर के कोयलों की अग्नि से जला ले । जलाने के समय कलछे से चलाता जाय, जिससे कड़ाही के पेंदे में क्षार जमे नहीं । बस यही क्षार बनाने की विधि है । यह वैद्य की मर्जी है चाहे सब राख को इकट्ठा करके क्षार बनावे, या पृथक् पृथक् बनावे । परन्तु पृथक् पृथक् बनाना अच्छा है, क्योंकि काञ्जी के मसाले का या काञ्जी के पानी का ऐसा उत्तम क्षार बनता है कि खाली खाने से भी बहुत स्वादिष्ट होता है और भूख लगाता है । यदि इन क्षारों के योग से वज्रक्षार, गन्धकवटी, लवणभास्कर, बाड़वानललवण, आदि चूर्ण बनाये जायँ तो रोगियों को मन्दाग्नि में बहुत आश्वासजनक होते हैं ।

पारद की बुभुक्षा-विधि में भी इन क्षारों के द्वारा पारद का स्वेदन अत्युत्तम होता है । ऐसा करने से रसायनशाला की कोई वस्तु फेंकनी नहीं पड़ती, बल्कि उत्तम उपयोग होता है । वैद्यों के यहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो बेकार समझकर फेंक दी जाय । १।२।३।४।५ ।

प्रतिसारणीय (ग्रन्थिभेदन) क्षारः—

सेटोन्मिता स्वर्जिरथो सुधापि द्विसेटिका तद्द्वयकुट्टनेन ।
चूर्णं विधायाथ निधाय नान्द्यां मणप्रमाणेन जलेन साकम् ।१

प्रतिसारणीय (ग्रन्थिभेदन) क्षार—

सुश्रुत सूत्रस्थान ग्यारहवें अध्याय में ग्रन्थि आदि को बहानेवाले प्रतिसारणीय और पाचनीय दो प्रकार के क्षार लिखे हैं, परन्तु उन औषधियों का संग्रह करना बहुत परिश्रम से साध्य है, इसलिये काम चलाने के लिये अपना अनुभूत प्रतिसारणीय नामक (प्लेग आदि रोगों की गाँठों को फोड़कर बहाने वाला) क्षार लिखता हूँ—

१ सेर लोटिया सज्जी, २ सेर बिना बुझाया हुआ चूना दोनों को कूटकर एक नांद में डाल दे और उसी नांद में एक मन पक्का पानी भर दे ॥ १ ॥

सञ्चीय दण्डेन निरावृते चोपेक्ष्येत देशे दिनपञ्चकं तत् ।
दिने दिने तत्परिचालयेच्च स्वच्छं जलं लोहकटाहमध्ये।२।

फिर डंडे से चूना, सज्जी और पानी तीनों को खूब मिला दे । परन्तु यह स्मरण रहे कि इसको हाथ से कभी न मिलावे, नहीं तो हाथ का चमड़ा उतर जायगा। फिर खुले हुए मैदान में इसको पाँच दिन तक छोड़ दे, जिसमें धूप और चन्द्रमा की चाँदनी इसपर पड़ती रहे। दिन में एक दो बार पाँच दिन तक डंडे से इसको चला दिया करे, जिससे नाँद के पेंदे में जम न जाय। बाद छठे दिन गंगाजल के माफिक नितरे हुए (थहराये हुए) निर्मल जल को दूसरी स्वच्छ लोहे की कढ़ाई में निकाल लेवे ॥२॥

निधाय चुल्ल्याञ्च पचेत पश्यन् सेटार्धशिष्टत्वमवेक्ष्य तत्र।
जलं रसोनस्य पलं ददीत चतुःपलञ्चान्ववतारयेत ॥३॥

इस कढ़ाई को भट्ठी पर चढ़ाकर पकावे, जब आध सेर मात्र पानी बाकी रहे तब इसमें लहसुन का स्वरस ४ तोला डाल दे और मन्दी २ आँच से पकाना शुरू करे। जब अन्दाज १६ तोले पानी रह जाय तब कढ़ाई को भट्ठी से उतार कर ठंढी कर ले ॥३॥

वर्णेन रक्तं मसृणं च तीक्ष्णं क्षारं भरेताथ च काचकूप्याम्।
ग्रन्थीनशेषांश्च भिनत्ति कुर्यात्कोथव्रणाँश्चापि कथावशेषान्।

बस यह प्रतिसारणीय क्षार बन गया। इसका रंग लाल हो जाता है, और यह बहुत चिकना होता है। जहाँ पर लग जायगा उस जगह तुरन्त घाव कर देगा। यदि थोड़ा भी लगाया जायगा तो फलक पैदा कर देगा। इस क्षार को शीशी में भर कर रख छोड़े। प्लेग की गाँठ या और फोड़े की गाँठ जहाँ पर शस्त्र लगाने की आवश्यकता हो उन सब गाँठों को फोड़ कर यह क्षार बहा देगा और उस जगह को काली कर देगा, जो कुछ समय (महीना पन्द्रह दिन) में स्वयं चमड़े के रंग में मिल जायगी। इसके लगाने पर मरीज़ को विशेष दुःख नहीं होता है। यदि रोगी उतना भी दुःख नहीं सह सके तो सौ बार धोया हुआ घी लगा देने से पीड़ा तुरन्त बन्द हो जाती है। जो घाव ऐसे सड़े हुए हों कि जिनका अच्छा होना बहुत मुशकिल है, उनके ऊपर लगा देने से भी उनको तत्काल जला देगा, परन्तु घाव में लगाने से कुछ अधिक पीड़ा मालूम होगी इसलिये इसमें कुछ पानी मिलाकर लगावे। जब घाव कमजोर पड़ जाय तब बिना ही पानी मिलाये थोड़ा २ लगावे ॥ ४ ॥

श्वेतञ्च कुष्ठं गजचर्म दद्रुन् क्षारः क्षिणोत्येष विलेपनेन।
देशञ्च कालं बलमातुरस्य समीक्ष्य कुर्यात्प्रतिसारयोगम्॥५॥

बवासीर के मस्से जो बाहर हों, अथवा शरीर में और जहाँ कहीं भी मस्से हों, या सफेद कुष्ट का कोई दाग हो या गजचर्म, दाद आदि कुछ भी हो, याने जिस जगह को साफ करना हो उसी जगह लेप कर देने से उतनी जगह को उपाड़ कर फेंक देगा और अपना घाव कर देगा। इस घाव के ऊपर गरम घी चुपड़ने से पीड़ा भी शान्त हो जायगी और घाव भी अच्छा हो जायगा। इस क्षार का स्वभाव गरम है इसलिये गरम देश, गरम काल, रोगी की पित्त प्रकृति को बचाकर इसका प्रयोग करे ॥५॥

पाचनीयक्षारः—

रसशालौषधीनाञ्च क्षारा भागाष्टकास्तथा ।
शुक्तिशम्बूकशंखानां गोमूत्रेषूषितात्मनाम् ॥१॥

पाचकक्षार—

रसायनशाला की काम में आई हुई काष्ठादिक औषधियों को जला कर जिनके क्षार बनाने की विधि पूर्व में लिख चुका हूँ, उन क्षारों के आठ भाग, और सीप, घुकला (घोंघा) शंख इनकी भस्म को चार दिन तक गोमूत्र में डालकर नितरे हुये जल को आग से कढ़ाई में पूर्व की तरह पका कर गाढ़ा कर ले ॥ १ ॥

चत्वारः क्षारभागाश्च द्वौभागौ प्रतिसारणात् ॥
त्रयस्ते मिलिताः क्षाराः पाचनीयतमा मताः ॥ २॥

इस क्षार के चार भाग, और प्रतिसारणीय क्षार के दो भाग ये तीनों क्षार मिलकर अत्यन्त पाचनीय होते हैं ॥ २ ॥

गुल्मप्लीहोदरव्याधीन्नाशयन्तीति पूजिताः ॥
अनिशं सेव्यमानास्तु बह्वनर्थकरा नृणाम् ॥३॥

गुल्म, प्लीहा आदि अनेक उदर व्याधियों को नाश करते हैं; चाहे इनको किसी चूर्ण के योग में दे या ऐसे ही जल में डालकर पिलावे । मात्रा इसकी चार रत्ती से दो मासे तक की बलाबल देख कर कल्पना करे । यद्यपि इस क्षार में बहुत गुण हैं तथापि बहुत दिन तक सेवन करने से नपुंसक आदि अनेक अनर्थों को पैदा करता है । इसलिये इस क्षार को बिना रोग के अधिक सेवन नहीं करे ॥ ३ ॥

अमृतपञ्चकम्—

शुण्ठी गुडूची खलनी वरी च पलङ्कषा चामृतपञ्चकं तत् ।
ताम्रादिधातावमृतीभवार्थंकषाययोगेनभिषक्प्रयुङ्क्ते॥१।

अमृतपञ्चक-

सोंठ, गिलोय, सफेद मूसली, शतावर और गोखरू इन पाँच चीजों को "अमृतपञ्चक" कहते हैं । इन पाँचों चीजों के क्वाथ की ताम्रादि धातुओं की भस्मों में तीन या सात भावना देकर गजपुट में फूकने से धातुओं का अमृतीकरण संस्कार होता है । जिससे धातुओं की भस्में अमृत के समान गुणकारक होती हैं ॥ १ ॥

मित्रपञ्चकम्-

माक्षिकं टङ्कणञ्चाज्यं गुञ्जा पञ्चमगुग्गुलुः ।
मृतस्वर्णादिधातूनां जीवनं मित्रपञ्चकम् ॥ १ ॥

मित्रपंचक-

शहद (मधु) चौकियासुहागा, घी, गुञ्जा (चिरमिठी, घुंमची) और भैंसा गूगल इन पाँचों को मित्रपञ्चक कहते हैं । वजन में जितनी धातु भस्म हो उतना ही मित्रपञ्चक लेना चाहिये । जैसे पाँच तोला सोने की भस्म हो तो एक एक तोला पाँचों चीजें लेकर सब को घोट ले, पश्चात् सम्पुट में रखकर गजपुट में फूँक कर देख ले । जो भस्म निरुत्थ (निर्ज्जीव) नहीं हुई होगी वह जी उठेगी अर्थात् फिर वही धातु रूप में हो जायगी (जिसकी भस्म की गई थी) । अतएव फिर मारण विधि से उपरोक्त धातु की भस्म कर ले, कारण कि जब तक बिलकुल निर्जीव न हो जाय तब तक उत्तम भस्म नहीं समझनी चाहिये । यद्यपि सजीव भस्म भी योगों में डालने से अथवा केवल उपयोग करने से गुण करती है, क्योंकि जिसका शास्त्र विधि से शोधन मारण किया है, वह गुणकारी क्यों नहीं होगी ? परन्तु निर्जीव भस्म अधिक गुण करती है । लोक में कहावत है कि-"सहत सुहागा घीव, ये धातुन के जीव" अर्थात् शहद, सुहागा, घी इन तीनों के योग से भी उत्थास्नु (सजीव) धातु जी उठती है, और अनुभव करके देखा भी गया है, तो यह बात सच निकली है । परन्तु शास्त्रकारों ने धातुओं को

जिलाने के लिये पाँच चीजें लिखी हैं। उसका यह अभिप्राय है कि यदि इन तीन चीजों से पूर्णरूपेण जीवित न हुई तो मित्रपञ्चक से पूर्ण रीति से अवश्य जी उठेगी, और दूसरा अभिप्राय यह भी है कि मित्रपञ्चक से जिला जिला कर धातुओं का मारण किया जायगा तो अधिक गुण वृद्धि होगी ॥ १ ॥

बिडविधिः—

मूलार्द्रवह्नीन् ज्वलने प्रदाह्य क्षारैर्गवां मूत्रकृतैश्च तेषाम् ।
शतं शतं भावितगन्धकोऽयं बिडो मतो जारणकर्मकारी॥१॥

बिडविधि-

१ मन मूली, १ मन अद्रक, (आदी) १ मन चित्रक तीनों को सुखा कर जला ले, उस भस्म को नाँद में डालकर दस सेर गो मूत्र भर दे। चार दिन के बाद "क्षारविधि" में कही हुई विधि के अनुसार निर्मल गोमूत्र को निकाल ले। बाद उसी क्षार मिश्रित गोमूत्र से सैकड़ों बार भावना देकर गन्धक को तैयार करले। इसी गन्धक को "बिड" कहते हैं। जब पारद में (चन्द्रोदय बनाने के लिये) स्वर्णग्रास देते हैं तब इस बिड के साथ घोटने से सुवर्ण पारद में शीघ्र पच जाता है ॥ १ ॥

यन्त्रोत्थापकसंदंशः—

फलकचतुष्टयजुष्टो बारंगद्वयदण्डसमाविष्टः ।
पुष्टो यन्त्रोत्थापनविधौ विधेयश्च संदंशः ॥ १ ॥

यन्त्रोत्थापक सँडसी—

भट्ठी में तीव्रतर अग्नि हो जाने पर यदि चन्द्रोदय आदि रसों के सम्पुट हटा नहीं लिये जायँगे तो वे सब जल कर नष्टभ्रष्ट हो जायँगे और उस अवस्था में हाथ से उठाना बन नहीं सकता है अतः यन्त्र उठाने के लिये "यन्त्रोत्थापक" संदंश बनाने का प्रकार लिखता हूँ।

एक लोहे की बड़ी मजबूत सँड़सी बनावे। जिसमें नीचे की ओर झुके हुए यन्त्र उठाने के लिये चार फलक (फना शाख) लगे रहें और जैसे सँड़सी के बीच में कील ठुकी रहती है उसी प्रकार मध्य में कील ठोंक दे तथा दो हाथ लम्बे पकड़ने के लिये दो डण्डे रहें। उन डण्डों के ऊपरी भाग को कुछ मोड़ देना चाहिये जिससे उठाने के समय हाथ से सँड़सी खसक न जाय। इस संदंश यन्त्र को "यन्त्रोत्थापक" संदंश कहते हैं (इसकी शकल चित्र में देखो) ॥ १ ॥

आकर्षकसंदंशः—

मध्यनिहितकीलो यो द्वाभ्यां युक्तश्च फलकाभ्याम् ।
परिमितवारंगाभ्यां धात्वाकृष्टौ स संदंशः ॥ १ ॥

आकर्षक (खैंचनेवाली) सँड़सी—

जिन वैद्यों ने धातुओं के शोधन निमित्त "शोधनार्थभ्राष्ट्री" नहीं बनाई है और दूसरी भट्ठी में रखकर धातुओं को शोधना चाहते हैं उनके सुभीते के लिये यह आकर्षक संदंश का प्रकार लिखा जाता है। लोहे की ऐसी सँड़सी बनावे जिसके बीच में कील जड़ी रहे, और दो फलक (जिनके द्वारा धातुओं के पत्र या निष्टप्त लोहे की कटोरी पकड़ी जायगी) उसमें लगे रहें। जितना बड़ा डंडा अपने को इष्ट हो जिसमें दूर खड़े होकर भी धातुओं को खैंच सकें, उतने बड़े दो डंडे लगावे। इस सँड़सी को "आकर्षक संदंश" कहते हैं। लुहार लोग ऐसी सँड़सी बनाया करते हैं जिससे निष्टप्त लोहपिण्ड को भट्ठी से निकालकर पीटा करते हैं, परन्तु उनकी सँड़सी के वारंग (पकड़ने के डंडे) बिलांद; डेढ़ बिलांद लम्बे रहते हैं और इस "आकर्षक संदंश" के वारंग दो ढाई हाथ से कम न होंगे। इस संदंश के द्वारा ताम्र पीतल के पत्रों को भट्ठी से निकाल कर शोधनीय तैलादि द्रव्य में बुझावेंगे, और जो चाँदी, सोना, राँगा, शीशा, काँसा, जस्ता आदि मृदु धातु हैं उनको लोहे की कटोरी में रखकर भट्ठी के अन्दर प्रविष्ट कर तपावेंगे और निष्टप्त होनेपर इसी संदंश से निकालकर तैलादि में बुझावेंगे ॥१॥

संपुटसंदंशः—

अर्द्धचन्द्राकृतिभ्याञ्च फलकाभ्यां समायुतः ।
सम्पुटोत्थापनाकृष्ट्योः शक्तः संदंशइष्यते ॥१॥

सम्पुट (रखने व उठाने की) सँड़सी—

सर्वार्थकरी भ्राष्टी में अग्नि प्रदीप्त होनेपर जब अभ्रक आदि धातुओं के चार पाँच सम्पुट रखने व निकालने की आवश्यकता पड़ती है तब इस सम्पुट संदंश से काम लिया जाता है । अतः उसके बनाने का प्रकार लिखता हूँ—लोहे की ऐसी सँड़सी बनावे जिसमें अर्ध चन्द्राकार के दो फलक हों, जैसे हंडी, बटलोई उठाने वाली सँड़सी में होते हैं । उसके डंडे लम्बे और मजबूत हों जिससे सम्पुट निकालने व रखने में वैद्य को अग्नि की ऊष्मा से पीड़ित न होना पड़े । इस सँड़सी को "सम्पुटसंदंश" कहते हैं ॥१॥

अग्न्याकर्षकदर्वी—

हस्तद्वयेन लोहस्य दण्डेन संयुताभवेत् ।
हस्तकाष्ठीयवारङ्गा दर्वीयं वह्निकर्षिणी ॥ १ ॥

अग्नि निकालनेवाला कलछा—

जब भट्ठी में अग्नि या राख अधिक इकट्ठी हो जाती है तब आँच पर्याप्त नहीं लगती है; अतः उसको निकालने के लिये "अग्न्यांकर्ष-कदर्वी" बनाने का प्रकार लिखता हूँ—एक बड़े कटोरे का कलछा बनावे, जिसमें दो हाथ लम्बा लोहे का मज़बूत डंडा रहे । उस डंडे में एक हाथ लम्बा काठ का डंडा लगा रहे । जिससे पकड़ने में हाथ जले नहीं । इस कलछे को "अग्न्याकर्षकदर्वी" कहते हैं ॥ १ ॥

प्रायः सभी यन्त्रादिकों के चित्र प्रारम्भ में ही दे दिये हैं जिससे किसी वैद्य को बनाने में व्यामोह (भ्रम) न हो । इसी प्रकार रसक्रिया में जिन जिन चीजों को आवश्यकता हो वैद्य स्वयं बुद्धिद्वारा कल्पना करके बना ले ।

इति परिभाषाप्रकरणम् ।

अथ पारद प्रकरणम्

पारदप्राधान्यम–

(लयक्रमः)

वनस्पतीनां लयधाम नागो नागस्य बंगं गतिरस्ति तस्य ।
ताम्रं लयस्थानमुषन्ति वृद्धास्ताम्रस्य तारं रजतस्य हेम ।१।
हेमापि सूते परिलीयते च जीर्णाभ्रसत्वेऽखिलसिद्धिशक्ते ।
भूवारितेजःपवनाभ्रजीवा लयं यथा यान्ति परात्मनीशे ।२।

पारद की प्रधानता–

(पारद में सर्व धातुओं के लय का क्रम)

वनस्पती (जड़ी बूटी) का लय सीसे में होता है। सीसे का रांगे में, रांगे का तांमे में, तांमे का चांदी में, चांदी का सोने में, सोने का पारे में लय होता है। जो पारा अभ्रक के सत्व को जीर्ण कर चुका हो वही पारा शरीर की दृढीकरणत्वादि शक्तियों को धारण करता है और सम्पूर्ण धातुओं को पचाने में समर्थ होता है। जैसे पृथ्वी जल में लीन होती है, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश जीव में, जीव ब्रह्म में लीन होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

स्थूला यथापूर्वमिमे पदार्थाः क्षित्यादयो यान्ति लयं परत्र ।
सूक्ष्मेऽन्तिमे ब्रह्मणि तद्वदेव काष्ठौषधाद्याः किल सूतराजे ।३।

अर्थात् जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ पूर्व पूर्व स्थूल होने के कारण उत्तरोत्तर जलादि में लीन होते हुए अन्तिम सूक्ष्म ब्रह्म में लीन होते हैं, इसी प्रकार काष्ठौषधादि उत्तरोत्तर सूक्ष्म नागादि में लीन होते हुए पारद में लीन हो जातीं हैं। उत्तरोत्तर सूक्ष्म होने में यह युक्ति है कि जैसे पृथ्वी की अपेक्षा जल सूक्ष्म है, क्योंकि मकान बनाना,

घूमना फिरना जैसा पृथ्वी पर कर सकते हैं वैसा जल पर नहीं कर सकते, तथा मिट्टी के घड़े में भरा हुआ जल, घड़े के बाहर के भाग को तर कर देता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जल पृथ्वी से सूक्ष्म है। जल से भी सूक्ष्म अग्नि है, क्योंकि बटलोई के जल को अग्नि गरम करती है परन्तु बिना बटलोई में अग्नि के घुसे जल गरम नहीं हो सकता। जिन छिद्रों द्वारा अग्नि बटलोई में घुसती है उन छिद्रों से बटलोई का जल तो नहीं चूता इसी से जाना जाता है कि अग्नि जल से भी सूक्ष्म है। वायु अग्नि से भी सूक्ष्म है, क्योंकि, अग्नि नेत्रों से दीख पड़ती है परन्तु वायु नहीं दीखती। दीखने वाली सब चीजें स्थूल हुआ करती हैं इसी से वायु को अग्नि से सूक्ष्म समझना चाहिये। वायु से भी सूक्ष्म आकाश है, क्योंकि वायु का स्पर्श होता है और आकाश का तो स्पर्श भी नहीं होता। जीवात्मा आकाश से भी सूक्ष्म है क्योंकि आकाश (पोल) के होने ही से हमलोगों को बैठने-उठने, घूमने-फिरने का अवकाश मिल रहा है। इसीसे निश्चय होता है कि आकाश कोई सूक्ष्म चीज है। परन्तु जीवात्मा को जानने के लिए तो कोई ऐसा भी साधन नहीं है, इसीलिये जीवात्मा आकाश से भी सूक्ष्म है। जीवात्मा से ब्रह्म सूक्ष्म है, क्योंकि "अहंसुखी अहंदुखी" इत्यादि प्रतीति जीवात्मा के मानने में प्रमाणभूत होती है, परन्तु ब्रह्म के जानने में तो ऐसा भी साधन नहीं मिलता। किन्तु श्रुति स्मृति अनुमान से ही ब्रह्म की सिद्धि करनी होती है। इससे सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सबसे सूक्ष्म है और सर्व पदार्थों का लय स्थान है। तैसे ही काष्ठादि औषधी तथा नागादि सर्व धातुओं से पारा सूक्ष्म है। इसमें भी युक्ति यह है कि जैसे काष्ठादि औषधियों से सीसा सूक्ष्म है, क्योंकि काष्ठादि १ सेर औषधी जिस पात्र में आवेगी उसी पात्र में सीसा ५ सेर आवेगा अथवा यों कहिये कि दस मिनट की अग्नि से काष्ठ औषधी जल भुन कर राख हो जायगी परंतु सीसा दस घंटे की अग्नि से भी भस्म नहीं हो सकता। इससे मालूम हुआ कि काष्ठादि औषधियों के परमाणु स्थूल और बहुत कोमल हैं। सीसे की अपेक्षा बंग के भी सूक्ष्म और कठिन (मजबूत) अवयव हैं, क्योंकि अग्नि के सम्बन्ध से जितना

जल्दी सीसा टिघलता है उतनी जल्दी रांगा नहीं द्रुत होता और तैलादिवर्ग में शोधने के समय पाँच सेर सीसे को द्रुत करके तैल में डालतें हैं तो डालते डालते ही जम जाता है। परन्तु रांगे को डालते हैं और कल्छी से हिलाते जाते हैं तो भी बहुत देर में जमता है। इसीसे मालूम होता है कि सीसे से रांगा सूक्ष्म और घन परमाणु वाला है। रांगे से भी तांबे के परमाणु सूक्ष्म और मजबूत हैं, क्योंकि रांगे की अपेक्षा ताँबा देर में गलता है और इसकी भस्म भी देर में होती है। तांबे की अपेक्षा चांदी के अवयव और भी सूक्ष्म और घन हैं, क्योंकि गंधकादि के योग से जितने पुट में ताम्र की निरुत्थ भस्म होती है उतने पुट में चांदी की भस्म निरुत्थ नहीं होती। इसी वास्ते मूल्य में भी बहुत तारतम्य देखा जाता है कि जितने द्रव्य में १ सेर चांदी आवेगी उतने द्रव्य में ताम्र कई सेर आ जावेगा, और रजत भस्म में ताम्र भस्म की अपेक्षा गुण भी अधिक है। इन्हीं कारणों से जाना जाता है, कि ताम्र से चांदी प्रभावशाली वस्तु है। चांदी से भी सुवर्ण के अवयव बहुत सूक्ष्म और मजबूत हैं, क्योंकि नाग, बंग, ताम्र, चांदी, इन धातुओं की बिना किसी औषधी के योग के कुछ काल तक अग्नि लगाने से भस्म हो सकती है, परन्तु सुवर्ण में सौ मन लकड़ी की आँच देने से भी बिना किसी औषधी के योग से भस्म नहीं हो सकती। इसी वास्ते नैयायिक लोग कहते हैं कि सुवर्ण पार्थिव पदार्थ नहीं है, किन्तु तेजः पदार्थ है, क्योंकि "अत्यन्तानलसंयोगेऽपिअनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्" अर्थात् बहुत अग्नि लगाने पर भी सुवर्ण की द्रुति का उच्छेद (नाश) नहीं हो सकता। यह गुण अन्य धातु में नहीं देखा जाता। इसी वास्ते सुवर्ण पार्थिव पदार्थ नहीं है किन्तु तेजः पदार्थ है। इसमें निघंटुकार का भी मत है कि—

"मृदःकोटिगुणं स्वर्णं स्वर्णात्कोटि गुणो मणिः। मणेः कोटिगुणो बाणो बाणात्कोटिगुणो रसः ॥ रसात्परतरं किञ्चिन्न भूतं न भविष्यति" अर्थात् निघण्टुकार का यह भाव है कि—समस्त वनस्पति और नाग से लेकर चांदी पर्यन्त (सुवर्ण को छोड़ कर सब धातु)

मिट्टी हैं। क्योंकि बिना किसी औषधि के योग से भी निरन्तर अग्नि मात्र पाकर वे सब मिट्टी (भस्म) हो जाती हैं, उन सबों से कोटि गुण अधिक सुवर्ण है। सुवर्ण से भी कोटि गुण अधिक मणि (हीरा वगैरह) हैं। हीरा से भी कोटिगुण अधिक बाण (इन्द्रवज्र यानी बिजली का लोह)है। बाण से भी कोटिगुण अधिक पारद है। पारद से अधिक गुणवाली वस्तु ब्रह्मा की सृष्टि में आज तक कोई न पैदा हुई और न होगी। इस उदाहरण में सब धातुओं को मिट्टी बतलाने से और सुवर्ण को सबसे कोटि गुण अधिक बतलाने से, सुवर्ण में सबसे अधिक विलक्षणता (तैजसत्व) सिद्ध हुई। दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण यह भी है कि पारद में सर्व धातु तैरती हैं परन्तु सुवर्ण डूब जाता है। इससे भी सुवर्ण में विलक्षणता सिद्ध हुई। इस सन्दर्भाटोप से यह सिद्ध हुआ कि चांदी से भी सुवर्ण सूक्ष्मावयव और घनावयव है। इसीलिये चांदी से सुवर्ण का मूल्य और गुण भी कहीं अधिक है। सुवर्ण से भी अधिक सूक्ष्म पारद है, क्योंकि जिस धातु को अग्नि पर द्रुत करके उसमें पारा डाल दिया जाय तो सभी धातुओं की बहुत मृदु कीचड़ सी पिट्ठी बन जाती है। यदि किसी धातु को गला कर उसमें सुवर्ण डाला जावे तो वे धातु सुवर्ण योग से पिट्ठी के आकार में नहीं आवेंगी। दूसरा प्रमाण यह भी है कि अग्नि के संयोग से पारद दृष्टि पथ में नहीं आकर उड़ जाता है, इत्यादि प्रमाणों से ब्रह्म के तुल्य पारद सबसे सूक्ष्म सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

लिखन्तएतं मुनिपुंगवाः क्रमं ह्यभिप्रयन्तीत्यनुपानबुद्धये।
पाठानुपूर्व्याखलु पूर्वतोऽग्रिमं सूक्ष्मं च वस्तु प्रबलंचकर्मणि।४।

इस लयक्रम के लिखने का मुनिगणों का यह अभिप्राय है कि पाठ क्रम के अनुसार प्रथम कही हुई वस्तु से अग्रिम वस्तु सूक्ष्म है और चिकित्सा कर्म में भी अधिक उपयोगी है और पूर्व पूर्व वस्तु उत्तरोत्तर वस्तु के प्रति अनुपान (सहायक) है। जैसे जहाँ पर काष्ठ औषधियों से काम नहीं निकले, वहाँ पर काष्ठ औषधियों के अनुपान से नागभस्म का प्रयोग करे। इतने से यदि काम न चले

तो नाग से उग्रवीर्य वंग का प्रयोग करे। इसी क्रम से स्वर्ण को प्रधान औषधी बनाकर नागादि सर्व भस्मों के योग से तथा काष्ठ औषधियों के रस की भावना देकर वटी बना लेवे। इस उदाहरण में प्रधान औषधी सुवर्ण भस्म समझी जावेगी, और अन्य धातुओं की भस्में तथा तत्तद्रोगहर औषधियों के रस उस गुण के पोषक (अनुपान) होंगे। जहाँ यह समझा जाता है कि रोग बहुत कष्टसाध्य है, वहाँ पारद-भस्म, चन्द्रोदय आदि को प्रधान औषधी बनाकर अन्य धातुओं की भस्में तथा काष्ठ औषधियों के काथ आदि तद्गुण पोषक बनाये जाते हैं। बस इसी युक्ति से देश, काल, प्रकृति, रोग, औषधियों के बलाबल देखकर रसायनाचार्यों ने हजारों रस बनाये हैं। जिनसे सब रोगियों के प्राण बचते हैं। आजकल के वैद्य भी रोगियों की चिकित्सा करने के समय अनेक प्रकार की कल्पनाओं से रोगियों का उपकार करते हैं अर्थात् प्रधान औषधी अपने पास से देकर तदुपयोगी काष्ठ औषधियों के काथ अवलेह चूर्ण आसव अरिष्ट आदि का अनुपान बतला देते हैं। जो रोगी काथ आदि के झंझट को नहीं पसन्द करता है तब उन्हीं काथों की भावना देकर औषधी बना देते हैं। जब केवल खाने की औषधी से काम नहीं चलता तब मर्दनोपयोगी उन्हीं औषधियों के योग से तेल, घृत तैयार कर देते हैं, इससे भी अधिक दोष समझने पर स्वेदन (बफारा) देने के लिये उन्हीं औषधियों का उपयोग करते हैं और कोष्ठ शुद्ध्यर्थ वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, नस्य, कर्म में प्रवृत्त होते हैं। जैसा कि चरक में लिखा है कि—"स्नेहस्वेदोपपादनैः पञ्चकर्माणि कुर्वीत ॥४॥

ब्रह्मेव सूतस्सकलां त्रिलोकीं प्रसूय तस्यां विनिमज्जतीव।
तस्याः प्रकृत्या उपरागभोगैः शुभाशुभं सर्गमिव प्रसूते॥५॥

"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इत्यादि श्रुतिप्रामाण्य से जैसे ब्रह्म प्रकृति के सम्बन्ध से शुभाशुभात्मक जगत् को पैदा करके और उसी में व्यापक रूप से प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार "रसो वै सः" इत्यादि श्रुति प्रामाण्य से तथा "दोषहीनो भवेद्ब्रह्मा मूर्छितस्तु जनार्दनः।

मारितो रुद्ररूपी स्याद् बद्धः साक्षात्सदाशिवः" इत्यादि त्रिकालज्ञ मुनि-वाक्यों से ब्रह्मात्मक, शिववीर्य पारद जगज्जात को पैदा करके और व्यापक रूप से उसी में प्रविष्ट होकर रहता है अर्थात् जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें पारद न हो ॥ ५ ॥

तद्व्यापितास्तम्भमुखेऽनुभूता प्रह्लादभक्तादिकथा विदद्भिः
अस्यापि चाण्डाभ्र मुखाद् विकृष्टिर्विधीयते विज्ञजनैःप्रयोगैः

जैसे प्रह्लाद आदि भक्तों के ऊपर संकट के समय सर्व व्यापक परमात्मा स्तम्भ में नृसिंहरूप से प्रकट हुए थे । यह ब्रह्म की व्यापकता सभी लोगों को अनुभूत है जिन्होंने भागवतादि सच्छास्त्रों का अध्ययन एवं मनन किया है । आधुनिक विज्ञ लोग भी मुर्गी के अण्डे, अभ्रक, हरताल आदि से पारद को निकालते हैं इससे भी पारद की व्यापकता सिद्ध हुई । ब्रह्म के साथ पारद का साम्य दिखाने के लिये भी पूर्वाचार्यों ने लयक्रम को लिखा है ॥ ६ ॥

बद्धोऽपिमुक्तान्विदधातिजन्तूनमृतोऽ-
मृतान्मूर्छितउत्थितान्यः ।
सूतेन्द्रतुल्यः परमेष्ठिसृष्टौ दृष्टः
श्रुतः केन कदा पदार्थः ? ॥ १ ॥

जो पारद आप बद्ध होकर अन्य जीवों को मुक्त करता है, तथा आप मृत (भस्म) होकर अन्य जन्तुओं को अमृत (जीवित) करता है, और आप मूर्च्छित (चन्द्रोदयादि स्वरूपापन्न) होकर अन्य जीवों को उठाता (सन्निपात आदि मूर्च्छा से जगाता) है । ऐसा पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि में किसने कब देखा सुना है ? अर्थात् "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुश्च शृणोत्यकर्णः" इत्यादि श्रुतिसिद्ध ब्रह्म की तरह पारद की निराली ही महिमा है ॥ १ ॥

पारदे यावती शक्ती रोगनिर्मूलनक्षमा ।
तावन्तो नाशते रोगा वातपित्तकफोद्भवाः ॥ २ ॥

हरेर्नाम्नो यथा शक्तिर्यावती पापनाशिनी ।
तावत्पापन्तु पापीयान् कर्तुमीष्टे न कश्चन ॥ ३ ॥

जितने रोग दूर करने की शक्ति पारद में है उतने रोग वातपित्त कफ से उत्पन्न ही कहाँ होते हैं ? जैसे परमात्मा के नाम में जितनी पाप नाशक शक्ति है उतने पाप महापापी से भी कहाँ बन पड़ते हैं ? ॥ २ ॥ ३ ॥

अल्पास्य मात्रा त्वरितं निरस्येद्वि-
नाऽरुचिं साध्यमथाप्यसाध्यम् ।
रोगं ततो भिन्न गुणौषधिभ्योऽ-
धिकः स सूतो नरदेव पूज्यः ॥ ४ ॥

पारद की अल्प मात्रा (चन्द्रोदयादि) अरुचि को पैदा नहीं करके साध्य रोग अथवा असाध्य रोग (हैजा सन्निपात आदि) को बहुत शीघ्र नष्ट कर देती है । उस पारद के कहे हुए गुणों से भिन्न गुणवाली (अधिक मात्रा वाली, साध्य रोगों ही में चलने वाली, कटुकषाय आदि रसों के योग से अरुचि पैदा करने वाली, तथा कुछ काल में असर करने वाली) काष्ठ औषधियों से कहीं बढ़कर, नर तथा देवों से पूज्य पारद है ॥ ४ ॥

स्वीयानुभूत्या बहुशास्त्रमानैर्युक्तिप्रमाणैर्निरणायि चेदम् ।
नास्त्यौषधं पारदमन्तरेण ह्यासन्नमृत्यूनपि चोद्धरेद्यत् ॥ ५ ॥

मैंने अपने अनुभव से तथा शास्त्र प्रमाणों से और युक्तियों के बल से यह निर्णय किया है कि पारद के समान ऐसी औषधी जगत में नहीं है जो कि उपस्थित मरण प्राणियों का भी उद्धार करे ॥ ५ ॥

अबले बलमादध्यात् क्षीणे वा धातुसञ्चयम् ।
जरारोगाब्धिमग्नानां वहित्रं पारदो मतः ॥ ६ ॥

पारद निर्बल पुरुषों को बलवान करने वाला रक्त आदि से क्षीण

पुरुषों के धातुओं को पूरा करने वाला तथा वृद्धावस्था और रोग रूपी समुद्र में डूबते प्राणियों का उद्धार करने के लिये जहाज के समान है ॥६॥

लयप्रकारः—

काष्ठौषधीनां प्रविधाय सम्यक् क्वाथं सुशुद्धे भुजगेऽग्नितप्ते ।
संमिल्य लीनेऽथ हिरण्यरेतोयोगेन पौनःपुनिके कषाये ॥१॥
संशोधयेन्नागमथ स्ववर्गे दग्धावशिष्टं भसितञ्च वह्नौ ।
निष्टप्य दद्यान्नवसादरस्य कल्कं गुडस्येह च धातुकृष्ट्यै ॥२॥
पुनः पुनश्चैवमथास्य शुद्धिन्तावद्विदध्यादवधानचेताः ।
यावद्भवेदष्टमभागशिष्टो विशिष्टरूपः खलु नागधातुः ॥३॥

रीत्याऽनया वङ्गमुखांश्च धातून् नीत्वा
ऽवशेषं ननु नागतुल्यम् ।
तुर्य्योंऽशको देयतयोत्तरस्मिन् धातौ
मतो मे परिलीनतायै ॥ ४ ॥

कृत्वाऽथसूतस्यबुभिक्षितक्रियां
विषादियोगेन ततोऽभ्रसत्वकम् ।
विडस्ययोगेन सुजीर्यतोऽस्यत:
स्वकीय पक्षांश्च सदाशिवात्मनः ।

ग्रासत्वमायाति सुवर्णधातौ प्रलीननागादिसमस्तधातौ ।
समाधिभाजोऽमृतरूपतेव सर्वौषधीनाममृतप्रदत्वम् ॥५॥६

सब धातुओं को पारे में लय करने की रीति—

ऊपर जो हमने लयक्रम लिखा है उसका इतना विस्तृत लेख तो कहीं नहीं मिलता है परन्तु जो बीजभूत लेख रसायन शास्त्रों में मिलता है कि "काष्ठौषध्योनागे नागोवङ्गेऽथवङ्गमपि शुल्वे शुल्वन्तारे

तारंकनके कनकञ्च लीयते सूते। अमृतत्त्वं हि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः"। इससे इतनी बातें ध्वनित हो जाती हैं जितनी हम लिख चुके हैं, परन्तु किस प्रकार से सब धातुओं का पारे में लय होता है इसका बीज मुझे कहीं नहीं मिला, और इस विषय में बहुत से वैद्यों से पूछा भी गया था परन्तु वहाँ से भी कोई सन्तोषदायक उत्तर नहीं मिला। "बहुरत्ना वसुन्धरा" इस न्याय से कोई वैद्य ऐसे होंगे भी जिनको यह सब विषय साक्षात्कारेण परिचित होगा, परन्तु उस महात्मा से मुझे भेट नहीं हुई इसलिये इस लयक्रम की रीति मैं अपने ज्ञानानुसार लिखता हूँ—

जिस शुद्धि को मैं धातुशोधन प्रकरण में लिखूँगा उस शुद्धि के अनुसार नाग (सीसा) को शुद्ध कर ले, उस सीसे को कढ़ाई में डाल कर काष्ठ औषधियों के काथ को डालता रहे और अग्नि के योग से सुखाता जावे, इस प्रकार जब वह समस्त औषधियों का काथ निःशेष हो जावे तब उस सीसे में काष्ठ औषधियों का लय हुआ समझे। फिर उस सीसे को तैलादिवर्ग में (तैलतक्रेगवां मूत्रे इत्यादि जो कहा जायगा) तपा - तपा कर बुझाता जाय, जलने से जो सीसे का वजनदार किट्ट बचे उसको इकट्ठा रखता जाय, इस प्रकार शुद्धि करते २ जब एक सेर सीसे का आधपाव सीसा रह जावे और तीनपाव के अन्दाज किट्ट बचे, उस किट्ट को भी कढ़ाई में डालकर सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री में अथवा बड़े दमचूल्हे में सुलगे हुए पत्थर के कोयलों के ऊपर रखकर खूब निष्टप्त (अग्नि के सदृशलाल) कर ले। उस किट्ट में छटाँक नवसादर और छटाँक गुड़ के बने हुए कल्क को डालकर कलछी से चलावे। ऐसा करने से उस किट्ट से आध सेर, डेढ़ पाव सीसा और निकल आवेगा, तब फिर पहिले बचे हुए सीसे को और किट्ट से निकाले हुए सीसे को, मिलाकर पूर्व की तरह फिर शोधना शुरू करे, और पूर्ववत् जो २ किट्ट बचता जाय उसको संग्रह करता जाय, फिर उस किट्ट में से नवसादर और गुड़ के योग से पूर्ववत् सीसे को निकालता जाय। इस प्रकार जब एक सेर सीसे का आध-

पाव मात्र सीसा रह जाय और बचे हुए किट्ट से नवसादर व गुड़ डालने पर सीसा नहीं निकले, तब उस बिना वजन वाले किट्ट को भी फेंक न दे, किन्तु संग्रह करके रख छोड़े ॥१॥२॥३॥

इसी प्रकार चार सेर बंग की शुद्धि करते २ तथा जले हुए किट्ट से नवसादर और गुड़ के योग से बंग को निकालते २ अष्टमांश (आधसेर मात्र) शेष रह जाय, तब उसमें उस आधपाव सीसे को भी मिला कर नाग के मारक (पीपल की छाल के क्वाथ आदि) में फिर पूर्ववत् शोधना प्रारम्भ करे। जब आधपाव मात्र बंग शेष रहे तब चार सेर ताम्र को शोधे। इसी प्रकार वह भी जब आधसेर मात्र रह जाय तब उसमें उस आधपाव बंग (जिसमें चौथाई सीसा लीन हो चुका है) को मिलाकर बंग के मारक (अजवायन आदि के काथ) में शोधना आरम्भ करे जब ताँवा भी आधपाव रह जाय, तब चार सेर चांदी को शोधना आरंभ करे जब वह भी शोधते २ पूर्व की तरह आधसेर रह जाय तब उसमें उस आधपाव ताँबे (जिसमें चौथाई बंग लीन हो चुका है) को मिलाकर फिर उसको ताम्र के मारकवर्ग (जमालगोटा एरण्ड के काथ आदि) में शोधन आरंभ करे, परन्तु यह वैद्य को सर्वदा स्मरण रहे कि नवसादर और गुड़ के कल्क के द्वारा किट्ट से पूर्ववत् धातु को निकालता रहे। जब शोधते २ चाँदी आधपाव मात्र शेष रहे तब चार सेर सुवर्ण की शुद्धि आरंभ करे, और जब पूर्ववत् वह भी शोधते २ आध सेर मात्र अवशिष्ट रहे तब उसमें उस चाँदी (जिसमें चौथाई ताँबा लीन हो चुका है) को मिलाकर चाँदी के मारकवर्ग (अमरबेल नकछिकनी आदि के स्वरस) में शोधन आरंभ करे। चाँदी के सम्बन्ध से सुवर्ण काला पड़ जाता है जब वह शोधते २ अपने रंग में आ जाय तब निश्चय करले कि अब चांदी इसमें लीन हो गई, और नाग आदि सब धातुओं का गुण इसमें प्रविष्ट हो गया है, तब उस सुवर्ण को तौल कर देखले जहां तक आध पाव रहे वहां तक बराबर शुद्धि करता रहे, फिर वक्ष्यमाण (जिसको पारदबुभुक्षाविधि में कहेंगे) विधि के अनुसार पारद को बुभुक्षित करके और उसमें अभ्रक सत्त्व को बिडयोग से जारित करके

बद्ध (छिन्नपक्ष) करले, क्योंकि "नाधःपतति न चोर्द्धम्" इत्यादि रसहृदय के प्रमाण से ग्रसिताभ्रकसत्त्वपारद बद्ध (सदा शिवरूप) हो जाता है। उस आधसेर बद्धपारद में उस आधपाव सुवर्ण (जिसमें चौथाई चांदी लीन हो चुकी है) को डालकर घोटे, इस रीति से पारद में लीन हुई सब धातु अमृत स्वरूप हो जाती हैं। जैसे काम, क्रोध आदि से रहित और संचित कर्म तथा प्रारब्ध कर्म मूलक पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग कर और बुद्धि की वृत्तिरूप सत्त्व पुरुषान्यताख्याति को भी निरुद्ध कर "ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्" इत्यादि न्याय से योगी लोग सदाशिव [ब्रह्म] में लीन होते हैं। इस प्रकार उस पारद में सब धातुओं के लय करने में मैं एक लक्ष रुपये का व्यय और दो - तीन वर्ष का परिश्रम समझता हूँ, इस लिये इस क्रिया को मैं साक्षात्कार नहीं कर सका, परन्तु विचार दृष्टि से मैं जानता हूँ कि इस रीति से यदि क्रिया आरम्भ की जाय तो संभवतः सिद्धि हो सकेगी। आगे वैद्य लोगों से प्रार्थना है कि सत्यासत्य का निर्णय कर लेवें, शङ्करजी की दया होगी तो मैं भी उद्योग करके वैद्यों की सेवा में उपस्थित करूंगा।

उपरोक्त बिना वजनदार सब धातुओं का जो किट्ट संगृहीत है, उसको घृतकुमारी के रस में घोट कर गजपुट में फूकले और उसे रोगोपयोगी अनुपान के साथ व्यवहार में लावे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

पारदशुद्धि प्रथमप्रकारः—

रक्तेष्टकाधूलिमहानसीयधूमौ निशोर्णाभासितंसुधाच ।
समानि पञ्च द्विगुणानि सूताज्जम्बीरपानीययुतानि खल्वे १
दिनत्रयं वा दिनमेकमेव सम्मर्द्य सूतस्य करोतु शुद्धिम् ।
खट्वाङ्गयन्त्रे विनिधाय सूतं यामाग्निनोत्थापयतु क्रियाहम् २

पारदशुद्धि का प्रथम प्रकार—

पारद में नागादि दोष बहुत से रहते हैं उन दोषों के बिना निकाले

दुष्ट पारद को काम में लाने से "सदोषो भस्मितो येन योजितो योगकर्मणि स भिषक् पतते नरकं यावच्चन्द्रदिवाकरौ" इत्यादि शास्त्रवचनानुसार वैद्य को महापाप भाजन होना पड़ता है। इस लिये उक्त दोषों को दूर करने के हेतु पारद शुद्धि का प्रकार लिखता हूँ—लाल ईंट का चूर्ण व जिस घर में रसोई होती है उस घर में लगे हुआ धुएँ का कज्जल, हलदी, ऊन की भस्म व बिना बुझाया हुआ पत्थर का चूना इन पांचो चीजों को समान भाग लेवे, और सबसे आधा पारा लेवे। आध-आध पाव पांचो चीज लेने से ढाईपाव वजन हुआ, इसमें सवापाव पारा डाले और जंबीरी नीबू के रस के साथ (अथवा जम्बीरी नीबू न मिले तो कागजी या बिजौरा नीबू के रसके साथ) तीन दिन तक अथवा एक दिन तकही घोट कर डमरूयन्त्र में रखकर एक पहर की आँच दे। पश्चात् शीतल होने पर पारद को निकाल ले। यह पारद परम विशुद्ध होने से सब काम के योग्य है, अर्थात् चन्द्रोदय मकरध्वज को छोड़ कर स्वर्णसिन्दूर, रससिन्दूर, तालसिंदूर, मल्लसिन्दूर, विषसिन्दूर, कर्पूरसिन्दूर, रसकर्पूर, आदि सब ही औषधियों में इस पारद को ले सकते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

पारदशुद्धि द्वितीयप्रकारः—

लशुनस्य रसेनापि केवलेन विशुध्यति ॥
मर्दनात्पटुना सूतः परितप्ते च खल्वके ॥१॥

पारदशुद्धि का दूसरा प्रकार—

पहले जमीन में एक गढा खोद कर उसमें सूखी हुई बकरी की मेंगनी (विष्ठा) डाल दे और उनमें आँच लगादे, जब निर्धूम हो जाय तब लोह या पत्थर का खरल उस पर रखकर उसमें एक सेर पारद व एक पाव लशुन का स्वरस भर कर धीरे धीरे घोटे। परन्तु यह स्मरण रहे कि पत्थर का खरल इतना गर्म न होने पावे जिससे फूट जाय, जब अधिक गर्म हो जाय तब निकाल कर जमीन पर रखकर घोटे। इसी प्रकार प्रतिदिन घोटे, जब एक सेर पारद में एक सेर स्वरस डाल दिया जाय और घोटते-घोटते इतना चिकना हो जाय कि घोटने में न आवे तब

उसमें आध सेर सैंधव लवण डाल दे, लवण के डालते ही रस पतला हो जायगा फिर रोज-रोज खरल को गर्म भी करता जाय और घोटता जाय नमक डालने के बाद रस डालने की आवश्यकता नहीं है । अग्नि के संबन्ध से रस गाढ़ा पड़कर खरल में चिपक जाय तो चाकू से खुरच-खुरच कर घोटे, इस प्रकार जब एक महीना पूरा हो जाय तब डमरूयन्त्र में रखकर बहुत मन्दाग्नि से उड़ावे । बहुत मन्दाग्नि देने का अभिप्राय यह है कि—रस की तराई से धुआँ बहुत उठेगा तो यन्त्र के फूटने की शङ्का रहेगी, यदि ऐसा करने पर भी कुछ तीव्राग्नि के कारण यन्त्र फूट जाय तो तुरन्त उठा कर जमीन में रखदे, ठंढा होने पर सब कल्क को खुरच कर खरल में डाल कर खूब घोटले । सब की धूली सी हो जायगी तब दो बार फिर भी डमरू-यन्त्र में रख कर उड़ाले । यह पारद भी सब काम के योग्य हो जाता है ॥ १ ॥

हिङ्गुलात् पारदनिस्सारणविधिः—

सर्वार्थकर्याःखलु कोष्ठिकाया लोहस्य दण्डेषु चतुर्षु जालीम् ।
तां प्रस्तरेङ्गालवतींददीत मुखोपरिष्टान्ननु कोष्ठिकायाः ॥१
चुल्लीम्पिधानेन युताश्च वैद्यो हण्डीमितच्छिद्रवता सता तु ।
नैम्बूकपानीयसुभावितेन सूतोत्थितौ हिङ्गुलकेन युक्तम् ॥२

सत्कं मुखाभ्यान्ननु हैण्डिकाभ्यां
विनिर्मितं शास्त्रविधानतस्तत् ।
यन्त्रं डमर्वाख्यमिहैव निछिद्र
यतो न भीतिः स्फुटनात्कदाचित् ॥३॥
ज्वाला च वह्नेरपि रुद्धमार्गा
मुद्राम्प्रदग्धुन्न हि शक्तिभाक्स्यात् ।

नैवापि काचित्परितापशङ्का
कर्म्मप्रवृत्तस्य भिषग्वरस्य ॥ ४ ॥
आवापोद्वापनाभ्याञ्च मया सम्यक् परीक्षितः।
निर्णीतो यस्सुखोपायः स भिषक्षु निवेदितः ॥५॥

हिङ्गुल से पारद निकालने की विधि–

एक सेर हिङ्गुल को नीबू के रस में घोट कर सुखा ले, कुछ तराई रह जाय तो धूप में रख दे, चौमासे में धूप का अभाव हो तो सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री के पास रखकर तराई निकाल दे, फिर दो हण्डियों के मुखों को चिकने पत्थर पर पानी डाल-डाल कर इतने घिसले कि दोनों का मुख ठीक मिल जाय, कहीं भी दर्ज नहीं रहे। कुछ भी अवकाश पाने से पारा निकल जाता है। उन दोनों हण्डियों पर तीन-तीन कपरमिट्टी करदे, जब दोनों हण्डियाँ खूब सूख जायँ तब एक हण्डी में हिङ्गुल भर कर दोनों हण्डियों के मुख को जोड़कर चिकनी मिट्टी व बालूरेता इन दोनों से बनी हुई कीच से हण्डियों के मुख पर मुद्रा करके तीन चार कपरमिट्टी उसी मुद्रा के ऊपर कर दे। जब मुद्रा बिलकुल सूख जाय तब सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री के ऊपर एक वितस्ति (बिलांद) ऊँचा लोहे का चूल्हा इतना बड़ा रखे कि जो सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री के सम्पूर्ण मुख पर आ जाय। उस चूल्हे के ऊपर एक लोहे का मजबूत पिधान (ढक्कन) रखदे, उस ढक्कन में इतना बड़ा छिद्र होना चाहिये कि जिसमें डमरूयन्त्र वाली हण्डी का सम्पूर्ण पेंदा अच्छी तरह आ जाय, परन्तु वह गोल छिद्र इतना बड़ा न हो कि जिससे डमरूयन्त्र भ्राष्ट्री में गिर जाय (इस ढक्कन को चित्र में देखो) फिर भ्राष्ट्री के मध्य भाग में लगाये हुए चारों लोहे के डंडों के ऊपर लोहजाली रखकर पत्थर के दस सेर कोयले भरदे और भ्राष्ट्री के दोनों दरवाजों में बबूल की दो-दो लकड़ियों की आंच दे। जब कोयले खूब सुलग जाँय तब लोहे के चूल्हे के

दरवाजे को भी लोहे के ढक्कन से बन्द करदे और डमरूयन्त्र की ऊपर वाली हंडी पर भीगे हुए कपड़े को बीस तह करके रखदे। जब कपड़ा सूख जाय तब फिर भिगोता रहे। ऐसा करने से चार पाँच घंटे में सब पारा ऊपर की हंडी में उड़कर आ लगेगा भट्ठी के मुख पर बिलाँद भर ऊँचा चूल्हा रखने का अभिप्राय यह है कि—पत्थर के कोयलों से डमरूयन्त्र एक बिलाँद ऊँचे पर रहे, यदि डमरूयन्त्र को पत्थर के कोयलों पर ही रख दिया जाता तो उतनी तीव्रतम अग्नि डमरूयन्त्र को अवश्य फोड़ देती, दूसरा अभिप्राय यह भी है कि—चूल्हे से अग्नि के वेग को रुक जाने से वैद्य को अधिक ताप नहीं लगेगा। चूल्हे पर ढक्कन रखने का अभिप्राय यह है कि अग्नि की लपट हंडी की मुख मुद्रा तक नहीं आ सके और पेंदे में ही लगे। यदि चूल्हे के मुख पर ढक्कन नहीं देते और चूल्हे के कड़ों पर ही डमरूयन्त्र को रख देते तो न रुकी हुई अग्नि की लपट हंडी की मुख मुद्रा को जलाकर दर्ज को शिथिल कर देती तो पारा सब उड़ जाता। डमरूयन्त्र के ऊपर भीगा हुआ कपड़ा रखने का अभिप्राय यह है कि पारा उड़कर ठंढी जगह पर आकर लगे इधर उधर न जावे, दूसरा अभिप्राय यह भी है कि—अग्नि से निष्टप्त पारद को ठंढ मिलने से उसमें अधिक गुण आवे। इस विधि से पारा निकालने में यह भी एक फल है कि—भट्ठी के अन्दर लकड़ियों के कोयलों व लकड़ियों तथा पत्थर के कोयलों की इतनी गरमी होती है कि भट्ठी के नीचे के भाग में अभ्रक लोहादि के तीन चार संपुट भी रख दिये जाँय तो पककर उत्तम तैय्यार हो जायँगे। यदि भट्ठी के ऊपर चूल्हा नहीं रक्खा जाता और पत्थर के कोयले भी नहीं भरे जाते किन्तु केवल लोहजाली पर ही डमरूयन्त्र रख कर भट्ठी के दोनों दरवाजों में लकड़ियों की ही आँच लगाई जाती तो खर्च भी अधिक होता, और वैद्य को लकड़ी लगाने के लिये भट्ठी के पास बैठना भी पड़ता, तथा मुद्रा की कपड़मिट्टी जल जाने के कारण मुद्रा शिथिल हो जाने से पारे के बाहर निकल जाने की भी शङ्का थी। डमरूयन्त्र में तीन घंटे आँच लग जाने के बाद चूल्हे के

दरवाजे के ढक्कन को हटा कर दो सम्पुट चूल्हे के अन्दर भी रख कर चूल्हे के दरवाजे को ढक्कन से बन्द कर सकते हैं ॥१।२।३।४।५॥

हिङ्गुलात् पारदनिस्सारणातिसुगमविधिः—

यावत्प्रमाणन्दरदं गृहीतं तावत्प्रमाणञ्च पटम्प्रगृह्य ।
प्रसार्य चूर्णं खलु हिङ्गुलस्य निर्धौतवस्त्रेसुभावितस्य ॥१॥
वस्त्रन्तथाऽऽकुञ्चयता बुधेन यथा न सङ्घातमुपैति चूर्णम् ।
कार्य्यन्तयोर्वर्तुलगोलकञ्च लड्डूकवद्धिङ्गुलवस्त्रयोस्तत् ॥२॥

हिंगुल से पारा निकालने की अति सुगम विधि—

जितने हिङ्गुल से पारा निकालना हो वजन में उतना ही निर्मल वस्त्र लेना चाहिये। (यह आवश्यक नहीं है कि वस्त्र नवीन ही हो, पुराने कपड़े से भी काम चल सकता है, पर स्वच्छ होना चाहिये) एक सेर हंसपदी (बहुत नर्म जो हाथ लगाने से ही बिखर जाय) हिङ्गुल को निबू के रस में घोट और सुखाकर कुछ इकहरे कपड़े के ऊपर पतले तौर से बिछा दे ॥ १ ॥

उस कपड़े को धीरे धीरे इस प्रकार सङ्कुचित करे जिससे हिङ्गुल का चूर्ण इकट्ठा न हो जाय जब हिङ्गुल व कपड़े का गोला बनजाय तब बाकी कपड़े को भी उस गोले के ऊपर लपेट दे ॥ २ ॥

बद्ध्वापुनस्सूत्रमुखेनसम्यग् लोहस्य तापे निदधीत धीमान् ।
तथा यथानैति चलत्ववृत्तिं गतिङ्कपालैः कतिभिः सुरुध्य ।३।
वेदप्रमाणाङ्गुलमुच्छ्रिते द्वे दृढेष्टके भूमितले निदध्यात् ।
लम्बेन पत्रेण समास्तृते च तयोर्ऋजीषं ह्युपवेशयेत ॥४॥

पश्चात् उस गोले को तागे या सुतली से बाँध दे जिससे अग्नि लगने पर खुल न जाय। उस गोले को लोहे के तवे के ऊपर रख दे, और गोले के चारों तरफ तवे के ऊपर पाँच चार ठिकरियाँ लगादे जिसमें गोला इधर उधर खसक न जाय ॥ ३ ॥

पश्चात् चौरस जमीन पर लम्बा चौड़ा कागज बिछाकर उसके ऊपर जमीन से चार अँगुल ऊची दो बड़ी ईट रख दे, इन ईंटों के ऊपर गोलां वाले तवे को रख दे ॥ ४ ॥

प्रज्वाल्यदीपस्य शलाकया तद्गोत्थनान्द्या पिदधीत धीमान्।
यन्त्रे सुशीते स्वयमेव नान्दीमुत्थाप्यगृह्णातु विशुद्धसूतम्॥५॥

बाद उस गोले में दियासलाई से अग्नि लगा दे, अथवा पाँच चार सुलगे हुए कोयले रख दे, और धीरे २ पंखे से हवा देता जाय अथवा मट्टी का तेल डालकर दियासलाई लगा दे। जब समझे कि गोले में अग्नि व्याप्त हो गई और बुझने की शङ्का नहीं है, तब उस तवे को नाँद से ढाँक दे नाँद को ठिकरियों के ऊपर इस प्रकार रखे कि जिसमें नाँद जमीन से आधे अँगुल ऊँची उठी रहे, जिससे वायु व धूम का गमनागमन होता रहे, यदि वायु का सञ्चार नहीं होगा तो अग्नि बुझ जायगी। यदि नाँद को आधे अँगुल से अधिक उठा देंगे तो पारद बाहर निकल जायगा। गोले को तवे पर रखने का अभिप्राय यह है कि-अग्नि पाकर पारद तवे से रुका रहे नीचे नहीं चला जाय और तवे को चार अँगुल ऊँची ईंटों पर रखने का अभिप्राय यह है कि-पारद उड़कर नाँद में जा लगे यदि जमीन पर तवा रख दिया जाता तो नाँद के आधे अँगुल वाले नीचे के अवकाश से पारद निकल जाता। चार छः पहर के बाद नाँद को ऊपर से छूकर देख ले जब बिलकुल नाँद ठंडी मालूम हो तब धीरे से नाँद को उठाकर नाँद के भीतर लगे हुए पारे को कपड़े से पोंछ ले ॥ ५ ॥

***नान्द्यावक्षसि मग्नं लग्नन्तस्मिन्नृजीषपात्रेऽपि।**
गोलकमध्ये नग्नं कञ्चुकसप्तकविनाभावे ॥ ६ ॥

*नोट— रतिप्रवृत्तो युवापि सर्वंवस्त्रविमुक्तत्वान्नग्नः आनन्ददायिन्याः प्रियाया वक्षसि मग्नो बलर्द्धनार्थंन्दुग्धकटाह्यां लग्नश्च सन् सद्गुणान् सुतान् सूतइति समासोक्त्यलङ्कारोऽत्र ज्ञेयः।

जब सम्पूर्ण पारद नाँद में इकट्ठा हो जाय तब उसको किसी मिट्टी के पात्र में रखदे, और जले हुए कपड़े के गोले के ऊपर तथा तवे के ऊपर बिन्दु रूप से जो पारद दीख पड़े उसको धीरे २ चतुराई के साथ झार कर पात्र में रख दे, यदि किसी कारण से गोले की अग्नि बुझ जाय व गोला कच्चा निकले तो उस गोले को खोलने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसी गोले के ऊपर पाँच साँत लपेटा से कपड़े को लपेट कर फिर पूर्ववत् रखकर अग्नि लगा दे व ढाँक दे । कुल पारद निकल आने के बाद जो गोले की भस्म बच गई है उसको हाथ से मलकर मिट्टी के चौड़े पात्र में रखकर पानी भर दे । जब भस्म पानी के अन्दर बैठ जाय तब धीरे २ पानी को निकालता जाय और दूसरा पानी भरता जाय । इस प्रकार पाँच सात बार धोने से तलभाग में पारद बचे उसको भी निकाल कर रख ले। भस्म के संयोग से पारद मलिन हो जाता है । अतः उस पारद को किसी स्वच्छ कपड़े में रखकर निचोड़ लेने से पारद स्वच्छ हो जाता है । इसी रीति से एक सेर हिङ्गुल से एक छटांक कम सेर तक (१५ छटांक) पारद निकल आता है । यदि हिङ्गुल कुछ कठिन होगा तो एक सेर हिङ्गुल से तीनपाव पारद निकलेगा । इस विधि से पारद निकालने में एक पैसा भी खर्च नहीं होता, घर के फटे पुराने कपड़ों से ही काम चल जाता है । परन्तु डमरूयन्त्र से उड़ाया हुआ पारद अधिक गुण वाला होता है, क्योंकि अठारह संस्कारों में से एक ऊर्द्धपातन संस्कार भी शास्त्रकारों ने पारद का बतलाया है । डमरू-यन्त्र विधि से अथवा इस गोलक विधि से निकाले हुए पारद को दोला-यन्त्र द्वारा (दोलायन्त्र की आकृति चित्र में देखो) नीबू का रस आध-पाव, सेंधानमक एक सेर, गोमूत्र चार सेर में (गोमूत्र न हो तो पानी से भी काम चल सकता है) दो पहर तक अवश्य स्वेदन कर लेना चाहिये, क्योंकि बिना स्वेदन किये पारद का नपुंसकत्त्व दोष नहीं जाता ॥ ६ ॥

हिङ्गुलोत्थपारदे मतभेदाः—

वदन्ति केचिद्भिषजो न सूतस्तथा गुणं यच्छति हिङ्गुलोत्थः
यथेष्टकाद्यैः परिशोधितोऽयं सिन्दूरपाकादिषु युज्यमानः॥१।

यतःस काठिन्यगुरुत्वषाण्ढ्याद् विलम्बते कृत्यविधौ स्वकीये।
रक्तेष्टकाद्यैःपरिशोधितस्तु तद्दोषसम्पर्कनिरस्यमानः ॥२॥
स्वस्थस्य रुग्णस्य नरस्य चापि यत्रापि कुत्रापि दशासु वैद्यैः।
प्रयुज्यमानःफलमात्मनीनं ददाति शीघ्रं मृदुलाघवाद्यैः ॥३॥

हिंगुल के पारद के विषय में मतभेद–

कितने ही वैद्यों का कहना है कि "रक्तेष्टकानिशाधूमसारोर्णा भस्मचूर्णकैः जम्बीरद्रवसंयुक्तैर्मुहुर्मर्द्यो दिनत्रयम् दिनैकं वापि सूतः स्यान्मर्दनान्निर्मलः परम्" इस विधि से शुद्ध किया हुआ पारद जितना गुण करता है उतना हिंगुल से निकाला हुआ पारा गुण नहीं करता, अर्थात् लाल ईंट वगैरह से शोधे हुए पारद के बनाये हुए रससिन्दूर आदि रस जितने गुणकारी होते हैं उतने हिंगुलोत्थपारद से तैयार किए हुए नहीं होते। क्योंकि शोधे हुए पारे की अपेक्षा हिंगुल का पारा कठिन और भारी (सर्व शरीर में जल्दी नहीं व्याप्त होने वाला) तथा नपुंसक होता है। इस लिए इसके सेवन से शीघ्र फायदा नहीं होता है। लाल ईंट आदि पाँचो चीजों में नीबू के रस के साथ घोटकर शुद्ध किये हुए पारे में वे दोष (गुरुत्व-काठिन्य नपुंसकत्व) नहीं होने से इसको निरोग अथवा रोगी मनुष्य अपनी आरोग्यावस्था या रोगावस्था आदि किसी भी हालत में यदि सेवन करे तो शीघ्र ही सद्गुणों को उत्पन्न करता है क्योंकि शोधे हुए पारे में हिंगुल के पारे की अपेक्षा मृदुत्वगुण (शरीर को माफकत पड़ने वाला) और लाघवगुण (शरीर में शीघ्र व्याप्त होने वाला) पुंस्त्वगुण (उग्र प्रभाव दिखाने वाला) होता है ॥१॥२॥३॥

वैद्याःपरेचिद्दरदोत्थसूतं जानन्त्यशुद्धेन समं यतस्तम् ।
अशुद्धसूतेन सगन्धकेन सम्पद्यमानं दरदं प्रसूते ॥४॥
हेतोर्गुणाःकार्यगुणान् रभन्ते तत्सेवकाश्चापि फलं लभन्ते।
अतोऽस्य शुद्धिं विदधातु धीमानशुद्धसूतेन समां क्रियार्थम् ५

दूसरे वैद्यों का मत है कि—अशुद्ध पारद और अशुद्ध गन्धक के योग से हिंगुल बनता है। फिर उसीसे निकले हुए पारद में भी वे दोष ("नागो वङ्गोमलो वह्निः" इत्यादि तथा "अशुद्धगन्धः कुरुते च कुष्टं तापं भ्रमं पित्तरुजां तथैव रूपं सुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्माद्विशुद्धो विनियोजनीयः" इत्यादि) अवश्य उपस्थित होंगे। क्योंकि कारण के गुण कार्य में अवश्य आया करते हैं। जब यह दशा स्थिर है, तो उस (हिङ्गुलोत्थ) पारद की भी अशुद्ध पारद के समान जरूर शुद्धि करनी चाहिये, नहीं तो उस पारद का जो सेवन करेगा उससे उसके शरीर में कुष्ठादि अनेक व्याधियां उत्पन्न होंगी ॥४॥५॥

अन्येतु सूतं खलु हिंगुलोत्थं संशोधितं चापि समं विदन्ति ।
येनोभयस्यापि मुनिप्रवीरैःसङ्ग्राहिताऽगादि रसक्रियायाम्६

तीसरा मत कोई यह भी कहते हैं कि—हिंगुलोत्थ पारद और शोधित पारद दोनों ही निर्दोष हैं, कारण कि शास्त्रकार महर्षियों ने अनेक रसों में दोनों का प्रयोग किया है, तब किसको निर्दोष और किसको सदोष कहा जाय ॥ ६ ॥

वयंतु काठिन्यगुरुत्वयोगं मन्यामहे नैव विनाप्रमाणम् ।
षण्ढत्वदुष्टेस्त्वपनोदनार्थं चाराम्लकस्वेद्यमिमं वदामः ॥७॥

मेरी समझ में ये तीनों ही मत दुर्बल हैं। क्योंकि जिन्होंने हिङ्गुलोत्थ पारद में कठिनता और गुरुत्व दोष माने हैं, उनमें युक्ति अनुभव तथा शास्त्र प्रमाण न होने से केवल कपोल कल्पित बातों का आदर नहीं हो सकता। रहा नपुंसकत्त्व दोष, उसके दूर करने के लिये नीबू का रस, गौमूत्र, लवण के योग से दोलायन्त्र में स्वेदन करना तो मैं भी मानता हूँ ॥ ७ ॥

अशुद्धसूतोद्भवहिङ्गुलोत्थं जानन्त्यशुद्धं वत येपि केपि ।
ते लेलिहानस्य न सूतदोषान्गन्धस्य माहात्म्यमुपस्पृशन्ति८

द्वितीय मतवालों ने जो कहा था कि अशुद्ध पारद और अशुद्ध गन्धक से हिङ्गुल बनता है। इसलिये हिङ्गुल का पारा भी अशुद्ध

होता है। इन बिचारों ने भी गन्धक के माहात्म्य (प्रभाव) को नहीं समझ कर ऐसा लिख डाला है। गन्धक वह प्रभावशाली वस्तु है कि जो पारद के सम्पूर्ण दोषों को चाट जाती है। यह मुक्तिवाद का परिष्कार नहीं चला है जो किसी ने मुक्ति का कुछ लक्षण किया, किसी ने कुछ किया और पराजय किसी ने भी अङ्गीकार नहीं की। यह तो आयुर्वेद शास्त्र है जिसके सत्याऽसत्य का निर्णय प्रत्यक्ष प्रमाण से हो जाता है। यदि वास्तव में इनका कहना यह सत्य होता कि— हिंगुलोत्थ पारद में अशुद्ध पारद गन्धक के दोष हिंगुल द्वारा आ जाते हैं तो इनके मत से हिंगुल भी (अशुद्ध पारद के समान) महादूषित होना चाहिये ! यदि यह भी स्वीकार किया जाय तो शास्त्रकारों ने "निम्बुरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम्" इत्यादि प्रमाण से नींबू के रस में या नीम के पत्तों के रस में एक प्रहर मात्र घोटने से हिंगुल की शुद्धि क्यों मानी है ? और अस्मदादि सभी वैद्यों ने हजारों वार अनुभव करके भी देखा है कि हिंगुल की उतनी मात्र शुद्धि करके "दरदं वत्सनाभं च मरिचं टङ्कणं कणा" इत्यादि विधि के अनुसार आनन्दभैरवादि रस से पूर्ण फल देखा जाता है, और विकार कुछ नहीं प्रतीत होता। इससे तो प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया कि अशुद्ध पारद के दोषों को गन्धक चाट गया। अर्थात् हिङ्गुल में पारद के दोष नहीं आ सकते तो हिङ्गुलोत्थ पारद भी अशुद्ध पारद के समान सिद्ध नहीं हो सकता॥ ८॥

येचापिसंशोधितहिङ्गुलोत्थौ सूतौसमत्वेन विदन्ति केचित्।
तेत्वष्टसँस्कारसमत्वबोधि वचो मुनीनां नच दृष्टवन्तः॥९॥

रहा तीसरा मत जिसमें यह कहा गया है कि हिङ्गुलोत्थ पारद और शोधित पारद ये दोनों समान हैं इस मत के मानने वालों ने भी मुनियों के इस वचन को नहीं देखा है कि-"अथवा हिङ्गुलात्सूतं ग्राहयेत्तन्निगद्यते। जम्बीर निम्बुनीरेण मर्दिताद्धिङ्गुलोर्दिनम्" ऊर्द्धपातनयन्त्रेण ग्राह्यो निर्मलोरसः। कञ्चुकैर्नागवंगाद्यैर्निर्मुक्तो रसकर्मणि। विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्मकृत्" अर्थात् जिस वैद्य को बहुत झंझट में न

पड़ना हो वह हिङ्गुल से पारद निकाल ले । उसकी विधि यह है कि—प्रथम जमीरी नीबू के रस में हिङ्गुल को घोट कर शुद्ध करले । बाद. उससे डमरूयन्त्र द्वारा पारद को निकाल ले । यह पारद बहुत निर्मल, और "पर्पटी, पाटली, भेदी, द्रावी, मलकरी, तथा अन्धकारी, तथा ध्वांक्षीविज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः" इन सप्त कंचुक (मलाई) से रहित, तथा नागादिदोषों से भी निर्मुक्त होता है । यही नहीं किन्तु इन आठ संस्कार (स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन, संदीपन,) करने पर जो गुण पारद में आते हैं सो हिंगुलोत्थ पारद में रहते हैं और यह पारद सर्वचिकित्सा कर्म के करने वाला है । इस उदाहरण से हिंगुलोत्थ पारद शोधित पारद से कहीं प्रभावशाली कहा गया है । फिर कहिये पाठकवृन्द ! हम इस शास्त्र को मानें कि दोनों पारद को समान कहने वालों की कपोल कल्पित बातों को ? ॥ ९ ॥

श्रीसूतराजःखलुहिङ्गुलोत्थो निर्दोषएवेति वदन्ति विज्ञाः ।
संशेरते ये मुनिभाषितेर्थे कथं कुतर्कानतिशेरते ते ॥१०॥

हिंगुलोत्थ पारद सर्वथा निर्दोष है इस बात को बड़े २ विज्ञजन कह रहे हैं । तो भी जो लोग एकनाएक शङ्का ही खड़ी करते हैं वे महा कुतर्की हैं ॥ १० ॥

प्रमाणहीनान्समुपेक्षमाणो निरीक्षमाणोऽथ गुणं सुवैद्यः ।
परिश्रमं चाल्यमपेक्षमाणो गृह्णातु सर्वत्र सहैङ्गुलं तम् ॥११॥

स्वेदनाद्यष्टसंस्कारानन्तरेणापि पारदः
हिङ्गुलोत्थो विशुद्धोऽयं प्रयोगे नैव दुष्यति ॥१२॥

बिना प्रमाण बोलने वालों की तरफ नहीं देखकर, और हिंगुलोत्थ पारद में बहुत गुण समझकर, तथा स्वेदनादि अष्ट संस्कार की अपेक्षा अल्पपरिश्रम समझ कर व स्वेदन मर्दनादि आठ संस्कारों के बिना ही किये हिंगुलोत्थ पारद में उतना गुण समझकर बुद्धिमान् वैद्यों को

हिंगुलोत्थ पारद लेना चाहिये । किसी भी प्रयोग में यह दोषी नहीं ठहर सकता ॥ ११ ॥ १२ ॥

यद्वा जानन् स जानातु गुणं दोषं च कश्चन ।
विना मानं कथं नाम श्रद्दध्याच्छ्यामसुन्दरः ॥१३॥

इतना समर्थन करने पर भी यदि कोई हठ के वश होकर हिंगुलोत्थ पारद का आदर नहीं करे तो उसकी मरजी । वह भले ही किसी में दोष समझे या किसी में गुण समझे ! बिना प्रमाण की बातों में श्यामसुन्दर (मैं) श्रद्धा नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

गन्धक प्राधान्यम्—

अशुद्धसूतोऽप्यविशुद्धगन्धः परस्परं द्वावतिमर्दयेत ।
तां कज्जलीं कूपिकया पचेत स्याद्धिङ्गुलं तत्र गले विलग्नम् ॥१

गन्धक की प्रधानता—

सभी रसायनशास्त्रों में पारद की प्रधानता लिखी हुई है परन्तु गन्धक की प्रधानता लिखने के लिये किसीने आजतक कलम नहीं उठाई, किन्तु सूत्ररूप में ही लिख छोड़ा । भला यह भी कोई बात है ? कि ईश्वर की प्रधानता तो बड़ी उदार लेखनी से लिखी जाय, और जिसके कृपा कटाक्ष से संसार चक्र अहर्निश घूम रहा है व जिसके विनावलम्ब, ईश्वर भी अकिञ्चित्कर ही ठहरे, उस भगवती माया की प्रधानता ही नहीं ? सुनिये पाठकवृन्द ? गन्धक की प्रधानता (अनुभूत की हुई) इस प्रकार है—

अशुद्ध ही पारद और अशुद्ध ही गन्धक (शुद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है) दोनों की कज्जली करके सिन्दूररस विधि से पकाले । शीशी के गले पर हिंगुल बना हुआ तैयार मिलेगा ॥ १ ॥

खट्वांगयन्त्रेण ततश्च सूतं समुद्धरेन्नो स विकारकारी ।
क्षाराम्लवर्गेण कषायितश्चेदनेकयोगेषु नियोजितोऽपि ॥२॥

बाद डमरुयन्त्र से उड़ाकर उससे पारा निकाल ले, उसको गोमूत्र, लवण, नीबू के रस में चार पहर दोलायन्त्र विधि से स्वेदित करके किसी भी योग में डाले तो वह पारद कुछ विकार नहीं करेगा प्रत्युत उत्तम गुणकारी होगा ॥ २ ॥

तद्धिङ्गुलं चापि विमर्दितं चेन्निम्बूकनीरेण दिनैकमात्रम् ।
अनेकयोगेषु नियोजितं च दूरे विकारोऽस्तु गुणौघकारि ॥३॥

तथा शीशी के गले से जो हिंगुल मिला है, उसको भी नीबू के रस में एक दिन घोटकर "दरदं वत्सनाभं च मरिचं टङ्कणं कणा" इत्यादि शास्त्रोक्त आनन्दभैरवादि किसी रस में क्यों न डाले, विकार तो दूर रहा पूर्ण गुणकारी ही होगा ॥ ३ ॥

अहो भवानीरजसोऽस्तिशक्तिः
कावा कियोदोषहरीकुतस्त्या ?
सुराऽसुराणां च नृणांमनोभिर-
चिन्त्यरूपा वचसामगम्या ॥ ४ ॥

अहा ? कौन जान सकता है पार्वतीरज (गन्धक) की शक्ति को कि वह क्या चीज है, और कितने दोष दूर करने वाली है ? जहाँ पर देव असुर और मनुष्यों के मन वाणी भी नहीं पहुँच सकते प्रत्यक्षानुभव करना तो दूर रहा ॥ ४ ॥

ययाऽखिलाःपारददोषसङ्घाः
समूलघातं निहता विषाद्याः ।
या चाशु मल्लालशिलाविषाणि
मृत्युप्रदान्यप्यमृतीकरोति ॥ ५ ॥

क्योंकि "नागो रङ्गो मलो वह्निश्चाञ्चल्यञ्च विषं गिरिः असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥ व्रणं कुष्ठं तथा जाड्यं दाहं वीर्यस्य नाशनम् मरणं जडतां स्फोटंकुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम्" अर्थात् पारद का

नागदोष, व्रण (घाव) को पैदा करता है। रङ्गदोष कोढ़ को, मलदोष जड़ता को, वह्निदोष दाह को, चाञ्चल्यदोष वीर्य्यनाश को, विषदोष मरण को, गिरिदोष जड़ता को, असह्याग्निदोष फोड़े को उत्पन्न करते हैं। ये आठों दोष उक्त प्रकार से गन्धक के साथ पारद को घोंट कर हिंगुल बनाने से जड़ से नष्ट हो जाते हैं।

संखिया, हरिताल, मैनशिल, वत्सनाभविष जो तत्काल मनुष्यों के मारक हैं इनको गन्धक के साथ पारद में घोंटकर मल्लसिन्दूर, तालसिन्दूर, शिलासिन्दूर, विषसिन्दूर, बन जाने से आसन्नमृत्यु प्राणियों के तत्काल प्राण बच जाते हैं, और उनके मारकत्व दोष जाने कहाँ चले जाते हैं ॥ ५ ॥

योगेषु यत्राऽस्ति न गन्धयोगो न तत्र दृष्टो गुणगन्धयोगः।
सूतस्य सर्वार्तिहरस्य चापि देवासुराद्यैश्च नमस्कृतस्य॥६॥

जो पारद सम्पूर्ण रोगों का नाश करने वाला है और जिसकी देव, असुर, मुनि सभी स्तुति करते हैं। उस पारद का योग भी बिना गन्धक के औषधियों में कुछ काम नहीं कर सकता है। इसीलिये शास्त्रकार जहाँ पारद का औषधियों में प्रयोग करते हैं वहाँ गन्धक के साथ पारद की कज्जली करके ही प्रयोग करते हैं, केवल पारद को किसी औषधी में नहीं डालते ॥ ६ ॥

चतुष्टयी सूतदशा मुनीन्द्रैरूरीकृता शुद्धिरशुद्धिरेवम्।
भस्मत्वरूपा च विबद्धभावो गन्धेन हीना सकलेव हेया॥७॥

गन्धक के बिना पारद की चार अवस्था महर्षियों ने मानी हैं कि—अशुद्धपारद, शुद्धपारद, मृतपारद, और बद्धपारद परन्तु ये चारों दशा बिना गन्धक के त्याज्यप्राय हैं ॥ ७ ॥

यतस्त्वशुद्धः खलु पारदोऽयं कार्य्येषु कुत्रापि न योजनार्हः।
शुद्धोपि गन्धेन विना बिभर्ति
न स्वोपयोगं चलवृत्तिवृत्तः।

सिन्दूरपाकादिविधौ च गन्धो
रुणद्धि सूतं परितप्यमानम् ॥ ८ ॥

इन चारों अवस्थाओं के त्याज्यत्व होने में यह युक्ति है कि अशुद्ध पारद तो "नागो रङ्गो मलो वह्निः" इत्यादि अष्ट दोषाक्रान्त होने से किसी औषध में डालने के काम का ही नहीं है। रहा शुद्धपारद वह भी बिना गन्धक के किसी योग में डालने योग्य नहीं है, क्योंकि उसकी चञ्चल गति है, अर्थात् बिना गन्धक के साथ कज्जली किये यदि उसको किसी योग में डाल दिया जाय तो वह पारद अवश्य शरीर को फोड़कर निकलेगा। किन्तु गन्धक के साथ पारद की कज्जली करके दवा में डालने से गन्धक उसकी चञ्चलता को दूर कर देती है। इस लिये उससे नुकसान कुछ भी नहीं होता प्रत्युत वह परम गुणकारी होता है। वैद्य लोग शीशी में जब सिन्दूररस बनाते हैं और आठ आठ दिन की अग्नि देते हैं, तब यह गन्धक की ही सामर्थ्य है जो अग्नि से परितप्त पारद को उड़ने नहीं देती है। लोक में भी कहावत चली आती है कि "योनि में बिन्द और अग्नि में पारा जो रोके सो गुरु हमारा" इससे सिद्ध हुआ कि यह दूसरी पारद की दशा भी बिना गन्धक के त्याज्य है ॥ ८ ॥

मृतःसमुज्जीवयति प्रसह्य रौद्रेणभावेन च संहरेत ।
प्राणानसौ मन्दरुचिप्रदायी स्वकीयसंसेवनकार्यवृत्तौ ॥९॥

रही पारद की भस्मरूपा तीसरी अवस्था, वह यद्यपि "अमरीकरोति हि मृतः" इत्यादि न्याय से मनुष्यों को जिलाने वाली है तथापि "मारितो रुद्ररूपी स्यात्" इत्यादि न्याय से भस्म कच्ची रह जाने से, या अधिक मात्रा सेवन करने से, अथवा पथ्य नहीं पालने से, प्राणों का संहार भी कर देती है, इसीलिये पारद भस्म सेवन करने में मनुष्यों की बहुत कम प्रवृत्ति होती है। इससे सिद्ध हुआ कि यह तीसरी भस्मरूपा पारद की अवस्था भी हेयप्राय है ॥ ९ ॥

बद्धोऽपि खेटत्वगतिं ददानः सदाशिवः पुण्यकृतामगम्यः।
भादृत्तलोकाःकथमुत्सहन्ते तं संग्रहीतुं कलिदोषभाजः॥१०॥

रही बद्धरूपा चतुर्थदशा, वह यद्यपि "बद्धः खेचरतांधत्ते" "बद्धः साक्षात्सदाशिवः" इन प्रमाणों से आकाशगामिनी विद्या देनेवाली है, और ब्रह्मरूपा भी है तथापि "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह" इत्यादि श्रुति प्रमाणों से वह बड़े बड़े पुण्यशाली महर्षियों को भी जब अगम्यरूपा है तब मन्दबुद्धित्व अल्पायुष्कत्व आदि कलियुग के दोषों को धारण करनेवाले मेरे जैसे साधारण मनुष्य उस चतुर्थ दशा के ग्रहण करने के लिये कैसे उत्साहित हो सकते हैं? सबका सारांश यह हुआ कि पारद की उक्त चारों अवस्था सर्वजन हितार्थ नहीं हो सकती॥ १०॥

सम्मूर्च्छितो यस्य तु योगतोऽयं
तेजोदधानः खलु वैष्णवं तत्।
आबालवृद्धान्सकलान्मनुष्याना-
सन्नमृत्यूनपि जातमात्रान्॥ ११॥
पशूँस्तिरश्चोऽप्यतिमन्दवीर्यान्-
सत्त्वप्रधानानपि लोकसङ्घान्।
स्वस्थाँश्च रुग्णानपि सूतराजो
नेवापकुर्वन्नुपकारकारी॥ १२॥

इस प्रकार गन्धक योग के बिना पारद की चारों अवस्था युक्ति सहित त्याज्य कही गई। अब गन्धक के योग से जो पारद की पाँचवी दशा (मूर्छितरूपा-चन्द्रोदय, सिन्दूररस, मल्लसिन्दूर, विषसिन्दूर आदि हजारों प्रकार की) है। उसकी बात सुनिये, "मूर्छितस्तु जनार्दनः" इस शास्त्र सिद्धान्त से चन्द्रोदयादि मूर्छित पारद को विष्णु स्वरूप माना है। तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्माजी का कर्त्तव्य तो उत्पादन

मात्र है, और रुद्र भगवान् का संहार मात्र कर्त्तव्य है। निर्गुण ब्रह्म (सदाशिव) की तो कथा ही क्या है, जो मन वचन की प्राप्यता और समस्त कर्त्तव्यों से भी अतीत होकर बैठे हैं। जैसा श्रुति में लिखा है कि "यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" अब रहे उक्त भगवान् जनार्द्दन वही पिपीलिका से लेकर मनुष्य देवादि समस्त ब्रह्माण्ड का पालनात्मक कार्य्य करते हैं। वैसे ही गन्धक से मूर्छित चन्द्रोदय आदि रस बाल, वृद्ध आसन्न मृत्यु, उत्पन्न मात्र मनुष्य, तथा पशु, पत्ती, दुर्बल, बलवान्, रोगी, निरोगी, सम्पूर्ण प्राणियों का किसी भी अवस्था में अपकार न करके महा उपकार ही कर रहे हैं॥ ११॥१२॥

चन्द्रोदयाद्याःशतशःस्वकीया
व्यक्तीर्दधानश्च यदीययोगात् ।
यावाँश्च सूते परिजारितो यस्ता-
वान् गुणोमूर्च्छति सूतराजे ॥ १३ ॥

जैसे माया के योग से विष्णु भगवान् मत्स्य, कच्छप, वराह, आदि हजारों अवतारों को धारण करते हैं। तैसे ही पारद भी गन्धक के योग से चन्द्रोदय, विषचन्द्रोदय, आदि हजारों स्वरूपों को धारण करता है। यही नहीं किन्तु पारद में जितना अधिक गन्धक जारण किया जाय उतना ही उसमें अधिक गुण बढ़ जाता है। जैसा कि शास्त्रों में लिखा है—"तुल्ये तु गन्धके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः, द्विगुणे गन्धके जीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा, त्रिगुणे गन्धके जीर्णे सर्व व्याधि विनाशनः, जीर्णे चतुर्गुणे तत्र वलीपलितनाशनः, पञ्चमे गन्धके जीर्णे त्तयरोग हरो मतः, षड्गुणे गन्धके जीर्णे कामिनीदर्पनाशनः" इत्यादि इत्यादि ॥ १३ ॥

सहस्रवेधित्वमुखान्गुणाँश्चा-
ऽशेषं समेनाऽस्यगुणेन योगात् ।

श्रीसूतराजेऽखिलशक्तिदं तं
गन्धं कथं नाद्रियते नृलोकः ॥ १४ ॥

सहस्र गुण गन्धक जारण करने से पारद सहस्र वेधी (एक तोला पारद हजार तोले ताँबे को सुवर्ण करने वाला) होता है जैसे कि—"जीर्णे शतगुणे गन्धे शतवेधी भवेद्रसः, सहस्र गुणिते जीर्णे सहस्रांशेन वेधयेत्" इत्यादि गुण, जब गन्धक का सुना जाता है तब कहिये पारद में अखिल शक्ति देनेवाली गन्धक का कौन आदर नहीं करेगा ? ॥ १४ ॥

गान्धाःशतं सूतमृते मिलन्ति
योगा न सूतस्य तु केवलस्य ।
अशुद्धसूतोद्भवरोगजातं निरा-
चरीकर्त्ति तु गन्ध एव ॥ १५ ॥

पारद के बिना केवल गन्धक सेवन के ही सैकड़ों प्रयोग शास्त्रों में मिलते हैं परन्तु बिना गन्धक के पारद सेवन का एक भी योग कहीं नहीं मिलता । कहाँ तक कहें अशुद्ध पारद सेवन करने से शरीर में जितने रोग उत्पन्न होते हैं वे भी गन्धक सेवन से ही नष्ट होते हैं ॥१५॥

वेश्माऽस्यधूमःपरिधूपयेद् यद्-
ब्रूमोऽतिकिं तत्प्रतिवेशिनोऽपि ।
पश्यन्ति वक्त्रं न विसूचिका-
देस्तद्गन्धतःशुध्यति गन्धवाहः ॥ १६ ॥

और यही नहीं गन्धक का यहाँ तक प्राधान्य है कि जिस घर में गन्धक की धूनी दी जाय उसके पड़ोसी लोगों को भी हैजा (कालरा) भूत पिशाचादि जन्य पीड़ा असर नहीं कर सकती, क्योंकि गन्धक के धूम की गन्ध से वायु शुद्ध हो जाती है । परन्तु पाठक लोगों को यह स्मरण रहे कि गन्धक का धूम गले में घुस जाने से श्वास कासादि

अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं इसलिये जिस घर की वायु शुद्ध करनी हो, या भूत पिशाचादि की बाधा दूर करनी हो उस घर में गन्धक की धूनी देकर सब आदमी बाहर निकल जाँय और मकान के किवाड़ बन्द कर दें, जब धूम स्वयं शान्त हो जाय तब मनुष्य उस घर में प्रवेश करें ॥ १६ ॥

एकोऽपि गन्धो यदिसेवितः
स्यादनम्लसिन्धूद्भवभोजिनात्रा ।
नवीकरोत्यस्य शरीरमेनं
विनीतभावैःप्रणमन्तु भव्याः ! ॥ १७ ॥

यदि खाली गन्धक का शहद के साथ कोई मनुष्य सेवन करे और नमक खटाई न खावे तो उसका शरीर नवीन हो जाता है। इसलिये भावुक गण ! इस विलक्षण प्रभावशाली गन्धक का सब मिलकर बड़े प्रेम से सेवन करो ॥ १७ ॥

वेदान्तनिष्णातधियो दिशन्तो
विवर्त्तवादं पुरुषद्वितीयाम्,
मायामुपाश्रित्य तथापरेपि
शक्तिं तदीयामुपकुर्वतेऽस्मान् ॥ १८ ॥

वेदान्ताचार्य्यों के मत में भी बिना माया के केवल ब्रह्म का विवर्त सिद्ध नहीं होता, और शक्तिवादियों के मत में भी बिना शक्ति के ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं ठहरता ॥ १८ ॥

बिनाप्रकृत्या पुरुषा विधातुं
शुभाऽशुभं किञ्चन न क्षमन्ते ।
ख्यातेश्चतस्यांपुरुषान्यतायाः
कैवल्यमेते दधतीतिसाङ्ख्याः ॥ १९ ॥

और साङ्ख्याचार्य्यों के मत में भी बिना प्रकृति के पुरुष, शुभाशुभ कार्य्य कुछ भी नहीं कर सकते किन्तु प्रकृति के सम्बन्ध से ही उनमें पुण्य पाप कर्तृत्वादि व्यवहार होता है, तथा प्रकृति में पुरुष भेद ज्ञान होने ही से पुरुष, कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है ॥१९॥

वैकुण्ठवास्तव्यहरिश्च लोकं
पुष्णाति लक्ष्म्यैव कटाक्षितश्च ।
जिनेश्वराश्चापिदिशन्तिभव्यान्
भव्यंस्वयं कार्मणकायभाजः ॥ २० ॥

वैकुण्ठनाथ विष्णु भगवान् भी लक्ष्मी देवी के कृपाकटाक्ष का अवलम्बन करके ही संसार का पालन करते हैं । जैन सिद्धान्तानुसार तीर्थङ्कर देव भी भव्यजनों को उसी हालत में धर्म्मोपदेश करते हैं जब कि वे कार्मण शरीर (पौद्गलिक प्रारब्ध कर्म्मरूपी सूक्ष्म शरीर) से युक्त होते हैं अर्थात् सिद्धावस्था में वे भी कुछ करने को समर्थ नहीं हो सकते, इसी वास्ते जैनधर्म्म के धुरन्धराचार्य्यों ने "णमो अरिहन्ताणं णमो सिद्धाणं" इत्यादि णमोकार मन्त्र में अशरीरी सिद्ध भगवान् को प्रथम नमस्कार नहीं करके, शरीरधारी अरिहन्त देव को ही नमस्कार किया है ॥ २० ॥

ब्रूमोऽतिकिं शुक्रवराकमेतद्
विनारजःकिं विदधाति सृष्टिम् ।
तथा कथं गन्धकमन्तरेण
सुवीत सूतो जनतोषमेषः ॥ २१ ॥

अधिक क्या कहें देखिये यह प्रत्यक्ष सिद्ध दृष्टान्त है कि जब हम लोगों का शुक्र स्त्री के शोणित बिना सन्तान पैदा नहीं कर सकता तब गन्धक के बिना पारद जीवों का किस प्रकार कल्याण कर सकता है ? इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसे पारद की प्रधानता लोगों के कल्याणार्थ

महर्षि गणों ने लिखी है तैसे ही गन्धक की प्रधानता भी युक्ति सिद्ध है। तथा च साङ्ख्याचार्य वाचस्पति मिश्रः—"पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः" जैनाचार्य्योऽकलङ्कदेवोऽपि—संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञाः नह्येकचक्रेण रथः प्रयाति। अन्धश्च पङ्गुश्च वने प्रविष्टौ तौ सम्प्रयुक्तौ नगरे प्रविष्टौ"।

यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है कि पारद प्रकरण में गन्धक की प्रधानता क्यों लिखी गयी? इसका उत्तर यह है कि जैसे ब्रह्म की माया शक्ति, और विष्णु की लक्ष्मी देवी, शिवजी की पार्वती भगवती उनको छोड़ कर दूर नहीं रह सक्तीं तैसे ही गन्धक भी पारद से वियुक्त होना नहीं चाहती, और उन ही की तरह पारद भी एकाकी रह कर आदरणीय नहीं हो सक्ता। जब यह दशा है तो मैं भी पारद प्रकरण से गन्धक को वियुक्त करना नहीं चाहता॥ २१॥

गन्धक भेदाः—

लोणीयश्चाम्लसारश्च गन्धको द्विविधो मतः।
उत्तरस्त्रिविधो दृष्टः प्रशस्तो रसकर्म्मणि॥ १॥
रक्तवर्णः परं श्रेष्ठः शुकपुच्छस्ततोऽवरः।
स्निग्धपीताम्लसारस्तु ताभ्यामल्पगुणो मतः॥ २॥

गन्धक के भेद—

गन्धक दो प्रकार का होता है, एक लोणियाँ और दूसरा आमलासार। आमलासार के तीन भेद हैं, एक लाल (तोता की चोंच के समान) इसको शास्त्रकार "शुकतुण्ड" कहते हैं। इसके गुणों की अपार महिमा है। यह धातु वेधक (सुवर्ण सिद्ध करने वाली) है और शरीर के सब रोगों को दूर करके दीर्घायु तथा अति बलिष्ठ करनेवाली है। मैंने इसको रंगून आदि अनेक शहरों में खोजी थी परन्तु यह सौ रुपया सेर को भी नहीं मिली। लोक में कहावत है कि "माया रंगे सो काया रंगे" अर्थात् जो वस्तु सुवर्णादि

सिद्धि करे वही शरीर को दिव्य बनावे। दूसरी सूआपंखी (तोता की पूंछ के रंग के समान हरित वर्णवाली) होती है। यह उतनी दुर्लभ नहीं है परन्तु ढूँढ़ने से कहीं २ मिल जाती है इस गन्धक को यदि पारद में जारित की जाय तो चन्द्रोदयादि सभी रस बहुत उग्रवीर्य बनें। तीसरी आमलासार गन्धक बहुत चिकनी, चमकदार, पीले वर्ण की, जिसमें कुछ २ हरित वर्ण की झलक होती है इसीको आजकल सभी वैद्य लिया करते हैं, और यह सर्वत्र सुलभ है। यह गन्धक यद्यपि "शुकतुण्ड" और "शुकपुच्छ" से कम गुण वाली है तथापि चन्द्रोदयादि सभी रस काष्ठ औषधियों से कहीं बढ़कर गुणकारी होते हैं ॥ १ । २ ॥

लोणीयस्त्याज्य एव स्यात् सर्वस्मिन् रसकर्म्मणि।
किन्तु पामादिलेपार्थं योजनीयः क्वचित् क्वचित् ॥३॥

लोणिया गन्धक तो किसी भी रस के उपयोगी नहीं है किन्तु जहाँ पर आमलासार गन्धक नहीं हो वहाँ पर खाज खुजार आदि रोगों को नष्ट करने के लिये लेप में ली जा सकती है।

किसी किसी आचार्य के मत से कालीगन्धक भी होती है। उसके गुण तो बहुत हैं परन्तु मिलती नहीं है। एक दूकानदार ने मुझसे कहा कि लालगन्धक आपको मैं दे सकता हूँ परन्तु १०) रुपया सेर के भाव दूंगा। मैंने कहा कि दीजिये-दीजिये मैं २०) रुपया सेर में भी खरीद सकता हूँ। तब उसने बहुत लाल नेत्र प्रसाद-जनक दिखाई। उसको मैंने अग्निपर रखा तो वह न जले न धुँआ दे, वह लालकसीस थी मैंने कहा मैं इसको ।) सेर भी नहीं ले सकता।

गन्धकशुद्धेरावश्यकता-

करोत्यशुद्धः खलु गन्धकोऽयं तापं भ्रमं कुष्ठरुजामवश्यम्।
हन्याच्च रूपं बलवीर्यमोजो बुधैरतोऽसौ परिशोधनीयः ॥१॥

गन्धकशुद्धि की आवश्यकता—

अशुद्ध गन्धक के सेवन करने से या किसी योग में डालने से ताप, भ्रम, (मस्तक घूमना चक्कर आना) कोढ़ आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर की कान्ति, ताकत, शुक्र, उत्साह, नष्ट होते हैं, इसलिये गन्धक की शुद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥१॥

गन्धकशुद्धेः प्रथमः प्रकारः—

मृन्मान्दिकाया भृततक्रकायाः प्रत्यग्रवस्त्रेण मुखं पिधाय ।
बद्ध्वा च सूत्रैर्दृढमिष्टकाभी रुद्ध्वाथ नान्या गतिमत्र यन्त्रे ॥१॥
निपातनीयः खलु गन्धकःस्याद् द्रुतःकटाह्यां मृदुवह्नियोगैः ।
एकेन संहस्तितहस्तकेन परेण दर्व्या परिलेखनीयः ॥२॥
वस्त्रे स्नुतस्त्वेष च चालनीयो घनीभवेत्तक्रनिमज्जनेन ।
एवं विधानैःपरिशोधनीयस्त्रिःपञ्चकृत्वोप्युत सप्तकृत्वः ॥३॥

गन्धकशुद्धि का पहला प्रकार—

लोहे की कड़ाही में पाव भर घृत को तपाकर उसमें एक सेर आमलासार गन्धक के चूर्ण को डालकर मन्दी २ आँच दे । जब संपूर्ण गन्धक का चूर्ण घी में घुल जाय तब एक मट्टी के पात्र में छाछ (मट्ठा) दो सेर भर दे, और उसी पात्र के ऊपर बारीक गीला नवीन कपड़ा ढांककर मजबूत बांध दे । उस कपड़े के ऊपर कड़ाही में टिघली हुई गन्धक को एक आदमी तो कड़ाही के कुन्दे (कन्ने) पकड़ कर डालता जाय और दूसरा आदमी लोहे की कलछी से गन्धक को सूँत-सूँतकर कपड़े पर डालता जाय और गन्धक को चला-चलाकर कपड़े में छानता जाय । जब सम्पूर्ण गन्धक कपड़े से निकलकर छाछ में पहुँच जाय तब कपड़े को खोलकर पात्र के पेंदे में जमे हुये गन्धक के ढिप्प (ढेला) को निकाल ले, और छाछ को दूसरे पात्र में रख छोड़े इस प्रकार से तीन बार या पाँच बार या सात बार जहाँ तक शोध सके शोधे । यद्यपि गन्धक के

दोष तो एक बार शुद्धि से ही नष्ट हो जाते हैं, तथापि "शुद्धस्य शोधनं गुणाधिक्याय" इस न्याय से बार-बार शुद्धि गुण वृद्धि के लिये की जाती है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

तप्ताम्बुनिर्धौतविशुष्कपिष्टो लीढः स योगैरुत केवलोऽपि ।
कालं कियन्तं न शरीररोगं शिनाष्टि कश्चिद् विशिनष्टि योगम् ४

जब गन्धक शुद्ध हो जाय तब इसको गरम पानी में धोकर और सुखाकर दो-तीन दिन तक नीबू के रस में व गुलाबजल में या अन्य औषधी जो अपने को इष्ट हो, उसके कषाय में घोटकर सुखा ले । इस परम विशुद्ध गन्धक को यदि शहद के साथ कुछ काल तक चाटे तो मन्दाग्नि आदि अनेक रोग नष्ट हों और इसको जिस योग में डाले वह बहुत गुणकारी हो ॥ ४ ॥

चलत्कुचश्रोणिकरोरुकाभिर्गायन्तिकाभिर्वनिताभिराभिः।
निर्मथ्यमाने खलु तक्रराजे गन्धस्य शुद्धिं कुरु वैद्यराज ! ॥५॥
आघातजन्या गुणसन्ततिःस्यात्तक्रे तथा दुग्धसिताम्बुपेये ।
श्रीसूतराजेऽप्युत योगराजे पलङ्कषे यूनि च मल्लयुद्धे ॥६॥

इस गन्धक को जिस छाछ में शोधे उस छाछ के बनाने की यह विधि है कि— तीन चार स्त्रियाँ खूब जोर से दही को बिलोवें । बिलोते समय जिनके कुच, नितम्ब आदि सर्व अङ्ग खूब हिलते रहें । जैसा कि आजकल गावों में ताकतवर जमींदारिन गूजरी अहीरी बिलोया करती हैं । तात्पर्य्य यह है कि छाछ में जितने धमरके अधिक लगेंगे, उतना ही उसमें गुण बढ़ेगा । इस प्रकार समाघातित तक्र (छाछ-मट्ठा) के शास्त्रकारों ने भी बहुत गुण माने हैं । जैसा कि—"न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः । यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः" । अर्थात् उक्त छाछ का जो मनुष्य सेवन करते रहते हैं उनके शरीर में कभी रोग ही नहीं होता है । देवताओं को आनन्द देनेवाला जैसा अमृत है, तैसा ही इस पृथ्वी पर मनुष्यों के

लिये अमृतरूप छाछ है। पाठक वृन्द ! ये कहे हुए छाछ के सर्वगुण आघात (धमरके) से ही जन्य हैं। यदि दही में पानी मिलाकर कोई सेवन करे तो वे गुण प्राप्त नहीं हो सकते। ऐसे २ बहुत उदाहरण हैं, जिनमें आघात से ही गुणवृद्धि होती है। जैसे कि दूध में पानी और मिश्री मिलाकर पीने से उतना गुण प्रतीत नहीं होगा, जितना कि लस्सी से, अर्थात् आध सेर दूध आध सेर पानी छटाँक भर मिश्री या खाँड़ इन तीनों चीजों को मिलाकर लम्बी धार से दो लोटाओं में सौ बार अदल बदल करके लस्सी बनाकर पीवे तो सर्वदाह शान्त हो जाय, पेशाब खुलकर हो, मूत्राघात (चिनग आदि) रोग नष्ट हो जाते हैं। और योगराजगूगल में भी लक्षाघात (लाखचोट) देने से उसके कहीं गुण बढ़ जाते हैं, और पारदप्रकरण में तो शास्त्रकारोंने पदे पदे लिखा है कि–"मर्दनाख्यं हि यत्कर्मतत्सूते गुणकृद्भवेत्"। अर्थात् पारद को जितना अधिक घोटा जाय उतना गुण उसमें अधिक बढ़ जाता है। और बराबरके जोटियों के साथ कुस्ती लड़ने से चोट लगने में पहलवान में पहले से कहीं बल बढ़ जाता है ॥५॥६॥

गन्धकशुद्धेर्द्वितीयः प्रकारः–

रसायनार्थी परिशोधयेत गन्धं विधानैरनुवक्ष्यमाणैः।
रसेन पूर्णाः परिपक्ववीर्य्या वर्णेन कृष्णा मसृणप्रकाशाः॥१॥
भल्लातकास्तैलविधौ प्रशस्तास्तत्तैलकृष्टिं च चिकीर्षुरार्य्यः।
नदीरजःपूरितलोहनालिपातालयन्त्रेनिहितात्तुतैल्यात् ॥२॥
कूप्यां भृतादाशु परिस्रुतं स्यात्तैलं प्रयासेन विनैव सर्वम्।
तैलेन[1] तैलेन सुभङ्गमज्ज्ञा[2] वस्त्रेण वा रक्षितसर्वकायः ॥३॥
भल्लातकाँल्लोहजखल्वके च संकुट्टय कूप्यां भरतु प्रयत्नात्।
तत्तैलसम्पर्कितकायमध्ये भवन्ति कण्ड्वादिविकारजाताः४

नोट—१ तैल–तिल से निकाला हुआ। २ सुभङ्गमज्जा नारियल की गिरी।

तच्छान्तिकामः परिमर्दयेत सुभङ्गमज्जां तिलकल्कमेतौ ।
खादेद्दिनान्याशु च पञ्चषाणि जाता विकाराश्च शमं व्रजन्ति ५।

गन्धकशुद्धि का दूसरा प्रकार-

जिस मनुष्य को गन्धकरसायन सेवन करना हो वह इस प्रकार गन्धक का शोधन करे। जो भिलावे कालेवर्ण के, रसभरे, बहुत चिकने, मोटे-मोटे होंय, उनका तेल बहुत अच्छा निकलता है। उसकी रीति यह है कि यदि शीशी का मुख सकरा होय तो भिलावों को लोहेके खरल में कूटकर इतने छोटे टुकड़े करले जिसमें शीशी में भरसकें। उस शीशी में उन भिलावों के टुकड़ों को चिमटा से उठा-उठा कर भरे हाथ से न छूवे नहीं तो हाथ में खुजार और शोथ हो जायगा। उस शीशी के मुख में लोहेके तारों की डाट भरकर बालुकागर्भपातालयन्त्र के द्वारा बड़ी आसानी के साथ तेल निकाल ले। परन्तु जिस समय भिलावों को कूटे तब हाथ पैरों में तिल का तेल और नारियल का तेल चुपड़ ले, तथा हाथोंपर कपड़ा बाँध कर सब शरीर को भी कपड़े से ढांक कर रक्षित कर ले, जिससे भिलावों के तेल का कहीं छींटा न पड़ जाय, नहीं तो शरीर में खुजली, फलक (फपोला) शोथ आदि अनेक विकार उत्पन्न हो जाँयगे। भूल से यदि भिलावों का तैल लग जाय और उससे खुजली, सूजन हो जाय तो तिल और नारियल की गिरी को पानी में खूब पीस कर शरीर पर मलता रहे, और उन दोनों चीजों को आधपाव छटांक रोज खाया भी करे, इस प्रकार पाँच छः दिन करने से सब विकार शान्त हो जाँयगे ॥१।२।३।४।५॥

कूपी भवेद्व्यात्तमुखी यदा तु काचिद्विपन्नाभि भवेत्तदा तु ।
कटाहिकायां मृदुवह्नियोगैर्गन्धं सुभल्लातकतैललीनम् ॥६॥
वरा¹कषाये शुकपुच्छमेनं रसे गुडूच्या उत वापयेत ।
उक्तप्रकारेण विशुद्धगन्धं तप्ताम्बुनि क्षालितशुष्कपिष्टम् ।७।

---

१ वरा-त्रिफला ।

यष्ट्याः कषायेण दिनानिपञ्च पाषाणखल्वे खलु भावयेत।
तत्तद्विकारानुगुणान् पदार्थान् समीक्ष्य बुद्ध्या परिशोधयेत८

यदि शीशी चौड़े मुख की होय, जिसमें साबुत भिलावे घुस सकें, जिसमें भिलावों को कूटने की नौबत ही नहीं आवे तब तो और भी अच्छा। तेल चुपड़ना, शरीर को रक्षित करना यह सब झंझट करने ही नहीं पड़ें। फिर हाथों में तेल चुपड़कर उन भिलावें के आधपाव तेल में आधसेर आमलासार गन्धक (सूआपंखी मिलजाय तो और भी उत्तम) के चूर्ण को डाल कर, कढ़ाई में रखकर ऐसी मन्दी आँच दे, जिसमें गन्धक तो जलने नहीं पावे, और टिघल कर तेल और गन्धक एक हो जांय। बाद उस कढ़ाई में त्रिफला का क्वाथ अथवा गुरुच का स्वरस डालकर कलछी से चलावे। जब गन्धक ठंढी पड़कर जमजाय तब भिलावों का दूसरा तेल डालकर उक्तविधि से दो बार शोधन और करे। यदि तीन बार शोधन नहीं हो सके तो एक बार तो अवश्य ही करे।

इस प्रकार शुद्धि करने का तात्पर्य्य यह है कि अपने को गन्धक रसायन बनाना है तो गन्धक का शोधन भी रसायन पदार्थों से ही होना चाहिये। चरकाचार्य्य आदि महर्षियों ने भिलावे और त्रिफला तथा गुडूची को परम रसायन माना है, और भल्लातक रसायन, त्रिफला रसायन आदि अनेक प्रयोग चिकित्सा स्थान में लिखे हैं, उसके अनुसार और भी जो पदार्थ तेल निकालने लायक हो उसके तेल में गन्धक को गलावे, और क्वाथ या स्वरस के योग्य पदार्थों के रस में ठंढी करे। जब गन्धक शुद्ध हो चुके तब गन्धक को गरम पानी से धोकर और सुखाकर मुलहठी के क्वाथ में पाँच चार दिन तक घोटकर तथा सुखाकर रख छोड़े ॥६।७।८॥

कोष्ठस्य शुद्ध्या अथ गालयेत जैपालतैले शुकपुच्छगन्धम्।
ऐरण्डतैलेऽप्युत वापयेत चारग्वधोत्थेऽम्बुनि कार्ष्णबीजे६

---

१ यष्टि—मुलहठी। २ कार्ष्णबीज-कालेदाने का क्वाथ।

कोष्ठ शुद्धि के लिये जमालगोटे के तेल में गन्धक को गलाकर अथवा रेंड़ी के तेल में गलाकर अमलतास के गूदे के रस में अथवा कालेदाने के क्वाथ में ठंढी करे। गुद्दे का रस निकालने की यह विधि है कि—अमलतास की फलियों को कूटकर पानी में डाल दे। बाद दो तीन घंटे तक लोहे की कड़ाही में रख कर आँच दे, शीतल हो जाने पर क्वाथ को कपड़े में छान ले। कालादाना सर्वत्र मिलता है जिसको वैद्यलोग जुलाब के काम में लिया करते हैं। इसी प्रकार और जो कोष्ठ शुद्धि करनेवाले पदार्थ हैं, उनके तेल में गन्धक को गला ले और रस में ठंढी करे। जितनी बार गन्धक की शुद्धि पूर्वोक्त चीजों में करे उतना ही अच्छा है, नहीं तो एक बार तो अवश्य करे ॥९॥

कफार्त्तिनाशाय कलिद्रुमास्थि[1]तैले कषायेऽथ च शोधयेत।
वातोत्थरोगे त्वथ गालयेत तैलेऽश्वगन्धाम्बुनि वापयेत१०॥

कफ के प्रकोप को नष्ट करने के लिए बहेड़े की मींगी (गिरी) के तेल में गन्धक को गलावे और उसीके क्वाथ में ठंढी करे। वातव्याधि के लिये तिल के तेल में (अथवा रेंड़ी के तेल में) गन्धक को गलावे और असगन्ध के क्वाथ में ठंढी करे ॥१०॥

दाहार्त्तिनाशाय गवां घृते तु शुके[2]ष्टवीजाम्बुनि शोधयेत।
एवंप्रकाराः परिकल्पनीयाः शतं सहस्रं वलि[3]शोधनस्य ११॥

दाह रोग में गौके घृत में गन्धक को गलावे और अनारदाने के रस में ठंढी करे। इसी प्रकार और तत्तद्दोषनाशक औषधिओं के गुण देखकर हजारों प्रकार से गन्धक की शुद्धि कर सकते हैं। जितनी गन्धक अपने को शुद्ध करनी हो उससे चतुर्थ भाग तेल आदि स्नेह पदार्थ लेना चाहिये, और रस गन्धक से दूना लेना चाहिये।

जमालगोटे आदि जिन पदार्थों का तेल निकालना हो "बालुकागर्भपातालयन्त्र" अथवा "पातालयन्त्र" से निकाल ले। इन यन्त्रों की विधि चित्रों सहित इसी रसायनसार प्रथम भाग में लिख चुका हूँ ॥११॥

---

१ कलिद्रुमास्थि—बहेड़ा की गुठली की मींगी। २ शुकेष्टवीजाम्बु—अनारदाने का रस। ३ वलि—गन्धक।

गन्धकरसायनम्—

स्तन्यंगवां त्वङ्मरिचं दलैला-
पथ्यागुडूच्यक्षकधात्रिकाश्च ।
व्योषं त्रिधा चार्द्रकभृङ्गराजा-
वेतैःपृथक् चाष्टविधं विभाव्य ॥ १ ॥

भल्लातकस्नेहवराकषायैः कृतं विशुद्धं बलिमम्लसारम् ।
शुष्कं सितातुल्यमथो विमर्देद् रसायनं गन्धकनामधेयम् ॥ २ ॥

गन्धकरसायन—

पूर्वोक्त रीति से भिलावे के तेल में और त्रिफला के क्वाथ में तीन बार या एक बार आमलासार गन्धक को शुद्ध करके गरम पानी में धोकर तथा सुखा कर नीचे लिखी १४ चीजों की आठ-आठ भावना दे। (अर्थात् प्रत्येक औषधियों के रस में उक्त शुद्ध गन्धक को आठ-आठ बार घोट घोट कर सुखा ले) गाय का दूध, दालचीनी, काली मिरच, पत्रज, छोटी इलायची के दाने, बड़ी हरड की छाल, गुरुच, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, आदी, भांगरा इन १४ औषधियों में जो ऐसी हैं कि जिनका कूट कर रस निकाल सकें उनके तो रस में ही गन्धक को घोंटे, और जो सूखी मिलें उनके क्वाथ में घोंटे। जब सब औषधि के रस की आठ-आठ भावना लग चुके तब उस गन्धक के समान मिश्री (आध सेर गन्धक होय तो आध सेर ही मिश्री) मिलाकर दोनों को खूब घोंट कर किसी पात्र में रख छोड़े. इसको गन्धकरसायन कहते हैं ॥ १ । २ ॥

धारोष्णगव्येन निषेवणीयं
कर्षं यथासात्म्यमथ द्विसंध्यम् ।
यथाग्नि रोचिष्णुगरिष्ठभोक्ता
चानम्लसिन्धूद्भवभोजिनात्रा ॥ ३ ॥

गन्धकरसायन सेवी मनुष्य को प्रकृति के अनुसार इसकी १ तोले तक की मात्रा है। धारोष्ण (तुरन्त ताजा) गौ के दूध के साथ इसको प्रथम प्रातःकाल ही लेना शुरू करे, जब माफकत आ जाय तब दोनों समय (सायंकाल, प्रातःकाल) सेवन किया करे। और अपनी जठराग्नि के माफिक जलेबी, इमरती, लड्डू, चूरमा जो अपने को रुचिकर होय उत्तम-उत्तम पदार्थ खाया करे परन्तु गन्धक सेवन के समय नमक, खटाई बिलकुल त्याग दे। ब्रह्मचर्य पाले ॥ ३ ॥

सर्वप्रमेहाग्निमृदुत्वशूलान् कुष्ठानि तज्जातविकारसंघान्।
शमीकरोत्येष समीकरोति धातूनधातूँस्तु दमीकरोति ॥४॥

इस गन्धकरसायन के सेवन से सर्व प्रकार (२० प्रकार) के प्रमेह, मन्दाग्नि, शूल, सर्व प्रकार के कोढ़, और कोढ़ रोग में उत्पन्न होने वाले अन्य रोग नष्ट होते हैं। यह विषम धातुओं को समान करता है। तथा धातुओं के विरोधी मल, मूत्रादि प्रकोप को भी नष्ट करता है ॥ ४ ॥

योगेन भल्लातकजेनवैद्या
विधित्सवःसन्ति रसायनं तत् ।
तत्स्थं तु पामादिविकारजातं
निरीक्ष्य ते बिभ्यति सेवितुं च ॥५॥

सभी रोगी तथा वैद्य भल्लातक रसायन के प्रयोग को देख कर चाहते हैं कि हम भी भल्लातक रसायन बनावें, परन्तु भल्लातक (भिलावा) किसी मनुष्य को तो माफकत आते हैं और किसी के खुजार शोथ आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये भल्लातक प्रयोग में लोगों की मन्दरुचि होती है ॥ ५ ॥

गन्धस्य योगं समवाप्य नैजान्
दोषान् जहत्येव यदा विषाणि ।

तदाकियान् दोषविमुक्तिलोभी
भल्लातकः स्यान्ननु भावुकार्याः ॥६॥

परन्तु भिलावा के तेल में उक्त विधि से गन्धक शोधकर गन्धक-रसायन बनाकर सेवन करने से भिलावे के सर्वविकारों को गन्धक नष्ट कर देती है। जब संखिया, बच्छनाग आदि महाविषों के मारकत्वादि दोषों को ही इसने नहीं रहने दिये तब भिलावा बिचारा कौन गणना में है? "दोषोप्यस्ति गुणोप्यस्ति निर्दोषो नैव जायते" इत्यादि न्याय से संसार के सभी पदार्थों में गुण और दोष रहा करते हैं परन्तु विष-मोदक के समान दोषों के संपर्क से गुण भी त्याज्य हो जाते हैं परन्तु जब भल्लातक, संखिया, हरिताल, वत्सनाभ आदि के महादोषों को गन्धक चाट गयी तब महा गुणशाली उक्त वस्तु (गन्धकरसायन, मल्लचन्द्रोदय, तालचन्द्रोदय, विषचन्द्रोदय) आबाल वृद्ध सभी मनुष्यों को उपादेय हैं ॥ ६ ॥

दोषा भवन्तीति भयेन हेया
गुणाः स्युरित्यध्यवसायबुद्धिः ।
कुबुद्धिरेवास्त्यथ किन्तु दोषा
यथा विनङ्क्ष्यन्ति तथाभ्युपेयम् ॥ ७ ॥

यह भी एक सर्वविद्वत्संवादी सिद्धान्त है कि जिस वस्तु में महा-दोष होता है उसी में महागुण हुआ करता है। अथवा यों कहिए कि "यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः। निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति" इस न्याय से जो महाअनर्थकारी पदार्थ होता है, उसी में महोपकारी गुण भी रहा करते हैं। इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि महादोषों का शमन करके उसके गुणों का संग्रह करे, न कि दोषों के भय से गुणों का भी सर्वथा परित्याग ही कर बैठे। जैसा कि भाष्यकार महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है कि "नहि मृगाः सन्तीति धाना नोप्यन्ते नहि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधि श्रीयन्ते

प्रतिविधेयं दोषेषु" अर्थात् यह बात नहीं है कि जंगल में हरिण बहुत हैं सो धान न बोया जाय या भिक्षुक बहुत आते हैं तो उस भय से रसोई करना छोड़ दिया जाय किन्तु उक्त दोषों का बाड़ लगा कर, किवाड़ बन्द करके प्रतीकार करना चाहिये। सब का सारांश यह हुआ कि जैसे मैंने भिलावा, संखिया आदि के दोषों को निकाल कर गुणों का संग्रह किया है इसी प्रकार बुद्धिमान् दोषों को बचा कर गुण संग्रह करें ॥ ७ ॥

गन्धकरसायनस्य द्वितीयः प्रकारः—

उक्तप्रकारेण च सप्तकृत्वो गन्धं विशोध्याथ च संप्रपिष्य।
धारोष्णसेवी कृतकोष्ठशुद्धिः फलं प्रदिष्टं लभते मनुष्यः॥१॥

गन्धकरसायन का दूसरा प्रकार—

पूर्वोक्त विधि के अनुसार भिलावे के तेल में आमलासार गन्धक को सात बार शुद्धि करके गन्धक को गरम पानी से धो डाले। बाद सुखा कर तीन दिन तक त्रिफला के क्वाथ में घोटे। गन्धक के समान मिश्री मिला कर धारोष्ण गो दुग्ध के साथ सेवन करने से भी पूर्वोक्त गुण (प्रमेहादि नाश) होते हैं, परन्तु रसायन सेवी प्रथम वमन, विरेचन से कोष्ठशुद्धि कर ले। पथ्यपालनादि भी पूर्व के समान जानना ॥ १ ॥

गन्धकशुद्धेस्तृतीयः प्रकारः—

पादांश आज्ये परिलीनगन्धो द्विर्वृत्तदुग्धे परिवापितश्च।
त्रिधैकधा वैष च योगयोग्यः संसेवनार्थाय तु पञ्चकृत्वः॥१॥

गन्धकशुद्धि का तीसरा प्रकार—

सिन्दूररस आदि बनाने के लिये या किसी योग में डालने के लिये गन्धक की शुद्धि इतनी ही पर्य्याप्त हो सकती है कि—लोहे की कड़ाही में गन्धक से चतुर्थांश घृत डाल कर गन्धक को गला ले।

और प्रथम शुद्धि के अनुसार मट्टी की नाँद में गन्धक से दूना दुग्ध भर कर उसके मुख पर पतला, नवीन कपड़ा बाँध कर उस गन्धक को कपड़े के ऊपर छोड़ दे और कलछी से चलाता जाय। गन्धक दूध में जाकर नाँद के पेंदे में जमती जायगी और घृत दूध के ऊपर तैरता रहेगा। इस प्रकार नवीन नवीन घृत और नवीन-नवीन दुग्ध डाल कर तीन बार शुद्धि कर ले। अथवा एक बार शुद्धि करने से भी काम चल जाता है। परन्तु गन्धक खाने के लिये तो पाँच बार ही शुद्धि करनी चाहिये। दूध के ऊपर से जो घृत इकट्ठा होता जाय उसको भी तपा कर किसी पात्र में रख छोड़े। वह रक्त शुद्धि के लिये खाने में दिया जा सक्ता है ॥ १ ॥

गन्धकशुद्धेश्चतुर्थः प्रकारः—

घृते चतुर्थांशमितेऽम्लसारं द्रुतं पलाण्डुस्वरसे द्विवृत्ते।
संशीतयेद्भूय इतीत्थमेनं वारांश्च पञ्चाशतमाविदध्यात् ॥१॥

गन्धक शोधन का चौथा प्रकार—

दो सेर आमलासार गन्धक के शोधने के लिये आध सेर घृत लोहे की कड़ाही में डालकर उसमें दो सेर गन्धक को कूटकर डालदे बाद ऐसी मन्दी आँच लगावे जिसमें गन्धक जले नहीं और द्रुत होकर घृत में मिल जाय। इसको चार सेर प्याज के रस में छोड़ दे। तल-भाग में जमी हुई गन्धक को निकाल कर और कूटकर फिर आध सेर घृत कड़ाही में डालकर गन्धक को पूर्व की तरह द्रुत करे। और जिसमें गन्धक शोधी जा चुके उस रस और घृत को अन्य पात्र में जमा करता जाय। इस प्रकार पचास बार गन्धक को शोधे ॥ १ ॥

पलाण्डुसंकुट्टनगालनाय प्रवर्त्तमानाः कतिचिच्च कश्चिद्।
द्रवीकरोत्याशु घृते रसे तु शीतीकरोत्येकदिने गते तु ॥२॥

गन्धक के शोधने के लिये प्याज का रस ताजा लिया जाता है इसलिये दो-चार मनुष्य तो प्याज को कूटने तथा रस निचोड़ने में

लगा दिये जाँय और एक आदमी घृत में गन्धक को गलाने व रस में बुझाने के काम में लगा रहे । इस तरह करते करते जब दिन व्यतीत हो जाय तब, ॥ २ ॥

रसं घृतं चापि महाकटाहे
पचेत यावद्रसशोषणं स्यात् ।
मृत्स्निग्धपात्रे भरतां समस्तं
स्थिरे घनेंशे घृतमाददीत ॥३॥

दिन भर शोधने से जो घृत मिला हुआ प्याज का रस संगृहीत किया हुआ है उसको किसी बड़े कड़ाह में रखकर पकाना शुरू करे । जब रस जल जाय, और घृत ऊपर तिरता मालूम होय, तब एक चिकने हंडे में भर कर रख छोड़े । रात्रिभर में रस का गाढ़ा अंश तो हंडे के पेंदे में जम जायगा और घृत ऊपर तिरता हुआ निर्मल रूप में मिलेगा । उसको निकाल कर किसी पात्र में भर कर रख छोड़े । इस घृत को पक्षाघातादि महावातव्याधित पुरुष को खाने व लगाने को देने से बहुत आश्वासजनक होता है परन्तु यह गरम होता है इसलिये इस घृत का उपयोग शीतऋतु में करे । तथा योगराजगूगल में इसको डाल-डाल कर लक्षाघात दे तो योगराजगूगल तत्काल चमत्कार दिखावे ॥ ३ ॥

एवं व्यतीतेषु दिनेषु षट्सु
गन्धो विशुध्येदखिलार्थकारी ।
रक्तोद्भवानां च कफोद्भवानां
रुजांविनाशाच्च चलोद्भवानाम् ॥ ४ ॥

इस रीति से छः दिन में पचास बार गन्धक शुद्ध हो जाती है । यह गन्धक रक्त विकार (दद्रु पामा प्रभृति) तथा कफ विकार और वातव्याधि में बहुत ही उपकारी वस्तु है ॥ ४ ॥

किट्टेऽष्टघस्रान् परिपाचयेत
सेटार्द्धकं हिंगुलमेतदुग्रम् ।
सुवर्णसिन्दूररसोऽस्य योगा-
च्चन्द्रोदयस्पर्धिगुणोनुभूतः ॥५॥

गन्धकांश तथा घृतमिश्रित जो हंडे के पेंदे में जमा हुआ घन पदार्थ रस का किट्ट है उसमें आधसेर हिंगुल को रखकर आठ दिन तक पकाने से हिंगुल भी एक अपूर्व हो तैयार हो जाता है।

इस गन्धक के योग से षड् गुणगन्धकजारित स्वर्णसिन्दूर बनाया जाय तो चन्द्रोदय के समान गुणकारी बने । तथा जिस योग में इस गन्धक को डाले वही योग बहुत बलवान् सद्यःफलकारी होय ॥ ५ ॥

गन्धकविकारशान्तिः—

गोपयस्तद्घृतेनाढ्यं पिबेद्गन्धविकारवान्
दिनानि पञ्चसप्तानि निर्विकारः सुखीभवेत् ॥१॥

गन्धक के विकार की शान्तिः—

जिस मनुष्य को अशुद्ध गन्धक खाने से ताप भ्रमादि विकार उत्पन्न हो गये हों, वह पांच सात दिन तक गौ के दूध में गौ का घृत डालकर पीया करे, और दूसरा भोजन सब त्याग दे, तो वे विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥
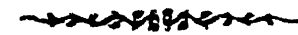
पारदबुभुक्षाविधिः—

हालाहलो ब्रह्मसुतः प्रदीप हारिद्रकः शृङ्गिकवत्सनाभौ ।
सौराष्ट्रिकः सक्तुककालकूटावेतद्यथालाभविषेषु सूतम्॥१॥

संमर्द्यसंमर्द्य पृथक्स्थितेषु
सप्ताथवा त्रीण्डमरूकयन्त्रे।
उत्थाप्य चोत्थाप्य पुनःपुनस्तं
क्षाराम्लवर्गे परिपाचयेत ॥२॥

पारद की बुभुक्षाविधि-

हालाहल, ब्रह्मपुत्र, प्रदीपन, हलदिया, सींगिया, वच्छनाभ, सौराष्ट्रिक, सक्तुक, कालकूट इन नौ विषों में से प्रत्येक में सात सात बार अथवा तीन तीन बार शुद्ध पारद को घोटकर (ताजा उग्रवीर्य विष मिल जाय तो तीन तीन बार घोटना ही पर्याप्त है, और यदि पुराने मन्दवीर्य विष मिलें तो सात सात बार घोंटना चाहिये) डमरूयन्त्र में बारंबार उड़ाता जाय और क्षारवर्ग तथा अम्लवर्ग में दोलायन्त्र से स्वेदन करता जाय ॥ १ ॥ २ ॥

क्षाराम्लवर्गैर्विषमष्टमांशं सूते प्रदायोत च षोडशांशम्।
मर्देद्दृश्यावधि सूतराजं शुष्के द्रवे पात्यमिमं वदन्ति ॥३॥

यहाँ पर मर्दन करने की ऐसी पद्धति है कि यदि २ सेर पारद होय तो उग्रविष अष्टमांश, (पाव भर) मन्दविष चतुर्थांश (आध सेर) डाले, और क्षार तथा अम्ल का पानी डालकर तब तक घोंटे कि जब तक पारद दीखना बन्द हो जाय, द्रव पदार्थ सूख जाय, फिर उसको डमरूयन्त्र में उड़ाने योग्य समझे। इस विधि से नौ विषों में और सात उपविषों में तिरसठ बार पारद को घोंटना पड़ता है और तिरसठ बार ही डमरूयन्त्र में उड़ाना पड़ता है तथा तिरसठ बार ही दोलायन्त्र में स्वेदन करना होता है। परन्तु इतने विष तो मुझे प्राप्त हुए नहीं थे किन्तु बच्छनाभ, सींगिया और हलदिया बस ये ही तीन स्थावर विष मिले थे इनही में तिरसठ बार घोंट घोंट कर उक्तसंख्या समाप्त करनी पड़ी थी। मैंने नौ विषों को इस वास्ते लिख दिया है कि शायद किसी वैद्यराज को अन्य विष भी प्राप्त हो जांय तो केवल तीन ही विषों में घोंटने की क्या जरूरत है? ॥३॥

वारांश्च सप्तोपविषेषु मर्देत्पृथक्पृथक्चास्य बुभुक्षणार्थम् ।
स्नुह्यर्कमत्तौ हलिनी हयारि गुञ्जाहिफेनोऽनुविषाणि सप्त॥४

बाद सात उपविषों में भी पूर्ववत् क्षाराम्ल योग से सात सात बार घोटे, और प्रत्येक बार डमरूयन्त्र में उड़ा उड़ाकर स्वेदन करता रहे; जिससे पारद में बुभुक्षा उत्पन्न होय। उपविषों के ये नाम हैं—थूहर का दूध, आक का दूध, धतूरे की जड़, कलिहारी, कनेर की जड़, चिरमिठी (घूंघची) की जड़ या बीज और अफीम इनमें कोई चीज ऐसी नहीं है जो नहीं मिले ॥ ४ ॥

संमर्दितं तं गरले तु पश्चा-
दुत्थापयेदुत्थितियन्त्रकेण ।
क्षाराम्लकैर्जागरितोऽथ जात-
वक्त्रः क्षमोऽसौ कवलाय सूतः ॥ ५ ॥

इतनी क्रिया के बाद सर्प के विष और काञ्जी में घोट कर डमरू-यन्त्र में रखकर उड़ाले, और क्षाराम्ल में स्वेदन करले तो सुप्तोत्थित मनुष्य की तरह पारद अति बुभुक्षित होकर ग्रास ग्रहण के लिये समर्थ होता है। सर्प का विष सपेरों से मिल सकता है। वे लोग ऐसी होशि-यारी से सर्प के गले से विष की थैली को निकाल देते हैं जिससे सर्प भी नहीं मरे और विष भी निकल आवे। मुझे भी उनही लोगों से प्राप्त हुआ था ॥ ५ ॥

शङ्खद्रुटङ्कप्रतिसारणीयाः
पानीयसंज्ञो नवसादरोपि ।
गवादिमूत्रोद्भवधातुशुद्धि-
क्षारास्तथान्ये मुखयन्ति सूतम् ॥ ६ ॥

शङ्खद्राव, (जिसकी विधि इसी भाग में लिखी जायगी) सुहागा, प्रतिसारणीय और पाचनीयक्षार, (इन दोनों की विधि परिभाषा प्रकरण में देखिए) तथा सुवर्णादि समस्त धातुओं के शोधने में जिन जिन

औषधियों के स्वरसादि निकाले गये हैं उनका क्षार, सैन्धवादि सर्व लवण भी क्षार के अन्तर्गत ही हैं। इनमें पारद को घोटने या स्वेदित करने से ग्रास ग्रहण करने के लिये पारद के मुख (रुचि) हो जाता है ॥ ६ ॥

ऐरावताम्लातकबीजपूरजम्बीरिकातिन्तिडनिम्बुचुक्राः।
आम्राम्लसारौ करमर्दकाद्याः श्रीसूतराजं खलु बोधयन्ति ॥७

नारङ्गी, अम्बाड़ा, (अमड़ा—जिनका अचार डाला जाता है मोरछली के समान छोटे छोटे फल होते हैं) बिजौरा नीबू, जमीरी नीबू, कागजी नीबू, चूका, कच्चा आम, अमलबेंत (जिसके कि रस्से बटे हुए बाजार में मिलते हैं और पाचकचूर्ण बेचनेवाले भी गाते फिरते हैं कि "चूरन अमलबेंत का आला, जिसको खाय नन्द का लाला") और करौंदा इत्यादि अम्लवर्ग की कांजी में पारद का मर्दन स्वेदन करने से पारद ग्रास ग्रहण करने के लिये जागरूक हो जाता है। जैसा कि "क्षारा मुखकराः सर्वे सर्वे ह्यम्लाः प्रबोधकाः" ॥ ७ ॥

औदर्यवह्नेः खलुमन्दतायां
ग्रासो गृहीतो न जरां यथैति।
सम्यक्फलं यच्छति वा न किंतु
स्वयं स वान्त्यादिगतैर्निरेति ॥ ८ ॥

पारद के ग्रास ग्रहण करने में बुभुक्षा, जागरण, मुखीकरण, कारण हैं। इस बात को युक्तियों से सिद्ध करता हूँ कि—जैसे जो मनुष्य मन्दाग्नि है अर्थात् जिसको भूख नहीं लगी है उसको ग्रास (भोजन) कराया जाय तो वह पचता नहीं और अपना फल प्रदान (बलवर्द्धनादि) भी यथार्थ रूप से नहीं कर सक्ता किन्तु वमन रेचन के द्वारा स्वयं कच्चे का कच्चा ही निकल जाता है ॥ ८ ॥

सुप्तो यथा जातबुभुक्षकोपि ग्रासं ग्रहीतुं क्षमते न यद्वत्।
संजाग्रदप्यस्तरुचिर्मनुष्यो गृह्णन्न दृष्टः कवलं च यद्वत् ॥९॥

और जैसे कोई मनुष्य भूखा भी है परन्तु सुप्त (सोया हुआ) है तो भी भोजन में समर्थ नहीं होता । तथा कोई मनुष्य भूखा भी है और जग भी रहा है परन्तु उसको मुखीकरण (अन्न में रुचि) नहीं है, तो उस हालत में वह भोजन नहीं करता और यदि जबरदस्ती से उसे भोजन दिया जाय तो वमनादि द्वारा निकल जायगा । तात्पर्य यह हुआ कि बुभुक्षा, जागरण, रुचि ये तीनों ग्रास ग्रहण में कारण हैं ॥९॥

तद्वच्च सूतः परिपक्ष्यमाणो ग्रासं पुरातः क्षुधितो विधेयः ।
उन्निद्रतायै रुचये च सूतः संस्वेदनीयो मुनिभिः प्रदिष्टः॥१०

तैसे ही पारद भी विषोपविष के योग से बुभुक्षित, क्षारों के योग से रुचिमान्, अम्लवर्ग के योग से जागरूक होकर ग्रास को पचा सकता है । इसी लिये महर्षियों ने पारद के बुभुक्षादि संस्कार कहे हैं । अर्थात् जो वैद्य परिश्रम और द्रव्य के लोभ से पारद के बुभुक्षादि संस्कार नहीं करके स्वर्ण ग्रास देकर चन्द्रोदय रस बनाते हैं, वे पूर्ण फल के भागी इसलिये नहीं हो सक्ते कि चन्द्रोदय पाक करते समय सम्पूर्ण सुवर्ण शीशी के तल भाग में रह जाता है और सुवर्णसिन्दूर शीशी के गले पर जा लगता है । जो ग्रास पचने को दिया गया है जब वह बिना पचे ही निकल गया तो चन्द्रोदय प्रबलशक्तिक कैसे हो सक्ता है ? ॥ १० ॥

दोषापहृत्याविव पञ्चकर्माण्यू-
र्द्ध्वाधरादीनि यथा क्रियन्ते ।
तथोर्द्ध्वपातादिविधिश्च सूते
संस्कारनाम्ना कथितो मुनीन्द्रैः ॥११॥

जैसे कफ दोष के नाशार्थ वमन, पित्त दोष के नाशार्थ विरेचन, वात दोष के नाशार्थ बस्ति (पिचकारी) आदि पञ्चकर्म मनुष्य के होते हैं, तैसे ही पारद के भी उर्द्ध्वपातन, तिर्य्यक्पातन, आदि १८ संस्कार किये जाते हैं । इस रसायनसार के प्रथम भाग में मैंने १८ संस्कार इस लिये नहीं लिखे हैं कि संपूर्ण संस्कारों का मैंने

अभी तक अनुभव नहीं किया है। परन्तु ईश्वर की कृपा और परिश्रम के आगे १८ संस्कार कुछ दुष्कर नहीं हैं। अनुभव करके अग्रिम भागों में लिखूँगा। बिना अनुभूत किये लिखना मेरी आदत नहीं है॥ ११ ॥

संमर्द्दनं चाप्युभयत्र तुल्यं तुल्यं परीपाकविधानकं च।
कर्मानुसारेण वियोगयोगौ कर्मण्यशक्तेर्नरसूतयोश्च ॥१२॥

जैसे "स्नेहस्वेदोपपादनैः पञ्चकर्माणि कुर्वीत" इस चरक वचनानुसार वमन विरेचनादि पञ्चकर्मों से पहिले स्नेह स्वेद (तैल मालिश बफारा) दिया जाता है तैसे ही पारद का मर्दन स्वेदन किया जाता है। जिससे पारद के सर्व दोष शिथिल हो जाँय, बाद ऊर्द्धपातनादि से पृथक् निकल जाँय। जैसे वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, नस्य कर्म में प्रवृत्त वैद्यराज दृष्टकर्मा और शास्त्रज्ञ होय तो यथावत्प्रयुक्त उन पञ्चकर्मों के प्रताप से मनुष्य रोग से निर्मुक्त होकर सब कार्य करने में समर्थ हो सक्ता है, और यदि अज्ञ वैद्य के पाले पड़ जाय तो वह मनुष्य अपने शरीर का भी सत्यानाश कर बैठे। तैसे ही पारद के बुभुक्षादि संस्कार कोई चतुर, परिश्रमी, रसक्रिया प्रेमी, खर्चीला, मनुष्य करे तो आप भी यश का भागी बने और पारद को भी बलिष्ठ बनाकर अनेक प्राणियों का उपकार करे, यदि उक्त गुणरहित मनुष्य रसक्रिया में प्रवृत्त हो जाय तो पारद सिद्धि तो दूर रही ढीली ढाली मुद्रा देकर पारद को भी खो बैठे। इस लिखने का तात्पर्य यह है कि यह क्रिया मेरी अनुभूत की हुई है बिलकुल सत्य है। वैद्य लोग सावधानी के साथ कार्य्यारम्भ करेंगे तो अवश्य सफलमनोरथ होंगे। इस विषय में बहुत वैद्यों के खण्डन मण्डन श्रीभारतजीवन काशी, श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार बंबई, श्रीवैद्यकल्पतरु अहमदाबाद, वैद्यकपत्रिका पूना समाचार पत्रों में चला था। मुझे यह मालूम नहीं था, कि इसके विषय में इतना खण्डन मण्डन चलेगा, मैंने सब पारद के चन्द्रोदयादि रस बना डाले तब वैद्यों ने कहा कि परीक्षार्थ थोड़ा बुभुक्षित पारद

भेजो मैंने कहा पारद तो नहीं है कोई वैद्य बुभुक्षित करना चाहे तो मैं बतला सक्ता हूँ। परन्तु ऐसा महात्मा आज तक कोई नहीं मिला जो परिश्रम उठाकर और द्रव्य व्यय करके क्रियारम्भ करे। सब कार्य छोड़ कर क्रियारम्भ करने का मुझे तो अवकाश नहीं, और अकेली जान के ऊपर इस भार को पुनः उठाना कुछ दिल्लगी भी नहीं थी, इस क्रियारम्भ में जो परिश्रम मैंने उठाया था उसे मेरा ही चित्त जानता है। दस बीस मनुष्यों की बिना सहायता के कोई दूसरा मनुष्य इस कार्यभार को उठाता तो जानें कहाँ उसकी हड्डी बिखर जाती। मेरी पहलवानी इसी में खर्च हो गयी। तथापि धन्य है विप्र कुल के बालकों को जिन्होंने मेरी सहायता करके इस समुद्र से मुझे पार उतारा। अपना रुपया खर्च करके मैंने वैद्यों को पुनः इसलिये उत्साहित नहीं किया कि यदि उनका रुपया न लगेगा तो बेफिकरी और बेमन से काम होगा जिससे बना बनाया पारद भी यदि कहीं उड़ गया तो द्रव्य नष्ट होगा और अयश भी होगा। इस विषय में जो जो शास्त्रार्थ जिन जिन समाचार पत्रों में हुआ था वे सब पत्र तो मेरे पास सुरक्षित नहीं रह सके तथापि कुछ शङ्कासमाधान किए हुए पत्र मेरे पास हैं उनको भी पाठकों की सेवा में उपस्थित करूँगा। जिससे बुभुक्षित क्रिया का और भी स्पष्टीकरण हो सकेगा ॥ १२ ॥

देयग्रासमीमांसा—

बुभुक्षुसूतस्य चतुर्थभागं
ग्रासं सुवर्णस्य सुशोधितस्य।
दत्त्वाविमर्देत्परिलग्नचेता
दिनद्वयं ग्रासविपाचनाय ॥ १ ॥

पारद में ग्रास देने का विचार—

पूर्वोक्त रीति से पारद को बुभुक्षित करके उसमें चतुर्थांश ग्रास दे, अर्थात् पारद को तोलकर देखले जो एक सेर बुभुक्षित पारद होय तो

शुद्ध किये हुए सुवर्ण को कूटकर पत्र बना ले, उनको पाव भर तोल कर उस पारद में घोटे। घोटते ही तुरन्त सब पत्र पारद में मिल जायँगे। यद्यपि बुभुक्षित पारद में सुवर्ण की डली को भी डालकर घोटे तो भी मिल जाती है परन्तु पत्र करने से घोटने में सुभीता रहता है पारद छलकता नहीं है। बाद बहुत होशियारी के साथ (जिसमें पारद उछलकर बाहर न गिर जाय) दो दिन तक घोटे, जिसमें ग्रास बिलकुल पच जाय ॥ १ ॥

केचिद्वदन्ते कवलं सुवर्ण
पत्राणि शुद्धीरनवेक्षमाणाः ।
तैः सूतराजो मलिनीक्रियेत
दुष्टान्नभुक्त्येव विशुद्धकोष्ठः ॥ २ ॥

आजकल कितने ही वैद्य बाजार से सुवर्णपत्र खरीद कर पारद में घोटकर सुवर्णसिन्दूर, सुवर्णपर्पटी, हिरण्यगर्भपोटली आदि अनेक रस बनाया करते हैं, और शास्त्रकारों ने जो सुवर्ण की शुद्धियाँ लिखी हैं उनपर ध्यान नहीं देते कि यदि बजारू सुवर्णपत्रों से ही काम चलता तो शास्त्रकार सुवर्णशुद्धि क्यों लिखते। वे वैद्य परमविशुद्ध पारद को भी सुवर्ण के दोषों से दूषित करते हैं। जैसे कि वमन विरेचनादि कर्म से बहुत परिश्रम करके किसी मनुष्य के कोष्ठ को शुद्ध किया होय, फिर उस को दुष्टान्न सेवन कराके अनभिज्ञ वैद्य अशुद्ध कर देते हैं ॥ २ ॥

धात्वन्तरस्येव न दुष्टिरस्य
संकुट्टनाद्यैरपि नश्यतीव ।
अतःफलश्रावि वचोऽस्ति भोक्तु-
स्तथापि सूतग्रसनाय नेष्टे ॥३॥

यद्यपि ताम्रादि धातुओं में जितना दोष है उतना सुवर्ण में नहीं है और वह दोष भी पत्रों के बनाते समय सुवर्ण को कूटने से तथा औषधान्तर के योग से नष्टप्राय हो जाता है। इसी वास्ते सुवर्ण पत्र

सेवन करनेवाले को शास्त्रकारों ने "सिद्धं स्वर्णदलं समस्तविषहृच्छूलाम्लपित्तापहम् हृद्यं पुष्टिकरं क्षयव्रणहरं कायाग्निमान्द्यं जयेत् । हिक्कानाहविनाशनं कफहरं भ्रूणां हितं सर्वदा तत्तद्रोगहरानुपानसहितं सर्वामयध्वंसनम्" (अर्थात् सुवर्ण वर्कों के सेवन करने से सम्पूर्ण विष रोग शूल, अम्लपित्त नष्ट हो जाते हैं और वे हृदय को हितकारी, पुष्टिकारक हैं तथा क्षय, व्रण, मन्दाग्नि, हिचकी, आनाह, कफरोग नष्ट होते हैं । गर्भ को हितकारी है और अनेक अनुपान से सभी रोगों को नष्ट करते हैं) ये गुण लिखे हैं । तथापि पारद में ग्रास देने के लिये बजारू सुवर्ण पत्र ठीक नहीं किन्तु सुवर्ण प्रकरण में लिखी हुई विधि के अनुसार शुद्ध किये हुए सुवर्ण को ही ग्रास देना उचित है ॥ ३ ॥

अल्पव्ययेनापि समर्जनीयं
स्वोद्योगलभ्यं परितोषहेतुः ।
शास्त्रोक्तरीत्या परिशुद्धहेम
फलेऽतिशेते तु ततोप्यवश्यम् ॥४॥

क्योंकि वर्कों की अपेक्षा शोधा हुआ सुवर्ण कम दाम में ही पड़ जाता है । और वर्कों को बाजार में खरीदते फिरो । शोधना तो अपने हाथ का काम है जब चाहे शोध ले । तथा अपने हाथ की बनी हुई वस्तु में सन्तोष भी रहता है । और सब से अधिक बात यह है कि शास्त्रोक्त विधि से शुद्ध किया हुआ सुवर्ण वर्कों की अपेक्षा अवश्य गुण में कहीं अधिक होगा । इत्यादि युक्तियों से शोधित सुवर्ण का ही ग्रास देना चाहिये ॥ ४ ॥

संशोधितं कृत्रिमहेम चापि
ग्रासार्हतां नैव बिभर्त्ति सूते ।
सूते यतो नैव फलं स्वकीयं
तात्किन्तु हेतूत्थगुणं प्रसूते ॥ ५ ॥

अब दूसरी बात यह और है कि सुवर्ण दो प्रकार का होता है एक खान से निकला हुआ, दूसरा कृत्रिम (रसायनविधि से ताँबा, चाँदी आदि धातुओं का बनाया हुआ) इन दोनों में से खान के सुवर्ण को शोधन करके पारद को ग्रास देना चाहिये, कृत्रिम सुवर्ण शोधा हुआ भी पारद में ग्रास योग्य नहीं है। क्योंकि कृत्रिम सुवर्ण के ग्रास से पारद में सुवर्ण का गुण नहीं आ सक्ता किन्तु वह सुवर्ण यदि ताम्र का बना होगा तो ताम्र के गुण आवेंगे, यदि चाँदी का बना होगा तो चाँदी के गुण आवेंगे, यदि सीसे को चाँदी बना कर उस चाँदी का सोना बनाकर ग्रास दिया जायगा तो पारद में सीसे के ही गुण आवेंगे ॥ ५ ॥

कार्यं न हेतूत्थगुणान्जहाति
शतौषधीभावितसूतराजः ।
तत्तत्समस्तांश्च गुणान्ददानो
निदर्शनं चात्र सुयुक्तियुक्तम् ॥ ६ ॥

इसमें युक्ति यह है कि कार्य अपने कारण के गुण को कभी नहीं छोड़ता है इस बात की पुष्टि के लिये स्पष्ट दृष्टान्त यह है कि पारद गन्धक की कज्जली में सैकड़ों औषधियों की भावना देकर सिन्दूरादि रस बन जाते हैं और उनमें पृथक् पृथक् सैकड़ों ही प्रकार के गुण भी देखे जाते हैं। इस बात का पोषक एक लौकिक दृष्टान्त भी याद आ गया है कि—एक जमात में तीन साधू थे, तीनों ने तीन पद बनाए। पहिले ने बनाया कि "राम नाम लाडू गोपाल नाम खीर हरि का नाम मिश्री तू घोर २ पी" दूसरे ने कहा कि "राम नाम की ढाल बनाई कृष्ण कटारी बांध लिया विष्णु नाम समशेर बनाई जम का द्वारा जीत लिया" तीसरा बोला कि "सांई मेरा बाणियां बणिज करे व्योपार बिना तराजू पालड़े तौल दिया संसार" जमात ने विचार किया कि एक जमात के साधुओं ने तीन प्रकार के पद क्यों बनाए ? फिर निश्चय हुआ कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य थे। साधू होने पर भी अपनी

जाति के गुण (खाना, लड़ना, तोलना) गए नहीं। इस से यह सिद्ध हुआ कि कृत्रिमसुवर्णग्रास से पारद में सुवर्ण के गुण नहीं आवेंगे किन्तु मूलधातु ताम्रादि के ही गुण आवेंगे ॥ ६ ॥

बुभुक्षित परीक्षा—

विमर्दनादृष्टसुवर्णसूतो घनेन वस्त्रेण च गालनीयः। निःशेषतांयन् नच वस्त्रशिष्टः शिष्टैः स दिष्टश्च बुभुक्षुरेव॥१

बुभुक्षित पारद की परीक्षा—

पूर्वोक्त विधि के अनुसार पारद को बुभुक्षित करके इस प्रकार परीक्षा करे कि—बुभुक्षित पारद में शुद्ध किया हुआ चौथाई सुवर्ण डाल कर दो दिन तक घोटे, बाद गाढ़े कपड़े में छाने यदि वस्त्र के ऊपर कुछ भी बाकी न रहे (अर्थात् वस्त्र से सम्पूर्ण निकल जाय) तो उसको बुभुक्षित समझे। क्योंकि यदि पारद बुभुक्षित न हुआ होता तो कपड़े के ऊपर कुछ न कुछ सुवर्ण अवश्य बचता ॥ १ ॥

संगाल्यमानोपि पटेन सूतोयःशिष्यते चेद्गुलिकात्मकस्तु। स्वेद्यश्च मर्द्यश्च पुनः पुरोवज्ज्ह्याद्यतोसौ निजशेषभावम्॥२

यदि छानते समय पारद वस्त्र में से निकल जाय और कपड़े के ऊपर कुछ सुवर्ण की गोली सी बच रहे तो समझ ले कि अभी पारद पूर्ण बुभुक्षित नहीं हुआ है। तो फिर पूर्व की तरह क्षारवर्ग तथा अम्लवर्ग (काञ्जी आदि) में स्वेदन मर्दन करे जिससे कि बाकी बचा हुआ सुवर्ण भी निःशेष हो जाय ॥ २ ॥

संशेरते केचन बुद्धिपश्याः सूतातिसंघर्षित हेमधातुः। सूक्ष्मस्वरूपेण घनेपि वस्त्रे निर्याति चेदत्र किमस्तिचित्रम्॥३

यहाँ पर कितने ही विद्वानों की यह शङ्का है कि वस्त्र के द्वारा सुवर्ण सहित सम्पूर्ण पारद निकल जाने से बुभुक्षित नहीं समझा जा सकता, क्योंकि पारद एक ऐसी सूक्ष्म वस्तु है कि जिसके साथ सुवर्ण को अत्यन्त घोटने से सुवर्ण इतना सूक्ष्म हो जा सकता है कि

पारद के साथ ही साथ वस्त्र से निकल जाय तो कौन आश्चर्य्य है ? तब ऐसी दशा में बुभुक्षित पारद की परीक्षा किस प्रकार हो ? ॥ ३ ॥

उद्धृत्य सूतं डमरूक्रियातः
पश्येदधस्तात्स्थितहण्डिकायाम् ।
स्वर्णं नयायाद्यदि दृक्पथंज्ञो
जीर्णं रसं वेत्तु हिरण्यमत्र ॥ ४ ॥

इसका समाधान यह है कि उस पारद को डमरूयन्त्र में रखकर एक पहर की अग्नि देकर उठाले जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय तब उसकी मुद्रा को खोलकर डमरूयन्त्र के नीचे की हाँडी में देखे, यदि सुवर्ण न मिले तो बुद्धिमान् समझले कि पारद सम्पूर्ण सुवर्ण को खागया है । अर्थात् असली बुभुक्षित हो गया है क्योंकि यदि कुछ भी सुवर्ण बाकी रहा होता तो नीचे की हाँड़ी में जरूर मिलता, कारण कि पारद की तरह सुवर्ण तो उड़ने वाली चीज है नहीं, जो कि पारद के साथ साथ उड़ जाती ॥ ४ ॥

चेच्छिष्यते किञ्चन हण्डिकायां
तन्मर्दनस्वेदनकर्म कुर्यात् ।
एवंविधानैरुपपञ्चवारै
र्निःशेषतामेति समादधामि ॥ ५ ॥

यदि मुद्रा खोलने के बाद नीचे की हाँड़ी में कुछ भी सुवर्ण मिल जाय तो समझ लेना चाहिये कि पारद को बुभुक्षित होने में अभी कुछ कसर है । तब फिर पूर्व की तरह स्वेदन मर्दन करे । इस प्रकार चार छः बार करने से सम्पूर्ण सुवर्ण जीर्ण हो जायगा, और डमरू-यन्त्र के नीचे की हाँड़ी में मलस्थानापन्न कुछ निस्सार भस्म बचेगी ॥ ५ ॥

स्वर्णं यतो नोड्डयितुं क्षमेत
सूतेन्द्रवत्कश्चन येन शङ्की ।

न प्राप्य जीर्णत्वमितं हिरण्यं
स्यादूर्ध्वहण्ड्यास्तलधाम नूनम् ॥६॥

जब यह बात स्थिर है कि पारद की तरह सुवर्ण ऊपर की हाँड़ी में उड़कर नहीं जा सक्ता तब यहाँ पर कोई विद्वान् यह शङ्का नहीं कर सक्ता है कि पारद मे सुवर्ण जीर्ण नहीं होकर ऊपर की हाँड़ी के तल स्थान में उड़ कर जा लगा है ॥ ६ ॥

हेमापि सूतेन सहैति हण्डीमनेकसँस्कारयुतेति शङ्का।
कृताकृतग्रासमानमानं सूतेन्द्रमालोक्य निवर्त्तनीया ॥७॥

यहाँ पर कितने ही विद्वानों की यह शङ्का है कि–यह बात तो ठीक है कि सुवर्ण उड़नेवाली चीज़ नहीं है परन्तु विषोपविष में मर्दन करने से तथा क्षारवर्ग और अम्लवर्ग में स्वेदन करने से पारद इतना प्रबलशक्तिक हो गया है कि इसकी सहायता पाकर सुवर्ण भी ऊपर की हाँड़ी में पारद के साथ ही साथ जा लगे। तब बुभुक्षित पारद की क्या परीक्षा? इस शङ्का का समाधान यह है कि जिस समय पारद में सुवर्ण ग्रास नहीं दिया गया था उस समय जितनी पारद की तौल थी उतनी ही तौल पारद में सुवर्ण ग्रास दे के, तथा डमरूयन्त्र में पारद को उड़ाने के बाद भी बनी रहे तो उक्त शङ्का को अवकाश नहीं हो सकता। अर्थात् मेरा अनुभव ऐसा है कि पारद में जहाँ तक सुवर्ण का भार रहेगा वहाँ तक पारद की बुभुक्षाविधि में अवश्य कुछ न्यूनता रहती है ॥ ७ ॥

केचित्तु संस्कारगृहीतशक्तिं श्री सूतराजं परिगृह्यहेम।
सहैव तेन स्थितिमन्तमाहुर्बुभुक्षितं हैमनगौरवाख्यम् ॥८॥

परन्तु कितने विद्वान तो ऐसा मानते हैं कि पूर्वोक्त प्रकार से सम्पूर्ण बुभुक्षाविधि सम्पादन करने के बाद पारद को डमरूयन्त्र में रखकर उड़ावे जब वह पारद सुवर्ण को लेकर ऊपर की हाँडी में जा लगे, उस अवस्था में सुवर्ण का भार बढ़ भी जाय तो भी वह पारद उत्तम बुभु-

क्षित समझा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि पारद में सुवर्ण को घोटने पर भार बढ़ जाय तो उसको बुभुक्षित नहीं कह सकते किन्तु सुवर्ण को लेकर पारद ऊपर की हाँडी में जालगे और फिर भी सुवर्ण का भार बढ़ जाय तो उसके बुभुक्षित होने में शङ्का नहीं। यह बुभुक्षाविधि जैसी मैंने अनुभूत की थी वही वैद्यों की सेवा में लिखी है ॥ ८ ॥

जैनागमस्त्वाह शतैककर्षा हेम्नो
रसे कर्षमिते व्रजन्ति ।
लयं यथामूर्च्छति नापि भारो
निष्कास्यते चापिततः सुवर्णम् ॥ ९ ॥
तथात्मदेशे निचित स्वरूपाः
शुभाऽशुभाः पौद्गलकर्मवर्गाः ।
निरस्तभाराः पुनरात्मदीपे दीप्ते
तमांसीव पृथग्भवन्ति ॥१०॥

पाठकवृन्द ! पारद की अपार महिमा है देखिए भगवती सूत्र आदि जैन सिद्धान्त के आर्ष ग्रन्थ क्या कह रहे हैं। जैन सिद्धान्त शुभाशुभ कर्मवर्गणाओं को मूर्त्तिस्वरूप मानता है इसलिए वहां पर शङ्का हुई कि यदि कर्मवर्गणा मूर्त्तिस्वरूप हैं तो आत्मा के प्रदेशों पर बैठकर संघात रूप क्यों नहीं हो जातीं ? तथा उनका भार आत्मा में क्यों नहीं बढ़ता ? इसके उत्तर में लिखा है कि जैसे एक तोला पारद में १०० तोले सुवर्ण लीन हो जाता है तथापि सुवर्ण का भार बढ़ता नहीं है, और भी बढ़कर बात यह है कि फिर उस सुवर्ण को यदि निकालना चाहें तो निकाल भी सकते हैं। वैसे ही आत्मा के प्रदेशों पर कर्मवर्गणा इकट्ठी होती जाती हैं और परस्पर लीन होती जाती हैं। तथापि उनका भार नहीं बढ़ता, और केवल ज्ञान-रूपी दीपक जब जागरूक होता है तब अन्धकार की तरह वे कर्म-

वर्गणा आत्मा से निकल कर दूर हो जाती हैं। ऐसी ऐसी बातें शास्त्रों से तथा विद्वानों से मैंने बहुत सुन रखी हैं परन्तु यह ग्रन्थ अनुभूत बात को लिख रहा है इसलिए मैं उन समस्त बातों को लिख कर आप लोगों का समय नष्ट नहीं कर सकता ॥ ९॥१० ॥

सुगमप्रकारेण द्वितीय बुभुक्षाविधिः—

विधाप्य कुण्डं मणपञ्चकाम्भो-
मानं कुलालेन तदावृणोतु ।
पटेन शाणेन दृढीकरोतु
संसीवनेनापि समृत्पटेन ॥१॥

सुगमरीति से पारद की द्वितीय बुभुक्षाविधि—

कुम्हार से एक ऐसा कुण्डा (हौद) बनवावे जिसमें पाँच मन पानी अट जाय, उसको बोरी के टाट से मढदे और सूजा [सूआ] सुतली से सींकर मजबूत करदे फिर उसके ऊपर एक कपरमट्टी भी चढ़ा कर सुखा ले ॥१॥

तद्योग्यगर्त्ते निखनेद् गलान्तं
भरेन्मृदा तस्य महावकाशम् ।
तत्रावपेताग्रनिदर्शितानि
पदार्थजातानि बुभुक्षणार्थम् ॥२॥

बाद एक ऐसा गढ़ा खोदे जिसमें वह कुण्डा आ जाय। उस गढ़े में कुण्डे को गले तक गाड़ कर चारों तरफ के अवकाश को मट्टी से अच्छी तरह से भर कर ठस कर दे, बाद उस कुण्डे में पारद के बुभुक्षित करने वाली, आगे लिखी हुई चीजों को भरदें ॥ २ ॥

दिक्सेटमानं विषवत्सनाभं
तदर्धमानं विषशृङ्गिकञ्च ।

हारिद्रकं तावदपि प्रपूर्य

मणार्द्धमानञ्च पलाण्डुकन्दम् ॥३॥

दस सेर बछनाभ विष, पांच सेर सींगिया विष, पांच सेर हल्दिया विष, (किसी को अन्य विष भी यदि मिल सकें तो वे भी दो-दो सेर डालने चाहिये) बीस सेर प्याज, ॥ ३ ॥

चतुर्थभागं लशुनं मणार्द्धं सिन्धूद्भवं निम्बुरसं चतुर्थम्।
धत्तूरपञ्चाङ्गमथो मणस्य पादश्च वज्रार्कजमूलमर्द्धम् ॥४॥

पांच सेर लहशुन, बीस सेर सेंधा नमक, पांच सेर नीबू का रस, दस सेर धतूरे का पञ्चाङ्ग, (फल पुष्पादि) पांच-पांच सेर सेंहुँड़ और मंदार की जड़, ॥ ४ ॥

स्वर्जी यवाह्वौषरगुञ्जिकाश्च

सेटद्वयोन्मानमितास्तथैषु।

सङ्कुट्य तद्योग्यमथात्र कुण्डे

भृत्वाऽवशिष्टन्तु गवां जलेन ॥ ५ ॥

सज्जी, जवाखार, कलमी सोरा, घूंमची दो-दो सेर। इन चीजों में जो कूटने योग्य वस्तु हैं उनको कूट कर व अन्य वस्तुओं को यों ही भर कर बाकी बचे हुए कुण्डा को गोमूत्र से भर कर लकड़ी से सब चीजों को चला दे, जिसमें सब चीज मिल जाँय ॥ ५ ॥

वलम्बयेत्सूतमथो भृतश्च कुण्ड्या-

मयः शिक्यदृढी कृतायाम्।

शिलापिधानेन पिधायकुण्डं मृदा

निरोध्यापि सवस्त्रया तत् ॥ ६ ॥

बाद हिङ्गुलोत्थ एक सेर पारद को पत्थर की कुण्डी में भर कर उस कुण्डी को लोहे के तारों के छींके में रख कर मजबूती के साथ

बांध दे जिसमें कुण्डी टेढ़ी होकर पारद कुण्डे में गिर न जाय । परन्तु यह भी स्मरण रहे कि पारद को चार तह कपड़े में बांध कर रखे, और कुण्डे के ऊपर अपने मुख आदि अङ्ग को न ले जाय, नहीं तो विष, क्षार आदि की ऊष्मा से मुख जल जायगा । उस छींके को दोलायन्त्र विधि से कुण्डे के मध्यभाग में लटकादे और कुण्डे के मुख पर उसके माप की शिला रखकर मुद्रा करदे । अर्थात् कुण्डे और शिला की दर्ज को चारों तरफ से बालू रेती मिली हुई, चिकनी मट्टी से ल्हेस दे, जिसमें कुण्डे की ऊष्मा बाहर नहीं निकलने पावे, उस मट्टी के ऊपर एक कपरमट्टी और करदे ॥ ६ ॥

इतस्ततो हस्तिपुटोर्ध्ववह्ने-
स्तापं विदध्यादितराग्निनाऽपि ।
ऊर्ध्वस्थवह्निं पिदधीत नान्द्या
सच्छिद्रया वह्निनिरोधहेतोः ॥ ७ ॥

इस गढ़े के इधर उधर कोने पर दो गजपुट बनादे जिनमें अभ्रक लोह आदि के हमेशा पुट लगते रहें जिससे उनकी अग्नि की ऊष्मा कुण्डे में पहुँचती रहे और उस शिला के ऊपर भी दस बारह सेर गोइठा की अग्नि लगादे, जब अग्नि निर्धूमप्राय हो जाय तब अग्नि को लोहे की नाँद से ढक दे । यदि मट्टी की नाँद से ढकना हो तो उसके किनारे पर लोहे के तारों से पांच चार लपेटा देकर बाँध दे, और तीन चार कपरमट्टी भी करदे, जिसमें नाँद अग्नि की तेजी से फूटने नहीं पावे । अग्नि को नाँद से ढकने का यह अभिप्राय है कि आँच जल्दी बुझे नहीं । परन्तु इस नाँद के तलभाग में इतना बड़ा छिद्र भी करदे जिसमें होकर रुपया निकल जाय । छिद्र करने का यह अभिप्राय है कि इस छिद्र के द्वारा वायु का संचार रहने से अग्नि बझने नहीं पावेगी परन्तु यह भी स्मरण रहे कि शिला के ऊपर पांच सेर मट्टी बिछा कर गोइठे सुलगावे, नहीं तो शिला फूट जायगी ॥७॥

तृतीयकोणे विदधीत कोष्ठीं
चन्द्रोदयादेः परिपाचनार्थम् ।
पुटेषु लोहाभ्रकभस्मपाकाः
सम्पच्यमाना भिषजा भवेयुः ॥८॥

इस गढ़े के तीसरे कोने पर चन्द्रोदयादि रसों की भट्ठी भी जारी रहे जिसमें भट्ठी की ऊष्मा भी कुण्डे में पहुँचती रहे अर्थात् गढ़े के दो कोने पर गजपुटों की आँच कुण्डे में लगती रहेगी, तीसरे कोने पर भट्ठी की आँच पहुँचती रहेगी, चौथा कोना खाली रहेगा, और मुख पर ढकी हुई शिला पर सुलगे हुये गोइठों की आँच लगती रहेगी, व कुण्डे के तलभाग में पृथ्वी की गरमी रहेगी तथा कुण्डे के अन्दर विष और क्षारों की अग्नि भवकती रहेगी ॥८॥

रसक्रियैवं खलु मासषट्कं प्रवर्त्ततां सूतवुभुक्षणन्तु ।
विना प्रयासैःस्वयमेव सिद्धं स्यादभ्रकादेर्भसितार्थसिद्धौ ॥६॥

इस प्रकार छः महिने तक रसायनशाला का कार्य्य जारी रखने से सैकड़ों रस भी तैयार हो जांयगे और पारद तो बिना ही परिश्रम अपने आप बुभुक्षित हुआ पावेगा। अर्थात् सर्व धातुओं की भस्म तथा सिन्दूरादि रस बनाने के लिये छः महीने तक क्रियारम्भ करने पर पारद बुभुक्षित करने के लिये कोई नवीन क्रिया नहीं करनी पड़ती ॥९॥

उद्घाट्य मुद्रामवलम्बमानं
कुण्डे रसेन्द्रं समुपाददीत ।
स्वर्णं सुशुद्धं च चतुर्थभागं
ग्रासाय तत्राऽथ विमर्दयेत ॥१०॥

छः महिने के बाद कुण्डे की मुद्रा को खोल कर बहुत होशियारी के साथ कुण्डे में लटकते हुए पारद के छींके को निकाल

कर पारद को निकाल ले। परन्तु यह स्मरण रहे कि मुद्रा को खोलते समय आंख नांक को बचावे नहीं तो कुण्डे से बहुत तेजी के साथ ऊष्मा (बाफ) निकल कर अवश्य अङ्ग भङ्ग कर देगी। इस पारद को तौल कर देखले यदि तीन पाव पारद हो तो चतुर्थांश (तीन छटांक) शास्त्रोक्त विधि से शोधे हुये सुवर्ण का ग्रास देकर मर्दन करे॥१०॥

लीने सुवर्णे घनवस्त्रकेण
सङ्गाल्य सूतस्तु परीक्षणीयः।
शिष्येत वस्त्रे गुलिकात्मकश्चे-
त्स्वेद्यश्च मर्द्यश्च पुनः पुरोवत्॥११॥

जब पारद में सुवर्ण लीन हो जाय तब उसको कपड़े में छान कर परीक्षा करे यदि कपड़े में सुवर्ण की गोली सी तोले दो तोले बच रहे तो पूर्वोक्त विधि के अनुसार क्षारवर्ग और अम्लवर्ग में स्वेदन मर्दन करके उस अवशिष्ट सुवर्ण को भी पचादे॥११॥

नोचेत्पुनश्चात्थितयन्त्रकेण
परीक्षणीयः खलु सूतराजः।
अधःस्थहण्ड्यामवशिष्यते चे-
त्स्वर्णं पुनः पूर्ववदेव कुर्य्यात्॥१२॥

यदि कपड़े में सुवर्ण की गोली न बचे तो उस पारद को डमरू-यन्त्र में रख कर दोपहर की आँच देकर परीक्षित करले। यदि डमरूयन्त्र की नीचे की हांडी में दो चार मासे सुवर्ण रह जाय तो उसको भी उक्त विधि के अनुसार क्षाराम्ल वर्ग में स्वेदन मर्दन करके पचादे॥१२॥

नोचेत्तुलायामथ तोलनीयः
कृताकृतग्राससमानमानः।
बुभुक्षुरेवास्ति रसेन्द्रराजो
मूर्च्छाविधानेन सुमूर्च्छनीयः॥१३॥

यदि डमरूयन्त्र के नीचे की हाँडी में बिलकुल सुवर्ण न बचे तो उसको तौल कर परीक्षा करले कि स्वर्णग्रास देने से पहिले जितना भार पारद का था, उतना ही ग्रास के पचने पर भी मिले तो निश्चय करले कि यह पारद अत्यन्त बुभुक्षित हो गया है। तब वक्ष्यमाण विधि के अनुसार इसका चन्द्रोदय बनावे ॥१३॥

कुण्डस्थकल्कं परिशोष्य सम्यक्
क्षारं विदध्याद्विडसंज्ञकञ्च।
पुनर्बुभुक्षाकरणेऽप्ययं स्याद्
बहूपयोगी प्रबलप्रभावः ॥१४॥

कुण्डे में जितना सामान (विषादि का कल्क) बचा हुआ है उस सबका क्षार बना कर रखले यह भी एक प्रकार का "बिड" तैयार हो जायगा। जो कि पुनः पारद बुभुक्षाविधि में अत्यन्त उपयोगी उग्रप्रभाव होगा ॥१४॥

षण्मासान् रसराजस्य स्वेदनं पावकोष्मतः
भूविषादूष्मतश्चैव हेमग्रासाय जायते ॥१५॥

सारांश यह हुआ कि छः महिने तक उक्त विधि के अनुसार अग्नि की ऊष्मा, पृथ्वी की ऊष्मा, तथा विषादि की ऊष्मा से पारद का स्वेदन करने से वह सुवर्णग्रास के योग्य होता है ॥१५॥

पारदस्य प्रचण्डबुभुक्षा तृतीयविधिः—

श्यामाभ्रकं हाटकमाक्षिकञ्च
द्व्येकांशकं सत्वमुतापिभस्म।
विमर्दयेन्निम्बुरसेन पश्चात्
सेटं रसं सूतविडाष्टमांशैः ॥१॥

पारद प्रचण्डबुभुक्षा की तीसरी विधि–

काली वज्राभ्रक का सत्त्व अथवा भस्म दो भाग, (आधसेर) सुवर्णमाक्षिक का सत्त्व अथवा भस्म एक भाग (पाव भर) दोनों को नीबू के रस के साथ दो तीन दिन तक खूब घोटे, बाद उसके साथ एक सेर हिङ्गुलोत्थ या शुद्ध पारद को बिडयोग से खूब घोटे। पारद से अष्टमांश बिड डाला जाता है (बिड बनाने की विधि पहिले लिख चुका हूँ) ॥१॥

> **अवाप्य योग खलुसूतराजो**
> **बिडस्य सत्त्वानि बुभुक्षतेऽयम्।**
> **सत्त्वं च तद्योगविलीनमूर्त्ति**
> **प्रलीय सूतात्मनि जारितंस्यात् ॥२॥**

बिड के सम्बन्ध से पारद अभ्रकादि के सत्त्वों को अच्छी तरह खाजाता है, और सत्त्व भी बिड के सम्बन्ध से द्रुत होकर पारद में मिल कर जीर्ण हो जाता है ॥२॥

> **सम्मर्दनैर्जातविशोषकल्कं**
> **यन्त्रे डमर्वाख्यक उद्धरेत।**
> **भूयश्च काञ्जीप्रतिसारणीयैः**
> **पाच्येत सूतेऽभ्रकसत्त्वकश्च ॥३॥**

पूर्व्वोक्त पांचों चीजों (अभ्रक सत्त्व या भस्म, स्वर्णमाक्षिक सत्व या भस्म, नीबू का रस, पारद, बिड) का कल्क जब मर्दन करते करते सूख जाय तब डमरूयन्त्र में रख कर चार पहर की अग्निदे स्वाङ्गशीतल होने के बाद फिर कांजी और प्रतिसारणीय क्षार के योग से (प्रतिसारणीय क्षार की विधि परिभाषा प्रकरण में लिख चुका हूँ) जब अभ्रकसत्त्व पच जाय तब स्वाङ्गशीतल करके डमरू-यन्त्र से सब चीजों को निकाल ले ॥३॥

एवं विमर्द्दैदुपपञ्चवारान् जीर्णे-
ऽभ्रसत्त्वे हृतपक्षता स्यात् ।
सङ्घर्षितोत्थापितसूतराजो
ऽभ्रभस्मयोगैस्तु भवेद्बलीयान् ॥४॥

इस प्रकार चार छः बार घोटकर डमरूयन्त्र में उड़ाने से अभ्रक का सब सत्त्व जीर्ण हो जायगा । परन्तु जो पारद के साथ उक्त विधि से अभ्रक का सत्त्व जीर्ण किया जायगा तो "नाधः पतति नचोर्ध्वम्" इत्यादि रसहृदय ग्रन्थ के प्रमाण से पारद छिन्नपक्ष हो जायगा (अग्नि में डालने पर भी नहीं उड़ेगा) और यदि उक्त विधि से पारद को अभ्रकभस्म के साथ घोटा जायगा तो पारद छिन्नपक्ष नहीं हो सकेगा किन्तु अति बलिष्ठ अवश्य होगा । इसमें हेतु यह है कि अभ्रक-भस्म के साथ पारद को घोटकर उड़ाने से पारद को अभ्रक सत्त्व का उतना ग्रास नहीं मिल सक्ता जिससे कि वह छिन्नपक्ष हो, क्योंकि अभ्रकभस्म में थोड़ा सत्त्व होता है उतने ग्रास से पारद की तृप्ति नहीं हो सकती इसमें युक्ति यह है कि जैसे कोई भूखा मनुष्य आधसेर अन्न खाता है, उसको यदि छटांक भर अन्न दिया जाय तो कुछ आधार मात्र होगा पर्य्याप्त भोजनजन्य आलस्य निद्रादि नही आ सकते ॥४॥

शिवारजो गन्धकमभ्रसत्त्वं
तच्छुक्रमेवर्षय आमनन्ति ।
समाभ्रकग्रासमवाप्य सूतो
बलेऽतिशेते शतजीर्णगन्धात् ॥५॥

यद्यपि पारद में गन्धक जीर्ण करने से भी वह बलवान् होता है परन्तु अभ्रक सत्त्वजीर्ण पारद का मुकाबिला नहीं कर सकता क्योंकि शास्त्रकार महर्षियों ने गन्धक को तो पार्वती जी का आर्त्तव माना है और अभ्रक को उनका शुक्र माना है । शिवशुक्र पारद के लिये पार्वती जी का रज और शुक्र दोनों ही प्रिय हैं, परन्तु पुरुष का शुक्र

जितना स्त्री के शुक्र से बलिष्ट होता है उतना आर्त्तव से बलिष्ठ नहीं हो सकता; क्यों कि शुक्र तो रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, इन छः धातुओं का सार हुआ करता है, और आर्त्तव तो शरीर का विकार स्वरूप है। इसलिये समगुण अभ्रक ग्रास को जीर्ण करके पारद शतगुण गन्धक जीर्ण पारद से भी बलवान् होता है। तात्पर्य्य यह है कि गन्धक जारण की अपेक्षा अभ्रक सत्त्व जारण कहीं अधिक गुणकारी है ॥५॥

सत्त्वप्रधानं खलु वज्रमभ्रं
तद् भस्मयोगेन मयाऽपिसूतः।
बलेऽनुभूतोऽतिशयान ईशात्
षड्जीर्णगन्धाद् बिडयोगयुक्तः ॥६॥

वज्राभ्रक में नागाभ्रक, दर्दुराभ्रक, पिनाकाभ्रक की अपेक्षा अधिक सत्त्व हुआ करता है। यद्यपि मैं अभ्रक से सत्त्व को जुदा निकाल कर अभी तक पारद में जीर्ण नहीं कर सका हूँ किन्तु कृष्ण वज्राभ्रक की भस्म के साथ बिड योग से पारद को घोट-घोटकर मैंने परीक्षा की है तो षड्गुणगन्धकजीर्ण पारद से उसमें कहीं अधिक गुण अनुभव किया है (अभ्रक सत्व जारण से पारद को छिन्नपक्ष करके रसायनसार के अग्रिम भागों में लिखने की आशा करता हूँ) ॥६॥

अतोऽभ्रसत्त्वं ननु सूतराजे
सञ्जारयेयुर्यदि वैद्यराजाः।
प्रचण्डक्षुत्खादितसर्वधातुं
मन्ये तमन्येऽपि फलं नयन्ते ॥७॥

इस वास्ते सभी वैद्यराजों से भी हमारी प्रार्थना है कि अभ्रक से सत्त्व निकाल कर बिडयोग से पारद में यदि उसको जीर्ण करेंगे तो पारद प्रचण्ड बुभुक्षित होकर सुवर्णादि सर्व धातुओं को जीर्ण कर सकेगा और उस क्रिया से अन्य लोग भी उत्तम फल उठावेंगे ॥ ७ ॥

चराचरव्यापिरसेन्द्रभूमा
निषेव्यमाणस्सततं यदि स्यात् ।
प्रेत्येह चानन्तसुखं दवीयो
नास्तीति वैश्येन मयानुभूतम् ॥८॥

"प्रिया में मानुषी प्रजा" इस श्रुति के अनुसार जब हमको भगवत् प्रिय मनुष्य जन्म मिला है तो इसके सम्बन्ध से अवश्य कुछ असाधारण कार्य्य करना चाहिये । इसलिये मेरा यह मन्तव्य है कि ईश्वर के समान चराचरव्यापी पारद की यदि निरन्तर सेवा की जाय तो ऐहलौकिक तथा पारलौकिक अनन्त सुख बहुत दूर नहीं है यह सर्व-विद्वत्संवादी सिद्धान्त है कि जिसका जन्मान्तर में भारी कल्याण होनहार होता है वही पुरुष जगत्कल्याणकारी पदार्थों में मनोयोग दिया करता है जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि (होनहार बिरवान के होत चीकने पात) तात्पर्य यह है कि "मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति" "केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानिचित् तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात्" 'यावद् दिनानि देवेशि ! वह्निस्थो धार्य्यते रसः । तावद् वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीयते" "दिन-मेकं रसेन्द्रस्य यो ददाति हुताशनं द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते" इत्यादि पारलौकिक फल का भागी वही महात्मा हो सकता है जो कि लोभ वासना को छोड़कर पारद की सेवा से समस्त लोक का कल्याण चाहता है और जिस क्रिया का अपने को अनुभव हो उसका मार्ग सब किसी को बतला देता है ॥८॥

सङ्क्षेपेण बुभुक्षित परीक्षा—

गालनैरूर्ध्वपातैश्चेत् स्वर्णं नायाति दृक्पथम् ।
मूलमानं च यत्रास्ते जानीयात्तं बुभुक्षितम् ॥१॥

संक्षेप मे बुभुक्षितपारद की पहिचान–

बुभुक्षा विधि के अनुसार पारद को बुभुक्षित करके उसमें स्वर्णग्रास देकर कपड़े में छानकर परीक्षा करे यदि कपड़े में सोना न बचे तो उसको डमरूयन्त्र में रखकर अग्नि लगाकर उड़ाले। यदि नीचे की हाँड़ी में सुवर्ण दृष्टिपथ नहीं आवे तो फिर तौलकर भी देख ले। सुवर्ण ग्रास देने से पहिले जो पारद का वजन था वही वजन यदि ग्रास के जीर्ण होने पर भी मिले, अर्थात् सुवर्ण का भार नहीं बढ़े तब उसको बुभुक्षित समझे ॥१॥

वैद्यानां पारदबुभुक्षादौ शास्त्रार्थः–

१२ प्रश्नों के उत्तर–

पूना की मरैठी वैद्यकपत्रिका से उद्धृत करके ता० १–८–१९११ के गुजराती वैद्यकल्पतरु में प्रसिद्ध कर्त्ता पं० जीवाराम कालीदास वैद्यराज जी के पं० जटाशङ्कर जी संपादक "वैद्यकल्पतरु" अहमदाबाद ने इन १२ प्रश्नों के उत्तर देने के लिये मुझे बाधित किया था कि इन प्रश्नों के उत्तर काशी वाले श्यामसुन्दराचार्य दें, इसलिये उनका उत्तर मैंने "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" "वैद्यकल्पतरु" आदि अनेक पत्रों में प्रसिद्ध कर दिया था। उन १२ प्रश्नों के उत्तर क्रमशः ये हैं—

१ प्रश्न–गन्धक जारण समगुण, द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण, पञ्चगुण, और षड्गुण किस प्रकार करना ?

उत्तर—आतशी शीशी (कांच और ताम्र की बनी हुई) पर सात कपरमट्टी करके कण्ठ पर्य्यन्त बालुकायन्त्र में गाड़ कर जितना गन्धक जारण करना हो उतना गन्धक और पारद की कज्जली में वटजटाप्ररोह के रस की अथवा क्वाथ की तीन भावना देकर खूब सूख जाने पर उक्त शीशी में भरके मन्द मध्यम तीव्राग्नि देकर गन्धक जारण करना (भट्ठी, नांदी, शीशी पर कपरमट्टी, विधि "श्री वेङ्कटेश्वर समाचार" बम्बई, "भारतजीवन" काशी, "वैद्यकल्पतरु" अहमदाबाद, प्रभृति पत्रों में हम प्रसिद्ध कर चुके हैं) जो एक गुण गन्धक जारण

करना हो तो बीस तोला पारद और बीस तोला गन्धक की कज्जली शीशी में भर कर दो अहोरात्र की अग्नि लगावे। द्विगुण गन्धक जारण में चार अहोरात्र (दिन रात्रि) की अग्नि लगावे। त्रिगुण में छः अहोरात्र की। चतुर्गुण में आठ अहोरात्र की। पञ्चगुण में १० अहो-रात्र की। षड्गुण में १२ अहोरात्र की अग्नि लगावे। परन्तु यह स्मरण रहे कि दो दो घण्टे में शीशी के गले को स्पर्श करता रहे। जब ऐसा तप्त देखे कि स्पर्श नहीं कर सके तो अग्नि को कम करदे (लकड़ी कोयला सब भट्ठी से बाहर निकाल दे) नहीं तो शीशी अवश्य फूटेगी अथवा वालुकायन्त्र से उछल कर बाहर पड़ेगी। कदाचित् वैद्य के मस्तक पर पड़ी तो प्राण हरेगी। जब तक शीशी का मुख और गला तप्ततर न हो जाय तब तक निस्सन्देह अग्नि लगावे। कदापि शीशी फूट जाय तो वैद्य को धूम से बचना चाहिये। नासिका द्वारा गन्धक धूम घुसने से श्वास कास ज्वरादि अनेक भयङ्कर व्याधियाँ होती हैं। एक हमारा मित्र गन्धक धूम के लगने से आसन्नमृत्यु हो गया था। वह मधु और आदी के रस में पाँच बार चन्द्रोदय देने से बचा। जब दो अहोरात्र हो जायँ तब लोहे की शलाका शीशी के मुख में शनैः शनैः डालकर देखे। जब माल पक जावेगा तो शलाका गलेपर अटक जावेगी तब समझ लेना कि "रससिन्दूर" गलेपर आ गया है। फिर जबरदस्ती शलाका न घुसावे नहीं तो पक्का माल भी नीचे गिरजाने से एक दो तोला रससिन्दूर का नुकसान होगा। कदाचित् शलाका शीशी के गले में नहीं अटके तो चार प्रहर अग्नि और लगावे। जब माल पककर शीशी के गले पर आजाय तो मट्टी की डाट लगाकर चूना (जो पान में खाते हैं) और मधु की "मुद्रा" (दर्जबन्द) करदे। द्विगुण गन्धक जारण में बीस तोला पारद ४० तोला गन्धक की कज्जली करे। त्रिगुण में बीस तोला पारद साठ तोला गंधक। चतुर्गुण में १५ तोला पारद ६० तोला गंधक। पञ्चगुण में १० तोला पारद ५० तोला गंधक की कज्जली करे और जिस शीशी में चार सेर कज्जली समावे उसमें १ सेर कज्जली भरे। जैसा "पादांशे कज्जलीपूर्णां कण्ठान्तं बालुकां गता, कण्ठादुपर्यु-

पर्य्यंशे दृश्यमाना सती जनैः । चन्द्रोदयादि निर्मातु त्वमेति श्यामसुन्दरः" इत्यादि पूर्वगताङ्क "श्रीवैद्यकल्पतरु" और "श्रीवेङ्कटेश्वर" व "भारतजीवन" पत्र में लिख चुका हूँ । इस प्रकार एक ही शीशी में एक बार में ही षड्गुणगन्धकजारण हो जाता है । हमारी रसायनशाला में पोस्ट धौलाना जिला मेरठ के सेठ मथुराप्रसाद जी षड्गुणगन्धकजारण करने को काशी पधारे थे उन्होंने शीघ्रता के लोभ से १० अहोरात्र की अग्नि में षड्गुणगन्धकजारण किया था । सो अग्नि की तेजी से शीशी द्रुत होकर चार अंगुल बालुकायन्त्र से ऊपर उठ गई थी तथा फूटते २ बची । इस वास्ते वैद्यों से हमारी प्रार्थना है कि एक शीशी में षड्गुणगन्धकजारण करना हो तो १२ दिन की अग्नि लगावें दस दिन की नहीं लगावें । हमने अन्तर्धूम क्रिया से भी एक शीशी में ३१ दिन-रात्रि की अखण्डाग्नि देकर षड्गुणगन्धकजारण किया है । उसमें ७ शीशी फूट गईं तब एक शीशी बनी क्योंकि "अन्तर्धूम विपाचित षड्गुणगन्धेन रञ्जितः सूतः स भवति सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजङ्गे च" इस श्लोक के सिवाय विस्तार से अग्निक्रम का विधान किसी शास्त्र में नहीं मिलता । हमने अपने मन से ही अग्निक्रम का निश्चय किया है । इस क्रिया को भी विस्तारपूर्वक "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" में प्रसिद्ध कर चुका हूँ । यथाअवसर "वैद्यकल्पतरु" में भी प्रसिद्ध कर दूँगा । इस उक्त श्लोक में षड्गुणगन्धकजारण से सहस्र वेधी (सुवर्ण सिद्धि) लिखी है परन्तु चांदी में कुछ पीलापन तो आता है सोना नहीं बनता इसलिये मेरी राय से "शतगुणगन्धेन" पाठ होना चाहिये ।

गन्धक जारण की दूसरी विधि—

जिस वैद्य को शीशी उतारने का अभ्यास नहीं है उसको छः शीशी में षड्गुणगन्धक जारण करना चाहिये । अर्थात् समगुण गन्धक के साथ सिन्दूररस बनाकर फिर उसी सिन्दूररस में समान गन्धक घोंट कर दूसरी शीशी में चढ़ावे । जब स्वतः शीत हो जाय तब तीसरी में चढ़ावे इत्यादि ।

गन्धक जारण की तीसरी विधि–

घी की चिकनी हांडी पर तीन कपरमट्टी करके खूब सुखाले । हांडी के गले को लोहे के तारों से बाँधकर तीन कपरमट्टी करदे । हांडी का मुख इतना छोटा हो जिसमें १० वर्ष के लड़के का हाथ घुस सके । उस मुख के बराबर "गूढीमट्टी" का ढक्कन बनाकर खूब सुखाले । (चिकनी मट्टी और रुई को कूटते-कूटते एक जीव कर लेना, इसको भी "गूढ़ीमट्टी" कहते हैं) इस हांडी में बीस तोला पारद (हिंगुलोत्थ) और बीस तोला गन्धक की कज्जली करके डालदे । हमारी लिखी हुई विधि से [चन्द्रोदयादि आष्टी के] बालुकायन्त्र में हांडी को रखकर गलेतक बालू भर दे, और मन्दाग्नि लगा, क्रम से तेज करता रहे परन्तु इतना तेज न करे कि गन्धक हांडी से बाहर उफन कर निकल जाय । कदाचित् अग्नि की तेजी से गन्धक बाहर निकल कर बालूपर गिर जाय तो फिर उसको धीरे-धीरे उठाकर उसी हांडी में डालदे । यदि गन्धक के साथ कुछ बालू भी हांडी में चली जावे तो कुछ हरज नहीं । जब गन्धक जीर्ण होनेपर आवे [परन्तु यह भी स्मरण रहे कि संपूर्ण गन्धक न जल जाय नहीं तो पारद सब उड़ जायगा तथा हांडी खाली पड़जायगी किन्तु आधी परधी कुछ न कुछ गन्धक हाँडी में बनी रहनी ही चाहिये] तब बीस तोला शुद्ध गन्धक और डाल दे । यदि हांडी के अन्दर अग्नि लग जाय और हांडी से लपट उठने लगे तो "गूढीमट्टी" का बनाया हुआ ढक्कन ढाँक दे, उसी समय अग्नि शांत हो जावेगी । परन्तु यह भी स्मरण रहे कि ढक्कन के बीच में धूम निकलने का छोटासा छिद्र भी रखना चाहिये, नहीं तो हांडी बालुकायन्त्र से उछल कर अवश्य बाहर आ पड़ेगी । जब गन्धक उफन कर बाहर आने लगे तब लोहशलाका से चला दे, तत्काल गन्धक शांत हो जायगी । इस क्रिया से छः प्रहर में षड्गुण-गन्धक जारण हो जाता है इसमें कोई क्लेश भी नहीं है । अहोरात्र जागरण भी नहीं करना पड़ता । इस क्रिया में यह भी एक आनन्द है कि चार घण्टे अग्नि लगाकर कुछ कार्य में लग गये और फुरसत होने पर अग्नि लगाने लगे तो भी हरकत नहीं । दिन भर अग्नि लगाई

रात्रि को निद्रा का अनुभव किया तब भी हरज नहीं "तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति निद्राम्" इस चरक वाक्य से रात्रि निद्रा भी परम स्वास्थ्य का कारण है। इस क्रिया से सहस्रगुणगन्धकजारण भी बड़ी आसानी के साथ हो सकेगा। वैद्य को जितना गंधक जारण करना हो उतना करके भट्ठी को छोड़ दे जब कुछ गरम रहे, जिसमें हांडी का माल कीचड़ जैसा रहे तब हाँडी को निकाल कर बहुत शीघ्र गरम-गरम ही सब माल को छुरी से खुरच कर निकाल ले। ठण्ढा होने पर काले रङ्ग की मट्टी जैसी शकल होगी, उसको कूटकर चलनी में छान कर आतशी शीशी में भरकर आठ पहर की अग्नि लगाने से शीशी के गले पर षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस मिलेगा। जिसका वर्ण प्रातःकाल के सूर्य के तुल्य लाल होगा। सब कचरा (किट्ट-कतवार) शीशी के तलभाग में मिलेगा। इस क्रिया से बीसगुण गन्धक जारण, और शीशी में उक्त क्रिया से षड्गुणगन्धकजारण, दोनों का तुल्य गुण है।

गन्धक जारण की चतुर्थ विधि—

पारा गन्धक की कज्जली करके आतशी शीशी में भर कर बालुका-यन्त्र में चढ़ाकर लोहशलाका से चलाता जाय ऐसा करने से चार घण्टे में एकगुण गन्धकजारण हो जाता है। गन्धक जीर्ण होने पर शीशी के मुख पर डाट लगा कर मधु और चूना से दर्ज बन्द करके तीन घण्टे अग्नि देने से सिन्दूररस बन जाता है। इस प्रकार षड्गुण गन्धकजारण करना हो तो छः शीशी में करे। अथवा एक ही शीशी में एकगुण गन्धकजारण होने से दो-दो तोला गन्धक डालता जाय और शलाका से चलाता जाय दिन भर अग्नि लगावे रात्रि को निद्रा ले फिर प्रातःकाल अग्नि सिलगादे। इस प्रकार तीन दिन में षड्गुण गन्धक जारण होता है।

गन्धक जारण की पंचम विधि—

चार पैसे की बोतल पर [इसकी शकल चित्र में देखो उसके ऊपर "बाजारू शीशी" ऐसा शब्द लिखा है] तीन कपरमट्टी करके

खूब सूखाले । फिर एक हांडी के गले को लोहे के तारों से बाँध दे तथा तीन कपरमट्टी करके बोतल को हांड़ी में रखे, आकण्ठ बालुका भरकर "कषायकरी भट्ठी" अर्थात् दमचूल्हे के सदृश बनी हुई भट्ठी में १५ सेर पक्के पत्थर के कोयले सुलगा कर बालुकायन्त्र की हांडी को रखे। बोतल में दो सेर कज्जली अमाती हो तो उसमें अष्टमांश [पाव भर] कज्जली भरे, चतुर्थांश न भरे। चतुर्थांश भरने से शीशी अवश्य फूटेगी। कारण कि पत्थर के कोयलों की बड़ी तीव्राग्नि होती है । बस दोपहर में सिन्दूररस तैयार मिलेगा । शीशी देखने तथा भट्ठी के पास बैठने की कुछ आवश्यकता नहीं ।

गन्धक जारण की षष्ठ विधि–

जिस वैद्य को पारद शुद्ध करने में अथवा हिंगुल से पारद निकालने में परिश्रम मालूम होता हो तो हिंगुल को तीन दिन नीबू के रस में घोट कर बराबर का शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली करे । घृतकुमारी के रस की एक भावना देकर उक्त पाँचों विधियों में अन्यतम क्रिया से यथेष्ट गन्धक जारण कर सकते हैं । परन्तु इस षष्ठ विधि में "मन्द मध्यमतीव्रेण क्रमवृद्धेन वह्निना" इस वचन का अवलम्बन नहीं करके प्रथम से ही तीव्राग्नि दे । कारण कि खटाई मन्दाग्नि पाकर पारद गन्धक का वियोग कर देती है । तब सब पारद उड़ जाता है, गन्धक जल जाती है, शीशी रिक्त (खाली) पड़ जाती है, कुछ भी हाथ नहीं लगता । हमने कई वार नुकसान सहा है । प्रथम से ही तीव्राग्नि लगाने से जब तक नीबू की खटाई पारद गन्धक का वियोग करना शुरू करेगी तब तक तीव्राग्नि पारद को मूर्च्छित करके शीशी के गले पर पहुँचा देगी । इसमें युक्ति यह है कि प्रातःकाल का दूध ग्रीष्मऋतु में दुपहर तक खट्टा पड़ जाता है । उसको मूर्ख दुकानदार मन्दाग्नि से गरम करते हैं तो खटाई पार्थिव पदार्थ का और जल का वियोग कर देती है तब दूध फट जाता है । इसलिये बुद्धिमान् दुकानदार को चाहिये कि प्रथम भट्ठी में अग्नि सुलगाकर जब खूब तीव्र लपट उठने लगे तब खाली कड़ाही अग्नि पर रखे जब कड़ाही खूब गरम हो जाय तब दूध छोड़े। ऐसा

करने से जब तक खटाई दूध को फाड़ने का उद्योग करेगी तब तक तीव्राग्नि दूध को पका देगी तो दूध नहीं फटेगा। बस इसी प्रकार प्रथम से ही तीव्राग्नि देने से नीबू की खटाई पारद गन्धक का वियोग करने में समर्थ नहीं हो सकती। उक्त गन्धक जारण के छः प्रकार मेरे अनुभूत किये हुए हैं, परन्तु जिस क्रिया में जितनी मेहनत कम है और द्रव्य व्यय कम है उस सिन्दूररस में उतना ही गुण भी कम है। इसी प्रकार "सिन्दूररस" तथा "चन्द्रोदय" बनाने के हजारों प्रकार हैं। "तालसिन्दूर" "विषसिन्दूर" "मल्लसिन्दूर" "शिलासिन्दूर" "तालचन्द्रोदय" "मल्लचन्द्रोदय" इत्यादि। पूर्वोक्त सब प्रकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" समाचार में "सहस्रधा चन्द्रोदय" "सहस्रधा सिन्दूर" शीर्षक लेख में प्रसिद्ध कर चुका हूँ। वैद्यों के उपकारार्थ "रसायनसार" नामक पुस्तक भी निकालूँगा जिसमें मेरे सब लेखों का संग्रह तथा मेरा अनुभूत विषय रहेगा।

२ **प्रश्न**—इस समय वैसा गन्धक जारित पारद किसी के पास है?

उत्तर—हाँ? हमारे पास प्रायः पाँच सेर पक्का है और चालीस गुण गन्धक जारित आधा सेर होगा।

३ **प्रश्न**—षड्गुण गन्धक जीर्ण पारद का क्या लक्षण है? गन्धक जारण के बाद उसकी कैसी आकृति होती है। वह द्रुत रूप में प्राप्त होता है कि रूपान्तर में?

उत्तर—"षड्गुण गन्धक जीर्ण" शब्द ही लक्षण का प्रकाश कर रहा है कि जिस पारद में पारद से षडगुण गन्धक जारण किया जाय।

आलङ्कारिकादि विद्वानों ने यौगिक, योगरूढ़, रूढ़, यौगिकरूढ़, ये, चार प्रकार के शब्द माने हैं। जो व्याकरण लभ्यार्थ का अवलम्बन करके लोक में प्रवृत्त होता है उसको "यौगिक" कहते हैं। जैसे रसोई बनाने वाले का नाम "पाचक" है (पचतीति पाचकः) और जिसका प्रवृत्ति निमित्त व्याकरण व्युत्पत्ति और "रूढ़ि" (अनादितात्पर्य्या वृत्ति) होता है, उसको "योगरूढ़" कहते हैं। जैसे पङ्कज [पङ्काजातः पंकजः] यह तो व्याकरण लभ्यार्थ हुआ, किन्तु कीचड़ से तो जलौका [जोंक]

इत्यादि भी उत्पन्न होती हैं। इसलिये कमल का ही नाम है और का नहीं, इस अंश में रूढ है। इसलिये पङ्कज शब्द योगरूढ़ हुआ। "गो" शब्द रूढ़ है क्योंकि "गच्छतीति गौः" व्युत्पत्ति की जाय तो बैठी को गौ नहीं मानना होगा। जो योग [व्याकरण] से अन्यत्र प्रवत्त हो, रूढ़ि से अन्यत्र प्रवृत्त हो, ऐसे उभयार्थक शब्द को "यौगिकरूढ़" कहते हैं। जैसे "उद्भिद्" शब्द योग से वृक्ष में प्रवृत्त है [ऊर्द्ध्वंभिद्यते भित्वोत्पद्यते उद्भिद्] रूढि से योग विशेष का नाम "उद्भिद्" है। इस प्रकार "षड्गुणगन्धकजारित" शब्द "पाचक" की तरह "यौगिक" है। सो शब्द से ही लक्षण निकल आता है। पकने पर उसका स्वरूप हिंगुल [शिंगरफ] के तुल्य लालवर्ण रहता है। द्रुत नहीं होता। ढेला रूप ही रहता है।

४ **प्रश्न**–समगुण, द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण, पञ्चगुण और षड्गुण जीर्ण पारद के जुदे जुदे लक्षणों का और उनके स्वरूपों का परिचायक कोई साधन है? यदि है तो क्या है?

उत्तर–समगुणजीर्णादि पारद के जुदे जुदे लक्षणों को तो शब्द ही कह रहा है क्योंकि ये सब "पाचक" की तरह यौगिक शब्द हैं। स्वरूप सब का लाल वर्ण होता है। परिचय का साधन कोई प्रत्यक्ष नहीं है। केवल "तुल्येतु गन्धके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः। द्विगुणे गन्धके जीर्णे सर्वथा सर्व कुष्ठहा॥ त्रिगुणे गन्धके जीर्णे सर्वव्याधि विनाशनः। चतुर्गुणे तत्र जीर्णे वलीपलितनाशनः गन्धे पञ्चगुणे जीर्णे क्षयरोग हरो रसः। षड्गुणे गन्धके जीर्णे कामिनी-दर्पनाशनः॥ जीर्णे शतगुणे गन्धे शतवेधी भवेद्रसः। सहस्रगुणिते जीर्णे सहस्रांशेन वेधयेत्।" इत्यादि फल, श्रुति से निश्चय कर ले।

५ **प्रश्न**–यह त्रिगुण गन्धक जीर्ण पारद है और यह षड्गुण गन्धक जीर्ण पारद है यह भेद कैसे समझा जाय?

उत्तर–प्रत्यक्ष कोई साधन नहीं है, महाराज वैद्यराज के कहने से और पूर्वोक्त गुण देखने से।

६ **प्रश्न**–अमुक गुण गन्धक अथवा अभ्रकजीर्ण होने पर यदि

पारद का वजन नहीं बढ़े तो इतनी गुणी गन्धकादि वस्तु इस पारद में जीर्ण हो चुकी है यह किस प्रकार समझा जाय ?

उत्तर—एक मन तैल सैकड़ों मन वनस्पतियों के साथ सैकड़ों बार पाक किया जाता है और तैल में किसी वनस्पति का वजन नहीं बढ़ता है तो भी यह "शतपाक" तैल है यह "सहस्रपाक" तैल है, यह कैसे समझा जाता है ? उसी प्रकार प्रकृत में भी समझ सकते हैं । अर्थात् गुण देख कर अथवा जिस वैद्य ने अपने हाथ से गन्धकादि जीर्ण किया है अथवा जिन शिष्यों के सामने किया है वह लोग जान सकते हैं कि इस पारद में इतना गन्धकादि जीर्ण हुआ है । वजन बढ़ना तो किसी युक्ति से और किसी शास्त्र से सिद्ध नहीं हो सकता । "समरसतां यदि यातो" इत्यादि श्लोक में रस-हृदयकार गोविन्दभिक्षु के "द्रुतः, तुल्या, क्षिप्रं, जीर्य्यते," ये चार पद वजन के न बढ़ने में परं प्रमाण हैं । अन्यथा ये चार पद अवश्य निष्प्रयोजन कहने होंगे । यदि गोविन्दभिक्षु को जीर्ण होने पर भी वजन बढ़ना इष्ट होता तो "गलितोधिकश्च तुलनायां" ऐसा नहीं कह कर "जीर्णोधिकश्च तुलनायां" क्यों नहीं कहा ? इस प्रश्न के उत्तर को विद्यावाचस्पति "प्रोफेसर काले" "मयाराम सुन्दरजी" "जीवराम कालीदास" आदि किसी विद्वान ने नहीं प्रसिद्ध किया, मैं बराबर कान खोल कर सुन रहा हूँ । प्रत्युत मेरे मत का अवलम्बन करके एक वैद्य ने प्रोफेसर जी से उक्त पदों का खुलासा "वैद्यकल्पतरु" में पूछा था । उसका भी आज तक किसी ने उत्तर नहीं दिया । पण्डित जीवराम कालीदास, प्रोफेसर, त्र्यम्बक गुरुनाथ काले, आदि महाशय युक्ति शास्त्र पर तो ध्यान देते नहीं हैं ऊपर-ऊपर की बुद्धि से ऐसा समझते हैं कि वजन नहीं बढ़ेगा तो गुण कैसे बढ़ेगा ? इसलिये गन्धक, अभ्रक, सुवर्णादि का अवश्य वजन बढ़ना चाहिये । परन्तु महाशयगण ! जरा आप यदि विचार कर देखेंगे और युक्ति पर ध्यान देंगे तो यह शल्य आपका अवश्य निकल जायगा । फिर ध्यान देकर सुनिये मैं वजन न बढ़ने पर भी गुणवृद्धि में युक्ति लिखता हूँ । पूर्वोक्त

चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में "तुल्येतु गन्धके जीर्णे" इत्यादि प्रमाण से पावभर पारद में पावभर गन्धक जारण करने पर शुद्ध पारद से उस पारद में गुण शतगुणित अधिक हो जाता है और वजन पावभर ही रहता है । द्विगुण गन्धक जारण करने पर भी कुष्ठ नाशक होता है परन्तु वजन पावभर ही रहता है इत्यादि क्रम से बढ़ते बढ़ते शत-गुण गन्धक जारण करने पर शतवेधी (एक पाव पारद सौपाव ताम्र को सुवर्ण बनाने वाला) होता है और पारद का वजन पावभर ही रहता है । इस बात को हमने भाई जटाशङ्कर लीलाधर जी से बम्बई में कहा था कि आपको तमाशा देखना हो ता आपके समक्ष करके दिखा सकते हैं । जिला मेरठ धौलाने के वैद्य मथुराप्रसाद जी ने ढाई छटांक पारद में १५ छटांक गन्धक जारण किया था परन्तु पारद का वजन ढाई छटांक ही रहा था । किसी वैद्य को करना हो तो हमारी रसायन-शाला में आकर करले हम खुशीसे बतलावेंगे । अथवा हमारी उक्त छः विधियों में से किसी का अवलम्बन करके अपने घर में करके देख लें । इसमें द्रव्य का भी बहुत व्यय नहीं है परिश्रम भी अधिक नहीं है । जो वैद्य द्रव्य व्यय तथा परिश्रम न करके हमारे लेख को सृष्टि-विरुद्ध बतलाते हैं, उनके अज्ञान की चिकित्सा शिवजी महाराज भले करें हमारे वश की नहीं है । नफा नुकसान तो दैवाधीन है । जो नफा चाहेगा सो नुकसान भी सहेगा । इसका जिम्मा कोई नहीं ले सकता ।

७ **प्रश्न**—अभ्रकभस्म और अभ्रकसत्त्व ये जुदे जुदे पदार्थ हैं, ऐसा पं० श्यामसुन्दराचार्य्य कबूल करते हैं तो उनके मतानुसार भस्म का सत्त्व पारद में जीर्ण होता है या अभ्रक सत्त्व जुदा काढ कर पारद में जीर्ण करना पड़ता है ?

उत्तर—अभ्रकभस्म से सत्त्व निकाल कर जीर्ण करने पर तो "नाधःपतति न चोर्द्ध्वं" इत्यादि "रसहृदय" के प्रमाण से पारद छिन्न पक्ष होता है और सत्त्वप्रधान अभ्रकभस्म घोटने से बलवान मात्र होता है उड्डयन शक्ति नष्ट नहीं होती । जैसे हम लोग दाल भात

रोटी खाते हैं तब पेट भरता है। जब पानी में एक दो तोला सत्तू डाल कर सेवन करते हैं तो केवल पूर्व की अपेक्षा बल आ जाता है। सत्त्व प्रधान भस्म "श्री वेङ्कटेश्वर समाचार" पत्र में प्रसिद्ध कर चुके हैं। छिन्न पक्ष पारद हमारा अनुभूत नहीं है।

८ **प्रश्न**–चारणा और जारणा यदि ये दो पदार्थ हैं तो पारद में अभ्रकभस्म की चारणा होती है कि जारणा ?

उत्तर–अभ्रकभस्म की चारणा भी नहीं होती जारणा भी नहीं होती किन्तु अभ्रकसत्त्व का पारद में मिल जाने से चारणा होती है और सत्त्व का वजन न रहने पर जारणा होती है, जैसे सुवर्ण पारद में मिल जाता है तब चारणा कही जाती है और सुवर्ण का वजन न रहने पर जारणा कही जाती है। जैसे हम लोग भोजन कर चुकते हैं तब अन्न की चारणा कही जाती है और जब अन्न का भार नहीं रहता किन्तु सार भाग तो रसादि धातु रूपेण परिणत हो जाता है और असार भाग मल-मूत्र होकर निकल जाता है उसको जारणा कहते हैं।

९ **प्रश्न**–आधसेर अभ्रकभस्म को जब पारद ने ग्रस लिया तब पारद अभ्रकभस्म को छोड़कर डमरूयन्त्र में यदि उड़ सकता है तो अभ्रकभस्म की अथवा सत्त्व की चारणा और जारणा करने का क्या फल ? (किस वास्ते की जाय ?)

उत्तर–अभ्रकभस्म को पारद कभी नहीं ग्रसता किन्तु अभ्रक भस्म में "बिड" योग से घोटा हुआ पारद अभ्रकभस्म में रहे हुए थोड़े सत्त्व को खाता है इसलिये छिन्नपक्ष न होने से डमरूयन्त्र में उड़ सकता है। जैसे एक सेर अन्न के भूखे मनुष्य को पांच तोला अन्न दिया जावे तो आलस्य निद्रादि न आवेंगे, किन्तु पूर्वापेक्षा बलाधान होने से काम करने में कुछ सौकर्य्य हो जावेगा। पूर्ण सत्त्व जीर्ण होने पर पारद छिन्नपक्ष हो जाता है। (डमरूयन्त्र में नहीं उड़ सकता) जारणार्थ ही चारणा कराई जाती है। यदि जारण शक्ति (बुभुक्षा) के बिना चारणा कराई जावे तो पारद "अजीर्णी" कहलाता है। जैसे मनुष्य को बिना जारण शक्ति (बुभुक्षा) के चारणा (भोजन)

कराया जावे तो अजीर्णी (रोगी) कहलाता है। डमरूयन्त्र में उड़ जाने से चारणा जारणा व्यर्थ नहीं हो सकती। जैसे षड्गुण गन्धक के जीर्ण होने पर पारद शीशी के गले पर उड़ जाता है तो भी गन्धक के जारण के प्रताप से सर्व रोग नाशक होता है। शतगुण गन्धक की जारणा से भी पारद उड़ता है तो भी शतवेधी होता है इत्यादि अनुभवी वैद्यों के प्रत्यक्ष है।

१० **प्रश्न**–"भस्म का सत्त्व" इसका मतलब क्या है ?

उत्तर–अभ्रकासार "अभ्रकसत्त्व" कहलाता है। (सुवर्ण, चांदी जैसे रवा)

११ **प्रश्न**–अभ्रकभस्म की और सत्त्व की द्रुति जुदी जुदी होती है कि नहीं ? अभ्रक सत्त्व अभ्रक की भस्म से काढ़ा जाता है या स्वतन्त्र रूप से निकल सकता है ? उसके निकालने की क्रिया क्या है ?

उत्तर–अभ्रकभस्म की द्रुति नहीं होती किन्तु अभ्रक की अथवा अभ्रकभस्म से निकले हुए सत्त्व की द्रुति होती है जैसे सुवर्णादि की द्रुति। अभ्रकसत्त्व अभ्रकभस्म से निकलता है और स्वतन्त्र निकालने की क्रिया भी शास्त्रों में मिलती है। सत्त्व निकालने की क्रिया शास्त्र में इस प्रकार लिखी है।

पहिली विधि–

एक सेर अभ्रकभस्म को ७ दिन कदली के रस में घोटे, ७ दिन सूरण (जिमीकन्द) के रस में घोटे, ७ दिन नागरमोथा के क्वाथ की भावना दे। खूब सूखने पर २॥ सेर सुहागा (फुला कर) डाले। फिर चिरमिटी, गूगल, लाख, ऊन, सज्जी, राल, छोटी मछली, जवाखार, खल, जिमीकन्द, कैंचुआ, हरड़, बहेड़ा, आमला, चित्रक, क्षीरकन्द, धतूरे के बीज, कलियारी, पाढ, बलबीज, गन्धक, मोम, गोखरू, पांचों नमक, शहद, सांकला, ससे की हड्डी, कबूतर की बीट, सोंठ, मिरच, पीपल, गोखरू, सरसों, तेल जीवन, भैंस का दूध, दही, घी, मूत्र, यह सब अभ्रक के बराबर डालकर टिकिया बनाकर खूब सुखाले। फिर

"धातु शोधने की भट्टी" में बड़े कलछे में रख कर भट्टी का मुख बन्द कर दे, एक घण्टे के बाद निकाल कर शीतल होने पर कलछा के तेल में लगे हुए लालवर्ण के सत्त्व को धीरे धीरे निकाल ले। बाकी बची अभ्रकभस्म को फिर उक्त चीजों में घोटकर उक्त विधि करे। ऐसे तीन बार करने से निःशेष सत्त्व निकल आता है। इस विधि से निकाला हुआ सत्त्व कोमल होता है। इसलिये इसके कोमल करने की जरूरत नहीं है।

दूसरी विधि–

ऊन, राल, बकरी का दूध, छोटी मछली के साथ अभ्रक चूर्ण को घोट कर "शोधनार्थभ्राष्ट्री" में रखने से अथवा भस्त्रा (धौंकनी) से धमाने से कठिन सत्त्व निकलता है।

तीसरी विधि–

अभ्रक चूर्ण को एक दिन कांजी में, एक दिन सूरण के रस में भिगो दे। फिर कदलीकन्द के रस को भावना देकर चतुर्थांश सुहागा और छोटी मछली, भैंस के गोबर के साथ घोट कर टिकिया बनाकर खूब सूखने पर अनेक बार धौंकनी से धौंकने से सत्त्व निकलता है।

भस्म से लालवर्ण का सत्त्व ("वर्षति मेघः सुवर्णधाराभिः" इस प्रमाण से सुवर्ण का सा वर्ण) निकलता है। और जो अभ्रक चूर्ण (धान्याभ्रक) से निकलता है वह कांसे का सा सफेद रङ्ग का सत्त्व होता है।

फिर जिस प्रकार "मधु-तैल-वसा-ऽऽज्येषु, द्रावितं परिवापितम्। मृदु स्याद्दशवारेण सत्त्वं लोहादिकं खरम्" इस रीति से लोहादि सर्व धातु कोमल की जाती हैं उसी प्रकार सत्त्व भी कोमल किया जाता है फिर अम्लवर्ग और कांजी में बुझाने से शुद्धि होती है।

हिंगुलोत्थपारद के तुल्य अभ्रकसत्त्व घोट कर सत्त्व समान शुद्ध गन्धक के साथ कज्जली करके दो अहोरात्र की अग्नि देने से सत्त्व मृत हो जाता है। सत्त्व की द्रुति करनी हो तो इस विषय में

विद्वानों ने लिखा है कि—"भाग्यं बिना ऽभ्रद्रुतयो जायन्ते न कदाचन। बिना शम्भोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन" तथापि शास्त्र रूढत्वात्कदाचिद् भाग्ययोगतः" अर्थात् बिना भाग्य तथा शिव जी महाराज की कृपा के अभ्रक द्रुति नहीं होती परन्तु शास्त्रों में प्रसिद्ध होने से किसी भाग्यशाली के यत्न से हो जाय तो आश्चर्य नहीं। ऐसा लिख कर द्रुति के भी आठ प्रकार लिखे हैं उनमें कोई सत्त्व द्रुति का प्रकार है कोई धान्याभ्रक द्रुति का है।

१२ **प्रश्न**—अभ्रक जीर्ण पारद (वह सत्त्वजीर्ण हो या भस्मोत्थ सत्त्वजीर्ण हो) श्रीयुत रसायनशास्त्री श्यामसुन्दराचार्य्य के पास है क्या? यदि है तो समजीर्ण है या षड्गुण अभ्रक जीर्ण है? और वह द्रवरूप में है या लोंदारूप में है या ढेलारूप में है? उसका लक्षण क्या है?

उत्तर—अभ्रकजारण विधि किसी रसायनशास्त्र में हमको नहीं मिली, किन्तु अभ्रकभस्मोत्थ सत्त्व जारणविधि मिलती है। परन्तु अभी तक अभ्रक सत्त्व पातन हमारी रसायनशाला में नहीं किया गया है। इस लिये किसी प्रकार का भी सत्त्वजीर्ण पारद हमारे पास नहीं है। परन्तु शास्त्र वासना से हमारी धारणा ऐसी है कि जब सत्त्वजीर्ण पारद तैयार होगा, तब गन्धक जीर्णपारद के तुल्य ढेलारूप होना चाहिये। परन्तु गन्धक जीर्ण पारद अग्नि के लगने से उड़ जाता है। और सत्त्वजीर्ण पारद उड़ेगा नहीं यह "रसहृदय" ग्रन्थ कहता है। इसमें युक्ति यह है कि गन्धक तो पार्वती जी का आर्त्तव है, अभ्रकसत्त्व शुक्र है और पारद शिवशुक्र है। इसलिये पारद को गन्धक और अभ्रकसत्त्व दोनों ही प्रिय हैं। जैसे मनुष्य ऋतुस्नान के बाद स्त्री के साथ मैथुन करता है तब आर्त्तव का सम्बन्ध पाकर पुरुष का शुक्र बलवान् तो होता है किन्तु स्खलनारहित (छिन्नपक्ष) नहीं होता। तभी तो नवीन स्त्री को "सद्यः प्राणकराणिषट्" बलदात्री कहा है। परन्तु जिन योगियों के वीर्य (शुक्र) में स्त्री के शुक्रग्रास की शक्ति है (मैथुन करती बार योगी लोग अपना वीर्यपात नहीं होने देते किन्तु स्त्री के शुक्र को भी

इंद्रिय द्वारा खींच कर अपने शुक्र में जीर्ण कर लेते हैं) उनही योगियों का शुक्र छिन्नपक्ष (अस्खलित) होता है। इस लिये वह "ऊर्ध्वरेताः" कहलाते हैं। यह हठयोग की बात है। बस इसी प्रकार शिवशुक्र (पारद) भी पार्वतीरज (गन्धक) से उत्तरोत्तर बलवान् तो होता है, परन्तु छिन्नपक्ष नहीं होता। और जो पारद "बिड" योग से पार्वती शुक्र (अभ्रक सत्व) को जीर्ण कर जाता है, वह छिन्नपक्ष भी हो जाता है। गन्धक तो पार्वती का आर्त्तव होने से विकार रूप है और अभ्रकसत्त्व शुक्र रूप होने से शरीर का सार रूप है। इसलिये गन्धक की अपेक्षा अभ्रक बड़ी चीज है। इसी वास्ते शास्त्रकार षड्गुण सत्त्वजारण का जो फल लिखते हैं सो सहस्र गुण गन्धक जारण सेभी नहीं होना बतलाते हैं। एतद्विषयक फल श्रुति का प्रमाण तृतीय पारदबुभुक्षाविधि में लिख चुके है। यह सब विषय हमारी रसायनशाला के विद्यार्थी क्रीड़ा की तरह कर लेते हैं। केवल अभ्रक सत्वपातन तथा जीर्णाभ्रक करके छिन्नपक्ष पारद अभी हमारा किया हुआ नहीं है। परन्तु कोई विद्यानुरागी द्रव्य खर्च करेगा तो हम अवश्य मदद करेंगे। यदि ऐसी क्रियाओं का अनुभव इस मनुष्य जन्म में हम लोग नहीं करेंगे तो और कौनसा जन्म होगा जिसमें विद्यानुभव मिलेगा। परन्तु हमारी अन्य वैद्यों से भी प्रार्थना है कि इस विषय पर सभी ध्यान दें।

स्वमतम्—

शिवशुक्रं यदि यायात्सत्त्वग्रासं घनस्य शुद्धस्य ।
गददैन्येऽपि सकले लोकानां ननु कथाशेषम् ॥१॥

(इति)

—•✻•—

प्रश्नोत्तर

ता० २–६–११ के अङ्क में शास्त्री श्यामसुन्दराचार्य जी ने अभ्रक सत्त्व व उसके भस्म की विधि जो साधकों के वास्ते लिखी है उसका

अच्छा बुरा विचार, शास्त्र विधि से जानने के लिये रसहृदय में जो उक्ति है उससे जान लेना चाहिये। वज्राभ्रक के सिवाय पिनाक, नाग, भेक, अभ्रक सत्त्वमोचन में असमर्थ हैं जैसा गोविन्दभिक्षु कहते हैं कि—"श्वेतादि चतुर्वर्णाः कथितास्ते स्थूलतारकारहिताः। वज्री सत्त्व मुञ्चत्यपरे ध्माताश्च काचतां यान्ति सूतेपिरसायनिनां योज्यं परिकीर्त्तितं परं सत्वम्। त्रिविधं गगनमभक्ष्यं काचं किट्टं च पत्ररजः। मुञ्चति सत्त्वं ध्मातस्तृणसारविकारकैर्घनः स्विन्नः। परिहृत्य काचकिट्टं ग्राह्यं सारं प्रयत्नेन। (तत् त्रिविधं अभ्रकं) एकं काचं वह्नौ धमनात् काचाकारतां नीतं, द्वितीयं किट्टं यत् धमनात् किट्टस्वरूपं प्राप्तं, तृतीयं पत्ररजः पत्रायां समाहितं यद्रजः तदेवं विधं (सत्त्वं) अभक्ष्यं सदोषत्वात्।" इस तरह नाग, पिनाक, भेक, तीनों अभ्रक सत्त्वहीन अभक्ष्य हैं। श्रीयुत श्यामसुन्दराचार्य जी का लेख है कि उन [अभ्रकों] का सत्त्व काच के समान है। इसमें हमारा यह वक्तव्य है कि अभ्रक वज्र न होकर बाकी तीन प्रकारों में से पिनाक जाति का होगा, या सत्त्व पातन के जो पदार्थ मुनियों ने कहे हैं उनका उपयोग नहीं किया होगा, इस वास्ते उसका सत्त्व काच के समान हुआ होगा। सत्त्व का वर्ण लोह, कांस्य, अथवा सुवर्णवर्ण, वा वह्निवर्ण होना चाहिये। "बहुगम्भीरं ध्मातो वर्षति मेघः सुवर्ण धाराभिः। देवमुख तुल्यममलं पतितं सत्त्वं तथा विद्यात्। यदि लोहनिभं पतितं जातं गगनस्य तद्रसश्चरति। मिलति च सर्वद्वन्द्वे ह्यौषधिभिश्चरति विनापि मुखम्।" उत्तम वर्ण का सत्त्व हो तो उसकी भस्म करके रस को चारणा कराने की आवश्यकता नहीं है, केवल सत्त्व निर्मुख पारे में मिल जाता है। इसलिये सत्त्व पातन प्रक्रिया के अनुरूप समाह्निक गगन सत्त्व पातन से काचता दोष दूर होगा ऐसी शास्त्र सम्मति मालूम होती है।

चन्द्रोदय में जिस तरह पारद तैयार कर लेने को शास्त्रीजी ने कहा है उसमें भी एक त्रुटि रह गयी है। वह यह है कि पक्षच्छिन्न रस रसायनादिकों में लेना उचित है, और वह पक्षच्छेद बिना अभ्रक सत्त्व जारण के हो नहीं सकता। पक्षच्छेद का लक्षण इस तरह उक्त है

"नाधः पतति न चोर्द्धं तिष्ठति यन्त्रे भवेदनुद्धारी । अभ्रकजीर्णः सूतः पत्तच्छिन्नःस विज्ञेयः ।" जो पातनत्रय से नीचे ऊपर या तिर्यक् गमन रहित और अचंचल हो जाता है ऐसा रस चन्द्रोदय में लिया जायगा तो अधस्थ होनेवाला परमोत्तम मकरध्वज क्यों न होगा ! इस तरह अधस्थ मृतसूत षड्गुण बलिजारित, उसमें भी अन्तर्धूम हो तो उससे निश्चय ही "स भवेत् सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजंगे च" इस वाक्य की सत्यता प्रतीत होकर वितण्डावादियों के अन्तःकरण में उजियाला होगा। जिनको कि शास्त्र में दोष देने की आदत सी पड़ गयी है ।

वैद्य दामोदर गोविन्द नागपुर ।

उत्तर—आपने अभ्रकसत्त्व के विषय में "श्वेतादि चतुर्वर्णाः कथितास्ते" इत्यादि रसहृदय ग्रन्थ का प्रमाण लिख कर आखीर में लिखा है कि "श्रीश्यामसुन्दराचार्य जी का लेख है कि उन (अभ्रकों) का सत्त्व काच के समान है" सो वैद्यराज जी महाराज ! यह आपका लिखना अनुचित है। मैंने आजतक पिनाकादि तीनों अभ्रकों को छुआ भी नहीं है । जिस वस्तु की शास्त्र में निन्दा लिखी है वह वस्तु हमारी रसायनशाला में व्यवहृत नहीं होती। वज्राभ्रक हमारे देश में नहीं मिलती सो रंगून से लानी पड़ी थी। मेरे लेख को शुरू से अच्छी प्रकार पढ़कर देखें मैंने वज्राभ्रक के सिवा किसी अभ्रक की शोधनादि क्रिया नहीं लिखी है, प्रत्युत महिनों से चिल्ला रहा हूँ, कि नागादि अभ्रक अग्राह्य है ।

यह शङ्का आपकी अवश्य हो सकती है, कि वज्राभ्रक का सत्त्व श्वेतादि वर्ण क्यों नहीं हुआ, काच के समान काला होने का क्या कारण है ? इसका उत्तर यह है कि उक्त क्रिया एक बार में ही निश्चन्द्र करने की लिखी है, सो आप करके देख लें इसमें कुछ सन्देह नहीं है । इसी वास्ते मैंने उसको सत्वप्रधान होने से गौण सत्व प्रयोग किया है। नवीं पंक्ति देखिये उसमें लिखा है कि "यह श्याम-वर्ण है परन्तु अभ्रकमिश्रित सत्व है" ।

आपने यह जो लिखा कि "सत्व के पातन के जो पदार्थ मुनियों ने कहे हैं उसका उपयोग नहीं किया इस वास्ते उसका सत्त्व काच के समान हुआ होगा" सो यह बात आपकी ठीक है। मुनियों के कहे पदार्थों का उपयोग नहीं किया था, इसीलिए काच के समान रूप हुआ है। शास्त्र सब सच्चे हैं। यह क्रिया शास्त्रोक्त नहीं है अपने मन से निकाली है। इसको आप लोगों की सेवा में इसलिए छपा दी है, कि जो वैद्य ४१ गजपुट देने पर भी मुझको लिख रहे हैं कि अभी निश्चन्द्र नहीं हुई, उनको बिना परिश्रम एक बार में ही निश्चन्द्र हो जाय तो लाभ मिलेगा, अथवा मेरा अज्ञान होगा तो विद्वत्समाज में आने से दूर हो जायगा। जिस वैद्य की इच्छा पारद को बलवान् बनाने की होगी तो इस सुगम क्रिया से निश्चन्द्र करके दश पाँच पुट में भस्म तैयार करके पारद को उक्त भस्म में घोटते जायँगे "डमरूयन्त्र" से उड़ाते जायँगे। स्वेदन मर्दन करके उक्त भस्म में घोटना फिर उड़ाना ऐसा दस बीस बार करने से बहुत बलवान् पारद हो जायगा। जितनी बार भस्म में बिडयोग से घोटकर पारद उड़ाया जायगा उतनी ही बार कुछ न कुछ सत्त्व को खाता जायगा। परन्तु "केवलाभ्रक सत्त्वं तु न ग्रसत्येव पारदः" इत्यादि प्रमाण से स्वर्णमाक्षिकादि योग भी रहना चाहिये। इसमें यह भी आशङ्का हो सकती है, कि जब तक स्वच्छ सत्त्व ग्रास नहीं दिया जायगा तबतक अभ्रक भस्म में मिले हुए सत्त्व को कैसे खायगा? और 'बिड' योग से स्वच्छ सत्त्व को खा जायगा तो "नाधः पतति न चोर्द्ध्वं तिष्ठति यन्त्रे भवेदनुद्गारी अभ्रक जीर्णः सूतः पक्ष च्छिन्नः स विज्ञेयः" इत्यादि प्रमाण से छिन्नपक्ष होकर शीशी के गले में कैसे लगेगा?

इसका उत्तर यह है कि, पारद को प्रथम बुभुक्षित कर के अथवा 'बिड' योग से स्वच्छ ग्रास दिया जाने से अवश्य छिन्नपक्ष पारद हो जायगा तो उड़ नहीं सकेगा, उसके गुण कितने होंगे इस विषय में जितना कहा जाय थोड़ा है। परन्तु अभ्रक भस्म में मिला हुआ सत्त्व का ग्रास थोड़ा मिलता है पर्य्याप्त नहीं मिलता, इसलिये बल-

वान् मात्र होता है, छिन्नपच्च नहीं होता इसलिये शीशी के गले पर लगता है। जैसे एक सेर अन्न का भूखा मनुष्य एक छटांक अन्न खाता है, तो कुछ बलवान् तो अवश्य होता है परन्तु निद्रालस्यादि में मग्न नहीं हो सकता है। इसका पोषक दृष्टान्त ऐसा है, कि एक महाराज पावभर आटे की आठ पूरी सायङ्काल को खाते थे, वे आठ पूरी आठ कड़ाहियों में आठ पन्सेरी घृत में उतरती थीं। पूरियों से बचा हुआ घृत घोड़ों के काम आता था। किसी मैनेजर ने कम खर्च का प्रबन्ध करते हुए सोचा कि सरकारी ब्यालू में एक मन घी रोज खर्च पड़ता है, आज से पांच सेर घी में आठ पूरी उतारी जांय। रसोइया ने पांच सेर में आठ पूरी बनाकर सरकार को परोसी तो सरकार के मुख में चलीं नहीं। आखिर मैनेजर की चतुराई मालूम हुई तो मैनेजर जी निकाले गये। ठीक है! जो आठ पूरी मनभर घी के परम सारभाग को पीकर बनती थीं, उनका स्वाद और बल इनमें कहां हो सकता है? इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि जैसे आठ पूरियों ने १ मन घी का सार पी लिया था, उसी प्रकार बार-बार स्वेदन और अभ्रक-भस्म में घोटने से थोड़े थोड़े सत्त्व को खाता हुआ पारद अवश्य बल-वान् होता जायगा। जब उदरपूर्त्ति के योग्य सत्त्व भोजन कर चुकेगा तो पक्षच्छिन्न अवश्य होगा।

आगे जो आप ने अधःस्थ होनेवाले मकरध्वज की क्रिया नहीं लिखने से चन्द्रोदय में त्रुटि बतलायी है। उसका उत्तर यह है कि हम अपना अनुभूत विषय लिखा करते हैं। उक्त मकरध्व हमारा अनुभूत नहीं था, इसलिये नहीं प्रसिद्ध किया गया। कुछ चोरी रखने का तात्पर्य नहीं था। इसी प्रकार 'पारदभस्म' "भूचरी" "खेचरी" आदि बहुत क्रिया शास्त्रों में मिलती है, हमको उनका अनुभव नहीं है। जिन बातों का अनुभव हुआ है और होता जाता है, वह सब दस दिन के आगे पीछे आपलोगों की सेवा में उपस्थित की जायँगी। जैसे कई प्रकार से हरितालभस्म संखिया भस्म, संखिया तेल, विष तेल, इत्यादि सर्व शास्त्रोक्त क्रियाओं को प्रसिद्ध करने का विचार है।

प्रश्नोत्तर—

वैद्यवर्य्य पण्डितप्रवर श्रीमथुरावासी बालकृष्णजी ने ५ अगस्त "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" में ११ प्रश्न किए हैं उनको उद्धृत करके क्रमसे उत्तर दिया जाता है—

१ प्रश्न—पारद क्या वस्तु है इसकी उत्पत्ति वैज्ञानिक रीति से कहो।

उत्तर—विज्ञानवाद के परमाचार्य महर्षियों के "शम्भोस्तेजः परात्परम्" इत्यादि वचन से, पारद को दिव्यमङ्गलविग्रह श्रीशिवजी महाराज का शुक्र समझना चाहिए।

उस वचन की पोषिका युक्ति यह है कि– जो मनुष्य शुक्रपूर्ण शरीर है उसकी असाध्य प्राय श्वास, कास, ज्वरातिसारादि व्याधि भी सुखसाध्य हो जाती हैं, और अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन) भी हुआ हो तो क्या परवाह है, या एक दिन भोजन नहीं मिला तो भी क्या हरज है, अथवा चार घण्टे की जगह दस घण्टा काम करना पड़ा तो भी क्या नुकसान है ? परंतु जिस मनुष्य का शरीर क्षीणरेतस्क है, उसको जरा वायु लग गया, देरी से खाने को मिला, या कुछ अधिक भोजन हुआ अथवा आधघण्टा ज्यादा काम करना पड़ा तो तुरन्त बीमार हो जाता है, और थोड़ी भी व्याधि कष्टसाध्य, या असाध्य हो जाती है। जैसा कि महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में लिखा है कि "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" इस वचन से शुक्र मानो सब धातुओं का पोषण, तथा सुखप्राप्ति का भण्डार है। जब हम लोगों के शुक्र का यह प्रभाव है, तब शिवशुक्र का कितना होगा सो इसी दृष्टांत से बुद्धिमान् जान सकते हैं।

अर्थात् "पारदे यावती शक्ती रोगनिर्मूलनक्षमा। तावन्तो नैव विद्यन्ते रोगा दोषत्रयोद्भवाः। हरेर्नाम्नो यथा शक्तिर्यावती पापनाशिनी। तावत्पापन्तु पापीयान् कर्तुमीष्टे न कश्चन" यह कहना भी अत्युक्ति नहीं है। और "एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते। प्राप्नोति ब्रह्मपदं न पुनर्भववासदुःखेन" "वज्रादिजीर्णं सूतस्य गुणान् वेत्ति स्वयं शिवः।

इत्यादि शास्त्रकारों के उद्गार प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। जिनसे हमको निश्चय होता है कि बेशक पारद शिवशुक्र है। इसलिये हमारे ज्ञान में बेशक न्यूनता हो परंतु महर्षियों ने तो सर्वशास्त्र वैज्ञानिक रीति से ही लिखे हैं। महर्षियों ने जो मार्ग बतलाया है मैं उसीको वैज्ञानिक मार्ग समझता हूँ।

२ प्रश्न—पारद धातु है या उपधातु या खनिज, यदि धातु उपधातु है तो सप्तधातूपधातुओं में इसका पाठ क्यों नहीं और खनिज है तो खान कहां है ?

उत्तर—पारद धातु और उपधातुओं से जुदा ही है इसीलिये उनमें पारद का पाठ नहीं है। उसका कारण यह है कि सर्व धातूपधातु पारद में लीन हो जाती है, पारद का इतना बड़ा उदर है कि संसार भर की धातुओं को खाजाय तो भी पूर्ण नहीं होय। जैसे सर्वविश्व ब्रह्म में लीन होने पर भी सच्चिदानन्द को पूर्त्ति नहीं होती। जैसा कि शास्त्रकारों ने लिखा है कि" काष्ठौषध्यो नागे नागो बङ्गेऽथ बङ्गमपि शुल्वे। शुल्वं तारे, तारं कनके, कनकञ्च लीयते सूते। अमृतत्वंहि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेम लोहाद्याः"। इस विषय को मैंने "लयक्रम" और "लयप्रकार" शीर्षक में लिखा है। पारद की सदृश भारीशक्ति किसी धातूपधातु में नहीं है। जैसा "मृदः कोटिगुणं स्वर्णं स्वर्णात्कोटिगुणो मणिः। मणेः कोटिगुणो बाणो बाणात्कोटिगुणो रसः॥ रसात्परतरं किंचिन्न भूतं न भविष्यति" पारद की खान पारद के व्यापारीलोगों से निश्चित हो सकती है यह दुरवबोध विषय नहीं है। तथापि "शैलेऽस्मिञ्छिवयोः प्रीत्या" इत्यादि ग्रन्थ से मालूम होता है कि पारद की खान हिमालय की तरफ होनी चाहिये।

३ प्रश्न—पारद जड़ है या चैतन्य ? यदि जड़ है तो स्त्री के पीछे दौड़ना सम्भव नहीं है और चैतन्य है तो इसके मारण से हिंसा क्यों नहीं ?

उत्तर—जड़ मानने से भी यह दूषण नहीं आ सकता, कि स्त्री के पीछे कैसे दौड़ सकता है। क्योंकि जड़ वस्तु में भी अनन्त

शक्तियां है। जैसे अयस्कान्तमणि (चुम्बक पत्थर) को देखते ही लोह की सूई नाचने लगती है, और दौड़ कर अयस्कान्त का आलिङ्गन कर लेती है। अथवा चन्द्र के देखते ही चन्द्रकान्तमणि चूने लगती है। यद्वा सूर्यकान्तमणि सूर्य को देख कर भवक उठती है। इस बात को सभी मनुष्य जानते हैं। चेतन मानने पर भी, हिंसा दोष नहीं लग सकता। क्योंकि चेतन की हिंसा किसी शास्त्र में देखी सुनी नहीं गई। प्रत्युत "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" इत्यादि भगवद्वाक्यों से चेतन की हिंसा का अभाव लिखा है। किन्तु "प्राणव्यपरोपणं हिंसा" इत्यादि वाक्यों से प्राणवध को हिंसा माना है। न कि (चेतन व्यपरोपणं हिंसा) अहिंसा के उपदेश में भी "प्राणाघातान्निवृत्तिः" इत्यादि कवियों के प्रयोगों से प्राणवध से निवृत्ति को ही अहिंसा माना है।

प्रकरण में पारद मारण का यह अर्थ नहीं है, कि पारद के प्राणघात करना। किन्तु स्वेदन से लेकर मूर्च्छन मारण तक, पारद के संस्कार किये जाते हैं, जिनसे महात्मा, राजा, सेठ, गरीब सभी लोगों के प्राण बचते हैं और अन्त में मुक्तिपर्य्यन्त लाभ होता है। इसीलिए तो पारद के मारणान्त संस्कर्ता वैद्य को "यावद्दिनानि देवेशि!" इत्यादि प्रमाणों से महापुण्यराशि लिखी है। "प्राणव्यपरोपणं हिंसा" इसका भी वास्तव में यह अर्थ है कि—प्राणघात करके दुःख भी दिया, तो भी प्राणों का सम्बन्ध जीव के लगाही हुआ है, जिससे मरणोत्तर जन्म लेना ही पड़ता है, इसीलिये हिंसा है। नहीं तो यदि "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन !" इत्यादि गीता वाक्य से, कोई विद्वान् ज्ञानोपदेश द्वारा कर्मों को भस्मसात् कराके सदा के लिये प्राणों से वियुक्त करादे जिससे कभी जन्म नहीं लेना पड़े, तो उस प्राणघात से, विद्वान् को भारी पुण्य होता है। पारद तो वास्तव में जड़ व प्राणी दोनों ही नहीं है। इसलिये पारद के मारण में हिंसादि व्यवहार नहीं घट सकते। इसलिये प्रकरण में पारद-मारण प्रयोग पारद संस्कार में भाक्त (गौण) है। यद्यपि बाह्यदृष्टि से पारद जड़ जैसा मालूम होता है परन्तु प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान की अपेक्षा, आराम ज्ञान बहुत चढ़ बढ़ कर शक्ति रखता है। जहाँ प्रत्यक्षादि तीनों ज्ञान की गम (पहुँच) नहीं है,

उस बात को भी आगम कहता है। जैसे स्वर्ग नरकादि । इसीलिए महर्षि गौतमजी ने "प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि" इस सूत्र में उत्तरोत्तर ज्ञान को सूक्ष्म विषय दिखाते हुए, अन्त में शब्द (आगम) को पढ़ा । इसीलिये (रसो वै सः) इत्यादि श्रुति, (दोष-हीनो भवेद्ब्रह्मा) इत्यादि स्मृति आगम से पारद को जड़ व प्राणी से भिन्न ईश्वर रूप समझना चाहिये । अर्थात् सच्चिदानन्द ।

४ **प्रश्न**—जब पातनयन्त्र से पारद को उड़ा लिया तब सप्तदोष निर्मुक्त क्यों नहीं हुआ ? यदि निर्दोष होगया तो हिङ्गुल से निकालने का क्या प्रयोजन है ? और बाजार के पारे को सदोष क्यों कहना चाहिए ? ।

उत्तर—पातनयन्त्र द्वारा उर्द्धपातन, अधःपातन आदि से तो पारद शुद्ध होता ही है । परन्तु केवल पातन से नहीं, किन्तु स्वेदन, मर्दन, पातन से । जैसे "तान्युपस्थित दोषाणां स्नेहस्वेदोपपादनैः । पञ्च कर्माणि कुर्वीत" इस चरक वाक्य से उपस्थित दोष रोगी का प्रथम स्नेह, स्वेदन, करने के बाद वमन, विरेचनादि किए जाते हैं । उसका अभिप्राय यह है कि – स्नेहन स्वेदन से सम्पूर्ण दोष, रक्त मांसादि धातुओं से सम्बन्ध छोड़कर दूर हो जाते हैं । और मुञ्जस देने से सर्व कोष्ठाश्रित दोष वियुक्त होकर एकत्र हो जाते हैं । फिर जुलाब देनेसे सम्पूर्ण दोष बाहर निकल जाते हैं । इसी प्रकार पारद का स्वेदन करने से पारद के परमाणुओं में सम्बद्ध नागादि दोष शिथिल पड़ जाते हैं । इष्टका चूर्णादि के साथ मर्दन करने से बिलकुल सम्बन्ध छोड़ देते हैं । बाद उर्द्धादि पातन से पारद निर्मल हो जाता है । परन्तु इसी प्रकार अनेक औषधों के साथ मर्दन कर अनेक बार उड़ाना चाहिए । एक बार में नागादि सर्व दोष दूर नहीं हो सकते । जैसे गुल्म रोगी का दोष यद्यपि रेचन से दूर होता है, परन्तु भारी दोष होने से, अनेक बार रेचन कराया जाय, और मन्दाग्नि आदि निवृत्त्यर्थ पञ्चकोलादि संस्कृत दुग्धपानादि से शक्ति भी नहीं घटने दे, तब गुल्मादि भारी दोष की शुद्धि होती है । बाजार के पारद से नागादि दोष दूर नहीं हुए, इसीलिए उसको सदोष कहा जाता है । उन्हीं

दोषों को बचाने के लिये, हिङ्गुल से पारद निकालने की आवश्यकता पड़ती है। जो वैद्य गुल्मादिरोग को रेचनादि चिकित्सा पढ़ कर स्वेदनादि क्रिया नही करके एक बार रेचन मात्र से फलसिद्धि चाहेंगे उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकेगा। उसी प्रकार स्वेदन मर्दनादि न करके केवल ऊर्द्धादि पातन से पारद शुद्धि भी नहीं हो सकती।

५ प्रश्न—"किसी के मत में तो-"नागं बङ्गं मलं वह्नि-श्चाञ्चल्यं च गिरिर्विषम्। पारदे कंचुकाः सप्त सन्ति नैसर्गि का यतः।" ये सात दोष स्वाभाविक माने हैं और किसी के मत से "मलं विषं वह्निगिरी च चापलं नैसर्गिकं दोषमुशन्ति पारदे। उपाधिजौ द्वौ त्रपुनाग-योगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनीश्वरैः" मलादि पांच स्वाभाविक, और बङ्ग नाग उपाधिज माने हैं। किसीने वह्नि, विष, मल, इनको ही मुख्य माना है। पारे के पातन करने से ये सात स्वाभाविक दोष किस प्रकार दूर होते हैं? क्योंकि स्वाभाविक दोष नित्य हैं। यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो भी पातनानन्तर चाञ्चल्य दोष क्यों नहीं दूर होता? चाञ्चल्य भी तो स्वाभाविक हैं। और उपाधिज दोष पारे में कहाँ से आए?

उत्तर—"एवम्भूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः। प्रभावान्मा-नुषा जाता देवतुल्यबलायुषः। तान् दृष्ट्वाभ्यर्थितो रुद्रःशुक्रेण तदन-न्तरम् दोषैश्च कंचुकाभिश्च रसराजो नियोजितःततःप्रभृति सूतोऽसौ नैव सिद्ध्यत्यसंस्कृतः" इस प्रमाण से मलादिदोष, तथा पर्पटी आदि सप्तकञ्चुक स्वाभाविक कोई भी नहीं हैं। परन्तु शास्त्रकार किसी मल को स्वाभाविक कहते हैं और किसी को उपाधिज, इसका अभिप्राय यह है कि जो दोष पारद परमाणुओं के साथ तदात्मतापन्न होने से अल्प संस्कार से दूर नहीं हो सकते। उनको स्वाभाविक शब्द से व्यवहार करते हैं, और जो दोष पारद में उतने घनिष्ट सम्बद्धित नहीं हैं, उनको उपाधिज शब्द से व्यवहार करते हैं। जैसे ५० सुई एकत्र मिलाकर रखने से "मिलित" कही जाती हैं। फिर उनही ५० सुईयों को डोरे से मजबूत बाँधने से, पूर्व की अपेक्षा अधिक सम्बन्ध हो जाने से, (क्योंकि एक सुई के उठाने से सब उठ आती हैं) वे "बद्ध"

कही जाती हैं। फिर उन्ही ५० सुईयों को अग्नि में धमाया जाय तो तपकर ऐसी सट जाती हैं कि दूर करने से भी दूर नहीं होतीं तो वे "आश्लिष्ट" कही जाती हैं। इत्यादि अल्प, अधिक, अधिकतर, सम्बन्ध के तारतम्य से अनेक व्यवहार होते हैं। अथवा यों कहिए कि जैसे काम क्रोधादि का आत्मा से अधिक सम्बद्ध होने से महादोष (स्वाभाविक) कहे जाते हैं। क्योंकि इनका जीतना (विजय करना) मुनियों को भी कठिन पड़ता है। और हास्य, अरति, जुगुप्सादि दोष आत्मा से उतना सम्बन्ध नहीं रखते, इसलिये इनको अल्पदोष (उपाधिज) कहा है। क्योंकि इनको जीतने में उतना भारी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। परन्तु जिन महात्माओं के सर्वदोष दूर हो जाते हैं वे जीवन्मुक्त कहे जाते हैं। इसी प्रकार पारद के नागादि दोष दूर हो जाने से "दोषहीनो भवेद् ब्रह्मा" इत्यादि सिद्धान्त से ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, शब्द से वह कहा जाता है। परन्तु जीवन्मुक्त महर्षियों के भी प्रारब्धकर्मनिबन्धन शरीर रहने से जीर्णशीर्णप्राय दुःखादि वेदना के रहने से निर्वाण (मुक्त) शब्द से व्यवहार नहीं होने पर भी वे दोष कुछ अनिष्टकारक नहीं होते। इसी प्रकार पारद के सर्वदोष दूर होने पर चाञ्चल्य दोष रहने से भी कुछ अपकार नहीं होता। परन्तु जब तक चाञ्चल्य दोष भी दूर न होगा तबतक वह पारद "बद्धः साक्षात् सदाशिवः" इत्यादि सदाशिव (ब्रह्म) नाम नहीं पाता।

जैसे जीवन्मुक्त महर्षि भो कायव्यूह (कर्म भोगने को एक शरीर के अनेक शरीर) करके मुक्ति की अभिलाषा करते हैं। क्योंकि "सर्वसंसारिणां सौख्यं संपीभूतं भवेद्यदि। मुक्तिजन्यस्य सौख्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्" अर्थात् जबतक संसार है तबतक मुक्ति सुख का कलांश भी नहीं है। इसी प्रकार जबतक "भूचरी" "खेचरी" आदि अनेक सिद्धियों को करने वाला बद्धपारद न हो तबतक वैद्य को सन्तोष नहीं मानना चाहिए। वह चाञ्चल्य दोष ऐसा अल्प नहीं है, जो अन्य दोषों की तरह सामान्य संस्कार से हट सके। इन सब उपाधिज दोषों का पारद में आना "दोषैश्च: कंचुकामिश्च रसराजोनियोजितः" इस प्रमाण से देवों की कृपा का फल है।

६ प्रश्न—जो शिववीर्य कहो तो मलादि दोष उसी में हैं या पीछे आ गए ? सो स्वाभाविक दोषों का पीछे आना सम्भव नहीं सयुक्ति बताओ ?

उत्तर—हां, पारद शिववीर्य है, शिववीर्य में मलादि कोई दोष नहीं हैं । उन दोषों का देवप्रयुक्त पश्चात् आगमन हुआ है। दोष स्वाभाविक न होने पर भी जिस प्रकार स्वाभाविक शब्द से व्यवहृत होते हैं, सो आपके पञ्चम प्रश्न के उत्तर में सयुक्ति लिख चुका हूँ । उन दोषों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि दग्ध लकड़ी का टुकड़ा जबतक अग्नि में था, तबतक उसका नाम अङ्गार था, और सिंह व्याघ्रादि अनेक क्रूर जन्तुओं का भी उसके दर्शन मात्र से मारे भय के पेशाब निकलता था, तथा "अग्निमुखा वै देवाः" इत्यादि भगवती श्रुति भी उसको देवताओं का मुख बतलाती थी । परन्तु मित्रवर ! जबसे उस अङ्गार का अग्नि से वियोग हुआ तबसे उसका नाम कालाङ्गार (कोयला) हुआ, सो आप भी काला और अन्य को भी काला करनेवाला हुआ, और पिपीलिका (कीड़ी) भी उसके ऊपर चढ़कर लात मारने लगी । परन्तु फिर किसी महात्मा के उद्योग से वह अग्नि बन गया । तो फिर वही प्रताप जागरूक हो गया । बस इसी प्रकार पारद भी शिवजी महाराज से वियुक्त होकर अनेक दोषाक्रान्त होने से "सदोषो भस्मितो येन योजितो योगकर्मणि । सभिषक्पतते नरकं यावच्चन्द्रदिवाकरौ" इत्यादि महाऽनर्थका भाजन हुआ । परन्तु फिर किसी महात्मा वैद्यराज के उद्योग से (संस्कारद्वारा) निर्दोष हो जाने से "अवले बलमादध्यात् क्षीणे वा धातुसञ्चयम् । जरारोगाब्धिमग्नानां वहित्रं पारदो मतः" इस पद का अधिकारी होगया ।

७ प्रश्न—सप्त कंचुकी की परीक्षा क्या है ? सो पृथक् पृथक् करके दिखाओ ।

उत्तर—सांप की कांचुली को कञ्चुकी कहते हैं, दूध की मलाई को भी कञ्चुकी कहते हैं, योद्धा के कवच का नाम भी कञ्चुकी है, स्त्री की चोली को भी कञ्चुकी कहते हैं, अर्थात् जो शरीर के आवरण

करनेवाली वस्तु है उसको कञ्चुकी कहते हैं। इसी प्रकार पारद के आवरण करनेवाली सात कञ्चुकी (मलाई) हैं। जिनके रहने से पारद का गुण ढक जाता है। उनके पृथक्-पृथक् ये नाम हैं—पर्पटी, पाटली, भेदी, द्रावी, मलकरी, तथा अन्धकारी, तथा ध्वाङ्क्षी "विज्ञेयाः सप्त कञ्चुकाः।" इनकी परीक्षा प्रत्यक्ष ज्ञान से नहीं हो सकती इसलिये "प्रत्यक्षाऽविषयेऽनुमानप्रवृत्तिः" इस न्याय से अनुमान से करना चाहिये कि पारद में गुण रहने पर भी गुण नहीं देखते हैं तो अनुमान होता है कि वह गुण किसी वस्तु से आवृत हो रहा है। जैसे राख में दबी हुई अग्नि पर हाथ रखने से नहीं जलता। ये सात कञ्चुक अन्वर्थाभिधान (यथा नाम तथा गुण) होने से पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर पतली हैं। पापड़ जैसी पतली होने से "पर्पटी" कहाती है, उससे भी पतले पटल के होने से "पाटली" कहाती है। उससे पतली पारद के गुण को भेदन करनेवाली "भेदी" कहलाती है। पारद के पसीने के साथ सम्बन्ध रखने से "द्रावी" कहाती है। जिसके रहने से मलीन स्वरूप पारद दीखता है इसलिये उसका नाम "मलकरी" है। दर्पण में घृत का हाथ लगाने से दर्पण अन्धा जैसा होता है, ऐसी बहुत पतली मलाई "अन्धकारी" कहलाती है। जिसका साक्षात् पारद से सम्बन्ध है, वह सबसे झीनी काक की दृष्टि की तरह कुछ मलिनता लिये सप्तम कंचुकी "ध्वाङ्क्षी" नामक है। जैसे हम लोग शरीर के साथ सम्बन्ध रखनेवाला, बहुत कोमल और बारीक, कपड़ा पहनते हैं, जिस से शरीर में गड़े नहीं। उसके ऊपर खासा मलमल का कुछ मोटा वस्त्र पहनते हैं। अन्त में सबसे मोटा कश्मीरा आदि पहनते हैं। बस इसी क्रम से पारद की कञ्चुकी समझनी चाहिये। इन सप्त कञ्चुकियों का हरण घृतकुमारी का रस, चित्रक, लाल सरसों, बड़ी कटेरी, त्रिफला, इन छः चीजों में प्रत्येक में तीन दिन मर्दन करके बारम्बार डमरूयन्त्र से उड़ाने से होता है।

८ प्रश्न–बुभुक्षित पारे की परीक्षा क्या है? यदि कहो कि सुवर्ण को भक्षण करके हजम कर जाता है और उसका वज़न नहीं बढ़ता और कपड़े में छानने से छन जाता है उसमें सुवर्ण का

अभाव हो जाता है क्योंकि पारे का परिमाण उतना ही रहता है, तब बताइये कि सुवर्ण का बोझा कहाँ गया और पारे के साथ सुवर्ण कैसे छन गया? इसे वैज्ञानिक युक्ति द्वारा सिद्ध करो। सुवर्ण का अभाव उस पारे में किस प्रकार हुआ?

उत्तर—बुभुक्षित पारद की परीक्षा तो इलाहाबाद के प्रसिद्ध रईस चौधरी महादेवप्रसादजी के प्रश्न के उत्तर में लिख चुका हूँ कि "गालनैरूर्ध्वपातैश्चेत्स्वर्णं नायाति दृक्पथम्। मूलमानं च यत्रास्ते जानीयात्तं बुभुक्षितम्"। रहा स्वर्ण का बोझा सो पारद की जठराग्नि से भस्म हो गया। इसीलिये मन्द मन्द धूम उठा और खरल में निस्सत्त्व भस्म बची। जैसे हमलोग दाल, भात, शाक, रोटी आदि मिलाकर दो बार में अढ़ाई सेर पक्का माल खाते हैं, सो सब जठराग्नि से भस्म होकर, उसका मल आधा सेर निकलता है। अथवा दश सेर लकड़ा में अग्नि लगाते हैं तो जलकर दो सेर कोयला निकलता है। यदि उस कोयले को भी बुताया न जाय तो सफेद राख पाव-डेढ़पाव ही रह जाती है। बस बुद्धिमान को इसी दृष्टान्त से समझना चाहिये कि बुभुक्षित पारद की जठराग्नि से सब सुवर्ण का वजन नष्ट हो गया। किन्तु छटाँक सुवर्ण के, मल स्थानापन्न दो एक मासे राख खरल में बचती है। जो निस्सार होने से किसी भारी रोग में काम नहीं आ सकती। रहा सुवर्ण का पारद के साथ छनने का प्रश्न, उसका उत्तर यह है कि—पारद एक ऐसी सूक्ष्म चीज है कि स्वर्णादि धातुओं के प्रत्येक अवयव में घुस जाता है। देखिए! इस बात को हम प्रत्यक्ष कर दिखाते हैं। आप केवल हिंगुलोत्थ पारद छटाँक भर लेकर छटाँक भर ही सुवर्ण पत्र कुटवाकर दश मिनिट मात्र घोटें। उस सुवर्ण और पारद की ऐसी कोमल पिट्ठी हो जायगी कि हाथ में बिलकुल नहीं गड़ेगी। प्रत्युत बारंबार मलने से सुख मालूम होगा। परन्तु तारतम्य इतना है कि पारद में जितनी बुभुक्षा उत्पन्न हुई होगी, उतना वजन सुवर्ण का घट जायगा जो बिना बुभुक्षा के केवल हिंगुलोत्थ पारद में सुवर्ण डालोगे तो सुवर्ण का वजन नहीं घटेगा। फिर उसको दो चार पहर घोटने से, और भी सुवर्ण परमाणुओं के सूक्ष्म हो जाने से कुछ अंश सुवर्ण का कपड़े में छन जाना

क्यों आश्चर्यजनक है ? इस सुवर्ण के छनने की यह परीक्षा है कि डमरूयन्त्र द्वारा पारद को उड़ालो । जितना सुवर्ण छन जायगा, उतना ही नीचे की हाँड़ी में रह जायगा और पारद ऊपर की हाँडी में चला जायगा । और ज्यों ज्यों बुभुक्षित होता है, त्यों त्यों प्रवेशार्थ तीक्ष्णता अधिकाधिक धारण करता है । पारद महान् भी यहाँ तक है कि सर्व धातुओं का अपने में लय कर लेता है । जैसे "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म सर्व जगत् को पैदा करके आप भी प्रविष्ट हो जाता है, और फिर भी प्रलयकाल में "शिष्यते शेषसंज्ञः" इस श्रीमद्भागवत वचन से अपने में सर्व जगत् का लय करके आपही शेष रह जाता है । बस इसी युक्ति से पारद में सुवर्ण का अभाव हो जाता है सो यदि आप पुरुषार्थ करेंगे तो यह सर्व विषय प्रत्यक्ष हो जायगा और शङ्का करने की अभिलाषा ही नहीं रहेगी ।

९ प्रश्न—१८ संस्कार करने से पारे में क्या विचित्रता होती है ?

उत्तर—"स्यात्स्वेदनं तदनुमर्दनमूर्च्छनञ्च" इत्यादि १८ संस्कार महर्षियों ने लिखे हैं उनमें ८ संस्कार करने से पारद की शुद्धि और द्रव्यान्तर के साथ योग करके "लक्ष्मीविलास" "सर्वाङ्गसुन्दर" इत्यादि रस बनाये जाते हैं, और उक्त आठ संस्कार युक्त पारद शरीर को मजबूत बनाने के काम में आता है । बाकी १० संस्कार अनेक प्रकार की सिद्धि के उपयोगी हैं जैसा कि—"इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने । शेषा द्रव्योपयोगित्वान्न वैद्यस्योपयोगिकाः" ।

१० प्रश्न—गन्धक जारण का क्या प्रयोजन है ? जब हिंगुलाकृष्ट पारद गन्धकजारित के समान गुणक है "हिंगुलाकृष्टसूतस्तु जीर्णगन्धसमो गुणैः ।

उत्तर—पारद के समान गन्धक जारण करने से सिन्दूररस ज्वरादि रोग नाशक होता है, द्विगुण से राजयक्ष्मा को जीते, त्रिगुण से रति शक्ति बढ़े, चतुर्गुण से तेजस्वी होय, पञ्चगुण से शरीर सिद्धि होय, षड्गुण गन्धक-जारण करने से मृत्यु को जीते, और शतगुण-गन्धकजारण से शतवेधी होय, अर्थात् एक तोला सिन्दूररस को सौ

तोला ताँबे में डालने से सौ तोला सोना बने, इत्यादि । जैसा "समे गंधे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्। जीर्णे तु त्रिगुणे गन्धे कामिनी-दर्पनाशनः" इत्यादि इत्यादि । इतना तो हमारा भी अनुभूत विषय है कि–जिस मनुष्य को हैजा सन्निपात होता है, उसको हम षड्गुण गन्धकजारित रस दिया करते हैं तो तत्काल फायदा होता है "हिंगुला-कृष्टसूतस्तु जीर्णगन्धसमो गुणैः" इस वचन का तो यह अर्थ है कि जब सिन्दूरादि वटी बनाने का काम पड़ गया (क्योंकि वह विषमज्वर की अच्छी औषध है) और वैद्य के पास सिन्दूररस नहीं है, तब क्या करना ?—

उस अवसर पर शास्त्र ने व्यवस्था कर दी है कि हिंगुलाकृष्टपारद की कज्जली से काम चलालो। क्योंकि वह भी लगभग जीर्णगन्धक (सिन्दूर) रस के समान गुण करेगी। ऐसा कहने से यह सिद्ध नहीं होता है कि गन्धकजारण व्यर्थ है । जैसे तहसीलदार साहब की गैरहाजिरी में सरकारी काम नायब तहसीलदार से ले लेते हैं । इससे यह सिद्ध नहीं होता कि तहसीलदार को रखना व्यर्थ है ।

११ प्रश्न–धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरकादि ऋषियों ने पारद के संस्कार क्यों नहीं कहे ?

उत्तर—चरकादि शास्त्रों में 'ब्राह्मी' चिकित्सा है । रस रत्नाक-रादि जटिल शास्त्रों में "शैवी" चिकित्सा है । इसलिये अपने अपने विषय को सब कहते हैं। उसका अभिप्राय यह है कि "ब्राह्मी" चिकित्सा वालों को यह अभिमान था कि हम लोग अनेक प्रकार की दिव्य औष-धियाँ जानते हैं, तो 'शैवी' चिकित्सा का क्यों अनुकरण करें ? जैसा कि ब्राह्मी चिकित्सा के परमाचार्य श्रीअश्विनीकुमारों ने यज्ञ प्रजापति का शिर जोड़ दिया, पूषा के दांत लगा दिए । च्यवनऋषि बुड्ढे थे, उनको बीस वर्ष का युवा बना दिया इत्यादि । ऐसे ही ऐसे कामों से सर्व देवता उनको पूजते थे । साक्षात् विष्णु भगवान् भी "सौत्रामणी" यज्ञ में अश्विनीकुमारों के ही साथ भाग लेते थे, इन्द्र महाराज भी उनके बिना सोमपान नहीं करते थे । ऋषियों ने भी उनका यज्ञ में भाग लगा दिया । जैसा–"यज्ञस्य च शिरश्छिन्नमश्विभ्यां सन्धितं पुरा ।

पातिता दशनाः पूष्णो भगस्य च विलोचने । भार्गवश्च्यवनः कामो वृद्धः-सन् विकृतिं गतः वीर्यवर्णबलोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा ॥ सौत्रामण्यां च भगवानश्विभ्यां सह मोदते अश्विभ्यां सहितस्सोमं प्रायः पिबति वासवः" इत्यादि । और "शैवी" चिकित्सा वालों को यह अहङ्कार था कि हमारे पास जब सर्व दिव्यौषधियों का गुरु पारद मौजूद है, तो हम किसी अंश में ब्राह्मी वालों से पीछे नहीं पड़ेंगे, जिस रोग को वे दूर करेंगे उसका हम भी समूल घात कर डालेंगे । जिस सिद्धि को ब्राह्मी वाले करेंगे, तो हम भी "भूचरी" "खेचरी" आदि अनेक सिद्धियाँ दिखावेंगे ।

बस इसी कारण ब्राह्मी वालों ने पारद के संस्कार नहीं कहे । नहीं तो आपको यह आशंका भी हो सकती थी कि चरकादि महर्षियों ने यूनानी, डाक्तरी चिकित्सा क्यों नहीं कही ? इसका भी उत्तर यही होगा कि इनको अपने घर में क्या कमी थी जो दूसरे का अनुकरण किया जाय ? फिर कालान्तर में वैद्यों की शिथिलता के कारण ब्राह्मी वालों की दिव्यौषधि लुप्त प्राय होने लगीं । इधर शैवी वाले भी निरुद्योग के कारण सर्व सिद्धियों से हाथ धो बैठे । परन्तु औषधियाँ उभयत्र बनी हुई थीं । इसलिये उस समय 'वाग्भट' 'वङ्गसेन' आदि आचार्यों ने "ब्राह्मी" "शैवी" दोनों चिकित्साओं की खिचड़ी पकाई । अर्थात् दोनों के अनुकरण करके "वाग्भट–रसरत्नसमुच्चय" "बंगसेन" 'भावप्रकाश' "शार्ङ्गधर" आदि ग्रन्थ बने । इसके बाद वैद्य लोग कुम्भकर्ण की निद्रा में सो गए । और ज्वरादिरोग तो जागते ही थे, ऐसे मौके पर "डाक्तरी" और "यूनानी" की बन आई । तब आजकल के अनेक वैद्य लोग अपने शास्त्रीय क्रम को छोड़ कर "शैवी" "ब्राह्मी" "डाक्तरी" "यूनानी" इन सबकी मिली-जुली चिकित्सा करने लगे । यदि अब भी ऐसा ही अन्धेर रहा और वैद्य लोग बिलकुल परिश्रम छोड़ बैठे, तो कुछ दिन के बाद शास्त्रीय चिकित्सा का शायद नाम भी न रहेगा । इसलिये वैद्यों से प्रार्थना है कि संसार के उपकारार्थ अनेक औषधियों का अनुभव करके निष्कपट भाव से ग्रन्थ बना और छपाकर ब्राह्मी और शैवी चिकित्सा को उत्तेजन दें ।

इसी ग्यारहवें प्रश्न का दूसरा उत्तर–

अथवा यह निर्णय भी आपसे, और मुझसे कैसे हो सकता है ? कि धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरकाचार्य्यों ने पारद के संस्कार अपनी लेखनी से कभी नहीं लिखे थे। क्योंकि आधुनिक विद्वान् भी बीस २ पचास २ ग्रन्थ लिख डालते हैं। जैसे मेरे गुरुजी सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महा-महोपाध्याय पण्डित स्वामी श्रीराममिश्र शास्त्रीजी ने "स्नेहपूर्ति" "तुर्य्यमीमांसा" आदि बीसों ग्रन्थ बना डाले। तथा मेरे छात्ररत्न योग-निष्ठ जैनाचार्य्य महाराज श्रीबुद्धिसागरसूरिजी ने "आत्मप्रदीप" 'समाधिशतक' 'ज्ञानप्रदीप' आदि ग्रन्थ बनाकर, पचास संख्या का भी अतिक्रमण कर दिया। तब क्या आप ऐसा निश्चय कर सकते हैं ? कि चरकाचार्य्यादि महर्षियों ने केवल चरकादि ग्रन्थों को बनाकर ही अपनी लेखनी को विश्राम दे दिया था ? कदाचित् उन्हीं के लिखे हुए शास्त्रों से उद्धृत करके अन्याचार्य्यों ने पारद विषयक ग्रन्थ बनाए हों और पीछे वे मूलग्रन्थ लुप्त हो गए हों तो ? प्रायः ऐसा होना सम्भव भी है। संसार की दशा विलक्षण है। जब वर्तमान ग्रन्थों को ही बहुत से लोग आद्योपान्त नहीं देखते तो पुराने ग्रन्थों की खोजखाज कौन करता है ? देखिए वर्तमानकालिक चरक सुश्रुत ग्रन्थों में सुवर्णादि सभी धातुओं का शोधन मारण कई-कई प्रकार से लिखा है, जिसको मैं धातु शोधन मारण प्रकरण में लिखूंगा। उस विषय में आधुनिक कितने ही अज्ञ पूछ बैठते हैं कि धातुओं का शोधन मारण चरक, सुश्रुत में कहीं भी नहीं लिखा इसका क्या कारण है ? फिर उन्हीं की जोड़ी के अन्य महाशय उत्तर देते हैं कि चरक सुश्रुतकार इस विषय को जानते ही नहीं थे। कोई कहते हैं उक्त महर्षि शोधन मारण की विधि लिखना भूल गए। और तीसरे महाशय कहते हैं कि उनके समय में महोग्रवीर्य वनस्पतियाँ परिचित प्रभाव थीं, उनसे सब काम चल जाता था, इसलिये धातु शोधन मारण की अपेक्षा ही नहीं समझी गई, अतएव उक्त महर्षियों ने उस विषय को नहीं लिखा। बलिहारी है पूछने वालों की और उत्तर देने वालों की ! यह वही कहावत है कि–किसी परदेनशीन बूबू ने पूछा था क्यों जी ! चने का दरख्त कितना बड़ा होता है ? दूसरी बूबू ने

उत्तर दिया कि पागल! तू इतना भी नहीं जानती? अरे! जितना बड़ा नीम का दरख्त होता है, उतना ही बड़ा चने का भी होता है।

मेरी बुद्धि से तो चरकादि महर्षियों ने पारद के संस्कार भी अवश्य लिखे होंगे। परन्तु वे ग्रन्थ हमारे दुर्भाग्य-वश लुप्त हो गए हैं उन्हीं का उच्छिष्ट (महाप्रसाद) आजकल दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि विश्वामित्रादि अनेक महर्षियों के नामाङ्कित शास्त्रों में अद्यापि अनेक रस उपलब्ध होते हैं। उनसे अनुमान होता है कि तत्तन्महर्षिविरचित मूलग्रन्थरत्नाकर से निकल कर तत्तत्स्थानों में बिखरे हुए ये रस रूपी रत्न हैं। देखिए यह षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस विश्वामित्र के नाम से उपलब्ध हो रहा है—"हिंगुलोत्थरसं भागं षड्भागं शुद्धगन्धके खल्वमध्ये विनिक्षिप्य कुमारीरसमर्दितं काचकूप्यां विनिक्षिप्य बालुकायन्त्रगं पचेत्। पाचयेत् सप्तरात्राणि सिन्दूरं भवति ध्रुवम्। वल्लमात्रं प्रयुञ्जीत मधुना लेहयेत् परं स्तम्भनं दण्डवृद्धिश्च वीर्यवृद्धिं बलान्विताम्। करोति तेजः पुष्टिश्च महामत्तगजेन्द्रवत्। षण्ढत्वं बान्ध्यरोगं च नाशयेत् सर्वरोगजित् दिनमेकं शतस्त्रीभी रमते तृप्तिवीर्य्यवान् निरन्तरं मनोल्लासं रतिः प्रेम्णा सनातनी शतानि पञ्च षट्कं च रोगाणां नाशयेद्ध्रुवम् नाम्ना षड्गुणगन्धोऽयं विश्वामित्रेण निर्मितः"

पाठकवृन्द? इस लेख से क्या यह अनुमान नहीं होता? कि महर्षि विश्वामित्र रचित किसी ग्रन्थ का यह प्रयोग है। क्या विश्वामित्रजी ने अपनी जिदगी भर में इतना ही निबन्ध रचा था? इसके अतिरिक्त और भी अनेक महर्षियों के नाम से अनेक रस मिलते हैं। उससे साफ मालूम होता है कि अनेक महर्षियों के रचित हजारों ग्रन्थ थे जिनको देख कर ये सब ग्रन्थ बनाए गए हैं। तथा "यूनानी" "डाक्टरी" सभी चिकित्सा काण्ड उन्हीं मूल ग्रन्थों के आधार से निकला है।

प्रश्नोत्तर—

अहमदाबाद से "वैद्यकल्पतरु" नाम का एक उत्तम गुजराती मासिक पत्र निकलता है। बम्बई प्रान्त में यह पत्र बहुत प्रसिद्ध है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुक्त जटाशङ्कर लीलाधरजी त्रिवेदी।

"वैद्यकल्पतरु" में भी हमारा रसायनसार लेख छप रहा है। उस पत्र में हमारे लेख पर जेंतपुर निवासी आर्यवैद्य पं० मयाराम सुन्दरजी ने प्रश्न किए हैं। उनके प्रश्न व अपने उत्तर को हिन्दी-भाषा भाषी, अपने पाठकों को विदित करना उचित जान पड़ता है।

प्रश्न–

उनका प्रश्न यह था,–

महाशय 'वैद्यकल्पतरु' के तन्त्रीजी (सम्पादक) ! आपके मासिक पत्र में बनारस के लेखक "रसायनशास्त्री" पंडित श्यामसुन्दराचार्य "रसायनसार" शीर्षकलेख गतवर्ष के अंकों में ही से लिख रहे हैं। उन लेखों के नवमाङ्क में "बुभुक्षितपारद की तीसरी परीक्षा" शीर्षक लेख में "बुभुक्षितपारद सुवर्ण को खा जाता है, और वजन भी नहीं बढ़ता, तथा सुवर्ण पारद में लुप्त हो जाता है" ऐसी सृष्टिविरुद्ध बात लिखी हैं, यह हमारी मण्डली के ध्यान में नहीं आती, इसलिये इस पत्र के लिखने की आवश्यकता हुई है।

यह लेखक विद्वान् पंडित अपने को "रसायनशास्त्री" ऐसी पदवी लिखते हैं। क्या यह पदवी उनको सरकार ने दी है ? या आधुनिक वैद्यशास्त्रियों की तरह अपने घर से ही धारण कर ली है ? यह हम कुछ जानते नहीं हैं। यदि वह कालेज में विद्या का अभ्यास करके पदार्थविज्ञान और केमिस्टरी सीखे होते तो ऐसी गप्प नहीं हांकते। "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यतेसतः" और उन्होंने यह भी बताया है कि "मेरी जिन्दगी में ही मेरे लेख पर चर्चा करना चाहिये, मेरे मरने के बाद किसी को आक्षेप करना उचित नहीं है।" इसी लिये हम लिखते हैं कि यदि उनका लिखना सत्य है तो उनको अपनी सत्यता का परिचय देना चाहिये कि कालेज में अभ्यास करके रसायनशास्त्र में प्रथम नम्बर प्राप्त किए हुए किसी विद्वान् रसायनशास्त्री डाक्टर के सम्मुख इस प्रयोग को कर दिखावें, कि पारद में सुवर्ण मिलने पर सुवर्ण का वजन न बढ़े। यदि इस प्रकार साबित नहीं कर सकें तो विद्वान् लोग ऐसी पदार्थविद्या से विरुद्ध बात

को नहीं मान सकते, भले ही दुल्हा की माता अपने पुत्र में ३२ गुण बताया करे ! इस पारद से "आसन्नमृत्यु का भी पराजय हो जाता है।" ऐसा भी पं० श्यामसुन्दराचार्य कहते हैं। तो ऐसी अजरामर वस्तु सिद्ध करने वाले उक्त पंडितजी को अपने जीने में क्या सन्देह करना चाहिए ? हमारे प्रसिद्ध वैद्य "झंडूभट्टजी" तथा "बाबाभाई" तो अपनी अपनी आयुष्यप्रमाण स्वर्गस्थ हो गए। वे लोग आर्यवैद्यकशास्त्र प्रमाण पारदविधि भी जानते थे तथापि ऐसा कहीं नहीं लिखा कि आसन्नमृत्यु का जय हो जाता है। अस्तु ! आजकल भेड़चाल में जितना सृष्टिविरुद्ध बोला जाय उतना ही थोड़ा है। परन्तु हमारे ज्ञान से दो धातु (पारद, सुवर्ण) अपनी सत्ता और तौल में अनादिकाल से अनाशवान् (यथावस्थित) हैं, ऐसी आधुनिक सत्यसिद्ध विद्या कहती है, उसके सामने ऐसी गप्प का निर्वाह नहीं हो सकता।

इस हमारे लेख के लिए "वैद्यकल्पतरु" के तन्त्रीजो भी अपना यथार्थ मत लिखने की मेहरबानी करेंगे, ऐसी आशा है।

आर्यवैद्य मयाराम सुन्दरजी, जेंतपुर ।

उत्तर—

ऊपर के प्रश्न का हमने यह उत्तर दिया था— पारद सुवर्ण को खा जाय और वजन नहीं बढ़े, इसको आप सृष्टिविरुद्ध मानते हैं। परन्तु जिस प्रकार एक मन लकड़ी जलाने से जो आध सेर मात्र भस्म रह जाती है और सब वजन नष्ट हो जाता है, इसको आप सृष्टिविरुद्ध नहीं मानते, इसी प्रकार बुभुक्षितपारद की जठराग्नि से सर्व सुवर्ण का वजन नष्ट हो जाना भी आपको सृष्टिविरुद्ध नहीं मानना चाहिये। हमने तो सुवर्ण को ही पारद में जीर्ण करना लिखा है। शास्त्रकार तो हीरे को भी जीर्ण करना बता रहे हैं और जीर्णसुवर्ण की अपेक्षा हीरा जीर्ण होने पर उस पारद में कितना भारी गुण लिख रहे हैं। देखिए—

"अजारयन्तः पविहेमगन्धान् वाञ्छन्ति सूतात्फलमप्युदारम्। अनुप्तक्षेत्रादपि शस्यजातं कृषीवलास्ते भिषजश्च मन्दाः। हेम्नि जीर्णे सहस्रैकगुणसङ्घप्रदायकः वज्रादिजीर्णसूतस्य गुणान् वेत्ति स्वयं शिवः"

अर्थात्—जो कृषक खेत में बीज न बोकर उत्तम खेती की इच्छा करते हैं वे बड़े मूर्ख हैं। उन्हीं की तरह वे वैद्य भी महामूर्ख हैं जो पारद में हीरा, सुवर्ण, गन्धक, जीर्ण न करके उस पारद से बड़ी भारी सिद्धि चाहते हैं। गन्धकजारण की अपेक्षा सुवर्णजारण से सहस्राधिक गुण होता है। और हीरा को जीर्ण करने पर तो पारद के गुण शिव-जी महाराज ही कह सकते हैं, मनुष्य की तो ऐसी शक्ति नहीं।

महाशय! सुवर्णजारण से ही आप इतने घबरा उठे हैं, जो कदाचित् मैंने वज्रजारण विधि लिखी होती तो शायद आप डंडा लेकर खड़े हो जाते? परन्तु वह मेरा अनुभूत विषय नहीं था इसलिये नहीं लिखा। आपने लिखा है कि किसी डाक्टर के समक्ष सिद्ध कर बतावें। इस का उत्तर यह है कि-हमारे लिए तो आपही डाक्टर हैं। अतः हमारे लेखानुसार अपने घर में क्रिया करना आप शुरू करदें। जब आपसे बुभुक्षित नहीं हो सके तो जिस प्रकार हमारी रसायनशाला में सिन्ध हैदराबाद, मद्रास आदि शहरों के विद्वान् सीखने को आ रहे हैं और कितने ही सीख कर चले गए हैं, उसी प्रकार आपसे भी प्रार्थना है कि आप भी इस रसायनशाला को अलङ्कृत करके, बुभुक्षित पारद करके, सुवर्णग्रास अपने समक्ष देकर देख लें। परिश्रम करना और खर्च करना आपके हाथ है। क्रिया बतलाने का जिम्मा मैं लेता हूँ।

जो आपने मेरी "रसायनशास्त्री" पदवी के विषय में पूछा, उसका उत्तर यह है कि—यह विद्वानों की कृपा का फल है। भारतवर्ष में विद्वानों को जितनी पदवी दी जाती हैं, उनको ब्राह्मण लोग ही दिया करते हैं। माननीय सरकार भी विद्वान् ब्राह्मणों की सम्मति से ही "महामहोपाध्याय" "न्यायरत्न" "वैद्यरत्न" "विद्याभूषण" आदि पदवियों को देती है, और अनादिकाल से आजतक सर्वसार का भार ब्राह्मणों के ही मस्तक पर चला आया है। इस क्रमानुसार उन की तरफ से जैसे और अनेकानेक पदवियाँ मुझे मिली हैं, तैसे "रसायनशास्त्री" पदवी भी मिली हुई है। आप भी ब्राह्मण हैं। यहां आकर देख लें। यदि "रसायनशास्त्री" पदवी का निर्वाह होता हो, तो आप भी एक और पदवी देजावें, नहीं तो इस पदवी की

माला भी आपके ही गले में डाल दूँगा। पदवी पर मेरी दृष्टि नहीं है। किसी प्रकार भारतवर्ष की सेवा होनी चाहिए।

आपने यह भी लिखा है कि—कालेज में अभ्यास करके पदार्थ-विज्ञान और केमिस्टरी सीखे होते तो ऐसी गप्प नहीं हाँकते। इसका उत्तर यह है कि—न्याय, व्याकरण, साहित्यादि अनेक शास्त्राभ्यास करके पञ्जाब यूनीवर्सिटी तथा बङ्गाल यूनीवर्सिटी में मैं दत्तपरीक्ष हूँ। परन्तु कालेज की केमिस्टरी नहीं पढ़ी है। किन्तु भगवान् शङ्कर, विश्वामित्र, पराशर, अग्निवेशादि महर्षियों की निकाली हुई केमिस्टरी पढ़कर अनुभूत की है। अतः उन महर्षियों के सिद्धांत का कोई मनुष्य गप्प सिद्ध कर देगा तो मेरी भी गप्प सिद्ध हो सकेगी। हमारी रसायनशाला में उक्त महर्षियों के वाक्यों को पुरस्सर करके पब्लिक के सामने क्रिया की जाती है। इसलिये अचिन्त्यशक्तिक परमात्मा की कृपा हुई तो कतिपय वर्ष में सैकड़ों विद्वान् तैयार हो जायँगे। तब किसी को शङ्का करने का अवकाश ही न रहेगा।

आपने यह भी लिखा है कि—"जब पंडितजी ऐसी अजरामर वस्तु सिद्ध कर सकते हैं, तो अपने जीने में क्या शङ्का है ?" इसका उत्तर यह है कि—"नास्त्यौषधं पारदमन्तरेण ह्यासन्नमृत्यूनपि चोद्धरेयत्" इस लेखानुसार आपको सूचना देता हूँ, कि जिन रोगियों के बचने की आशा नहीं है, उनको हमारे लेखानुसार सिद्ध 'चन्द्रोदय' दो-दो रत्ती १०—१५ मिनट के अन्तर से दी जायगी तो प्रति सैकड़ा ९० मनुष्य अवश्य बचेंगे, कोई वैद्य करके देखले।

यद्यपि इस विषय में मेरे पास बहुत दृष्टान्त हैं; परन्तु तात्कालिक दृष्टान्त यह है—हाल में मैं रंगून गया था। वहाँ रंगून वासी सेठ ठाकरसी लखमचन्द सेक्रेटरी 'जिनशाला' के छः महीने के पुत्र को आध्मान हुआ था। वह बालक ऐसी दशा में था कि अनेक वैद्य, डाक्टर छोड़ गए थे। परन्तु भगवान् शङ्कर के प्रताप से एकरत्ती मात्र चन्द्रोदय मधु के साथ देने से उस बालक के प्राण बचे। इसका मानपत्र श्री संघ की तरफ़ से मिला हुआ मेरे पास है। बेशक शास्त्रकारों के तो यही उद्गार हैं कि "एकोसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते" और

चिकित्साकाण्ड चरक में भगवान् पतञ्जलि के "वैखानसा वालखिल्या-स्तथा चान्ये तपोधनाः । रसायनमिदं प्राश्य बभूवुरमितायुषः" (यहाँ से लेकर) "अभयामलकीयेस्मिन् षड्योगाः परिकीर्त्तिताः । रसायनानां सिद्धानामायुर्यैरनुवर्त्तते" (यहांतक) वाक्य हैं । परन्तु कलि के प्रभाव से औषधियों में उतना वीर्य नहीं रहा, कुछ वैद्यों की भी परिश्रम के विषय में शिथिलता है । जैसा कि वाग्भट लिखते हैं;—

"युगप्रभावाद्यदि चौषधीनां क्रियासु शक्तिःपरिकल्प्यतेऽल्पा आयु-र्बलानामपि सा तथेति तस्मान्निषेव्याणि रसायनानि" ॥

आपने यह भी लिखा है कि—सत्यविद्या के सामने गप्प का निर्वाह नहीं होता । इसका उत्तर यह है कि—जिस प्रकार आप डाक्टरी विद्या को सत्य मानते हैं, उसी प्रकार हम महर्षियों के वचनों को भी सत्य मानते हैं । यदि आपको शङ्का स्वर्ग, नरकादि अदृष्ट विषयों पर होती तो मुझको अनुमानादि प्रयोग द्वारा आपके समझाने में विशेष यत्न करना पड़ता । परन्तु बड़े हर्ष की बात है कि प्रत्यक्षसिद्धवैद्यक-शास्त्र विषयक आपकी शङ्का है । इसका उत्तर मैं हर समय दे सकता हूँ ।

आपने यह भी लिखा है कि—"दो धातु, (पारद, सुवर्ण) अपनी सत्ता और तौल में अनादिकाल से अनाशवान् हैं, ऐसा आधुनिक सत्यविद्या कहती है" । मेरी बुद्धि से तो ऐसी कोई विद्या न होगी जो ऐसा कहती हो यदि ऐसा कोई विद्या कहती भी हो तो उसको मिथ्या समझना चाहिए । क्योंकि पारद सुवर्णादि की भस्मविधि वैद्य, डाक्टर, हकीम सभी जानते हैं । मैं भी यथासम्भव भस्मविधि लिखूँगा । जिस सुवर्णभस्म को लेकर आप बाजार में बेचना चाहेंगे तो भूषण बनाने वाले १ तोले का १) रुपया भी नहीं दे सकेंगे । तब आपको स्वयं ज्ञात हो जायगा कि सुवर्ण अपनी सत्ता में रहा कि नहीं ।

आपने यह जो लिखा कि—झण्डूभट्ट, बाबाभाई आर्य शास्त्रप्रमाण पारद विधि भी जानते थे तो भी अपनी आयुष्यप्रमाण ही स्वर्गस्थ हो गए, और उन्होंने कहीं नहीं लिखा कि आसन्न मृत्यु का जय होता है । इसका उत्तर यह है कि—जो नियतकाल आयु है उसका तो कोई निवारण नहीं कर सकता; किन्तु रोगादि कारणों से जो आगन्तुक मृत्यु है उसका जय अवश्य

होता है। झण्डूभट्ट, बाबाभाई नियतायुष्य भोगकर स्वर्गस्थ हुए। यही शास्त्रसिद्धान्त है, हमने भी तो यही माना है। आप भी समझ लें। फिर भी आपकी शङ्का होगी तो हम बैठे ही हैं। झण्डूभट्ट, बाबाभाई यदि रसायनशास्त्र जानते होंगे तो जरूर हमारा उनका सिद्धान्त एक होगा।

पण्डित मयारामजी ने जो इस विषय में सम्पादक महाशय रा. रा. (पं० जटाशङ्कर लीलाधरजी) की सम्मति माँगी थी, उसके उत्तर में उनने उनका पक्षपात करते हुए भी लिखा था कि, भाई मयाराम सुन्दरजी के कड़क-चर्चापत्र का उत्तर पं० श्यामसुन्दराचार्यजी ने जो शान्तिपूर्वक दिया है वह हम लोगों को अनुकरणीय है, परन्तु मेरा तो यह सिद्धान्त है कि असभ्यता का व्यवहार किसी के साथ भी नहीं करना चाहिए।

प्रश्नोत्तर—

कांगड़ा (पञ्जाब) के वैद्य पं. विद्याधरजी शर्मा १० जून के श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार में जो पूछते हैं उसका उत्तर क्रमशः दिया जाता है।

आप लिखते हैं कि—"अनेक धातु दोष दूर करने को स्वेदन मर्दन किए जाते हैं उससे पारद शुद्ध होता है, बुभुक्षित नहीं।"

इसका उत्तर यह है कि–"नागो रङ्गोमलोवह्निश्चाञ्चल्यंच विषं गिरिः। असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात् पारदे स्थिताः" इत्यादि प्रमाण से श्रीमान् ने पारद में दोष समझे हैं, वही तो शास्त्रप्रमाण "रक्तेष्टका 'निशाधूमसारोर्णाभस्मचूर्णकैःजम्बीरद्रवसंयुक्तैर्मुहूर्मर्द्यो दिनत्रयम्। दिनैकं वापि सूतःस्यान्मर्दनान्निर्मलः परम्" इत्यादि सिद्धमत, पारद की शुद्धि कह रहा है। तथा "विषोपविषकैर्मर्द्यः प्रत्येकं दिनसप्तकम्। मुखं च जायते तस्य बलं वह्निश्च जायते" इत्यादि, अनेक प्रकार पारद को बुभुक्षित करना बतला रहा है फिर शङ्का होने का अवसर नहीं है। जो आपने लिखा कि "पारद का बुभुक्षित होना सम्भ्रमदायक ही नहीं किन्तु अनिश्चित है। सो आपका कहना ठीक है। जबतक क्रिया हस्तगत नहीं होती, तबतक सभी को अनिश्चित रहती है। पहले मैं भी बुभुक्षाविधि को अनिश्चितप्राय मानता था। परन्तु हमारे लेखानुसार यदि आप करेंगे तो आपको भी अवश्य निश्चित हो जायगी। कारण कि हमने स्वयं

अनुभव करके छपाई है। हमने तीन प्रकार से पारदबुभुक्षाविधि लिखी है। जो आपको सुगम पड़े वही करें। बुभुक्षितपारद की यह असली पहचान है कि "गालनैरूर्ध्वपातैश्चेत्स्वर्णं नायाति दृक्पथम्। मूलमानं च यत्रास्ते जानीयात्तं बुभुक्षितम्" आपने लिखा कि "सब तरह की धातु पारद में लीन हो जाती हैं, जिनके दोष दूर करने को स्वेदन मर्दनादि संस्कार किए जाते हैं" इसमें आपको ऐसा समझना चाहिए, कि जो खनिज पारद होता है, उसमें प्रथम से ही नागादि धातु लीन रहती हैं, उसकी शुद्धि के लिये संस्कार किया जाता है। परन्तु पारद को बुभुक्षित करके, तथा नागादि धातुओं को शुद्ध करके, यदि पारद में लीन की जाँय, तब कुछ दोष नहीं है। किन्तु जिस प्रकार पारद अमृत स्वरूप हो जाता है उसी प्रकार नागादि सब धातु भी अमृतस्वरूप हो जाती हैं, जैसा कि वाग्भट लिखते हैं कि—"अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः। तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः"। शास्त्र में लयक्रम ऐसा लिखा है—'काष्ठौषध्यो नागे, नागो वङ्गे, ऽथ वङ्गमपि शुल्वे, शुल्वं तारे, तारं कनके, कनकं च लीयते सूते"।

आपने पूछा कि—जो अन्तर्धूम षड्गुण गन्धकजारण से पारद बुभुक्षित हुआ है उसकी परीक्षा क्या है? उसका उत्तर यह है कि—इसके विषय में हमको बहुत लिखना है, यह पारद की "मूर्च्छित" संज्ञा है अतः अन्तर्धूम चन्द्रोदय प्रकरण में लिखेंगे।

प्रोफेसर विद्यावाचस्पति रसकेसरी त्र्यम्बकगुरुनाथ काले महाशय के १४ प्रश्नों में यह भी एक प्रश्न था कि पारद की "बुभुक्षा" और "प्रबलशक्ति" एक ही चीज है, पृथक् नहीं। इसका उत्तर मैंने यह दिया था कि—जैसे हमको प्रथम बुभुक्षा (भोक्तुमिच्छा) होती है, बाद ग्रास-ग्रहण, फिर ग्रास की जीर्णता, उसके पीछे प्रबलशक्ति होती है। इस क्रमानुसार बुभुक्षाप्रयुक्त प्रबलशक्ति अर्थात् प्रबलशक्ति के प्रति बुभुक्षा परम्परा कारण है। परन्तु आप बुभुक्षा और प्रबलशक्ति को एक ही समझते हैं। कौन उत्तर युक्त है और कौन अयुक्त है इसको पाठकगण ही समझ लें। परन्तु "पारद की प्रबलशक्ति बुभुक्षा ही है" यह कहकर भी इसी दूसरी पंक्ति में आपने लिखा है कि "बुभुक्षावृद्धि से स्वर्ण,

अभ्रक, हीरादि जीर्ण होंगे" इस वाक्य में भी "से" यह पञ्चमी विभक्ति बुभुक्षा को प्रबलशक्ति के प्रति कारण बतला रही है। ध्यान करके देखिए! यद्यपि कार्य में कारण का आरोप करके "प्रबलशक्ति बुभुक्षा ही है" यह गौण प्रयोग हो सकता है, परंतु कार्य कारण के भेद विचारावसर में ऐसे उत्तर ग्राह्य नहीं हो सकते।

आपने यह भी लिख डाला है कि—"गन्धकजारण से बुभुक्षा की विशेष वृद्धि हो जाती है, सुवर्ण वगैरह जैसे-जैसे ज्यादा जीर्ण होंगे उतनी ही बुभुक्षा बढ़ती जावेगी।" अतः विषादि में मर्दन और क्षाराम्ल में स्वेदन से बुभुक्षा होती है ऐसा ही शास्त्र कहता है और ऐसा ही मेरा भी अनुभव है। यदि गन्धकजारण से ही बुभुक्षावृद्धि हो तो, हिङ्गुल से जब पारा निकाल लिया, उसमें गन्धकजारण भी कर लिया "रससिन्दूर" बनकर तैयार हुआ। अब इसमें स्वर्णग्रास क्यों नहीं दिया जाता है? क्योंकि आपने गन्धकजारण से ही तो बुभुक्षा मानी है? यदि रससिन्दूर में ही स्वर्ण दे सकते हो तो पावभर रससिन्दूर में मनों सुवर्ण पच जाना चाहिए।

प्रश्नोत्तर–

ता० २३। २। १२ के श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार में कांगड़े के पं० विद्याधरजी ने कुछ प्रश्न किए हैं। उनका उत्तर यह है—

जब हमने यह लिखा था कि–"बुभुक्षितपारद में सुवर्ण का वजन नहीं बढ़ता" उसपर उक्त पण्डितजी ने "रसायनमूल" शीर्षक से लिखा था कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता। परन्तु खुशी की बात है कि २३। २। १२ के श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार छासठवीं पंक्ति में लिखा है कि—"हीरा आदि द्वन्द्व मेलापक से जीर्ण होता है, परञ्च तोल नहीं बढ़ता। यह मेरा अनुभूत है, क्योंकि मैं स्वयं १६ संस्कार कर चुका हूँ"। अच्छी बात है! भूल भटककर भी जो मनुष्य घर आ पहुँचे तो भी अच्छी बात है। प्रोफेसर त्र्यम्बकगुरुनाथ काले महाशय के चित्त में अभीतक यह बात नहीं आई है कि वजन नहीं बढ़ता। अस्तु, सच्ची बात हमेशः सच्ची ही रहेगी।

अब पं० विद्याधरजी का और मेरा इतना ही मतद्वैध रहा कि ये पाँचबार ग्रास देना मानते हैं। मैंने एकबार ही चतुर्थांशग्रास देकर लिख दिया था कि "गालितो गुलिकाशेषः स्वेद्यो मर्द्यः पुनः पुनः" अर्थात् कपड़े में छानकर देखले। यदि कपड़े में गोली (सुवर्ण) बचे तो फिर स्वेदन मर्दन करे। फिर डमरूयन्त्र से परीक्षा करले व तोलकर भी देखले। जहांतक मूल मान (केवल पारद का वजन) रहे तब जीर्णग्रास बुभुक्षित समझे "गालनैरूर्द्धपातैश्चेत् स्वर्णं नायाति दृक्पथम्। मूलमानं च यत्रास्ते जनीयात् तं बुभुक्षितम्" और पांचग्रास देने पर भी पं० विद्याधरजी को भार बढ जाने से स्वेदन मर्दन करना ही पड़ता है, फिर नई बात क्या निकाली? पारद में तो जितनी बुभुक्षा होगी उतना ही ग्रास जीर्ण होगा। जब आप १६ संस्कार कर चुके हैं और "अन्तर्धूमविपाचित" रीति से शतवेधी, सहस्रवेधी, कोटिवेधी आपको अनुभूत है, और यदि यह बात सच्ची है, तो क्यों नहीं प्रसिद्ध करते? मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अनुभूत क्रियाओं को प्रसिद्ध करता हूँ। यदि आप जैसे विद्वान् ऐसी उत्तम क्रियाओं को प्रसिद्ध करें, तो फिर भारतवर्ष की प्राचीन प्रतिष्ठा का आविर्भाव हो जायगा। आपने प्रतिज्ञा तो की है कि "पात्रपरीक्षा से हम दिखा या करा सकते हैं" मेरी बुद्धि से तो सभी पात्र हैं, जो अपात्र होंगे उनको बतलाने से भी विद्या नहीं आवेगी और यदि आ भी गई तो फलित नहीं होगी। फिर अपना चित्त क्यों संकुचित रखें?

आपने यह जो लिखा कि "रसायनमूल याने क्रमपूर्वक विद्या जाने बिना नफे के बदले नुकसान या वृथा परिश्रम करके पीछे पश्चात्ताप करते हैं" इत्यादि, सो भाई जी! इसी लिए तो "रसायनसार" छपवाना शुरू किया है ताकि विद्वान् लोग मेरे लेख को युक्तायुक्त विचार कर युक्त से फायदा उठावें अयुक्त को छोड़ दें, या मुझको सूचना दे दें। आपने प्रश्न के अन्त में लिखा है कि "सदोषो भस्मितो येन" इत्यादि, सो उसका अर्थ यह है कि जो वैद्य पारद की शुद्धि नहीं करके और नागादि दोषों से दुष्ट पारद की मारणादि क्रिया करते हैं, वह वैद्य जब तक चन्द्र सूर्य रहेंगे तब तक नरकवास करेंगे। परन्तु जिस

पारद की शुद्धि की गई है, उस पारद को शास्त्रकार "दोषहीनो भवेद् ब्रह्मा" इत्यादि लेख मुद्रा से ब्रह्मा बता रहे हैं। उसकी निन्दा करनेवाले को "यश्चनिन्दति सूतेन्द्रं शम्भोस्तेजः परात्परम्। स पतेन्नरके घोरे यावत्कल्पविकल्पना" इस ग्रन्थ से महापापी कह रहे हैं। और जो आपने लिखा कि "पारा गन्धक के पकाने से शिङ्गरफ बनता है जिसको इतरजन भी तैयार किया करते हैं" सो आपको सिन्दूररस तथा चन्द्रोदय विधि में विस्तार से मालूम होगा, जिसका संक्षेप यह है कि जो शक्ति हैजा, सन्निपात वगैरह घोर व्याधिहरण में चन्द्रोदयादि की है सो शिङ्गरफ में नहीं है। यह जो मैंने लिखा था कि "गालितो गुलिकाशेषः" अर्थात् बुभुक्षित करके सुवर्णग्रास देकर घोटना चाहिए। पारद को फिर कपड़े में छानकर देखलें, जो गोलीसी शेष रहे (सुवर्ण शेष रहे) या "ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण" अर्थात् डमरूयन्त्र द्वारा स्वर्ण शेष रहे, तो स्वेदन मर्दन करके ग्रास को जीर्ण कर दे। यह भी क्रिया मैंने अपने मन से नहीं की थी, किन्तु देखिए! शास्त्रकार स्वयं लिख रहे हैं, "अजीर्णे पातयेत्पिण्डं स्वेदयेन्मर्दयेत् तथा रसस्याम्लस्य योगेन जीर्णे ग्रासं तु दापयेत्। गृह्णाति निर्मलो रोगान् ग्रासे ग्रासे तु मर्दितः। मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत्सूते गुणकृद् भवेत्। ततः खल्वेन तप्तेन ह्यम्लेनोत्थापयेद्रसम् क्षारा मुखकराः सर्वे सर्वे ह्यम्लाः प्रबोधकाः" अर्थात् यदि पारद का ग्रास नहीं पचे, तो डमरुयन्त्र से उड़ाकर क्षाराम्ल में स्वेदन करे, बाद बचे हुए सुवर्ण को घोटे। इस प्रकार जब सुवर्ण जीर्ण हो जाय तब दूसरा ग्रास दे। इस प्रकार प्रत्येक ग्रास के समय मर्दित किया हुआ पारद निर्मल होकर विशेष कान्ति को धारण करता है। क्योंकि मर्दनाख्य संस्कार पारद में बहुत गुणकारी है। फिर अन्तिम अवशिष्ट ग्रास को पचाने के लिये अम्लवर्ग के साथ तप्तखल्व में घोट कर डमरुयन्त्र में उड़ाले। स्वेदन में सम्पूर्ण क्षार, (गो मूत्रादि) सम्पूर्ण अम्ल (नीबू आदि) पारद में धातु ग्रसने की शक्ति पैदा करते हैं तथा बुभुक्षा को जगाते हैं। जैसा कि इसी युक्ति का अनुकरण करके आजकल बुद्धिमान् वैद्य किया करते हैं, कि जिस मनुष्य को भूख नहीं लगती, और कुछ खाया हुआ अन्न नहीं पचता,

शरीर में पीड़ा रहती है, हस्त, पाद शिथिल पड़ गए हैं, वृद्धावस्था है, ऐसे रोगी को प्रातःकाल तीन मासे "सूर्यप्रभावटी" देते हैं उससे तीन चार दस्त हो जाते हैं, तो अजीर्ण भी निकल जाता है, और भूख खूब लगती है। फिर दो घण्टे तक विषगर्भ तैल की मालिश कराते हैं जिससे वायु शान्त हो जाता है। बाद मिष्टादि पदार्थ सेवन कराते ह, और सायंकाल को चन्द्रोदय देते हैं, जिससे दिनों दिन ताकत बढ़ती है, और शरीर मजबूत होता है। बस इसी प्रकार पारद का अजीर्ण दूर करने को ऊर्ध्वपातन, स्वेदन, मर्दन (मालिश) होती है। तथा भूख जगाने को गोमूत्र, नीबूका रस, कांजी वगैरह में स्वेदन होता है। और ताकत बढ़ाने को स्वर्णग्रास देते हैं।

आपने यह भी एक शङ्का लिखी है कि "शास्त्रीजी ने 'यावद्दिनानि देवेशि !" इसका फलादेश सर्वत्र ग्रहण किया है सो किस तरह हो सकता है ?" इसका उत्तर दृश्य तो है नहीं जो आपको प्रत्यक्ष करके दिखा दूँ। मैं युक्ति लिखता हूँ सुनिए ! शिवजी महाराज कहते हैं कि हे पार्वती ! जो वैद्य जितने दिन तक पारद को अग्नि पर स्थापित करते हैं, वे वैद्य उतने हजार वर्ष तक शिवलोक में पूजित होते हैं। इस वचन को यथार्थ समझने के लिए यह युक्ति है कि "यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम्" इत्यादि भगवद्वाक्य से यह निश्चित है कि जितनी वस्तु संसार में विभूति वाली हैं, सर्व भगवान् की अंश कला हैं। उसमें भी तारतम्य यह है कि जिसमें अधिक शक्ति है वो भगवान् की अधिक कला समझी जाती है। जैसे—पिपीलिका, चिड़िया, तोता, मैना, बकरी, भैंस, गौ, चाण्डाल, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वेदपाठी, ब्रह्मवेत्ता, शास्त्रोक्त, कलावतार तक क्रम से उत्तरोत्तर ज्ञान, शक्ति, उपकारत्व, अधिकाधिक होने से ईश्वरीय विभूति अधिक मानी जाती है। इस लिए इसकी हिंसा, निरादर, निन्दादि यथा सम्भव करने से उत्तरोत्तर अधिक पाप है। और प्राणरक्षा, सन्तोषोत्पादन, स्तुति करने से अधिकाधिक पुण्य होता है।

यदि कोई विद्वान् अपने उपदेशादि द्वारा गिरी हुई अवस्था वाले को उत्कृष्ट बना दे, तो इस विद्वान् को न्याय प्राप्त अधिक पुण्य होता है।

तथा वह विद्वान् चांण्डाल को उपदेशादि द्वारा जन्मान्तर में यदि ब्रह्मवेत्ता बना दे तो वह विद्वान् असदाचरण सम्पन्न होने पर भी अधम जाति का दर्शन तो दूर रहा, लाखों वर्ष स्वर्गराज्य करता है, और जन्मान्तर में उसी भारी पुण्य के प्रताप से (ब्रह्मवेत्ता बनाने से) ज्ञानपूर्वक भक्ति प्राप्त करता है। यहाँ तक कहना अत्युक्ति नहीं है। यह शास्त्रोक्त बात है। इस विषय में स्वयं महादुष्टाचरण होने पर भी महात्मा हरिभक्त प्रह्लाद के जन्मदाता होने ही के कारण हिरण्यकशिपु आदि सद्गति को प्राप्त होने वाले अनेकानेक दृष्टान्त हैं।

प्रकरण में यह सिद्ध हुआ कि जो अनन्तशक्ति को धारण करनेवाला पारद उस दुर्दशा में पड़ा था कि जिसके मारने से तथा भक्षण से वैद्य तथा रोगी को अनेकानर्थ प्राप्ति शास्त्रकारों ने लिखी थी। उस दुष्ट पारद को जिस वैद्य ने शुद्ध करके अमृतरूप बनाया, जिसका प्रभाव "तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः" इत्यादि प्रशंसा प्रशंसित चरक सुश्रुतादि सर्वायुर्वेद से भी अत्युत्कृष्ट कर दिया। कारण कि चरक सुश्रुतोक्त औषध तो साध्य रोग में ही दी जाती है और शुद्ध पारद तो असाध्य रोगों में भी दिया जाता है। उस वैद्य के पुण्य का वर्णन कौन कर सकता है ? जैसा कि "पारद की प्रधानता" शीर्षक लेख में मैं लिख चुका हूँ "अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुंयादृशतादृशम् आयुर्वेदप्रसादेन किं न दत्तं भवेद्भुवि कपिलाकोटि दानाद्धियत्फलं परिकीर्त्तितम् तत्फलं कोटिगुणित मेकातुरचिकित्सया" इत्यादि, फिर विषोपविष में मर्दन कर ऊर्द्धपातन, अधःपातन, तिर्य्यक् पातन आदि ज्यों-ज्यों क्रिया होती जाती है त्यों-त्यों दिनों दिन अधिक शुद्ध होता हुआ पारद, जिस वैद्य के उद्योग से अनेक महात्माओं का प्राणोद्धारकत्व शरीर-दृढ़ीकरणत्व, सुवर्णसिद्धि, भूचरी, (पृथ्वी में अरोध गमन) खेचरी (आकाश गमन) आदि अधिकाधिक शक्ति को धारण करता हुआ, ईश्वरीय अनन्त विभूतियों को धारण करता है, उस वैद्य को "यावद्दिनानिदेवेशि ! वह्निस्थो धार्यतेरसः तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते दिनमेकं रसेन्द्रस्य योददाति हुताशनम् द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते" इस वचन से शिवलोक में पूजित कहना उपपत्ति सिद्ध

है । इसी प्रकार बुद्धिमान् को चाहिए कि शास्त्र के लेख को इस प्रकार की युक्तियों से समन्वित कर ले । शास्त्र की बात मन में न आवे तो झूँठी नहीं माने । शास्त्र त्रिकालज्ञ मुनियों के वाक्य होने से निर्णीत विषयक हैं ।

जो आपने भूचरी, खेचरी, आदि क्रिया पूछी हैं वह क्रिया मेरी अनुभूत नहीं होने से प्रकाशित नहीं की गई । उन क्रियाओं को आप करना चाहते हों तो शास्त्र विधि से समझ कर मैं लिख सकता हूँ । परन्तु और भी श्री भारतवर्ष के विद्वानों का मत लेकर सब लेख श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार में प्रसिद्ध हो जाँय । उनमें जो जो लेख वजनदार समझे जाँय उन लेखों के अनुसार सब क्रिया करने का आरम्भ कर दिया जाय । यदि शिवजी की कृपा होगी तो कोई क्रिया सिद्ध हो जायगी । जो मनुष्य द्रव्य व्यय तथा परिश्रम के भय से कोई नवीन क्रिया नहीं करते किन्तु यह बाट देखते हैं कि बना बनाया सिद्ध काम हाथ पड़ जाय, उन लोगों के मनोरथ हृदय में ही लीन हो जाते हैं । जो मनुष्य पुरुषार्थावलम्बन करके क्रियारम्भ करते हैं, वह उस क्रिया के अलावे उसी में से और भी नवीन बात पैदा कर लेते हैं । जैसा कि बहुव्यय करके मैंने एक रसायन क्रिया का साधारणारम्भ किया था, उसमें भी कितनी ही नवीन बातें पैदा हो गई जिनको क्रमिक लेखों में प्रसिद्ध करूँगा ।

आपको यदि अपने बाकी १४ प्रश्नों की सफाई करनी हो तो उनको शुद्ध लिखकर तत्तद् ग्रन्थों के नाम सहित श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार में प्रसिद्ध कर दीजिए । जिससे उत्तरदाता किसी विद्वान् को ग्रन्थ खोजने में श्रम करना न पड़े ।

रसायनमूल ।

प्रश्नोत्तर–

ता० १० जून १९१० के अङ्क में कांगड़ा के विद्याधर शर्मा वैद्य ने उपरिनिर्दिष्ट शीर्षक से कुछ प्रश्न का निवेदन किया है । बनारस के श्यामसुन्दराचार्य मानते हैं कि "पारद में सुवर्ण जीर्ण होने से उसका

तौल न बढ़े” परन्तु विद्याधर शर्मा लिखते हैं कि “ऐसा तो कदापि नहीं हो सकता”। अहमदाबाद का गुजराती वैद्यकल्पतरु और पूना की वैद्यकपत्रिका इन दोनों पत्र में मैंने रसहृदय ग्रन्थ के प्रमाण से सुवर्णजारणन्त पारद का वजन बढ़ता ही है यह सिद्ध किया है। सारांश—रसहृदय में जो आर्या है, उससे यह बात साफ मिल जाती है। जैसा—

समरसतां यदि यातो, वस्त्राद्गलितोऽधिकश्च तुलनायाम्। ग्रासो द्रुतः स गर्भे द्रुत्वासौ जीर्यते क्षिप्रम् ॥ ६ ॥

अवबोध ५ वाँ।

(१) ग्रास समरस होना (२) समरस ग्रास के सहित पारद को वस्त्र में से सम्पूर्ण गलित होना (३) और तौल में वह पारद बढ़ना। इन तीन लक्षणों से ग्रास पारद गर्भ में द्रुत हुआ है ऐसा समझना। द्रुत होने पर वह शीघ्र ही जारण पाता है। इस आर्या में गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने द्रुतग्रास का स्पष्ट लक्षण कह दिया है; लोगों ने व्यर्थ वाद बढ़ाया है।

विद्याधर शर्मा पूछते हैं कि अन्तर्धूम-विपाचित-षड्गुणगन्धक जीर्ण पारद की क्या परीक्षा है ?

उत्तर—अन्तर्धूमविपाचितषड्गुणगन्धेन जारितः सूतः। स भवति सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजङ्गे च

इस विषय में कहना जरूर है कि गन्धक जारण विधि को आजकल लोग जानते ही नहीं हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। षड्गुणगन्धकजारण का फल तो सहस्रवेधित्व है। कोई जानते हों तो मुझे जरूर लिखें।

विद्याधर शर्मा के प्रश्न देखने का योग आज ही हमको आया है। इस वास्ते उत्तर को इतनी देरी लगी। विद्याधर शर्मा ने जो चौदह प्रश्न किए हैं उनका उत्तर देने को स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखना जरूर है। इस विषय पर परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रसार्णव है। उसमें विद्याधर शर्माजी के सब प्रश्नों का सविस्तर निरूपण है। वह ग्रन्थ अभी कलकत्ता प्रो० प्रफुल्लचन्द्र राय ने Bibliotheca Inica ग्रन्थमाला में (बङ्गाल के एशियाटिक सोसाइटी के मार्फत) प्रकाशित किया है। रसार्णव में चौदहों

प्रश्नों के उत्तर सविस्तर वर्णित हैं। इस वास्ते इस पत्र में उनको फिर निरूपण करने की आवश्यकता नहीं।

कुछ अन्य प्रश्न—

(१) पारद की प्रबल शक्ति और बुभुक्षा एकही है या नहीं?

(२) बुभुक्षा गन्धक जारण से होती है, या बुभुक्षा होने पर गन्धकजारण करना?

(३) यदि पारद का वजन न बढ़े तो गन्धकादिक के एक, द्वि, त्रि, चतुः, पञ्च, षडगुण जीर्ण हुए, ऐसे कैसे समझना?

(४) गन्धकजारण यदि कोई वैद्य गुरु परम्परा से जानते हों तो जरूर हमसे पत्र व्यवहार करना चाहिये।

वैद्य त्र्यंबक गुरुनाथकाले,
श्रीधूर्त्तपापेश्वर कार्यालय,
बम्बई पनवेल।

उत्तर—भारतवर्ष के सभी वैद्यों को स्मरण होगा कि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि "बुभुक्षित पारद में सुवर्ण का वजन नहीं बढ़ता है इस विषय में जिनको शङ्का करना हो, या प्रत्यक्ष देखना हो; वे अभी निर्णय करलें, मेरे मरने के बाद कोई आक्षेप करेंगे, तो अच्छा नहीं है।" इस प्रतिज्ञा को सुनकर लगभग ४० वैद्य मेरे विरुद्ध खड़े हुए थे। उनमें से मयाराम सुन्दरजी प्रभृति महाशयों ने तो अवाच्य शब्दों से भी मेरी खातिर की थी। जिसका उत्तर मैंने शान्ति-पूर्वक, विनीत भाव से "श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" "वैद्यकल्पतरु" और "भारतजीवन" में प्रकाशित कर दिया था। मेरा यह अभिप्राय था कि हजार वैद्य विरुद्ध क्यों न पड़ें, किन्तु जब उनको प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा, तो वे सब अवश्य सन्तुष्ट हो जायँगे, और आयुर्वेद का प्रचार अच्छा होगा। देखिए?

चीचण निवासी वैद्यरत्न पं० पंढरीनाथ आत्माराम बावरे महाशय ने अनेक प्रमाणों से अक्तूबर मास के "वैद्यकल्पतरु" में सिद्ध किया है कि बुभुक्षित पारद में सुवर्ण का वजन नहीं बढ़ता। पण्डित पंढरीनाथ जी ने अन्त में यह भी लिखा है, कि बहुत से वैद्य स्वयं

अनुभव नहीं करके, श्यामसुन्दराचार्य की तो क्या बात है, गोविन्द-भिक्षु जैसे महर्षियों के वचनों को भी गप्प कह कर उड़ाना चाहते हैं। ऐसा हमारा तो साहस नहीं होता है। अहा! आज हमको यह लिखने में बड़ा हर्ष होता है कि परमेश्वर ने ब्राह्मण जाति को निस्स-न्देह विद्या और गुणमय परमाणुओं से बनाई है।

२९ सितंबर के श्री वेङ्कटेश्वरसमाचार में रसकेशरी विद्यावाच-स्पति प्रोफेसर, त्र्यम्बक गुरुनाथ काले महाशय ने कुछ प्रश्न किए हैं। उनका उत्तर नीचे दिया जाता है:—

प्रश्न—ता० १० जून १९१० के अङ्क में कांगड़े के विद्याधरशर्मा वैद्य ने "रसायनमूल" शीर्षक से कुछ प्रश्न श्यामसुन्दराचार्य के ऊपर किए हैं। आप कहते हैं कि 'बनारस के श्यामसुन्दराचार्य मानते हैं, कि पारद में सुवर्ण जीर्ण होने से उसका तोल नहीं बढ़ता' परन्तु ऐसा कदापि नहीं हो सकता। अहमदाबाद का गुजराती "वैद्यकल्पतरु" और पूना की मराठी "वैद्यकपत्रिका" इन दोनों पत्रों में मैंने "रस-हृदय" ग्रन्थ के "समरसतां यदि यातो वस्त्राद्गलितोऽधिकश्च तुला-नायाम्। ग्रासो द्रुतः स गर्भे द्रुत्वाऽसौजीर्यते चिप्रम्।" इस आर्या-वृत्त से सिद्ध कर दिया है कि पारद में वजन बढ़ता है। जैसे (१) ग्रास समरस होना, (२) समरसग्रास के सहित पारद वस्त्र में संम्पूर्ण गलित होना और (३) तौल में उस पारद को बढ़ना। इन तीन लक्षणों से जानना चाहिए कि ग्रास पारद गर्भ में द्रुत हुआ है। द्रुत होने पर शीघ्र ही जारण पाता है। इस आर्या में गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने द्रुत ग्रास का स्पष्ट लक्षण कह दिया है। लोगों ने व्यर्थ वाद बढ़ाया है।

उत्तर—रसकेशरी प्रोफेसर महाशय जी? इस श्लोकार्थ को आप समझे नहीं। आप स्वयं कह चुके हैं कि "द्रुत होने पर शीघ्रही जारण पाता है" बस? इसी अर्थ पर ध्यान दीजिए। यही बचन कह रहा है कि भार नहीं बढ़ता। ग्रन्थकार गोविन्दभिक्षुक को यदि भार बढ़ना अर्थ इष्ट होता तो "गलितोऽधिकश्च तुलनायाम्" इस तृतीय क्रम तक

हो कह कर चुप होजाते "द्रुत्वाऽसौ जीर्यते क्षिप्रम्" कहने की क्या जरूरत थी ?

वजन नहीं बढ़ने का दूसरा प्रमाण निघण्टु रत्नाकर १ भाग धातु शोधन मारण प्रकरण पत्र ९४ सुवर्ण जारणविधि में यह है:—

शनैः संस्वेदयेद् भूर्जे बद्ध्वा सम्पुटकाञ्जिकैः। भाण्डके त्रिदिनं सूतं जीर्णस्वर्ण समुद्धरेत्। अधिकस्तुलितश्चेत स्यात्पुनः स्वेद्यसमोविधिः।

इस वचन को उद्धृत करके "वैद्यकल्पतरु" में पण्डित पंढरीनाथ बाबरे महाशय ने प्रमाण दिया है। इससे तो बालक भी समझ सकता है कि पारद में ग्रास का वजन नहीं बढ़ता। आप या कांगड़े के विद्याधर शर्मा जी विना युक्ति शास्त्र और विना प्रमाण-अनुभवादि के मनमाना सिद्ध करने चलें, तो कैसे माना जा सकता है।

प्रश्न—"अन्तर्धूमविपाचितषड्गुणगन्धेन रञ्जितः सूतः स भवति सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजङ्गे च।" इस विषय में यह कहना जरूर है कि गन्धकजारण आजकल कोई जानता ही नहीं, ऐसा मालूम होता है,

षड्गुण गन्धक जारण का फल तो सहस्रवेधित्व है कोई जानता हो, तो मुझे जरूर लिखे।

उत्तर—आपने यह किससे सुन लिया ? कि षड्गुणगन्धक जारण का फल सहस्रवेधित्व है। षड्गुणगन्धक जारण की तो क्या बात है, चालीस गुण गन्धक जारण तक तो हम पहुँचे हैं। वहां तक तो वेधी पारद होता नहीं। षड्गुण गन्धक जारण तो हमारी रसायनशाला के विद्यार्थी कर लिया करते हैं। धौलाना, जिला मेरठ के लाला मथुराप्रसाद जी वैश्य अगरवाले तथा पंडित मथुराप्रसादजी शर्मा, इन दोनों व्यक्तियों ने हमारी रसायनशाला में पधार कर १० अहोरात्र की अखण्डाग्नि से षड्गुणगन्धक जारण किया था। भारतवर्ष में ऐसे हजार, पांच सौ वैद्य मिलेंगे जो कि बात-बात में षड्गुणगन्धकजारण कर लिया करते हैं। अभीतक भारत-भूमि विद्वानों से शून्य नहीं हुई है। छः सात प्रकार से गन्धकजारण-विधि "श्री वेङ्कटेश्वरसमाचार" और "वैद्यकल्पतरु" में मैं भी प्रसिद्ध कर चुका हूँ, जिसको

देखकर कितने ही वैद्य सफल मनोरथ हुए हैं। जब रसायनसार पुस्तकाकार छपेगा तब आपकी सेवा में भी भेजूंगा। उसमें और भी विस्तार के साथ यथा सम्भव सुगमता दिखाई जायगी। "अन्तर्धूम-विपाचित" रीति से मैंने छः महीने तक परिश्रम किया था। ७ शीशियां फूटीं, परन्तु परमेश्वर की कृपा से पीछे दो शीशी उतार ही ली। सहस्र-वेधी पारद नहीं बना। किन्तु रोगनाशक और पुष्टिकर्त्ता बना। इस लिये मैं अपनी अल्पबुद्धि से ऐसा समझता हूँ कि "षड्गुण गन्धेन रञ्जित: सूत:" ऐसा पाठ ठीक नहीं है, किन्तु "शतगुण गन्धेन रञ्जित: सूत:" ऐसा पाठ होना चाहिए।

प्रश्नोत्तर–

'जैतपुर' निवासी पंडित आर्यवैद्य मयाराम सुन्दरजी के प्रश्नों को और मेरे उत्तर को पाठकवृन्द गत पूर्वाङ्क वैद्यकल्पतरु में पढ़ चुके हैं। उसी शङ्का की पुष्टि में बहुत वैद्य 'गुजरात' के झुके हैं, और उस शङ्का की हद यहांतक पहुँची है कि 'वैद्यकल्पतरु' के सम्पादक वैद्य जटाशङ्कर लीलाधरजी तथा प्रोफेसर त्र्यम्बक गुरुनाथ काले शोलापुरनिवासी जैसे प्रसिद्ध लोग भी इसी आशङ्का को दृढ़ करते हैं, कि पारद को बुभुक्षित करने पर भी सुवर्ण का वजन जरूर बढ़ता है। इस विषय में प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थ की भी साक्षिता दे रहे हैं। 'वैद्यकल्पतरु' के तन्त्री जटा-शङ्कर लीलाधरजी ने बुभुक्षित पारद के विषय में मेरे साथ पत्र व्यवहार भी किया था, परन्तु उसका यथोचित उत्तर देने पर भी आपको सन्तोष नहीं हुआ; इस लिये उनके सन्तोषार्थ गुजराती लेख तो भेज चुका हूँ। परन्तु यह विषय हमारे हिन्दी भाषा-भाषी विद्वानों के कान में भी पड़ जाय इसलिये उचित समझा जाता है, कि अज्ञात रहस्य होगा, तो ज्ञात हो जायगा। यदि मेरी भूल होगी तो विद्वान् लोग मुझे सूचना कर देंगे। गुजरात के विद्वान् इतना तो मानने लग गए हैं कि पारद बुभुक्षित भी होता है, और सुवर्ण को भी ग्रसता है। परन्तु सुवर्ण का वजन नहीं बढ़ता यह सृष्टि विरुद्ध है और शास्त्र विरुद्ध भी है। ऐसा वह लोग कहते हैं। अस्तु! शास्त्रचर्चा जितनी हो उतना ही सार निकलेगा।

मैंने पारद बुभुक्षित करके सब का चन्द्रोदयादि रस बना लिया था, और हैजा सन्निपातादि भयङ्कर व्याधियों में प्रत्यक्ष गुण देखा तो मेरा यह विचार हुआ, कि ऐसे अपूर्व रस के बनाने की क्रिया सबके उपकारार्थ प्रसिद्ध कर देनी चाहिए। इसलिए श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार, भारतजीवन, वैद्यकल्पतरु आदि अनेक प्रसिद्ध पत्रों में छपाकर प्रकाशित करदी।

उसके बाद श्रीयुक्त जटाशङ्कर जी, 'वैद्यकल्पतरु' के सम्पादक ने लिखा कि योग्य दाम लेकर, या मुफ्त, एक तोला बुभुक्षित पारद परीक्षार्थ भेजो। मैंने उत्तर दिया कि मेरे पास बुभुक्षित पारद नहीं रहा, जब होगा तब भेज सकूंगा। इस प्रकार पत्र व्यवहार तो बेशक हुआ था, परन्तु रसायनशाला, पाठशाला और पशुशाला व पाठनादि कार्य से अवकाश नहीं मिला। इसके सिवाय चन्द्रोदयादि रस बहुत तैयार होने से फिर बुभुक्षित पारद करने की अत्यावश्यकता भी नहीं समझी गई, और पारद बुभुक्षित करना कुछ दिल्लगी भी नहीं था, इन्हीं कारणों से भाई जटाशंकर जी के पास आज तक पारद नहीं भेजा गया; और अब भी मुझे इतनी फुरसत नहीं है कि सब काम छोड़ कर आठ महीने परिश्रम कर पारद बुभुक्षित करूँ और तब उनके पास भेजूँ। परन्तु यह बात युक्ति सिद्ध है, कि सुवर्ण का वजन बुभुक्षित पारद की जठराग्नि से नष्ट हो जाता है। बुभुक्षित पारद में सुवर्ण घोटा जाता है, उस समय मलस्थानापन्न 'खरल' में निःसार भस्म बचती है, और कुछ डमरूयन्त्र में भी परीक्षा करते समय, नीचे वाली हांडी में भस्म रहती है, इसको वैद्य घर में करके, या हमारे पास परिश्रम करके देख ले। बिना निर्णय किए, झूठ-सच की व्यवस्था देनी ठीक नहीं।

पारद में सुवर्ण का वजन नहीं बढता। इस में यह युक्ति है कि यदि पारद में सुवर्ण का वजन होता, तो डमरूयन्त्र में उड़ाने से सुवर्ण अवश्य नीचे की हांडी में बचता। क्योंकि अग्नि के ताप से पारद तो ऊपर की हांड़ी में उड़ जायगा, और सुवर्ण तो उड़ने वाली चीज है नहीं, फिर पारद में वजन कहां से आया? यदि नीचे की हांडी में सुवर्ण बचेगा तो पारद कभी बुभुक्षित नहीं समझा जायगा।

लोक में भी यह बात प्रसिद्ध है कि बुभुक्षित मनुष्य भोजन करता है, तो अन्न पचना तभी समझा जाता है, जब कि भोजन, रस, रक्तादि धातु-रूप से परिणत हो जाता है, और मल-मूत्रादि का त्याग हो जाता है। इस लौकिक दृष्टान्त में भी जो भोजन का वजन बढ़ना मानोगे, तो जिस मनुष्य का शरीर दो मन का है, और अपनी जिन्दगी में उसने चार सौ मन अन्न खाया हो, तो सब मिलकर चार सौ दो मन का शरीर होना चाहिए।

जिस प्रकार मनुष्य भोजन करते ही अन्न नहीं खा सकता किन्तु बारबार बुभुक्षित होकर प्रतिदिन अन्न खाता है और मल मूत्र को त्यागता है, उसी प्रकार पारद भी बारबार बुभुक्षित होकर और स्वर्ण ग्रास पाकर मल-मूत्र स्थानापन्न भस्म को त्याग कर एक सेर पारद एक मन सुवर्ण को भी खा जायगा, तो भी कभी वजन नहीं बढ़ सकता।

वजन बढ़ने में कोई शास्त्र प्रमाण भी नहीं मिलता। यद्यपि फरवरी महीने के "वैद्यकल्पतरु" में प्रोफेसर त्र्यम्बकगुरुनाथ काले शोलापुर निवासी ने सुवर्ण के वजन बढ़ने में 'रसहृदय' ग्रंथ का "समरसतां यदि यातो वस्त्राद् गलितोऽधिकश्च तुलनायाम्। ग्रासो द्रुतः समर्थे द्रुत्वाऽसौ जीर्यते क्षिप्रम्" प्रमाण लिखकर बुभुक्षित पारद में सुवर्ण का वजन बढ़ता है। इसके साक्षी 'गोविन्द भिक्षु' हैं। यह सार निकाला है, परन्तु मेरी समझ में तो उक्त श्लोक का यह सार नहीं निकल सकता। इसलिए उसका अर्थ विद्वान् वैद्यों के जानने के लिए लिखना पड़ता है। (समर्थे पारदे) मर्दन स्वेदनादि करने से सुवर्णादि ग्रसन समर्थ पारद में (ग्रासः समरसतां यदि यातो वस्त्राद् गलितस्तुलनायामधिको भवति) अर्थात् सुवर्णादि ग्रास मर्दन करने से इतना सूक्ष्म हो जाता है, कि पारद के परमाणुओं की सदृश सूक्ष्म होकर वस्त्र में छन जाता है, तो ग्रास का वजन बढ़ता है। परन्तु (असौ द्रुतो द्रुत्वा च क्षिप्रंजीर्यते) अर्थात् द्रवता को प्राप्त होता हुआ सम्पूर्ण ग्रास द्रुत होकर शीघ्र जीर्ण हो जाता है। अर्थात् वजन का लेश भी नहीं रहता। इस श्लोक में सुवर्ण जीर्ण होने के ६ क्रम दिखाए हैं। जैसे—(१) मर्दन स्वेदन से पारद को समर्थ करना, (२) सुवर्ण को पारद में

घोटकर सूक्ष्म बनाना, (३) वस्त्र में सम्पूर्ण छानना, इस तीसरे क्रम तक तो सुवर्ण का वजन बढ़ता है। परन्तु 'द्रुतः' इस प्रयोग में 'आदिकर्मणि क्तः, इस पाणिनीयसूत्र से प्रारम्भ अर्थ में क्त प्रत्यय कर्त्ता में दिखाया है (४) द्रवीभाव को प्राप्त होता हुआ (५) सम्पूर्ण द्रुत होकर (६) सर्व ग्रास जीर्ण हो जाता है। अर्थात् बिलकुल वजन नहीं बढ़ता। इस श्लोक में "समर्थे" और "सगर्भे" दो प्रकार के पाठ मिलते हैं ॥

मनुष्य के अन्न ग्रास के जीर्ण होने में भी यही ६ क्रम हैं। जैसे—(१) मन्दाग्नि पुरुष को स्नेह स्वेदनादि कर्म से भोजन करने में समर्थ बनाना, (२) फिर वह ग्रास को दांतों से खूब बारीक (सूक्ष्म) करता है, (३) फिर गले के द्वारा पेट में उतारता है, यहां तक तो भोजन का भार बढ़ता है अर्थात् दो मन का मनुष्य होगा तो भार में उतना बढ़ जायगा, जितना कि उदर में भोजन पहुँचा है। परन्तु (४) उदरस्थ अन्न द्रवीभूत होने लगता है, (५) पीछे सम्पूर्ण द्रुत रस होकर (६) जीर्ण हो जाता है। अर्थात् सारभाग धातुरूप परिणत हो जाता है, और असारभाग मल मूत्र होकर निकल जाता है।

'क्षिप्रं' इस पद से यह दिखाया कि जितना काल बुभुक्षित करने में लगता है, कपड़ा में छनने के बाद उतना काल नहीं लगता। किन्तु दश, पांच वार स्वेदनादि करने से स्वर्ण ग्रास पच जाता है। अब विद्वान् लोगों को समझना चाहिए कि जो गोविन्दभिक्षु का मत है वही तो मैंने बुभुक्षित पारद की विधि में लिखा है, कि प्रथम कपड़े में छान कर देखे जब सम्पूर्ण छन जाय तो ऊर्ध्वपातनयन्त्र से परीक्षा करले, सुवर्ण शेष रहे तो फिर मर्दन स्वेदन करे। जब मूलमान (केवल पारद मात्र का वजन) रहे तो बुभुक्षित जाने।

"गालनैरूर्ध्वपातैश्चेत् स्वर्णं नायाति दृक्पथम्।
मूलमानं च यत्रास्ते जानीयात् तं बुभुक्षितम् ॥

यदि रसहृदयकार गोविन्दभिक्षु को सुवर्ण ग्रास के जीर्ण होने पर भी सुवर्ण का वजन बढ़ना इष्ट होता, तो 'गलितोऽधिकश्च तुलनायाम्' ऐसा नहीं कहकर 'जीर्णोऽधिकश्च तुलनायां ऐसा कहते! जब प्रोफेसर जी (१) स्वेदन मर्दन द्वारा पारद को समर्थ करना (२) रस के समान

स्वर्ण ग्रास को सूक्ष्म करना (३) सम्पूर्ण सुवर्ण का वस्त्र में छन जाना। इन तीन क्रम तक ही ग्रास का कर्त्तव्य मानते हैं, और सुवर्ण का वजन रहने से भी बुभुक्षित समझते हैं, तो ये चार पद–'द्रुतः' द्रुत्वा' क्षिप्रम्, जीर्यते' (अग्रिम तीन क्रम बोधक) गोविन्दाभिक्षु ने व्यर्थ लिखे हैं, यह भी कहना होगा।

दृष्टान्त में भी तुल्य युक्ति से यदि [(१) अन्न खाने में समर्थता (२) दांतों से चबाकर सूक्ष्म करना (३) गले द्वारा उदर में पहुँचाना, इन तीन क्रमों को ही मान कर आहार के वजन को घटाने के लिए (१) द्रुत रस का आरम्भ (२) रस रूप हो जाना (३) अन्न का जीर्ण होना (सारभाग की धातुरूप से परिणति और असार-भाग का मलमूत्र होकर त्याग)] नहीं मानेंगे तो जिस मनुष्य ने अपनी जिंदगी में चार सौ मन अन्न खाया है, और दो मन का शरीर हो, तो चार सौ दो मन शरीर का भार भी मानना होगा। उदर में अन्न का भाग रहता है, तो अजीर्ण माना जाता है, अतः अजीर्णप्रभव रोगों की चिकित्सा भी की जाती है, सो भी सर्व व्यर्थ होने से आयुर्वेद, डाक्टरी, यूनानी, होमियोपैथिक आदि सर्व चिकित्साओं को निष्प्रयोजन कहना होगा।

इत्यादि उक्त दूषण पं० जटाशङ्कर लीलाधर जी के मत में भी अवश्य उपस्थित होंगे। क्योंकि उन्होंने भी बुभुक्षित पारद में सुवर्ण का वजन माना है। इसलिए विद्यावाचस्पति प्रोफेसर जी की सेवा में फिर प्रार्थना की जाती है, कि उक्त श्लोकार्थ को अच्छी तरह समझ कर गोविन्दभिक्षु को अपने मत का साक्षी बनावें! भाई जटाशङ्कर लीलाधर जी ने भी लिखा है, कि "पारद बुभुक्षित होता है और सुवर्ण को भी ग्रसता है। यहाँ तक तो हम सत्य मानते हैं। परन्तु सुवर्ण का वजन नहीं बढ़ता इसको हम नहीं मान सकते"। अतएव उनसे भी मैं जिज्ञासु बनकर पूछता हूँ, कि इस आपके नहीं मानने में क्या प्रमाण है? जो वैद्य "सृष्टि-विरुद्ध" तथा "गप्प" कह कर ही मेरा खण्डन समझते हैं, उनसे भी मैं पूछता हूँ कि जिस सृष्टि को मैंने नहीं समझा कि क्या सत्य है और क्या मिथ्या है, उसको

आपने किस ज्ञान से समझ लिया ? आपने अपने ज्ञान से कभी सृष्टि की तुलना भी की है ? देखिए ! जब लेखनी व्यास भगवान्, श्रीशङ्कराचार्य, महर्षिरामानुजाचार्यादि महापुरुषों के हाथ में थी, और उसने सर्व संसार के निर्णय करने का बीमा लिया था, तो भी अन्त में उसको (लेखनी को) लिखना पड़ा कि 'अघटित घटना पटीयसी माया, अर्थात् मायिक पदार्थों का कुछ पता नहीं लगता । जब तक वस्तु सिद्ध नहीं होती है तब तक मिथ्या समझी जाती है, सिद्ध होने से सत्य मानी जाती है जैसे—रेल, तार, आकाश-विमान आदि ।

विद्वान् को चाहिए, कि वस्तु की बिना परीक्षा किए सहसा "गप्प" या "सृष्टिविरुद्ध" न कहे ।

सूचना—

युक्त्या ब्रवीति यो विद्वाञ्छास्त्रेषु परिपक्वधीः । सोऽर्थवद् वचनत्वेन विद्वत्संसदि शस्यते । युक्तिमद् वचनं येषां तेषां प्रामाण्यमिष्यते यद्वातद्वा ब्रुवाणेषु नैव प्रत्येति बुद्धिमान् ।

वैद्यकल्पतरु से उद्धृत लेख—

अक्तूबर सन् १९११ के दशमाङ्क वैद्यकल्पतरु में रा. रा. वैद्यरत्न चीचण ग्राम वास्तव्य पण्डित पंढरीनाथ आत्माराम बावरे महाशय ने नीचे लिखे हुए शीर्षक से "बुभुक्षित पारद में सुवर्ण ग्रास का वजन ? (भार) नहीं बढ़ता है" इस विषय पर लेख लिखा था उसकी नकल यह है—

सुवर्णग्रासित पारद में सुवर्ण का भार नहीं बढ़ता ।तसमें प्रमाण—

मेहरवान वैद्यकल्पतरु के अधिपति साहेब ! सुवर्णग्रासित पारद में सुवर्ण का भार बढ़ता नहीं है, इस विषय में प्रमाण लिख कर आपके पास भेजता हूँ कृपया इसको वैद्यकल्पतरु में प्रसिद्ध कीजिएगा ।

[१] निघण्टुरत्नाकर तृतीय भाग धातु शोधन मारण प्रकरण पृष्ठ ९४ सुवर्ण जारण विधि में सुवर्ण को दिए हुए ग्रास की परीक्षा (सुवर्ण जीर्ण हुआ कि नहीं) के विषय में यह श्लोक लिखा है— "शनैः संस्वेदयेद्भूर्जे बद्ध्वा संपुटकाञ्जिकैः भांडके त्रिदिनं सूतं जीर्णस्वर्णं समुद्धरेत् अधिकस्तुलितश्चेत्स्यात् पुनः स्वेद्यसमो विधिः" अर्थात् पारद को बुभुक्षित करने के बाद भोजपत्र में पारद को बाँधकर मट्टी के पात्र में भरी हुई कांजी के बीच में सम्पुट (पारद की पोटली) को तीन दिन तक मन्दाग्नि से स्वेदन करे। अर्थात् ऐसी तेज आंच न दे जिसमें कांजी उफन कर बाहर निकल जाय। बाद उस पारद को निकाल कर शुद्ध सुवर्ण का ग्रास देकर एक दिन घोटे। फिर उस पारद को तौल कर देखे, यदि सुवर्ण का भार बढ़ जाय तो फिर "स्वेद्यो मर्द्यः पुनः पुनः" इस न्याय से फिर स्वेदन मर्दन विधि करे। अर्थात् जहाँ तक सुवर्ण का भार किञ्चित् मात्र भी बढ़े, तहाँ तक जीर्ण ग्रास नहीं समझ कर उक्त विधि करता रहे। भार नहीं बढ़ने में यह पहिला प्रमाण है।

[२] अब दूसरा प्रमाण सुनिए— रसहृदय ग्रन्थ के टीकाकार ने "जीर्य्यति" अर्थात् निःशेषतां प्राप्नोति। ऐसा अर्थ किया है। इससे भी साफ मालूम होता है कि पारद में सुवर्ण कुछ भी शेष नहीं रहता।

[३] तीसरा प्रमाण यह है कि– निघण्टुरत्नाकर तृतीय भाग के १३९ वें पृष्ठ में कोटिवेधि (एक तोला पारद से करोड़ तोला सोना बने) पारद की विधि दिखाते हुए, पारद में पाँच पुट शीशा देकर अग्नि में धमावे, जब पारद मात्र शेष रहे और शीशे का भार नहीं बढ़े, तब फिर पूर्वोक्त रीति से शीशे की भावना दे। इस प्रकार बीस बार में शीशे की सौ भावना दे। तौ भी पारद का भार बढ़ता नहीं है।

[४] चतुर्थ प्रमाण यह है कि—"अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः तद्वत् कवलितगगने रसराजे हेम लोहाद्याः" अर्थात् जिस प्रकार मुक्ति के लिए योगी लोग हरमूर्त्ति में लीन हो जाते हैं जिससे कि फिर परमात्मा से वियुक्त होकर संसार में नहीं घूमना पड़े। उसी प्रकार अभ्रकसत्त्वग्रासित रसराज (ब्रह्म स्वरूप

पारद) में सुवर्णादि सब धातु लीन हो जाती है जिससे कि उनका पारद से कभी वियोग नहीं हो सकता । इस उदाहरण में भी शास्त्र-कार को सुवर्णादि धातुओं का भार बढना इष्ट नहीं है ।

[५] पाँचवाँ प्रमाण यह है कि—"परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्व सत्त्वानाम् एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते" इस प्रमाण से जैसे सर्वसत्त्व (जीव) परमात्मा में लीन हो जाते हैं, इसी प्रकार पारद में सर्व धातुओं के सत्त्व लीन हो जाते हैं अर्थात् उनका भार नहीं बढ़ता । इस प्रकार सिद्ध किया हुआ पारद ब्रह्मस्वरूप होने से शरीर को अजराऽमर कर देता है ।

इत्यादि उदाहरणों से पता लग जाता है कि पारद में ग्रास का वजन बढता नहीं है । शास्त्रों के रहस्य बहुत कठिन हुआ करते हैं । रहस्यों का जहाँ तक अपने को अनुभव नहीं है वहाँ तक किसी विद्वान् की निकाली हुई प्रक्रिया को खोटी और गप्प कह कर उड़ाना, उसमें भी [श्यामसुन्दराचार्य की तो बात छोड़ दो] गोविन्दभिक्षु जैसे महर्षियों के वचनों को भी एक–दम मिथ्या और गप्प कह डालना, ऐसा साहस हम से तो नहीं हो सकता ।

वैद्यों का सेवक–पंढरीनाथ आत्माराम बावरे, चीचण ।

अन्तिम पत्र—

सम्पूर्ण खण्डन मण्डन के बाद पण्डित जटाशङ्कर लीलाधर जी सम्पादक "वैद्यकल्पतरु" ने मेरे से पत्र व्यवहार किया था । उनके पत्र के उत्तर में जो मैंने पत्र दिया था उसको कितने ही महीनों के बाद मार्च महीना के सन् १९१४ तृतीयाङ्क "वैद्यकल्पतरु" में प्रसिद्ध कर दिया था । उसकी नकल यह है—

रसायनसार के लेखक पण्डित श्यामसुन्दराचार्य्य का अन्तिम पत्र—

श्रीमान् मान्यवर पण्डित जटाशङ्कर लीलाधर जी ! साष्टाङ्ग प्रणाम । आपका कृपापत्र मिला । रा. रा. पण्डित मयाराम सुन्दरजी की तरफ से "श्यामसुन्दराचार्य्य को फिर कर चेलेंज" एतच्छीर्षक लेख वैद्यक-

ल्पतरु में छपा था वह मैंने बाँचा था। उस लेख में पण्डित मयाराम सुन्दरजी ने वेकी वेही बातें लिखी थीं कि जिनका उत्तर "वैद्यकल्पतरु" और "श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" में युक्ति और शास्त्र प्रमाण के सहित मैं प्रसिद्ध कर चुका था। यों तो पण्डित मयाराम सुन्दरजी ने बहुत लम्बे चौड़े लेख से वैद्यकल्पतरु को भर डाला है, परन्तु उस लेख में उक्त पण्डितजी ने कोई ऐसा शास्त्र प्रमाण नहीं लिखा कि जिससे बुभुक्षित-पारद में सुवर्ण ग्रास का भार बढ़ना सिद्ध हो। तथा मेरी युक्तियों को और मेरे लिखे हुए शास्त्र वचनों को भी खण्डन नहीं किया था। तब आपही स्वयं विचार कीजिए कि युक्तिनिर्म्मूल और शास्त्रनिर्म्मूल लेख का मैं क्या उत्तर देता? वैद्यकल्पतरु जैसे उत्तम पत्र में ऐसे वैसे साधारण प्रश्नों का उत्तर लिखना मुझे योग्य नहीं जान पड़ा था।

आपको स्मरण होगा कि विद्यावाचस्पति रसकेसरी पण्डित त्र्ययम्बक गुरुनाथ काले प्रोफेसर महाशय अपनी बुद्धि के अनुसार "समरसतां यदि यातो वस्त्राद्गलितोऽधिकश्च तुलनायाम् ग्रासो द्रुतः स गर्भे द्रुत्वाऽसौ जीर्यते क्षिप्रम्" इस वचन का आशय "पारद में सुवर्ण का भार बढ़ता है" ऐसा समझ कर वैद्यकल्पतरु, वैद्यकपत्रिका, श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार— पत्रों में लेख भेज कर मेरा खण्डन किया था। जिसका उत्तर देते समय मैंने स्पष्ट रूप में समझा कर वैद्यकल्पतरु, श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार और काशी के भारतजीवन आदि पत्रों में प्रसिद्ध कर दिया था कि सुवर्ण के भार बढ़ने में ऊपर लिखे हुए श्लोक के बनाने वाले गोविन्दभिक्षु पादाचार्य साक्षी नहीं हो सकते। किन्तु वह श्लोक भार नहीं बढ़ने में ही प्रमाणभूत हो सकता है। काले प्रोफेसर महाशय उस श्लोक के अर्थ को विपरीत समझे हैं।

जो वैद्य महाशय मेरा खण्डन लिख कर छपाते हैं। मैं तो उनको पूर्ण शास्त्रानुरागी और अपना उपकारी समझता हूँ। जैसा कि "जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव येषां प्रसादेन विचक्षणोऽहम् यदा यदा मां भजते प्रमादस्तदा तदा ते प्रतिबोधयन्ति" परन्तु खण्डन युक्ति और शास्त्र सम्मत होना चाहिए। रा. रा. पण्डित पंढरीनाथ बावरे महाशय ने आपके वैद्यकल्पतरु में वैद्यों को ठबका देते हुए "शनैःसंस्वेदयेद् भूर्जे

बद्ध्वा सम्पुटकाञ्जिकैः भाण्डके त्रिदिनं सूतं जीर्णस्वर्णं समुद्धरेत् अधिकस्तुलितश्चेत्स्यात् पुनः स्वेद्यसमो विधिः" इस वचन को निघण्टुरत्नाकर से उद्धृत करके सुवर्ण के भार नहीं बढ़ने में लिखा था। इससे तो जिसने छोटी सी लघुकौमुदी भी पढी होगी, वह भी अच्छी तरह से जान सकता है कि पारद में सुवर्ण का वजन बढ़ता नहीं है। रा. रा. पण्डित मयाराम सुन्दरजी ने केमेस्टरी का उल्लेख करके कहा था कि वस्तु के नाश करने की शक्ति ईश्वर में भी नहीं है, तब पारद में तो कहाँ से हो सकती है? इसका जवाब भी आपके वैद्यकल्पतरु में प्रसिद्ध हो चुका है, कि एक मन लकड़ी जलाने से केवल एक सेर भस्म बच जाती है, बाकी भार नष्ट हो जाता है। यहाँ पर केमेस्टरी क्या व्यवस्था देती है? जो कहोगे कि धूम के द्वारा सम्पूर्ण भार (वजन) उड़ जाता है। तब प्रकृत में भी पारदाग्नि से सुवर्ण का भार नष्ट हो जाता है, व थोड़ीसी भस्म रह जाती है। और सुवर्ण का सम्पूर्ण गुण पारद में आ जाता है। जैसे कि नारायण तैल आदि स्नेहपाक विधि में एक मन औषधि का गुण काथ में आ जाता है बाकी बचा हुआ भाग कतवार (छूँछ) समझ कर फेंक दिया जाता है। बाद उस काथ के साथ तेल को पकाने से काथ का सम्पूर्ण गुण तेल में आजाता है, परन्तु तेल का भार कुछ भी नहीं बढ़ता।

गन्धकजारण विधि में भी एक मन गन्धक एक सेर पारद में जीर्ण होने से केवल एक सेर सिन्दूररस मिलता है, गन्धक का भार कुछ भी नहीं बढ़ता। एक मन-गन्धक का सम्पूर्ण गुण पारद में आ जाता है एक मन गन्धक की निस्सार–भस्म, केवल एक सेर मिलती है और सुवर्णादि-धातुओं की भस्म बनाने के समय धातुओं के शोधन-मारण तथा अमृतीकरण, निरुत्थीकरण में मनों औषधियाँ खप जाती हैं, परन्तु भार केवल धातु का ही रहता है, और समस्त औषधियों का गुण धातु भस्म में अवश्य आता है। नहीं तो "शुद्धस्य शोधनं गुणाधिक्याय मृतस्य मारणं गुणाधिक्याय" यह वचन किस प्रकार चरितार्थ हो सकता है? और "गुणवृद्धिस्तु धातूनां पुटनादेव जायते" यह वचन भी भार नहीं बढ़ने पर भी गुणवृद्धि बतला रहा है।

चन्द्रोदय, सिन्दूररस आदि की कज्जली में अनेक औषधियों के रस की भावना दी जाती है, और भार किसी औषध का नहीं बढता, तो भी सब औषधियों का गुण, चन्द्रोदयादि– रसों में अवश्य आता है। तथा गन्धक शोधन विधि में औषधियों के मनों रस खप जाते हैं तथापि किसी औषधि का भार न बढ़ने पर भी गन्धक का गुण कहीं अधिक प्रतीत होता है।

इत्यादि अनेक उदाहरण ऐसे हैं, जोकि भार नहीं बढ़ने में प्रत्यक्षानुभूत और सन्तोषजनक हो सकते हैं। तब वैद्यों की तरफ से जो यह कहा गया था कि "पारद में सुवर्ण ग्रास का भार यदि नहीं बढ़ेगा तो पारद में सुवर्ण का गुण कैसे बढ़ेगा ? क्यों कि गुणी को छोड़कर गुण रह नहीं सकता" अतः इस प्रश्न का उत्तर तो नारायण तैल विधि से हो स्पष्ट हो चुका है कि जिन गुणों का आश्रय वनस्पतियाँ थी उन गुणों का सञ्चार क्काथ द्वारा तैल में होने से उन गुणों का आश्रय अब तैल हो गया है। क्यों कि तैल भी तो द्रव्य ही है ! इन उदाहरणों में केमेस्टरी जो व्यवस्था देगी, वह बुभुक्षित पारद में भी अनुकूल पड़ेगी। इसलिए केमेस्टरी के साथ भी कुछ मतभेद नहीं हो सकता।

उक्त पण्डित जी ने ऐसा भी लिखा था कि "पदार्थविज्ञानरूपी कैलास पर्व्वत को घुमा देने वाला दूसरा रावण (श्यामसुन्दराचार्य्य) कौन प्रकट हुआ ? सो तो अब प्रयोग से प्रत्यक्ष देखना बाकी रहा है"। इसका उत्तर भी बहुत दिन से आपके वैद्यकल्पतरु में प्रसिद्ध कर चुका हूँ कि जो वैद्य मेरे पास आकर बुभुक्षित पारद करना चाहें, वे खुशी से क्रियारम्भ करें। परिश्रम करना और द्रव्य खरचना उनके हाथ है क्रिया बतलाने का भार मैं अपने सिर लेता हूँ। और इसके सिवाय जो क्रिया मुझको आती है; उसके बतलाने में भी मुझे कभी अस्वीकार नहीं है। जिन वैद्यों को मेरा खण्डन करना हो वे खुशी से करें। खण्डन मण्डन के होने से लाभ के सिवाय नुकसान नहीं है। आपने मेरे ऊपर जो पत्र लिखने की कृपा की है उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

वैद्यों का सेवक- पण्डित श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य, अग्रवाल।
(परीक्षक न्याय, व्याकरण बङ्गाल यूनीवर्सिटी)

इन पत्रों के अलावे हिन्दी, गुजराती, मराठी, समाचारपत्रों में वैद्यों के "रसायनसार" के विषय में बहुत खण्डन मण्डन थे परन्तु किसी का तो प्रश्न खो गया, किसी के प्रश्नोत्तर दोनों ही खो गए, और कोई पत्र ऐसा समझा गया कि जिसको बढ़ने से पाठकों का अमूल्य समय नष्ट होता। इसी कारण से वे पत्र नहीं प्रसिद्ध किए गए। जैसा कि—

आयुषः क्षणलेशोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स चेन्निरर्थतां यायाद् हा का हानिस्ततोऽधिका॥१॥

॥ इति शम्म् ॥
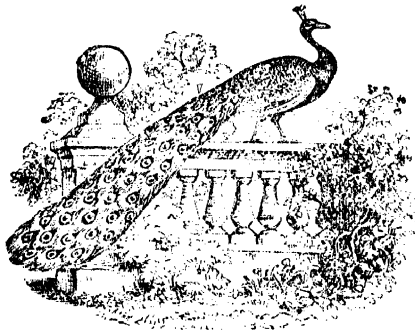
चन्द्रोदयाविधिः—

निर्गीर्णनिस्सारिहुताशनध्वजो
द्विधैव चन्द्रोदय इष्यते बुधैः ।
पुरो वहिर्धूमविधिर्विधीयतेऽन्तेवा-
सिनो येन तमाशु कुर्व्वते ॥ १ ॥

चन्द्रोदय बनाने की विधि—

चन्द्रोदय दो प्रकार का होता है, एक अन्तर्धूम चन्द्रोदय अर्थात् जिसका धूम बाहर नहीं निकलने पावे किन्तु शीशी के अन्दर ही पारद में जीर्ण हो जाय । और दूसरा बहिर्धूम चन्द्रोदय अर्थात् जिसका धूम शीशी के मुख द्वारा बाहर निकलता रहे । इन दोनों चन्द्रोदय की विधि बहुत कठिन है । इनकी अनेक विधि आगे चल कर लिखूँगा । पहिले बहिर्धूम चन्द्रोदय की विधि लिखता हूँ— जिसमें छात्रगणों को बनाने में सुविधा हो ॥१॥

अभ्यासमाद्यं तु गणो विधत्तां
विद्यार्थिनामिष्टरसक्रियाणाम्, ।
सिन्दूरनिर्म्माणविधौ यतस्ते
नेह स्खलेयुर्नच धिक्क्रियेरन् ॥ २ ॥

परन्तु रसक्रिया के प्रेमी विद्यार्थिगण पहिले पहल चन्द्रोदय बनाने का अभ्यास नहीं करें । किन्तु सिन्दूररस बनाने में उद्योग करें । जिसमें उनकी चूक न पड़े, और सिन्दूररस बिगड़ जाने पर भी उनको गुरु जी से ललकार, फटकार नहीं मिले । तात्पर्य्य यह है कि कम कीमत की चीज (सिन्दूररस) बिगड़ जाने से उतना मनोमालिन्य नहीं होगा, जितना कि चन्द्रोदय के बिगड़ने से ॥ २ ॥

सुवर्णसंग्रासितसूतराजं
सेटस्यपादं परिशुद्धगन्धम्, ।

सेटार्द्धकं खल्वतले विमर्द्य दिन-
द्वयं कज्जलिकां विदध्यात् ॥ ३ ॥

सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद पाव भर, शुद्ध किया हुआ आमलासार गन्धक आध सेर, दोनों को खरल में दो दिन तक घोटकर कज्जली करले ॥ ३ ॥

निस्सार्य्य भाण्डीर जटाप्ररो-
हाद्रसं विनियाऽत्र च भावनाभिः, ।
त्रिपञ्चमानाभिरपि प्रशोष्य भरेत
कूप्यामथ कज्जलीं ताम् ॥ ४ ॥

इस तीन पाव कज्जली में वटजटा के अंकुर (बिरोहर) के स्वरस की अथवा काथ की पांच भावना दे। अर्थात् उस काथ को उस कज्जली में घोट-घोट कर पांच बार सुखावे । यदि बरोहर गीली (रस से तर) मिलें तो उनको कूटकर स्वरस निकाल लें । यदि स्वरस पर्य्याप्त नहीं निकल सके तो स्वरसयन्त्र (स्वरसयन्त्र की विधि परिभाषा प्रकरण में देखो और उसके चित्र को भी देखकर पूर्ण परिचय करलो) के द्वारा निकाल ले । यदि स्वरस समय पर नहीं निकल सके तो आध सेर बरोहर में दो सेर पानी डालकर मट्टी की हांडी में चार पहर तक भिगोदे । फिर उसका मन्दाग्नि से क्वाथ करे । जब डेढ पाव पानी रह जाय तब उस काथ की भावना दे । जब कज्जली बिलकुल सूख जाय तब उसको, विधिपूर्वक कपरमट्टी की हुई आतशीशीशी में भरदे, शीशी को बालुकायंत्र में रखकर "चन्द्रोदयादि भ्राष्टी" पर चढ़ादे। (कपरमट्टी की विधि परिभाषा प्रकरण में लिख चुका हूँ) ॥ ४ ॥

यन्त्रेऽथकूर्पीं खलु बालुकाख्ये-
धृत्वाऽर्चयित्वा च शिवादि मूर्त्तीः ।
स्नातानुलिप्तः परितोषितार्थी ध्यायन्
दद्दीताग्निमुपांशुजापी ॥ ५ ॥

इस शीशी व बालुकायन्त्र के लिए बालुका, "चन्द्रोदयादि भ्राष्ट्री" आदि बनाने की विधि सचित्र लिख चुका हूँ। भट्टी में आंच लगाने से पहिले रसशास्त्र के प्रधानाचार्य्य शङ्कर, भैरवादि की मूर्त्तियों को इस विधि से पूजे कि- प्रथम स्नान करके चन्दन लगाकर रेशमी अथवा ऊनी वस्त्र पहिन कर और यथाशक्ति याचकों को दान देकर महाराज का विधिपूर्वक पूजन करे। बाद शङ्करजी का ध्यान करता हुआ और और उपांशुजप (मन ही मन में) करता हुआ भट्टी में अग्नि लगावे ॥५॥

द्विजैस्तु जाप्यः प्रणवोऽत्र मन्त्रो
गुरूपदिष्टाऽप्युत वेदमाता।
द्विजाति संस्कार विहीन शूद्रौ
पञ्चाक्षरादीन् स्वमताञ्जपेताम् ॥ ६ ॥

जप करने की ऐसी पद्धति है कि जिनका द्विजाति संस्कार हो चुका है, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तो ओंकार का जप करें या गुरुपदिष्ट गायत्री का जप करें। यदि इन में किसी का द्विजाति संस्कार नहीं हुआ हो अथवा कोई शूद्र हो तो उनके लिए उक्त मन्त्रों का अधिकार नहीं है। इसलिए वे पञ्चाक्षर (नम. शिवाय:) आदि जो भी अपने को इष्ट हों, उन मन्त्रों को जपें। परन्तु यह स्मरण रहे कि मन्त्र के अन्त में नमः शब्द को नहीं बोलें। अन्त में नमः शब्द को बोलने से मन्त्र, नपुंसक हो जाते हैं; अतः नमः शब्द को आदि में बोले। अर्थात् "शिवाय नमः" न बोलकर "नमः शिवाय" बोलें ॥६॥

लोहः स्वजातावथतिष्ठमान-
स्संस्कारयोगैरपि हेमधातुम्।
अधःकरोत्येव यदा तु मोहाद्धे-
मायते स्वादपि हीयतेऽसौ ॥ ७ ॥

आज कल की प्रायः यह चाल है कि तेली, तमोली, कलवार, जिन को देखो वे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बनने को तैयार हैं। वे लोग इस लेख को देख कर जरूर भड़क उठेंगे कि हमको ओंकार और

गायत्री का जप क्यों नहीं बतलाया ? परन्तु मेरे प्यारे मित्रों ! जिसमें तुम्हारा कल्याण है वही बात लिखी गई है । द्विजाति के सिवाय अन्य को ओँकार तथा गायत्री के जप का उपदेश देने वाले आचार्य, और जप करने वाले—स्त्री शूद्रादि शिष्य, दोनों ही को भगवती श्रुति ने अधोगति की प्राप्ति लिखी है । देखिए— नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद् की श्रुति—"सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्राय नेच्छन्ति द्वात्रिंशदक्षरं साम जानीयाद्यो जानीयात् सोऽमृतत्वं च गच्छति । सावित्रीं लक्ष्मीं यजुःप्रणवं यदि जानीयात् स्त्रीशूद्रः स मृतोऽधो गच्छति । तस्मात्सर्वदा नाऽऽचष्टे । यथाचष्टे स आचार्य स्तेनैव मृतोऽधो गच्छति" । शुभ फल प्राप्ति के लिए कार्यारम्भ किया जाता है उसके अनधिकारी को जब अशुभ फल प्राप्ति श्रुति ने लिखी है, तब ऐसा कार्य कभी नहीं करना चाहिए । इसलिए अपनी जाति में रह कर ही उन्नति करना कल्याण-कारी है जैसे—लोहा अपनी जाति में रह कर संस्कार के प्रताप से तल-वार बन कर सुवर्ण से भी कहीं अधिक कीमती होता है । यदि वह सोना बनने को चले, तो अपनी लोह जाति से भी च्युत हो जाय ॥७॥

दिनानि चत्वारि प्रदास्यमानः
क्रमेण वह्निं मृदुमध्यतीव्रम् ।
प्रारम्भयामे त्वतिमन्दवह्निं
ददीत पश्चात् क्रमवर्द्धमानम् ॥ ८ ॥

इस भट्टी में चन्द्रोदय बनाने के लिए मन्द, मध्यम, तीव्र क्रमानुसार चार दिन तक अग्नि लगानी पड़ेगी । इसलिए पहिले पहर में अति मन्दाग्नि दे, जिसमें अग्नि के वेग को शीशी सहने लगे तथा कज्जली, अग्नि पाकर कमजोर हो जाय । बाद क्रम से अग्नि बढ़ाता हुआ मन्द, मध्यम्, तीव्र तक दे ॥ ८ ॥

गलेऽतितप्ते खलु कूपिकायाः
स्पर्शासहे मन्दयत्वग्निमाशु । ×
तत्रैव तिष्ठन् परिलग्नचेता
निर्देशयँश्छात्रगणाँश्च पाकम् ॥९॥

बारंबार दो-दो घन्टे में शीशी के गले को स्पर्श करता रहे। जब शीशी का गला इतना तप्त हो जाय कि उसको छू नहीं सके, तब भट्टी से लकड़ी निकाल कर, तुरन्त अग्नि को मन्दी करदे और जब गला छूने योग्य हो जाय, तब फिर लकड़ी लगादे। वैद्य को चाहिए कि शीशी के तरफ ध्यान रखकर उसी जगह बैठा रहे, नहीं तो कदाचित् तेज अग्नि लगने से शीशी फूट जायगी। साथही अपने छात्रगणों को भी अग्नि क्रम दिखाता रहे। जिसमें वे लोग भी क्रियाकुशल हो जांय ॥ ९ ॥

दिनद्वयान्ते तु शलाकयैनं परी-
क्षतां जातघना द्रुतिश्चेत्, ।
नलिप्रकाशाऽथ ददीत मुद्रां
दृढाभिधानां रसरोधनाय ॥१०॥

दो अहोरात्र अग्नि लगने पर शीशी में शलाई डाल कर परीक्षा करे। यदि गन्धक द्रुति कुछ गाढ़ी होगई हो, तथा मयूरकण्ठ के तुल्य नीलवर्ण प्रकाशित हो, तो समझ ले कि अब शीशी बेगाबेग (यकायक) फूट नहीं सकेगी। इसलिए शीशी के मुख पर दृढ़मुद्रा करदे, (दृढ़मुद्रा का प्रकार परिभाषा प्रकरण में देखो) इस मुद्रा के करने से गन्धक जारण होने पर भी पारद उड़कर निकल नहीं सकता ॥ १० ॥

श्रीसूतराजस्य च रञ्जनाय
गन्धोत्थधूमग्रसनक्रमेण ।
दिने चतुर्थेऽन्तिमयामकाले
कुर्वीत कोष्ठ्यांसुप्रचण्डवह्निम् ॥११॥

इस मुद्रा का दूसरा प्रयोजन यह भी है कि अवशिष्ट गन्धक का धूम पारद में जीर्ण होने से चन्द्रोदय बहुत सुन्दर, और अधिक गुणकारी बनता है। चन्द्रोदय की ऐसी प्रक्रिया है कि सम्पूर्ण गन्धक का धूम यदि पारद में जीर्ण हो जाता, तब तो उसके समान कोई भी चन्द्रोदय नहीं ठहर सकता। परन्तु जो वैद्य बिलकुल मुद्रा नहीं

लगाकर बहिर्धूम चन्द्रोदय बनाते हैं; उसकी अपेक्षा "जितने गंगा नहाये उतना ही फल हुआ" इस कहावत के अनुसार आधी गन्धक के धूम को पारद में जीर्ण हो जाने से भी, बिलकुल बहिर्धूम चन्द्रोदय की अपेक्षा यह कहीं अधिक गुणकारी होगा। इस प्रकार चौथे दिन के अन्तिम पहर में तीन घण्टे तक तीव्रतमाग्नि दे, जिसमें कुछ अंश कच्चा रह गया हो तो पक जाय ॥११॥

शीतेऽथ यन्त्रे स्वयमेव कूपीमु-
त्तार्य्य यन्त्राज्जलधौतमृत्साम्।
सुस्फोट्य गृह्णातु रसं गलस्थं
चन्द्रोदयं पुण्यचयैकलभ्यम् ॥१२॥

जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय, तब शीशी को बालुकायन्त्र से निकाल कर और उसको पानी से धोकर कपरमट्टी को हटा दे। बाद सावधानी से शीशी के गले पर लगी हुई चन्द्रोदय की कटोरी को निकाल ले ॥१२॥

चन्द्रोदयांशा यदि काचमिश्राः
स्नायुच्छिदत्वेन भवन्त्यनिष्टाः।
सङ्घातसिन्दूरपथेन तेभ्यश्चन्द्रो-
दयं कर्षतु वैद्यराजः ॥१३॥

यदि शीशी के फोड़ने से चन्द्रोदय के टुकड़े बिखर कर कांच के टुकड़ों में मिल जाँय, तब उनको किसी दवा में न डाले। नहीं तो रोगी के आंतड़े (आंत) कट जायँगे। किन्तु संग्रह करके रख छोड़े। वक्ष्यमाण "सङ्घातसिन्दूर" विधि से इन में से भी चन्द्रोदय को निकाल ले ॥१३॥

षड्गुणगन्धकजारित चन्द्रोदय विधिः-

द्विवृत्तगन्धेन बुभुक्षितस्य सूत-
स्य कृत्वा च मासिं पुरोवत्।

दिनैश्चतुर्भिः परिपाचयेत पुनश्च
तद्वत् क्रियतां प्रपाकः ॥ १ ॥

षड्गुणगन्धकजारित चन्द्रोदय की विधि—

पूर्वोक्त विधि के अनुसार द्विगुण गन्धक जारित चन्द्रोदय जब बनकर तैयार हुआ, तब उसमें द्विगुण गन्धक (आध सेर) और डालकर उक्त विधि के अनुसार चार दिन की आँच देकर चन्द्रोदय तैयार करले। स्वाङ्गशीतल होने के बाद शीशी के गले से पाव भर चन्द्रोदय को निकाल कर, फिर उसमें आध सेर गन्धक डालकर कज्जली करे। और पूर्व्वोक्त विधि के अनुसार चार दिन की आँच देकर स्वाङ्गशीतल होने के बाद षडगुण गन्धक जारित—चन्द्रोदय को शीशी के गले से निकाल ले। इस प्रकार बुभुक्षित पारद से द्विगुण–द्विगुण गन्धक के साथ तीन बार तीन शीशी में पकाने से बारह–अहोरात्र की अग्नि में षड्गुणगन्धक जारित–"चन्द्रोदय" बन जाता है ॥१॥

षड्गन्धजारी निखिलार्थकारी च-
न्द्रोदयो नाम जनार्दनात्मा ।
रोगानुपानैश्च विनानुपानैस्सम-
स्तरोगेषु महोपकारी ॥ २ ॥

यह चन्द्रोदय एकही ऐसी महौषधि है कि सर्व्व कार्य्यों को सिद्ध करने वाली है। और "मूर्च्छितस्तु जनार्दनः" इस न्याय से साक्षात् विष्णुस्वरूप है। अर्थात् वैष्णव लोग जिस प्रकार श्रीमूर्त्ति की पूजा करके अमोघ पुण्योपार्ज्जन करते हैं, उसी प्रकार विष्णु भावना से चन्द्रोदय का पूजन करके अनन्त पुण्य के भाजन होते हैं। इस चन्द्रोदय को तत्तत् रोगनाशक–अनुपानों के साथ, या विनाही किसी अनुपान के, सेवन करने से सम्पूर्ण रोगों में महा उपकार होता है ॥२॥

स्वस्थैश्च रुग्णैश्च सदा निषेव्यो
वर्षाञ्छतंस्वस्य जिजीविषाचेत् ।

तत्कालजातार्भकदेयमात्रा गु-
ञ्जाष्टमांशा प्रतिवर्षवृद्धा ॥ ३ ॥

मनुष्य की यदि सौ वर्ष तक जीने की इच्छा हो तो स्वस्थाऽस्था में या रोगाऽवस्था में, जबसे जन्म लिया है तबसे हमेशा सेवन किया करे। तत्काल उत्पन्न होने वाले बालक को इसकी एक चावल (रत्ती का आठवां हिस्सा) मात्रा है। वर्ष-वर्ष दिन के बाद एक एक चावल बढ़ाते हुए, ॥ ३ ॥

गुञ्जाष्टमात्पञ्चदशाब्दकान्तं
स्थिरा तदूर्द्ध्वं तु भवेद् द्विगुञ्जा।
लक्ष्मीपतीनां च भिषक्पतीनां
दीनेषु पात्रेषु समर्पणीयः ॥ ४ ॥

आठ वर्ष के बालक से पन्द्रह वर्ष के बालक तक तो एक रत्ती की मात्रा है और सोलहवें वर्ष से आगे दो रत्ती तक की मात्रा मैंने स्थिर की है। परन्तु इसके बनाने में परिश्रम और द्रव्य का बहुत व्यय है। इस लिए लक्ष्मीपति (राजा, महाराजा, सेठ साहूकार) तथा वैद्यराज के सिवाय, यह अन्य को दुर्लभ भी है। इस लिए धनी लोग तथा वैद्य लोगों से हमारी प्रार्थना है कि निर्धन मनुष्यों को, तथा साधु, ब्राह्मण, सत्पात्रों को अपनी तरफ से बांट कर उनको प्राणदान दें ॥४॥

समुद्रशोषश्च लवङ्गजातिफले
हिमांशुः परिशोधितश्च।
चन्द्रोदयः पञ्च समानभागाः
कस्तूरिका त्वष्टमभागमाना ॥ ५ ॥

समुद्रशोष एक तोला, लवङ्ग एक तोला, जायफल एक तोला, भीमसेनी कपूर (भीमसेनी कपूर की विधि आगे लिखूँगा) एक तोला, चन्द्रोदय एक तोला, कस्तूरी डेढ़ माशे, ॥५॥

संमर्द्य सर्वं निदधीत कूप्यां
हैयङ्गवीनेन दलेन वल्ल्याः ।
यद्वाऽथसन्तानिकयाऽपि लिह्या-
त् प्रातः सदैनं कृतशौचकर्म्मा ॥६॥

इन सब चीजों को खूब मर्द्दन करके शीशी में भर कर रख छोड़े। यहाँ पर मर्दन करने की ऐसी पद्धति है कि कांच के खरल में या चिकने पत्थर के खरल में चन्द्रोदय को चार पहर तक गुलाबजल के साथ घोटे, बाद ऊपर लिखो हुई सब चीजों को डालकर एक पहर घोटे, फिर शीशी में भरकर रख छोड़े। इसकी एक रत्ती से दो रत्ती तक की मात्रा हैयङ्गवीन (दही से निकले हुए मक्खन) के साथ, या ताम्बूल (पान) के साथ, अथवा मलाई के साथ, शौचकर्म्म से निवटकर, प्रातःकाल रोज सेवन करे ॥६॥

यच्छेद् बलं चैष जरां निय-
च्छेद् रक्षेद्वयोऽकालकृतान्ततोऽपि ।
क्लीवत्वमन्दाग्निमुखांश्च रोगान्मु-
ष्णाति पुष्णातिचवालकायम् ॥७॥

यह चन्द्रोदय बहुत अच्छी चीज है। ताकत बढ़ाती है, वृद्धावस्था को नहीं आने देती है, अकाल मृत्यु से आयुष्य की रक्षा करती है, नपुंसकत्व, मन्दाग्नि आदि अनेक रोगों को नष्ट करती है, बच्चों के शरीर को पुष्ट करती है ॥७॥

मृत्य्वब्धिमग्नाँश्च जनान् वहित्र-
मुद्धर्तुमेतेन विनाऽत्र सृष्टौ ।
सृष्टं न दृष्टं परमेष्ठिनाऽपि हर्त्ता
रुजां पञ्चशतानि षट् च ॥ ८ ॥

कहाँ तक कहें इसके सिवाय संसार में ऐसी दूसरी चीज कोई नहीं देखी गई, जो मृत्युरूपी समुद्र में डूबनेवाले प्राणियों को जहाज

के समान हस्तावलम्ब दे। यह चन्द्रोदय पांच सौ छः रोगों को नाश करता है ॥८॥

चन्द्रोदयस्य द्वितीयो विधिः—

बुभुक्षुसूतं विधुसेटमानं
वेदाङ्गमानेन सुगन्धकेन
घृष्ट्वा सुखल्वे निबिरीसमह्नां
त्रयं विभाव्यापि जटाकषायैः ॥१॥

चन्द्रोदय बनाने का दूसरा प्रकार—

सुवर्ण ग्रास से ग्रासित बुभुक्षित पारद एक सेर, शोधी हुई गन्धक छः सेर दोनों को चिकने खरल में तीन दिन तक घोटकर कज्जली करे। और बटजटा प्ररोह (बरोहर) के काथ की साथ ही साथ भावना भी देता जाय ॥ १ ॥

ढक्काख्ययन्त्रे नलिकायुतेऽपि
पचेत सर्व्वार्थविधातृकोष्ठ्याम् ।
ऊर्ध्वमुखे स्थापितचुल्लिकायां
तालादिकोष्ठ्यामुत घस्त्रयुग्मम् ॥२॥

इस कज्जली को "नलिकाडमरूयन्त्र" में रख कर सर्व्वार्थकरी भट्ठी के ऊपर लोहे का चूल्हा रखकर, उस चूल्हे पर नलिकाडमरूयन्त्र को रखकर, अथवा तालादिभस्मकरी भट्ठी के ऊपर उस यन्त्र को रखकर, दो दिन तक आँच दे ॥ २ ॥

चुल्लीस्थयन्त्रं तु वितस्तिमानं
यत्प्रस्तरेङ्गालत ऊर्ध्वमस्ति ।
तद्भङ्गभीतिर्न महोष्मतोपि वह्ने-
रिति स्थापयत्वत्र चुल्लीम् ॥३॥

सर्व्वार्थकरी भट्ठी के ऊपर चूल्हा रखने का यह अभिप्राय है कि पत्थर के कोयलों की इतनी तीव्र अग्नि होती है कि उससे यन्त्र

फूटने की शङ्का रहती है। और चूल्हे पर यन्त्र को रखने से उस तीव्राग्नि से एक विलांद ऊँचा यन्त्र रहता है, इसलिये अग्नि की तेजी से यन्त्र फूट नही सकता ॥ ३ ॥

नलीं शालाकां विनिवेश्य पश्येद्
गन्धस्य जीर्णत्वम जीर्णतेति ।
जीर्णं व्यवस्येद्यदि गन्धपङ्को
लगेच्छलाकां न च वैद्यराजः ॥४॥

बाद डमरूयन्त्र की नलिका में लोहे की शलाका को डालकर देखे, कि गन्धक जीर्ण हुआ या नहीं ? यदि गन्धक द्रुति का कीचड़ सा शलाई में नहीं लगे, तो बुद्धिमान को समझ लेना चाहिए कि गन्धक जीर्ण हो गया है, तब अग्नि लगाने का कोई काम नहीं। अर्थात् लकड़ी देना भी बन्द करे, और पत्थर के कोयलों के ऊपर लोहे का तवा ढाँक कर अग्नि की तेजी को कम करदे ॥ ४ ॥

ततोऽन्यथा चेत्पुनरग्निमत्र
नसान्दिहानः प्रददीत यन्त्रे ।
उन्दैश्च वस्त्रैः पुनरुन्दयेत
नलीवियुक्तैरुपरन्ध्रयुक्तैः, ॥ ५ ॥
यन्त्रोर्ध्वभागं न यथाऽग्नितप्त
उड्डीयते रन्ध्रपथेन सूतः ।
सूतार्गलाऽऽभे परिजीर्य्यमाणे
गन्धे रसेन्द्रेण वियुक्तयन्त्रम्, ॥६॥
सम्भाव्यतेऽतः खलु वैद्यराजै-
राच्छादनीयं वसनैश्च यन्त्रम् ।
स्वाङ्गेऽथ शीते परितो नलीं च
चन्द्रोदयं लग्नमुपाददीत ॥ ७ ॥

यदि नलिका में शलाका डालने पर गन्धक का कीच शलाका में लग जाय ! तो निश्चय करले, कि अभी गन्धक जीर्ण नहीं हुआ है ।

तब यन्त्र में निस्सन्देह होकर अग्नि लगावे, और चार पाँच, तह गीले कपड़े से नली के छिद्र को छोड़कर चारों तरफ यन्त्र को ढाँक दे, ताकि अग्नि से तप्त हुआ पारद छिद्र के द्वारा उड़ न जाय। क्योंकि पारद के रोकने वाली गन्धक ही थी; उसके जीर्ण होने पर पारद का रोधक तो कोई रहा नहीं, अतः पारद के निकल जानेसे डमरूयन्त्र अवश्य रिक्त (खाली) हो जायगा। इस वास्ते यन्त्र के ऊर्ध्वभाग को गीले कपड़ों से अवश्य ढाँकना चाहिये। जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय, तब नलिका-डमरूयन्त्र की मुद्रा को खोलकर, हाँडी के अन्दर निकली हुई नली के चारों तरफ लगे हुए "चन्द्रोदयरस" को निकाल ले ॥५।६।७॥

यन्त्रं विधेयं लघु वा महद्वा
मसिप्रमाणैरिह नान्दिकाभ्याम्।
मस्यो भ्रियन्तेऽष्ट च विंशतिश्च
सेटा ययोः पूर्णपदांशमस्योः ॥८॥

यहां पर इतनी बात और समझ लेना चाहिए कि छः सेर गन्धक और एक सेर पारद की कज्जली, सात सेर बनेगी अतएव उसके योग्य नलिकाडमरूयन्त्र दो नांदों का बनावे। दो हांडियों के नलिकाडमरू-यन्त्र बनाने से सात सेर कज्जली इस यन्त्र में नहीं अट सकती। इसी प्रकार कज्जली के अन्दाज से ही छोटा, बड़ा यन्त्र बनाना चाहिए। यन्त्र का परिमाण ऐसा है कि जिस हांडी में चार सेर कज्जली अटती हो, उसमें एक सेर कज्जली भरे। ऐसी ऐसी दो हांडियों का यन्त्र बनावे। इसी हिसाब से सात सेर कज्जली के लिये अठाईस-अठाईस सेर कज्जली जिन नांदों में अट सके; इतनी-इतनी बड़ी दो नांदों का नलिकाडमरूयन्त्र बनावे ॥ ८ ॥

एवंविधानेन न कापि शङ्का
बनेद्रसो वेति नवेति कार्य्या।
गन्धो यथेष्टं परिजारितः स्याद्
वारान् सहस्रं शतमेव वाऽपि ॥९॥

इस रीति से चन्द्रोदय बनाने में ऐसी शङ्का कुछ नही करनी चाहिए कि "अगर यन्त्र फूट जाय तो रस बने कि नहीं बने" क्योंकि यह तो मैंने षड्गुणगन्धकजारण का ही प्रकार लिखा है, परन्तु इस यन्त्र से शतगुण या सहस्रगुण गन्धक भी अपनी इच्छानुसार बड़ी आसानी से जीर्ण कर सकते हैं। हमारे लिखे हुए प्रकार में वैद्यों को कभी धोखा नहीं हो सकेगा ॥ ९ ॥

तालचन्द्रोदय विधिः—

कूष्माण्डसंस्वेदनजातशुद्धि तालं
सुपत्रं परिकुट्टय वस्त्रे, ।
चागाल्य मर्दैत्समपारदेन
बुभुक्षुणा जीर्णसुवर्णकेन ॥ १ ॥
द्विवृत्तगन्धेन पलङ्कषायां शुद्धेन
सर्पिः पयसोऽथवापि, ।
दिनत्रयं काचमर्यां भरेत शीर्शीं
चतुर्थांशतले मासिं ताम् ॥२॥

तालचन्द्रोदय की विधि—

हरिताल शुद्धि के क्रमानुसार तवकिया हरिताल को तीन बार पेठे के बीच में शुद्ध करके, और सुखा कूटकर, कपरछन करले। बाद भिलावें के तेल में अथवा दूध, घृत में उक्त प्रकार से शुद्ध की हुई गन्धक, पारद से दूनी लेकर और सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद के समान-भाग उक्त हरिताल का चूर्ण, इन तीनों चीजों को तीन दिन घोटकर कज्जली करे; बाद उसको आतशीशीशी के चतुर्थांश तलभाग में भरदे ॥ १ ॥ २ ॥

प्रारम्भतीव्रं कुरु हव्यवाहं
तालादिभस्मार्थविधातृकोष्ठ्याम्
चन्द्रोदयित्र्यां विनिधाय यन्त्रं
सर्वार्थकर्यामुत बालुकाख्यम् ॥३॥

इस शाशी को बालुकायन्त्र में रखकर "तालादिभस्मकरी" या "चन्द्रोदयादिभ्राष्ट्री" अथवा "सर्वार्थकरीभ्राष्ट्री" पर चढ़ाकर प्रथम से ही तीव्राग्नि दे। अर्थात् 'मन्दमध्यमतीव्रेण क्रमवृद्धेन वह्निना' इस बचन का अवलम्बन नहीं करे, नहीं तो पारद उड़ जायगा। तीनों भट्ठिओं में से अन्यतम भट्ठी पर रखने का यह अभिप्राय है कि सर्वार्थकरीभ्राष्ट्री में पत्थर के कोयले भरे गए हैं; इसलिये उसमें तो विना ही उद्योग के तीव्राग्नि रहती है, और अन्य दो भट्ठिओं में तो अधिक लकड़ी लगाकर तीव्राग्नि करनी होगी॥ ३॥

दिनैकमात्रेण बनेद् विशुद्धश्चन्द्रोदयो
नाम च तालपूर्वः।
कुष्ठादिरोगेष्वनुलप्रभावः
स्वास्थ्यप्रचारक्रमसत्स्वभावः॥४॥

इस प्रकार एक दिन (अहोरात्र) में परम विशुद्ध (प्रातःकाल के सूर्य के समान लालवर्ण का) "तालचन्द्रोदय" बनता है।

योंतो यह अनुपान वश सभी रोगों में काम देता है, परन्तु प्रधानतया रक्त शुद्धि के लिए एकही चीज है। इसलिए यह कुष्ठ, पामा, दद्रु, आदि चर्म रोगों में दिया जाता है॥ ४॥

तालचन्द्रोदयस्य द्वितीयो विधिः—

नलीडमर्वाख्यकयन्त्रमध्ये षड्गन्धजीर्णं विदधीत सूतम्।
तत्तुल्यगन्धेन विमर्द्य तालं शुद्धेन शुद्धं प्रपचेत कोष्ठ्याम्॥१॥
सर्वार्थकर्य्यां दिनमेकमग्रेमग्रेऽथ सूर्येऽस्तगिरौ क्रियां ताम्।
संशीतयेच्छीतलयन्त्रतस्तं चन्द्रोदयं तालमुखं प्रगृह्य॥२॥

तालचन्द्रोदय की दूसरी विधि—

पाव भर पारद (ग्रसितसुवर्ण बुभुक्षित) में डेढ़ सेर शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली करे। उस कज्जली को नलिकाडमरूयन्त्र में रखकर दो अहोरात्र की अग्नि देकर प्रथम षड्गुण गन्धक जारण करले। यन्त्र

के स्वाङ्गशीतल होनेपर नली के चारों तरफ लगे हुए—षड्गुणगन्धक-जारित चन्द्रोदय को निकालकर उसके समान शुद्ध हरिताल के चूर्ण, और शुद्ध गन्धक को, घोट कर कज्जली करे। उसको आतशीशीशी में भरकर, बालुकायन्त्र में रखकर, सर्वार्थकरीभ्राष्ट्री पर उस यन्त्र को रखकर, प्रातःकाल से ही अग्नि लगावे। जब सूर्य छिप जाय [चार पहर के बाद] स्वाङ्गशीतल करदे। जब यन्त्र बिलकुल ठंडा हो जाय, तब शीशी के गले पर लगे हुए– सप्तगुणगन्धकजारित "ताल-चन्द्रोदय" को निकाल ले ॥ १ ॥ २ ॥

ज्ञातासु चाज्ञातचरासु रुत्तु ततो मुमुक्षुं प्रददीत मङ्क्षु ।
गुञ्जैकमात्रां तु बुभुक्षुमेनं संभक्षयेदन्नमवेक्ष्य वह्निम् ॥३॥

इस तालचन्द्रोदय की क्या प्रशंसा लिखें? किसी प्रकार के परिचित ज्वरादि रोगों में तथा जिसका पता नहीं लगता होय कि कौन रोग है, उसमें भी इसकी एक रत्ती मात्रा [पान में, या मधु में, या तुलसी के पत्र में, अथवा बतासे में, रखकर] दे। प्रायः ऐसे रोग भी देखे जाते हैं, जिनका हाल रोगी से पूछने पर रोगी कहता है कि मुझे भूख भी लगती है, दस्त भी साफ होता है, ज्वरकासादि भी कोई रोग नहीं है, परन्तु तबियत प्रसन्न नहीं रहती। अथवा वैद्य के परिश्रम पूर्वक ध्यान देने पर भी समझ में नहीं आवे। उसमें भी यह तालचन्द्रोदय अपना अवश्य चमत्कार दिखाता है। रोगी को भूख लगने पर अग्निबल देख कर भोजन दे। यद्यपि रस के खाने से भी खूब भूख लगती है, तथापि एकबार ही अधिक भोजन नहीं दे ॥ ३ ॥

तालचन्द्रोदयस्य तृतीयो विधिः—

लोकोपकारक्रमतत्परेषु हरिप्रपन्नेषु महत्सु भुत्सु ।
राजाधिराजेषु धनाकरेषु श्रेष्ठिप्रवीरेषु रसेन्द्रसेवाम् ॥१॥
सर्वीयां प्रदश्यार्थ यदीप्सवः स्युः संचेतुमर्थान् सुकृतं च वैद्याः
भृशं प्रशंसाजनितात्मतोषं श्रयन्तु मद्बोधितमार्गमेकम् ॥२॥

तालचन्द्रोदय की तीसरी विधि—

यदि वैद्य लोग लोकोपकार में तत्पर, परमात्मप्रिय, महात्मा लोग तथा विद्वज्जनों की सेवा में अपनी रसायन-क्रिया का प्रभाव दिखलाकर, महापुण्य भाजन बनना चाहते हों, तथा राजा महाराज या सेठ-साहूकार लोगों को अपने पारद के प्रभाव का परिचय कराकर लक्ष्मीपात्र बनना चाहते हों, और जगत् भर में अपनी प्रशंसा फैलाकर अपने चित्त को सन्तुष्ट करना चाहते हों, तो मेरे बताए हुए मार्ग का केवल अवलम्ब करें ॥१।२॥

नल्याढ्ययन्त्रे डमरौ तु पूर्वं गन्धं विशुद्धं शतवृत्तवृत्ताम् ।
रसे बुभुक्षौ परिजारयन्तु ततः सुतालं परिपाचयन्तु ॥३॥

कि— बुभुक्षित पारद में सुवर्ण जीर्ण कराकर उस पारद को पाव भर ले। और पचीस सेर शुद्ध किया हुआ आमलासार गन्धक (सूआपंखी गन्धक मिले तो और भी अच्छा) ले। पांच सेर गन्धक के साथ उक्त पाव भर पारद की कज्जली करके, मट्टी की दो नांदों के नलिकाडमरूयन्त्र में उस सवा-पांच सेर कज्जली को भरकर उक्त विधि के अनुसार तालादिभस्मकरी भट्टी पर सात अहोरात्र तक लकड़ियों की आँच देवे। यदि सात अहोरात्र निरन्तर जगने में क्लेश होय तो रात्रि में निद्रा ले, और दिन में आँच दे। इस प्रकार १४ दिन की आँच दे। यदि सात अहोरात्र अग्नि देने पर भी नांद की नली से गन्धक का धूम निकलता हुआ प्रतीत होय तो एक दो अहोरात्र (जब तक धूम निकलना बन्द नहीं हो) और भी आंच दे। यन्त्र को स्वाङ्गशीत करके नली के चारों तरफ लगे हुए चन्द्रोदय को निकाल ले फिर पूर्व की तरह उस चन्द्रोदय में पांच सेर गन्धक घोटकर उस कज्जली को फिर नलिकाडमरूयन्त्र में रखकर सात अहोरात्र अग्नि दे। इस प्रकार पांच बार करने से लगभग दो महीने में "शतगुणगन्धकजीर्ण-चन्द्रोदय" तैयार हो जायगा। तब उसके समान शुद्ध हरिताल और वजन में उतनी ही गन्धक अर्थात् पाव भर शुद्ध-हरिताल, पाव भर चन्द्रोदय, पाव भर शुद्ध गन्धक, इन तीनों चीजों की

कज्जली बनाकर आतशीशीशी में भरकर चन्द्रोदयादि भट्ठी के ऊपर बालुकायन्त्र को रखकर दो अहोरात्र की अग्नि देने से परम विशुद्ध "तालचन्द्रोदय" शीशी के गले पर मिलेगा ॥ ३ ॥

तालचन्द्रोदयस्य चतुर्थो विधिः—

बुभुक्षता चेत्सुशका न वैद्यै
विद्यानवद्यैर्ननु हिंगुलोत्थम् ।
सूतं विमर्देदुपसप्तवारान्
क्षाराम्लयुक्तेन विषेण शिष्यः ॥१॥
उत्थाप्य चैनं डमरूक्रियातः
संस्वेद्य दत्त्वा कवलं च हेम ।
ततः प्रदिष्टं विधिमाददाति
तेनापि तत्तुल्यफलं लभेत ॥२॥

तालचन्द्रोदय की चौथी विधि—

कितने ही विद्यानुरागी महात्मा वैद्य ऐसे भी हैं कि जिनका समय छात्रवर्गों के उपकारार्थ अध्यापन क्रिया में ही चला जाता है। तथा द्रव्य सम्पत्ति भी इतनी नहीं है कि जिससे पारद को बुभुक्षित कर सकें; उन लोगों की सेवार्थ तालचन्द्रोदय की विधि लिखता हूँ; कि उन महात्माओं को क्लेश नहीं देकर उनके शिष्य हिंगुलोत्थ पारद को चारवर्ग और अम्ल (कांजी) में वत्सनाभ विष के साथ छः सात बार डमरूयन्त्र में ऊर्द्ध्वपातन करलें; और प्रत्येक बार उक्त विधि से दोलायन्त्र में स्वेदन कर लें। इतना मात्र संस्कार कर लेने से भी पारद, कुछ न कुछ सुवर्णसत्त्व को अवश्य ग्रसेगा। तब उस पारद में शुद्ध किये हुए सुवर्ण का चतुर्थांश-ग्रास देकर तीन दिन तक घोटे। यदि उक्त संस्कार-संस्कृतपारद पांच सेर होय तो, पांच सेर शुद्ध गन्धक के साथ कज्जली करके पूर्वोक्त विधि के अनुसार "नलिकाडमरूयन्त्र" में पकावे। इसी प्रकार पांच बार में पच्चीस सेर गन्धक को जीर्ण करके शतगुण गन्धक

जारण होने से भी "शतगुणगन्धकजारित चन्द्रोदय" तैयार हो जायगा ॥१।२॥

यन्त्राधरस्थापितनान्दिकायां
सुवर्णभस्माप्युपलभ्यतेऽत्र ।
तथापि तद्योगवशेन सूतो
भवेद् बलीयान् दरजग्धहेमा ॥३॥

यद्यपि इस क्रिया से पारद पूर्ण बुभुक्षित नहीं होता है; इसलिये नलिकाडमरूयन्त्र की नीचे की नांद में सुवर्णभस्म भी मिलती है। तथापि उतने मात्र संस्कार के बल से भी पारद मूलस्वरूपापेक्षया कहीं अधिक बलवान् हो जाता है; तथा कुछ न कुछ सुवर्ण को खा ही जाता है। फिर जिसका इतना संस्कार किया गया, उसके विषय में तो शङ्का ही क्या है? ॥ ३ ॥

सूतः स्वभावेन च हैङ्गुलोऽपि
सौवर्णयोगं समवाप्य किंचित् ।
सत्त्वं दरं हैमनमाददाति किं
जातसंस्कारविधिस्तु वाच्यम् ॥४॥

हिङ्गुलोत्थ पारद भी अल्प सुवर्ण को ग्रसता है, इसमें यह युक्ति है कि—

"पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रात्पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य शोणैःसुकर्पास भवप्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः। तत्काचकुम्भे निहितं प्रगाढं मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयं च पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततोरजः पल्लव-रागरम्यम्। संगृह्य चैतस्य पलं च सम्यक् पलं च कर्पूररजस्तथैव जातीफलं शोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाणमेकम्। चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य वल्लो भुक्तो हि वल्लीदलमध्यवर्त्ती मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकुण्ठात्। घृतं घनीभूतमतीव दुग्धं मृदूनि मांसानि समण्डकानि माषाणि पिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यानन्ददायीन्यन्यानि चाऽत्र। रतिकाले रतान्ते वा सेवितोऽयं रसेश्वरः मानहानिं करोत्येष

प्रमदानां सुनिश्चितम्। कृत्रिमं स्थावरं चैव जङ्गमं चैव यद्विषम् न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य वत्सरात्। यथा मृत्युञ्जयोऽभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम् तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः। इन्द्रपुष्पं लवङ्गं स्यात्कार्पासकुसुमद्रवैः तंत्रांतरे प्रसिद्धोऽयं मकरध्वज नामतः"

अर्थात्—चार तोले शुद्ध सुवर्ण, बत्तीस तोले रसेन्द्र (पारद), चौसठ तोले शुद्ध गन्धक, तीनों की कज्जली करके और नांदनवन के फूलों के रस की तीन भावना देकर, बाद घृतकुमारी के रस की एक भावना देकर खूब सुखाले। फिर कपरमट्टी की हुई आतशीशीशी में उस कज्जली को भरकर तीन रात और तीन दिन तक मन्द, मध्यम तीव्राग्नि क्रम से दे। इस प्रकार बालुकायन्त्र में पकाने से पल्लव के समान लालवर्ण का रस शीशी के गले पर मिलेगा, और सुवर्णभस्म शीशी के तल भाग में मिलेगी। इसमें से एक पल (चार तोले) रस लेकर और एक पल भीमसेनी कपूर, एक शाण (तीन मासे) जायफल, एक शाण समुद्रशोष, एक शाण लवङ्ग, एक शाण कस्तूरी, इन सब को खरल में खूब घोटकर शीशी में भरकर और डाट लगा कर रख छोड़े।

इस रस को कोई आचार्य्य तो चन्द्रोदय कहते हैं। और कोई कोई आचार्य्य मकरध्वज बतलाते हैं। मैं इसको सुवर्णसिन्दूर कहता हूँ। क्योंकि इस विधि से चन्द्रोदय बनाने से पारद को बिना बुभुक्षित किए सुवर्ण तो पचता नहीं। तब इसको चन्द्रोदय कैसे माना जाय? क्योंकि ग्रास पचने के लिए दिया जाता है। यदि वह नहीं पचा, तो उसका पूर्ण गुण भी कैसे आ सकता है? परन्तु आज कल के प्रायः सब ही वैद्य इसको चन्द्रोदय या मकरध्वज मानते हैं। अस्तु जो हो! यदि कोई प्रश्न करे कि शास्त्रकार ने इसको चन्द्रोदय शब्द से क्यों लिखा? इसका तो उत्तर ऐसा भी हो सकता है, कि—शास्त्रकार ने "पलं मृदुस्वर्ण दलं रसेन्द्रात्" यहाँ पर पारद की "रसेन्द्र" शब्द से प्रशंसा लिख कर उनको "बभुक्षितपारद" ही चन्द्रोदय के लिये इष्ट हो तो? ॥४॥

सुवर्णसिन्दूररसं विधित्सुर्यतो
भिषग् यच्छाति हिङ्गुलोत्थे।
ग्रासं सुवर्णं मकरध्वजं तं
ब्रूते यतोऽग्रासरसोग्रवीर्यम् ॥५॥

खैर! यह बात तो एक तरफ रही। परन्तु यह तो निर्विवाद बात है कि इस विधि से बनाए हुए सुवर्णसिन्दूर में सिन्दूररस की अपेक्षा अधिक गुण तो अवश्य है। चाहे शास्त्र में कहे हुए सम्पूर्ण (इस चन्द्रोदय को पान में रखकर खाने से सैकड़ों स्त्रियों के मदनाभिमानों को गला सकता है। इसके पथ्य घृत, रबड़ी, मृदुमांस, सोरुवा, इमरती, सीरा (हलुआ) आदि अनेक पदार्थ हैं। इसको मैथुन के समय, या मैथुन के बाद सेवन करे तो यौवनपूर्ण-स्त्री सदा तृप्त रहें। इसको एक वर्ष तक सेवन करने वाले पुरुष को बनावटी विष, (घृत, शहद समान भाग) स्थावर विष, [बच्छनाभ आदि] जङ्गम विष, (सर्प, विच्छू आदि का विष) कुछ विकार नहीं करे। अधिक क्या कहें? जैसे मृत्युञ्जय मन्त्र से मृत्यु हट जाती है, वैसे ही इस चन्द्रोदय का हमेशा सेवन करने से वृद्धावस्था नहीं आती, और मृत्यु भी नहीं आती) इतने गुण बेशक न मिलें।

यहाँ पर विचारने की यह बात है कि यदि हिङ्गुलोत्थ पारद में सुवर्ण के ग्रसने की कुछ भी शक्ति नहीं होती तो रससिन्दूर से सुवर्णसिन्दूर में अधिक गुण क्यों पाए जाते हैं? और वैद्य लोग स्वर्णसिन्दूर को "मकरध्वज" या "चन्द्रोदय" शब्द से क्यों व्यवहार करते हैं?। इससे यह सिद्ध हुआ कि विना बुभुक्षित किया हुआ—केवल हिङ्गुलोत्थ पारद भी, कुछ न कुछ सुवर्ण को अवश्य ग्रसता है। इसी लिये रससिन्दूर से सुवर्णसिन्दूर उग्रवीर्य्य होता है ॥ ५ ॥

तालचन्द्रोदयस्य पञ्चमो विधिः—

विद्यानुरागा अयि वैद्यराजाः सूतेन्द्रसेवा यदि रोचते वः।
भल्लातकस्नेहविलीनतालं पचेत गन्धेन हिमांशुभालम् ।१।

तालचन्द्रोदय की पांचवी विधि—

यदि तालचन्द्रोदय को और भी अधिक उग्रवीर्य्य बनाने का शौक हो तो, बालुकागर्भपातालयन्त्र द्वारा भिलांवे का तेल निकालकर, उससे चतुर्गुण हरिताल का चूर्ण, और वह तेल, दोनों को कड़ाही में तपावे। जब दोनों एक जीव होजांय, तब उसमें त्रिफला का क्काथ डालकर, कड़ाही को चूल्हे से नीचे उतार ले। जब हरिताल ठण्डी हो जाय, तब उसको गरम पानी से धो डाले, और धूप में सुखाले। बाद उसके समान सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित-पारद डालकर, और दोनों के समान शुद्ध गन्धक डालकर, कज्जली करे। उस कज्जली में वटजटा-प्ररोह (बरोहर) के क्काथ की अथवा स्वरस की, तीन भावना देकर, पूर्व विधि के अनुसार बालुकायन्त्र में पकाले। यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी के गले पर लगे हुए "तालचन्द्रोदय" को निकाल ले ॥१॥

शिलाचन्द्रोदय विधिः—

मनः शिलामार्द्ररसै विमर्द्देदेकाधिकं
विंशतिकृत्व आद्यम्।
संशोष्य संशोष्य तया समेशं
तत्तुल्यगन्धेन मसिं च कुर्य्यात् ॥१॥

शिलाचन्द्रोदय की विधि—

पाव भर मनःशिला को आदी के रस में घोटे। जब घोटते-घोटते रस सूख जाय, तब फिर डालकर घोटे। इस प्रकार आदी के रस की इक्कीस भावना देकर पहिले मनःशिला (मैंनशिल) की शुद्धि करले। बाद उसके समान भाग स्वर्ण ग्रासित बुभुक्षितपारद डालकर कज्जली करे। और उन दोनों के बराबर (आध सेर) शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली करे ॥१॥

भृत्त्वा च कूप्यामथ बालुकाख्ये
यन्त्रे पचेद्धस्रचतुष्टयं तत्।

काष्ठाग्निना शीतमथावतार्य्य
गले विलग्नं रसमाददीत ॥२॥

उस कज्जली को कपरमट्टी की हुई आतशीशीशी में भर कर, चार अहोरात्र की अग्नि दे। परन्तु अग्नि लकड़ियों की देनी होगी। जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल होजाय, तब उसको उतार कर, शीशी के गले में लगे हुए रस को निकाल ले ॥२॥

चन्द्रोदयश्चैष मनःशिलादिः
कुष्ठादिरोगापनयाय दिष्टः।
इष्टश्च गुञ्जाद्वयमात्रमात्रा
हेमन्तकाले पुरुषाय यूने ॥३॥

यह शिलाचन्द्रोदय कुष्ठादि अनेक रोगों को, दूर करने के लिए, अच्छी चीज है। इसकी मात्रा तरुण पुरुष को शीतकाल में दो रत्ती मात्र दी जाती है। इसी के हिसाब से बालक या वृद्ध को बलाबल देखकर अल्प मात्रा दे। यदि ग्रीष्मकाल हो, और कमजोर बालवृद्ध मनुष्य हो तो रत्ती का आठवाँ हिस्सा (एक चावल भर) इसकी मात्रा दी जाती है ॥ ३ ॥

शिलाचन्द्रोदयस्य द्वितीयो विधिः—

नलीडमर्वाख्यविधौ पुरस्तात्षट्-
पङ्क्तिगुण्यादिवलिं रसेन्द्रात्।
पक्त्वा ततः शुद्धमनःशिलायां घृष्ट्वा-
पचेत् तुल्यसुगन्धकायाम् ॥ १ ॥
एतद् विधानेन यथेष्टमुग्रं कुर्य्या-
न्निकुर्य्यादपि रोगसङ्घम्।
वनस्पतिक्वाथरसादियोगैर्मसिं
विभाव्याऽपि रुगार्त्तियोग्यैः ॥२॥

शिलाचन्द्रोदय की दूसरी विधि—

शिलाचन्द्रोदय को वैद्यराज जितना उग्र करना चाहें उतना ही कर सकते हैं। उसकी रीति यह है कि– पूर्वोक्त शिलाचन्द्रोदय की अपेक्षा इसको उग्र बनाना हो तो उक्त बुभुक्षित पारद में पारद से छः गुनी शुद्ध गन्धक डालकर कज्जली करे। इस कज्जली को नलिकाडमरूयन्त्र में पूर्वोक्त विधि के अनुसार चढ़ाकर षड्गुण गन्धकजारित— चन्द्रोदय बनाले। फिर उस चन्द्रोदय के समान शुद्ध गन्धक व मैंनशिल डालकर कज्जली करे। उस कज्जली को शीशी में चढ़ाकर शिला-चन्द्रोदय बनाले। यदि इससे भी और उग्र वीर्य्य शिलाचन्द्रोदय को बनाना हो तो दो बार में नलिकाडमरूयन्त्र द्वारा दशगुण गन्धकजारण पहिले करले। इसके बाद समान भाग चन्द्रोदय, और उतनी ही गन्धक, तथा मैंनशिल, तीनों की कज्जली करके उक्त विधि के अनुसार एकादश गुण गन्धकजारित—"शिलाचन्द्रोदय" बनाले। इसी प्रकार जितना अधिक गन्धकजारण करके, शिलाचन्द्रोदय बनाया जायगा उतना ही प्रभावशाली बनेगा; जिससे अनेक रोगों का समूल घात हो जायगा। और उस कज्जली में भी वनस्पतियों के क्वाथ या स्वरसादि की भावना देकर, अनेक रोगनाशक शिलाचन्द्रोदय बन सकता है ॥१॥२॥

शुद्धौ शिलाया अपि कामचारः
सारप्रपश्यस्य भिषग्वरस्य ।
दिग्दर्शनं तालविमूर्च्छनेन
संदर्शितं मूर्च्छनसिद्धिहेतोः ॥३॥

मैंनशिल की शुद्धि में भी औषधियों के गुणों को जानने वाले वैद्य की स्वतन्त्रता है। इसका थोड़ा संकेत तालचन्द्रोदय विधि में लिख चुका हूँ; जिसके अनुसार अनेक प्रकार के शिलाचन्द्रोदय भी बन सकें। जैसे भिलावें में शोधित मैंनशिल का बना हुआ, तथा अनेक औषधियों की भावना देकर तैयार किया हुआ, उसपर भी नलिका-

डमरूयन्त्र में दश वीस गुणित गन्धकजारण प्रथम करके, पश्चात् मैंनशिल के साथ कज्जली करके पकाया हुआ, "शिलाचन्द्रोदय" अकथनीय-प्रभावशाली बनेगा ॥ ३ ॥

शिलाचन्द्रोदयस्य तृतीयो विधिः—

हारिद्रमल्लालविषोत्थतैले जैपाल-
भल्लातककृष्टतैले ।
व्यस्ते समस्तेऽप्युत गालितायां मनः-
शिलायां दधिवापितायाम् ॥ १ ॥

शिलाचन्द्रोदय की तीसरी विधि—

हल्दी के योग से संखिया और हरताल, इन दोनों का पृथक्-पृथक् तेल, और बछनाग-विष का तेल, और जमालगोटे का तेल और भिलांवे का तेल (ये सब तेल, बालुकागर्भपातालयन्त्र से निकल आते हैं, इस यन्त्र की विधि परिभाषा प्रकरण में लिख चुका हूँ) इन पाँचों प्रकार के पृथक्-पृथक् तेलों में, अथवा पांचों को इकट्ठे करके, मैंनशिल को डालकर मन्दी मन्दी आंच से कड़ाही में गलाले । जब तेल और मैंनशिल एक जीव हो जायँ, तब उस कड़ाही में दही डालकर कलछुली से चलावे ॥१॥

उष्णाम्बुसङ्क्षालितशोषितायां
घर्मेऽतितीव्रे समशुद्धगन्धम् ।
सुवर्णसङ्ग्रासितसूतराजं नी-
त्वासमं लोहकटाहिकायाम् ॥ २ ॥

बाद उस कड़ाही में गरम पानी डालकर मैंनशिल को धो डाले (परन्तु यह स्मरण रहे कि पानी के ऊपर तैरते हुए तेल को किसी काँच के पात्र में रख छोड़े, यह गजचर्म्म, दद्रू, खाज, श्वेतकुष्ठ, आदि चर्म्म रोगों की अच्छी दवा है) इस मैंनशिल में कुछ स्नेह भाग रह जाय तो एक, दो बार गरम जल से और धो डाले । (यह तो आपको

स्मरण होगा ही कि गन्धक शोधन प्रकरण में गन्धक से चतुर्थांश स्नेह पदार्थ को लिख चुका हूँ, उसी के अनुसार यहाँ भी मैंनशिल से चतुर्थांश तेल लिया जायगा) उस मैंनशिल को खूब धूप में सुखाकर, उसकी बराबर शुद्ध गन्धक और सुवर्णग्रासित बुभुक्षितपारद, इन तीनों चीजों को लोह की कड़ाही में डालदे ॥ २ ॥

मन्दाग्नितप्तं त्रयमेतदेकीकृत्य
प्रघर्षेण खजेन भूयः ।
चुल्लेः कटाहीमवतार्य्य पङ्क-
निस्सार्य कुर्यात्पटगालितं च ॥ ३ ॥

उस कड़ाही को चूल्हे पर रख कर मन्दी मन्दी आँचदे, और लोहे की कलछुली से तीनों चीजों को चलाता जाय, जिसमें वे तीनों चीजें एक जीव होकर कीच जैसे आकार में परिणत हो जायँ । बाद उस कड़ाही को चूल्हे से उतार कर उस कीच को खुरच कर निकाल ले । ठंडे हो जाने से वह एक काली मट्टी के समान हो जायगी । उसको कपरछान करले । यह भी एक कज्जली करने की रीति है ॥ ३ ॥

समृत्पटायामनु कूपिकायां
भृत्वा मसिं यामचतुष्टयेन ।
सर्व्वार्थकर्यां सिकताख्ययन्त्रे
पक्त्वा गलस्थं रसमाददीत ॥४॥

इस कज्जली को कपरमट्टी की हुई शीशी में भर कर, शीशी को बालुकायन्त्र में चढ़ाकर, चार पहर की आंच दे । जब स्वाङ्गशीतल हो जाय, तब शीशी के गले पर लगे हुए "शिलाचन्द्रोदय" रस को निकाल ले ॥ ४ ॥

रक्तस्थदोषापहरत्वतोऽयं
धातूनशेषानुपजीवयेत ।
शिलादिचन्द्रोदयसंज्ञकः
स्यादुष्णस्वभावो नवनीतसेव्यः ॥५॥

यह शिलाचन्द्रोदय गरम स्वभाव वाला है, इसलिये इसकी एक चावल से चार चावल तक मात्रा मक्खन के साथ दी जाय तो खून के दोषों को निकाल कर मांसादि सब ही धातुओं को यह पुष्ट कर देता है। क्योंकि रक्त, मांसादि सब ही धातुओं का कारण है। रक्त शुद्धि के होने से सबही धातु शुद्ध हो जाती हैं।

मैंनशिल बाजार में बहुत प्रकार की मिलती है, इसलिये जो उत्तम मैंनशिल हो वही लेनी चाहिए। अर्थात्– जो देखने में लालवर्ण की हो और घोटने में जिसका पीलावर्ण हो, वही मैंनशिल दवाई के काम में ली जाती है ॥ ५ ॥

मल्लचन्द्रोदयस्य विधिः—

नैम्बूकनीरेण दिनत्रयन्तु श्वेता-
दिरूपांश्चतुरोपि मल्लान्।
यथोत्तरं तूग्रबलान्मिथस्तान्स-
मांशसूतेन विमर्दयेत ॥ १ ॥
ताभ्यां समानेन सुगन्धकेन
कृत्वा मसिं कूपिकया पचेत।
सर्व्वार्थकथ्यां खलु कोष्ठिकायां
यामत्रयं शीतलमुद्धरेत ॥ २ ॥

मल्लचन्द्रोदय की विधि—

नींबू के रस में तीन दिन तक संखिया को घोटे। परन्तु संखिया सफेद, पीली, लाल, काली चार प्रकार की होती हैं, उनमें भी पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर बलकारी हैं। जैसे सफेद संखिया की अपेक्षा पीली संखिया अधिक बलवान् है, उससे भी लाल संखिया उग्रबल है। सबसे अधिक प्रभावशाली काली संखिया है। उसके समानभाग स्वर्णग्रासित बुभुक्षित-पारद डालकर घोटे। उन दोनों की बराबर शुद्ध गन्धक डालकर, तीनों को घोट कर कज्जली करले। उस

कज्जली को कपरमट्टी की हुई शीशी में भर कर बालुकायन्त्र में रखकर सर्वार्थकरीभट्ठी पर रखकर पत्थर के कोयलों की तीन पहर आंच दे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब शीशी के गले से मल्ल-चन्द्रोदय को निकाल ले। सफेद संखिया का बनाया हुआ मल्लचन्द्रोदय बहुत बल बढ़ने वाला होता है। और इससे भी उक्त तीनों संखियाओं के बने हुए चन्द्रोदय उत्तरोत्तर बलकारी होते हैं॥ १॥ २॥

मल्लादिचन्द्रोदयमामनन्ति
सर्वौषधेभ्योपि प्रधानवीर्यम्।
विसूचिकासन्निपतत्त्रिदोषान्
व्याधीनपाकर्तुमनन्यशस्त्रम्॥३॥

आसन्नमृत्यु प्राणियों के प्राणदान करने के लिए चन्द्रोदयनामाङ्कित सबही चन्द्रोदय (तालचन्द्रोदय, चन्द्रोदय, विषचन्द्रोदय, मल्लचन्द्रोदय) अद्वितीय चीज़ हैं। हैजा, सन्निपात, आदि तत्काल मारक व्याधियों में इसके सिवाय वैद्य के पास दूसरा शस्त्र नहीं है॥ ३॥

मल्लचन्द्रोदयस्य द्वितीयो विधिः—

स्नुहीपयस्स्वर्कपयस्सु मल्लं
त्रिर्भावितं मर्दनशुष्करूपम्।
बुभुक्षुसूतद्विगुणनगन्धन
शुद्ध गन्धेन घृष्ट्वा च मसिं विदध्यात्॥१॥

मल्लचन्द्रोदय की दूसरी विधि—

थूहर के दूध की और मंदार के दूध की संखिया में तीन-तीन भावना देकर घोट-घोट कर खूब सुखाले। बाद सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद को संखिया के समान लेकर और पारद से द्विगुण शुद्ध गन्धक लेकर तीनों को दो दिन तक घोटकर कज्जली करले॥ १॥

तां कूपिकास्थां सिकताऽऽख्ययन्त्रे
यथाबहिर्धूमविधि प्रबोद्धा।

पिपत्तुरह्नोऽर्धमतो ददीत
शीशीमुखे मृत्कवलीं सुरुद्धाम् ॥२॥
अर्द्धद्वितीयं दिनमग्नितापं
बबूरकाष्ठस्य ददीत तीव्रम् ।
कृत्वा स्वयंशीतमथोर्ध्वशीशी-
गलस्थचन्द्रोदयमाददीत ॥३॥

उस कज्जली को कपरमट्टी की हुई कांच की शीशी में भरकर, उस शीशी को बालुकायन्त्र में रखकर, चन्द्रोदय बनाने वाली भट्ठी में अग्नि दे। और आधे दिन (दोपहर) तक तो शीशी के मुख से धूआं निकलने दे जिससे कज्जली का वेग घट जाय; जिसमें शीशी फूट नहीं सकेगी बाद खड़ियामट्टी (जिससे लड़के लोग पट्टी पर लिखा करते हैं) की डाट बना कर शीशी के मुख में घुसा दे, और गुड़, चूना से मुद्रा कर दे। बाद डेढ़ दिन तक बबूर की लकड़ी की तीव्राग्नि दे जब स्वाङ्गशीतल हो जाय, तब शीशी के गले पर लगे हुए "मल्लचन्द्रोदय" को निकाल ले ॥ २।३ ॥

कर्पूरजातीफलदेवपुष्पकस्तूरिकानक्रमदैलिकाभिः ।
लिह्यादिमं मासमशक्तशुक्र
आरोग्यहेतोर्मधुना मनुष्यः ॥४॥

उस चन्द्रोदय के साथ पूर्वोक्त परिमाण के अनुसार भीमसेनी कपूर, जायफल, लवङ्ग, कस्तूरी, अम्बर, छोटी इलायची के बीज, इन सबको घोट कर शीशी में भर कर रख छोड़े। इसकी एक रत्ती से चार रत्ती तक मात्रा को शहद के साथ चाटने से मन्दाग्नि आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि इसको एक महीने तक दोनों समय (सायंकाल प्रातःकाल) सेवन करे तो शुक्र के सब दोष नष्ट हो जाते हैं। यह बहुत कामोद्दीपक है ॥ ४ ॥

मल्लचन्द्रोदयस्य तृतीयो विधिः—

मनःशिलालाऽसितप्रस्तराणां
मन्दारदुग्धेन सुभावितानाम् ।
दिनानि चत्वारि विधाय गोलं
छायासुशुष्कं च पयोभिरार्कैः ॥१॥

मल्लचन्द्रोदय की तीसरी विधि—

शुद्ध मैंनशिल, शुद्ध हरिताल और शुद्ध काला पत्थर (काली सखिया) इन तीनों को चार दिन तक मन्दार के दूध में घोट कर सुखाले। जब गोला बंधने लायक हो जाय, तब उस गोले को छाया में सुखाले, और उस गोले को मंदार के दूध में डालकर रखदे ॥ १ ॥

समन्ततो द्व्यङ्गुलमुच्छ्रयं
तच्चाच्छाद्य शुष्कं निखनेत् पृथिव्याम् ।
त्रिंशद्दिनान्येव ततो बुभुक्षुसूतेन
तुल्येन विमर्द्दयेत ॥२॥

फिर दूध के सूख जाने पर, उस दूध के गाढ़े अंश को गोले के ऊपर चारों तरफ लगादे। इसी प्रकार दूध को सुखा-सुखा कर गोले के ऊपर चिपटाता रहे। जब गोले के चारों तरफ दो-दो अङ्गुल ऊँचा दूध जम चुके, तब गोले को सुखाकर तीस दिन तक जमीन में गाड़ दे। तीस दिन के बाद गोले को निकाल कर और कूट कर खरल में खूब घोटे। बाद गोले में जितनी-जितनी मैंनशिल, हरिताल, और काली संखिया डाली हो, उन तीनों के समान भाग सुवर्णग्रासित बुभुक्षित पारद डाल कर वहाँ तक घोटे कि जहाँ तक उस चूर्ण में पारद बिलकुल मिल जाय ॥ २ ॥

ताभ्यां समानेन च गन्धकेन
दुग्धाज्यशुद्धेन मासिं विदध्यात् ।

चन्द्रोदयश्राष्ट्रिकया पचेत
दिनानि चत्वार्यवधानचेताः ॥३॥
घटीश्चतस्रोऽनलकेतुगत्या
रुद्धोग्रवेगं ग्रसिताग्निकेतु ।
स्वयंचशीते सिकताऽऽख्ययन्त्रे
कूपीगलस्थं रसमाहरेत ॥४॥

बाद उन संखिया आदि तीनों और पारद, इन चारों के समान भाग घी दूध में शुद्ध की हुई गन्धक को डाल कर कज्जली करले। फिर चन्द्रोदय बनाने वाली भट्ठी पर बालुकायन्त्र रख कर आँच दे। इसमें चार दिन तक आँच देनी होगी, इसलिये चार घड़ी तक तो शीशी के मुख पर डाट नहीं लगावे किन्तु अनलकेतु (धूम) को निकलने दे; जिससे कज्जली का बेग मन्द पड़ जाने से शीशी फूटे नहीं। बाद शीशी के मुख पर डाट लगाकर धूम निकलना बन्द करदे। अर्थात् अन्तर्धूम विधि से चार दिन तक अग्नि लगावे। यहाँ पर यह शङ्का हो सकती है कि मल्लचन्द्रोदय की दूसरी विधि में तो दो दिन तक ही अग्नि देना लिखा है, और तृतीय विधि में चार दिन तक अग्नि देना लिखा है, और कहीं-कहीं दोपहर की अग्नि का ही विधान किया है। इसका क्या कारण है ? इस शङ्का का यह उत्तर है कि—जहाँ पर चार दिन की अग्नि लिखी है, इसमें दो हेतु हैं।

पहिला हेतु तो यह है कि जिस शीशी में तीन पाव या एक सेर तक कज्जली भरी जाती है। उतनी कज्जली एक दो दिन में परिपक्व नहीं हो सकती इसलिये चार दिन तक अग्नि का विधान है।

दूसरा हेतु यह है कि जहाँ पर हमको चन्द्रोदय में अधिक गुण उत्पन्न करने के लिए अधिक काल तक अन्तर्धूम विधि करनी होती है, वहाँ पर पाव-सवापाव कज्जली में भी अधिक काल तक अग्नि देने की आवश्यकता पड़ जाती है। जैसे मल्लचन्द्रोदय की द्वितीय विधि में आधे दिन (दो पहर) तक धूम को शीशी से निकलने दिया है; इसलिये दो दिन में ही शीशी परिपक्व हो जाती

है । और तृतीय विधि में तो चार घड़ी तक ही धूम को निकाल कर शीशी के मुख पर डाट लगा दी गई है, इसलिये चार दिन तक अग्नि देना आवश्यक है । और जहाँ पर दो पहर मात्र अग्नि का विधान है, वहाँ पर बालुकायन्त्र को पत्थर के कोयलों की अग्नियुक्त सर्वार्थकरीभ्राष्ट्री पर रखा है; इसलिये वो तीव्रतमाग्नि दो ही पहर में कज्जली को पकाकर चन्द्रोदय को तैयार कर देती है । और वैद्य लोगों को यह भी समझ लेना चाहिए कि यदि बालुकायन्त्र की हाँड़ी के तल में जो छिद्र किया हुआ है; उसको किसी चीज (ठिकरा, अभ्रक वगैरह) से नहीं ढक कर, यदि उसी छिद्र पर शीशी जमादी जायगी, तो चार पहर की अग्नि की जगह दो पहर की अग्नि ही कज्जली को पकाने के लिए पर्याप्त हो सकती है । क्योंकि छिद्र ढकने से शीशी को अग्नि साक्षात् नहीं स्पर्श करती; इसलिये देरी में कज्जली पकती है । और उस चन्द्रोदय का गुण भी अधिक है । और जिस छिद्र पर कुछ भी नहीं ढका गया है, उस छिद्र के द्वारा शीशी में अधिक अग्नि लगती है । इसलिये कज्जली शीघ्र पक जाती है । अस्तु ? जब स्वाङ्ग-शीतल हो जाय तब यन्त्र से शीशी को उतार कर गले पर लगे हुए मल्लचन्द्रोदय रस को निकाल ले ॥ ३१४ ॥

अत्यन्तमुग्रं यदि तं विधित्सुर्न-
लीडमर्वाख्यविधेस्तु पूर्वम् ।
षट्सप्तविंशाधिकजीर्णगन्धं सूतं
नियुञ्ज्यादिह कर्मसिद्धौ ॥ ५ ॥

यदि इस चन्द्रोदय को और भी उग्र वीर्य्य बनाना हो तो नलिका-डमरूयन्त्र विधि से षड्गुण, सप्तगुण, बीसगुण या इससे भी अधिक गुण, जितना अपना इष्ट हो, उस बुभुक्षित पारद में गन्धकजारण करले; बाद उस गोले के चूर्ण के साथ द्विगुण गन्धक देकर, और इस गन्धक जीर्ण पारद को भी डालकर कज्जली करे । फिर उक्त विधि से मल्लचन्द्रोदय बनावे तो महा उग्र वीर्य्य चन्द्रोदय बने । और उसकी मात्रा भी पूर्व की अपेक्षा आधी चौथाई पर्य्याप्त हो ॥ ५ ॥

विषचन्द्रोदय विधिः—

बुभुक्षुसूतो विषगन्धकौ च
समानमानाः कृतकज्जलीकाः ।
समृत्पटायामपि कूपिकायां भृता
धृता यन्त्रगताश्च कोष्ठौ ॥ ॥

विषचन्द्रोदय की विधि—

सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद, वछनाग, अथवा सींगिया विष, शुद्ध गन्धक इन तीनों को समान भाग लेकर कज्जली करले । बाद कपरमट्टी की हुई काँच की शीशी में उस कज्जली को भर कर, शीशी को बालुका-यन्त्र में रख कर, भट्ठी पर रख दे ॥ १ ॥

चेत्प्रस्तरेङ्गालकृशानुपक्का
यामद्वयेनैव च कर्म्मसिद्धिः ।
बर्बूरकाष्ठाग्निविपाचितास्तु यथा-
गुरुत्वं समयः समीक्ष्यः ॥ २ ॥

यदि सर्वार्थकरी भट्ठी में पत्थर के कोयलों की आँच से पकाना हो तो दो पहर में ही विषचन्द्रोदय बनकर तैयार हो जाता है । क्योंकि पत्थर के कोयलों की आँच पर चन्द्रोदय तैयार करने के लिए पावभर से अधिक कज्जली नहीं भर सकते; नहीं तो शीशी के फूटने का भय रहता है ।

यदि चन्द्रोदय बनाने वाली भट्ठी पर बालुकायन्त्र को जमाकर बबूर (कीकर) की लकड़ी की आँच से चन्द्रोदय तैयार करना हो तो कज्जली के परिमाण के हिसाब से आँच लगानी होती है । अर्थात् शीशी में पावभर कज्जली हो तो एक अहोरात्र की अग्नि से ही चन्द्रोदय तैयार हो जाता है । यदि शीशी में आध सेर कज्जली हो तो अहोरात्र की अग्नि चाहिए । और यदि शीशी में एक सेर कज्जली हो तो चार अहोरात्र की अग्नि की आवश्यकता पड़ती है ॥ २ ॥

गुञ्जार्द्धगुञ्जाद्वयमात्र मात्रो विषादि-
चन्द्रोदयरामबाणः।
शीतज्वराणां विषमज्वराणां
नवज्वराणां त्रितयज्वराणाम् ॥ ३ ॥

इस चन्द्रोदय की मात्रा आधी रत्ती से दो रत्ती तक दी जाती है। यह विषचन्द्रोदय शीतज्वर, विषमज्वर (एकान्तरा, तिजारी, चौथिया आदि) और सन्निपात-ज्वरों के लिए रामबाण है ॥ ३ ॥

प्रभञ्जनव्याधिप्रभङ्गहेतुर्वा-
र्द्धक्यकासारतिधूमकेतुः।
नानार्त्तिलङ्घ्यातुररामसेतुर्धार्य्यः
स्वपार्श्वे भिषजोऽर्तिजेतुः ॥ ४ ॥

तथा वातव्याधि, वृद्धावस्था की खाँसी से बेचैनी, और अनेक रोगानुसार अनुपान के सहयोग से अनेक प्रकार की व्याधियों को भी यह चन्द्रोदय तत्काल नष्ट कर देता है। आयुर्वेद-शास्त्र में जिस-जिस रोग की जो-जो दवाइयाँ लिखी हैं क्वाथ, अवलेह, चूर्ण आदि वे सब इस चन्द्रोदय के अनुपान हैं। यह वैद्यों के पास सदा रहना चाहिए ॥ ४ ॥

विषचन्द्रोदयस्य द्वितीयो विधिः—

कूप्यां च हण्ड्यां नलियन्त्रके वा
षड्गन्धजारी क्षुधितो रसेन्द्रः
तत्तुल्यमानं विषमाददाति
ताभ्यां समानं परिशुद्धगन्धम् ॥१॥

विषचन्द्रोदय की दूसरी विधि—

सुवर्णग्रासित बुभुक्षित पारद के साथ शीशी में बारह अहोरात्र की अग्नि से, या हाँड़ी में एक अहोरात्र की अग्नि से, अथवा नलिकडमरूयन्त्र में चार पहर की अग्नि से, षड्गुण गन्धक जारण करके, इस

पारद के समान भाग बछनाग विष, और इन दोनों के समान भाग शुद्ध गन्धक ले ॥ १ ॥

संमर्द्य सम्पादितकज्जलीं तां
सुभाव्य नीरैरपि बीजपूरात्।
सङ्गालितैस्त्रिश्चतुराप्रशोषा-
चन्द्रोदयभ्राष्ट्रिकया पचेत ॥२॥

तीनों को मर्द्दन करके कज्जली करले। इस कज्जली में बिजौरे नीबू के रस की तीन चार भावना देकर कज्जली को सुखाले। इस कज्जली को कपरमट्टी की हुई शीशी में भर कर और इस शीशी को बालुकायन्त्र में रख कर, फिर इस यन्त्र को चन्द्रोदय बनाने वाली भट्ठी पर रख कर पकावे ॥ २ ॥

दिनानि चत्वार्युत पञ्चषाणि
रात्रिन्दिवं तीव्रतमाग्नियोगैः।
यतो वियोगो रसगन्धयोर्न
स्यान्नापि शीशी गलरिक्तरिक्ता ॥३॥

कज्जली के अनुसार तीन दिन तक, चार दिन तक, या छः दिन तक, अहोरात्र शुरू से ही तीव्राग्नि दे। शुरू से ही तीव्राग्नि देने का यह अभिप्राय है कि खटाई और विष के योग से पारद गन्धक का वियोग नहीं होने पावे। यदि "मन्दमध्यमतीव्रेण क्रमवृद्धेन वह्निना" इस वचन के अनुसार मन्दादि क्रम से अग्नि दी जायगी तो शीशी जरूर खाली पड़ जायगी; चन्द्रोदय कुछ भी हाथ नहीं पड़ेगा। इसलिए शुरू से ही तीव्राग्नि दे ॥३॥

स्वयंचशीतामवतार्य्य कूपीं
तदूर्ध्वलग्नो विषचन्द्रजन्मा।
वर्णेन तुल्यो ननु ससससे
ऽस्त्वतुल्यो गहनार्त्तिसिद्धौ ॥४॥

जब स्वाङ्गशीतल हो जाय, तब शीशी को बालुकायन्त्र से निकाल कर और उसकी कपरमट्टी को खुरच कर शीशी को फोड़ कर गले में लगे हुए "विषचन्द्रोदय" को निकाल ले। इसका रङ्ग सूर्य्य के समान "चमचम" करने वाला होगा। और इस चन्द्रोदय का गुण सन्निपात, श्वास, कास आदि भयङ्कर व्याधियों के दूर करने में बहुत चमत्कारी होगा ॥४॥

सत्वचन्द्रोदय विधिः—

मनः शिलालाऽमृतमल्लकानां-
जम्बीरनिम्ब्वम्बुसुभावितानाम् ।
पृथग् द्वयं वा त्रयमेव वापि
चतुष्टयं वोत्थितियन्त्रकेण ॥ १ ॥

उत्पात्य सत्त्वं ननु सङ्गृह्णाण
खट्वाङ्गयन्त्रोर्ध्वतले विलग्नम् ।
समं समं तत्परिमेल्य सर्वं
तत्तुल्यमूतं क्षुधितं विमर्दंत्, ॥२॥

सत्त्व चन्द्रोदय की विधि—

मैंनशिल, हरिताल, बछनाग विष, चारों संखियाओं में से कोई संखिया, इसको पृथक्-पृथक् अथवा दो-दो मिलाकर अथवा तीनों मिलाकर या चारों ही इकट्ठी करके, जमीरी नींबू के रस की चार भावना दे। अर्थात् जुदी जुदी संखियाओं में यदि भावना देनी हो तो एक-एक भावना दे। और यदि चारों को मिलाकर भावना देने की इच्छा हो तो उक्त रस की चार भावना दे। बाद हरिताल, मैंनशिल, संखिया, इन तीनों को डमरूयन्त्र में रख कर दो पहर की अग्नि देने से डमरूयन्त्र की ऊपर की हांडी के तलभाग में लगे हुये— सत्त्व को निकाल ले। परन्तु यह स्मरण रहे कि संखिया, हरिताल, मैंनशिल की तरह बछनाग विष का पृथक् सत्त्व नहीं निकल सकता। इसलिये या

तो बछनाग को तीनों के साथ घोट कर सत्त्व निकाले, या बछनाग को ऐसे ही (विना ही सत्व निकाले) कज्जली करते समय डाले । जुदे जुदे समान भाग सत्त्वों को मिलाकर, और सब सत्त्वों के समान भाग सुवर्ण ग्रासित बुभुक्षित पारद को खरल में घोटे ॥१।२॥

समस्तमानं द्विगुणं च गन्धं
जैपालभल्लातकतैलशुद्धम् ।
मसिं विधायाम्लकवेतसाम्बु-
संमर्दितां पञ्चदिनानि सम्यक् ॥३॥

सबसे दूनी, जमालगोटा और भिलावें के तेल में शुद्ध की हुई गन्धक को उनमें मिलाकर कज्जली करे । कज्जली में अमलवेत के काथ की पांच दिन तक घोटकर भावना दे ॥ ३ ॥

संमर्द्य संमर्द्य कृतावशोषां
पिधानयन्त्रे च निधाय धीमान् ।
क्रमेण वह्नौ मृदुमध्यतीव्रे
निरूद्धधूमे परिपाचयेत ॥४॥

जब घोटते घोटते कज्जली सूख जाय, तब पिधानयन्त्र (इसका प्रकार अगाड़ी दिखाया है) में रखकर क्रम से मन्द मध्य तीव्र अग्नि दे । परन्तु यह स्मरण रहे कि धूम कहीं से निकलने न पावे । नहीं तो सत्त्वचन्द्रोदय कमजोर पड़ जायगा ॥४॥

यन्त्रस्य सन्धौ प्रददीत मुद्रां
वज्राभिधानां दश मृत्पटाँश्च ।
दिनद्वयं वह्निविपाकयोगेऽतीते
च शीते स्वयमेव यन्त्रे ॥५॥

धूम के रोकने का यह उपाय है कि हांड़ी और ढकन की सन्धि पर बज्रमुद्रा कर दे (बज्रमुद्रा की विधि परिभाषा प्रकरण में देखो) बज्रमुद्रा के ऊपर दश कपरमट्टी करके सुखा ले। जब दो अहोरात्र की अग्नि लग चुके, और यन्त्र अपने आप ठंडा हो जाय ॥५॥

उद्घाट्य मुद्रां रसमाहरेत
ताम्रस्य भस्मापि पृथक् क्रियेत ।
सत्त्वैश्चतुर्भिः परिनिर्मितोऽयं
चन्द्रोदयोऽपूर्व्वगुणौघधारी ॥६॥

तब मुद्रा को खोल कर सत्त्व चन्द्रोदय को निकाल ले । इन चारों सत्वों से बना हुआ चन्द्रोदय विलक्षण गुणकारी होता है ॥ ६ ॥

पिधानयन्त्र विधिः—

मृद्धण्डिकावक्त्रमितं च पत्रं
शुल्वस्य शुद्धस्य सुवर्त्तुलं स्यात् ।
समोपले श्लक्ष्णतले जलेन
घर्षेच्छनैर्हण्डिमुखं कराभ्याम् ॥१॥
तथा भवेत्तत्परितोऽग्रभागं
रन्ध्रं विना श्लक्ष्णतमस्वरूपम् ।
यथा पिधाने पिहितेऽत्र सन्धिः
किंचिन्नच क्वापिकदापि दृष्टः ॥२॥

पिधानयन्त्र की विधि—

जिस हण्डी का पिधानयन्त्र बनाना है उस हण्डी के मुख के माप का एक तांमे के पत्र का ढक्कन गोलाकार बनवा ले । परन्तु उस तांमे की पहले (इमली के पत्ता, सेंधानोंन और गोमूत्र में चार पहर तक उबाल कर) शुद्धि करले । और हांडी को दोनों हाथों से पकड़ कर, साफ चिकने पत्थर पर पानी डाल कर हांडी के मुख को धीरे धीरे इस प्रकार घिसे, जिसमें हांडी का मुख चारों तरफ से ऐसा चिकना हो जाय, जिसमें कहीं भी गढ़ा नहीं रहे, और हांडी के मुख पर ताम्र का ढक्कन ढकने पर कहीं भी कुछ भी सन्धि (झरी) नहीं रहे ॥ १।२ ॥

पिधानकं चापि तथा प्रकुट्टे-
च्छनैःशनैर्मुद्गरिकाभिघातैः।
समन्ततो नैति यथैतदग्रं वैषम्यतो
मेलनकान्तरायम् ॥३॥

ढक्कन को भी धीरे धीरे काठ की मोगरी से इस प्रकार कूटकर इकसार (समतल) करले, जिसमें ढक्कन का मुख कहीं पर ऊँचा-नीचा न रहे। हांडी का मुख इकसार होने पर भी यदि ढक्कन का किनारा कुछ भी बांका (टेढ़ा) रहेगा तो हंडी का मुख और ढक्कन का किनारा सन्धिरहित बिलकुल नहीं सटेगा ॥३॥

समृत्पटायामनु हण्डिकायां
द्रव्यं च मूर्च्छ्य निदधीत भूयः।
मुखं पिधायापि ददीत मुद्रां
यन्त्रं पिधानं रसरोधकारि ॥४॥

बाद तीन कपरमट्टी की हुयी और धूप में सुखाई हुयी उस हांडी में मूर्छनीय द्रव्य (कज्जली) को भरदे। और उस हांडी के मुख पर उस ताम्र के ढक्कन को ठीक तौर से जमादे, जिसमें कहीं पर सन्धि (झरी) न रहे। बाद किनारे पर [चिकनी मट्टी, सेंधानोंन, और कण्डे की राख, इन तीनों चीजों को पानी में सांन कर] मुद्रा करके सुखाले। इसको पिधानयन्त्र कहते हैं। इस यन्त्र में कज्जली रखकर पकाने से ताम्र की भस्म भी तैयार हो जाती है, और गन्धक जारण भी आसानी के साथ हो जाता है, तथा पारद भी उड़कर बाहर नहीं जाता है। और सबसे उत्तमता इस यन्त्र में यह है कि अन्तर्धूम रस के पकने से औषध बहुत गुणकारी बनती है। और इसके अलावे चांदी, सोंना, रांगा, सीसा, लोहा, जस्ता, अभ्रक, जिस धातु की भस्म बनानी हो उस धातु को भी शुद्ध करके कज्जली के साथ में रख देने से सबही धातुओं की भस्म दो तीन बार में तैयार हो जाती है। इस यन्त्र के बनाने का प्रकार भी ऐसा सीधा है कि इसको दश वर्ष का बालक भी बना सकता है ॥४॥

अन्तर्धूमचन्द्रोदय विधिः—

आमाति सेटत्रयगौरवाढ्या कूप्यां
मसिश्चेदिह चाष्टमांशा ।
आपूर्य्यतां मृत्पटसप्तकायां तीव्रा-
तपे साधु विशोषितायाम् ॥१॥

अन्तर्धूमचन्द्रोदय की विधि—

जिस शीशी में तीन सेर कज्जली अमाती हो, उसमें अन्तर्धूम-चन्द्रोदय बनाने के लिये अष्टमांश (डेढ़ पाव) कज्जली भरे । अर्थात् "पादांशे कज्जली पूर्णा" इस न्याय से जो चतुर्थांश कज्जली भरने का नियम था, उस नियम के अनुसार चतुर्थांश कज्जली न भरे । नहीं तो धूम; शीशी के अन्दर भर जाने से शीशी अवश्य फूटेगी । परन्तु जिस शीशी में अन्तर्धूम चन्द्रोदय बनाना है, उसके ऊपर सात कपरमट्टी करके तेज धूप में सुखाले ॥ १ ॥

मुखे खटीग्रासनिरोधितायां
मुद्राप्रदानेन दृढीकृतायाम् ।
मृद्वस्त्रलेपेन च लेपितायां तत्रापि
सूत्रैर्दृढवेष्टितायाम् ॥२॥

उस शीशी के मुख पर खड़ियामट्टी की डाट लगाकर, गुड़ चूने से उस डाट की दर्ज को बन्द करदे । बाद मट्टी में सने हुये चार तह कपड़े को शीशी के मुख पर लपेट कर उसके ऊपर सुतली से बीसों लपेटा देकर खूब मजबूत बाँध दे, जिसमें मुद्रा अग्नि के ताप से खसकने नहीं पावे; और सुतली के ऊपर भी मट्टी का लेप करदे ॥ २ ॥

एतां च यन्त्रे ननु बालुकाख्ये
धृत्वा च भृत्वा सिकतां गलान्तम् ।

यन्त्रं च तालादिविधातृकोष्ठ्यां
निधाय वह्निं मृदुमेव दद्यात्, ॥३॥

जब शीशी खूब सूख जाय, तब उस शीशी को बालुकायन्त्र में रख कर और शीशी के गले तक बालुका भरकर, इस बालुकायन्त्र को तालादिभस्मकरी भट्ठी के ऊपर रखकर पहिले तो मन्द आँच दे ॥ ३ ॥

दिने दिने च क्रमवर्द्धमानं गलेऽ-
तितप्ते त्वतिहीयमानम्।
तीव्रं पुनर्वा मृदु दीयमानं
शीशीगलस्पर्शपरीक्ष्यमाणम् ॥४॥

बाद रोज रोज अग्नि को क्रम से थोड़ी थोड़ी तेज करता जाय। बालू के ऊपर निकले हुए शीशी के गले को स्पर्श करता रहे। यदि शीशी का गला इतना तप्त हो जाय कि जिसको स्पर्श नहीं कर सके, तब समझ ले कि कज्जली गले तक उफन कर आगयी है; इस लिये तुरन्त ही भट्ठी से लकड़ी निकाल कर अग्नि को कम कर दे। नहीं तो शीशी अवश्य फूटेगी। अथवा उछल कर वैद्य के मस्तक पर पड़कर प्राण हरेगी। जब शीशी के गले को स्पर्श करने से हाथ नहीं जले तो समझले कि गन्धक अपने स्थान पर जा बैठी है। तब फिर पूर्ववत् तेज अग्नि देना शुरू करे। परन्तु बारबार शीशी के गले को स्पर्श कर परीक्षा करता रहे। जब जब गला अति तीव्र तप्त हो जाय, तब तब ही अग्नि को, भट्ठी से लकड़ी निकाल कर मन्दी करता रहे ॥ ४ ॥

दिनाष्टकं यन्त्रमितिक्रमेण
पचेद् गलश्चेदतितीव्रवह्नेः, ।
योगेऽपि संस्पर्शसहोऽनुभूतोऽन्त-
र्धूमचन्द्रोदयनिश्चयस्स्यात् ॥५॥

इस प्रकार आठ दिन तक अग्नि को प्रतिदिन तेज करता हुआ आंच दे। प्रतिदिन तेज करने का यह अभिप्राय है कि जब तक कज्जली का बल नहीं घटा है, तब ही यदि प्रथम दिन से ही अग्नि तेज कर दी जायगी तो शीशी अवश्य फूटेगी। और यदि आठ दिन तक मन्दाग्नि को ही लिये बैठे रहेंगे तो एक महीने में भी शीशी नहीं पकेगी। इस प्रकार आठ दिन तक अग्नि देने पर जब तीव्राग्नि पाकर भी शीशी का गला तप्त न हो तो समझ ले कि चन्द्रोदय बनकर तैयार हो गया है, तब अग्नि देने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ५ ॥

यतो गलस्थेन रसेन तेन निरुद्ध-
वर्त्मा हुतभुग् गलान्तम्।
तप्तुं न शक्नोति नचाऽपि कूपीम-
निन्धनः स्फोटयितुं क्षमोऽस्ति ॥६॥

क्योंकि गले में ठसे हुये चन्द्रोदय से अग्नि का मार्ग रुक जाता है, इसी लिये अग्नि, शीशी के गले को तप्त नहीं कर सकती, और न शीशी को फोड़ ही सकती है। क्योंकि शीशी के तलभाग में यदि कज्जली होती तो उसके धूम से शीशी के फूटने का भय था; परन्तु जब कज्जली का चन्द्रोदय बनकर शीशी के गले पर आ पहुँचा है, अतः शीशी के तलभाग में कज्जली तो रही नहीं तब शीशी को अग्नि कैसे फोड़ सकती है ? ॥ ६ ॥

एवं विनिर्णीतरसेन्द्रसिद्धिरुपेक्ष्य
तिष्ठेद् रसयन्त्रकोष्ठीम्।
शीते च यन्त्रे रसमाददीत षड्ग-
न्धजारी भवतीति घोढा ॥७॥

इस प्रकार जब चन्द्रोदय की सिद्धि निश्चित हो गयी तब भट्ठी को छोड़कर वैद्यराज अपने अन्य कार्य्य में लगें। जब स्वाङ्गशीतल भट्ठी हो जाय, तब शीशी के गले से अन्तर्धूमचन्द्रोदय को निकाल

ले । इस प्रकार छः बार गन्धक जारण करने से षड्गुण गन्धक जारित अन्तर्धूमचन्द्रोदय बनकर तैयार हो जाता है ॥ ७ ॥

चन्द्रोदयोक्ता निखिलाः प्रकाराः
सर्वेऽपि तेऽत्रापि सुसंभवन्ति ।
अभ्यासदार्ढ्येन च किन्तु सिद्धोऽ-
न्तर्धूमचन्द्रोदयकर्मणि स्यात् ॥८॥

बहिर्धूमचन्द्रोदय में जितने प्रकार गन्धक जारण के, और चन्द्रोदय बनाने के लिख चुका हूँ; वे सब प्रकार भी अन्तर्धूमचन्द्रोदय में उपयोगी हो सकते हैं । अर्थात् अन्तर्धूम-तालचन्द्रोदय, अन्तर्धूम-मल्लचन्द्रोदय, अन्तर्धूम-विषचन्द्रोदय, अन्तर्धूम-शिलाचन्द्रोदय इत्यादि सभी प्रकार के अन्तर्धूमचन्द्रोदय बन सकते हैं । परन्तु जब बहिर्धूम-चन्द्रोदय बनाने का पूरा अभ्यास हो जाय, तब अन्तर्धूमचन्दोदय में हाथ लगावे तो सफल मनोरथ हो सकता है ॥ ८ ॥

अन्तर्धूमपाके मतभेदः—

कश्चिदत्रापि बुधोऽस्य पाके
यन्त्राधरस्थं बिलमावृणोति, ।
नैवापिकेनापि न चापिकोष्ठ्यांयन्त्रं-
पचेत् किन्त्वथभुक्तिचुल्ल्याम् ॥९॥

अन्तर्धूम पाक के विषय में मतभेद—

कोई कोई विद्वान् अन्तर्धूमचन्द्रोदय के परिपाक के समय बालुका-यंत्र की हांडी के तलभाग में जो छिद्र है; उसको अभ्रक, या ठीकड़े आदि किसी प्रकार के ढक्कन से नहीं ढकते हैं । उनका अभिप्राय यह है कि छिद्र को ढक देने से अग्नि का वेग शीशी में साक्षात् रूपेण नहीं लगने से चन्द्रोदय जल्दी नहीं बनता । और छिद्र के खुले रहने से शीशी के तलभाग में दीपाग्नि के लगाने से भी उतनी अग्नि के बराबर काम हो जाता है, जितनी कि चार लकड़ी की अग्नि से हो । और उस

यन्त्र को तालादिभस्मकरी भट्ठी के ऊपर नहीं पकाकर रोटी बनाने वाले छोटे चूल्हे पर रख कर पकाते हैं । इसका भी यह अभिप्राय है कि जब बालुकायन्त्र के छिंद्र को खुला छोड़ दिया गया हैं; तब यह यन्त्र तालादिभस्मकरी भट्ठी की अग्नि को नहीं सह सकता । इस लिये छोटे चूल्हे पर यन्त्र को पकाना चाहिये ॥ १ ॥

यद्वाऽपि वायूद्भमयन्त्रचुल्ल्यां
सौकर्य्यहेतोः श्रममन्दतार्थम् ।
गन्धं पलाण्डुस्वरसेन शुद्धं
गन्धार्द्धभागं रसमाददाति ॥२॥

अथवा रोटी करने वाले चूल्हे पर भी यन्त्र को न रख कर गैस के चूल्हे पर रखकर चाबी लगाकर छोड़ देते हैं । ऐसा करने से परिश्रम भी अधिक नहीं है, और अग्नि लगातार लगने से अन्तर्धूम चन्द्रोदय ठीक समय पर निर्विघ्न बन जाता है । और इस अन्तर्धूम चन्द्रोदय बनाने के लिये प्याज के रस में शोधी हुई गन्धक को लेते हैं । जिसकी शुद्धि का प्रकार मैं गन्धक शोधन प्रकरण में लिख चुका हूँ । उस गन्धक से आधा, बुभुक्षित पारद लेकर कज्जली करते हैं ॥२॥

सहस्रधा चन्द्रोदय विधिः—

तारस्य योगं समवाप्य सूतश्
चन्द्रोदयं तारमुखं विधत्ते ।
ताम्रस्य वङ्गस्य भुजङ्गमस्य
व्योम्नोऽपि सत्त्वस्य तदाख्यमेव ॥१॥

सहस्रधा चन्द्रोदय की विधि—

चन्द्रोदय बनाने के हजारों प्रकार हैं, कहां तक लिखा जाय ? तथापि उनके बनाने का कुछ मार्ग दिखलाता हूँ—जिससे बुद्धिमान् लोग बना सकें । जैसा कि बुभुक्षित पारद में शुद्ध की हुयी चाँदी को घोटकर और गन्धक के साथ उसकी कज्जली करके "तार-

चन्द्रोदय" बनाले । उसी प्रकार शुद्ध किये हुए तांमे के योग से "ताम्र-चन्द्रोदय" तैयार करले ! बङ्ग के योग से 'बङ्गचन्द्रोदय' सीसे के योग से "नागचन्द्रोदय" अभ्रक सत्त्व के योग से "अभ्रचन्द्रोदय" तैयार करले ॥१॥

वनस्पतीनामथवाऽपि योगं
मुख्यं समालिङ्ग्य तथा वुभुत्तुः ।
सूतश्च सूते ननु गन्धयोगैः
सञ्चारितानेकगुणस्तदादिम् ॥२॥

और सम्पूर्ण वनस्पतियों के स्वरस, काथ, आदि के योग से तत्तद् वनस्पतियों के नाम से चन्द्रोदय बनाले । जैसे भटकटैया के एक मन स्वरस में एक सेर पारद का स्वेदन करे । जब दस पांच दिन में सम्पूर्ण स्वरस सूख जाय, तब उस पारद को डमरुयन्त्र से उत्थापन करके उसकी दो सेर गन्धक के साथ कज्जली को भी कम से कम चतुर्गुण व्याघ्री (भटकटैया) के स्वरस में मन्दाग्नि से पका कर नलिकाडमरुयन्त्र द्वारा चन्द्रोदय तैयार करले । इसका स्वरूप यदि और भी उज्ज्वल करना होय तो इस चन्द्रोदय के साथ समगुण गन्धक घोटकर कज्जली करले । फिर इसमें भटकटैया (कटेरी) के स्वरस का तीन भावना देकर शीशी में चन्द्रोदय बना लेने से "व्याघ्रीचन्द्रोदय" बन जाता है । जो कि श्वास-कासादि रोगों की एक अद्वितीय वस्तु है । अथवा इसी विधि के अनुसार कायफल के काथ के योग से "कट्फल-चन्द्रोदय" सिद्ध हो जाता है । जो कि वातव्याधि की अपूर्व चीज है । इसी प्रकार आयुर्वेद के चरक-सुश्रुतादि-शास्त्रों में जिन जिन रोगों के जो जो योग लिखे हैं (चाहे वे एक औषध के होंय या सौ औषधि मिलकर हों), उन उन योग के यथासम्भव स्वरस काथादि के सम्बन्ध से उसी उसी नाम के चन्द्रोदय तैयार हो जाते हैं । और उस चन्द्रोदय में उस योग के समस्त गुणों का संचार भी हो जाता है ।

इतने प्रकार के चन्द्रोदय बनाने का यह तात्पर्य्य है कि "युग प्रभावाद् यदि चौषधीनां क्रियासु शक्तिः परिलुप्यतेऽल्पाः" इस न्याय से

जब देखते हैं कि काष्ठादि औषधि तत्तद्रोग नाशक होने पर भी ठीक काम नहीं करती हैं तो उनके योग द्वारा उस नाम वाला चन्द्रोदय बनाने से तत्काल फायदा करेगा। जैसे सुदर्शन चूर्ण में बावन औषधि है। तौभी किसी किसी मनुष्य को शीघ्र फायदा नहीं करता। और कोई कोई मनुष्य कटु होने के कारण उसको खाते भी नहीं; तब उस चूर्ण का क्काथ बनाकर उक्त विधि से "सुदर्शनचन्द्रोदय" यदि बना लिया जाय तो खाने में अरुचि भी नहीं होगी, और ज्वर का दूर हो जाना तो कुछ बड़ी बात ही नहीं है ॥२॥

समद्विषट्सप्तशतादिसंख्यै-
गन्धैः स्वमूर्त्तीर्गुणभेदभिन्नः।
सहस्रधाऽसौ कुरुते रसेन्द्रो
मायागुणेनेव सहस्रशीर्षः ॥३॥

समगुण गन्धक, द्विगुण गन्धक, षड्गुण गन्धक, शतगुण गन्धक आदि के जारण से पारद हजारों मूर्त्तियों को धारण कर लेता है। अर्थात् हजारों प्रकार के चन्द्रोदय बन जाते हैं। जैसे माया के योग से परमात्मा अपनी हजारों मूर्तियों को धारण करते हुए एक कला, दो कला, पूर्ण कला आदि के अनुसार हजारों अवतारों को धारण करते हुए जगत् का कल्याण करते हैं ॥३॥

पारदादिचतुष्टयस्योग्रवीर्यता——

सर्वोग्रवीर्यः कथितो रसेन्द्रस्ततोऽनु
गन्धो हरितालमस्मात्।
तालादपिस्याच्च मनःशिलाऽतो
जगन्ति सर्वाण्यपकर्षवन्ति ॥१॥

पारद आदि चारों पदार्थों की उत्कर्षता——

"रसात् परतरं किञ्चिन्न भूतं न भविष्यति" इस न्याय से पारद के समान जगत् भर में कोई वस्तु न होने से पारद सर्वोत्तम पदार्थ

है। और पारद की अपेक्षा गन्धक हीन-वीर्य है। गन्धक से भी हरिताल हीन-वीर्य है। और हरिताल से मैनशिल हीन-वीर्य है। और मैनशिल से सम्पूर्ण जगत् भर की वस्तु अपकर्ष वाली (हीन वीय) हैं ॥१॥

शिवेश्वरीविष्णुरमोद्भवत्वं
सूतेन्द्रगन्धाऽऽलमनःशिलानाम् ।
वदन्तआचार्यवरा दिशन्ति
शर्मैकहेतुं निखिलप्रजानाम् ॥२॥

उक्त मन्तव्य में यह प्रमाण है कि—"हरितालं हरेर्वीजं गौर्या वीजंतु गन्धकम् पारदः शिववीजं स्यात् लक्ष्मी वीजं मनःशिला" इस न्याय से रसाऽऽचार्य महर्षि लोग पारद को शिववीज, गन्धक को पार्वतीवीज, हरिताल को विष्णुवीज, मैनशिल को लक्ष्मीवीज, कहते हुए हम लोगों को यह उपदेश करते हैं कि वे चारों पदार्थ सम्पूर्ण संसार के लिए कल्याण के मुख्य कारण हैं।

तात्पर्य यह हुआ कि जैसे हम लोगों का शुक्र सम्पूर्ण शरीर का सारभूत है, उसी प्रकार परमात्मा (शंकरजी) का सारभूत पारद है। और शंकरजी की अपेक्षा पार्वतीजी अल्प गुण वाली होने से उनका वीज (गन्धक) भी पारद की अपेक्षा अर्थतः अल्प गुण सिद्ध हुई। चिकित्साकाण्ड में भी गन्धक की अपेक्षा पारद कहीं अधिक गुण वाला है। और शैवी चिकित्सा के शास्त्रों के मत से गौरीशंकरजी से विष्णु अल्प गुण होने से उनका वीज (हरिताल) भी गन्धक से हीन गुण वाला है। परमात्मा की विलक्षण महिमा है। सिद्धान्त तो यही है कि "अभेदः शिवरामयोः" यानी शङ्कर विष्णु का अभेद है, परन्तु कहीं शङ्करजी को बड़ा कहा जाता है, कहीं पर विष्णुजी को अधिक माना जाता है। क्यों कि "जिसके विवाह उसके गीत" यह कहावत प्रसिद्ध है। और भर्तृहरिजी ने भी "अभेदः शिव-रामयोः" का पोषक—"एको देवः केशवो वा शिवो वा एकं मित्रं भूपति र्वा यतिर्वा एको वासः पत्तने वा वने वा एका नारी सुन्दरी वा दरी वा" श्लोक लिख कर अपना यह अभिप्राय सूचित किया है कि

यदि मोक्ष जाने के लिए पहिले ही फकीरी बांना पसन्द हो तो "क्या गरज पड़ी संसार से जब लिया फकीरी बांना" इस कहावत के अनुसार शङ्करजी को अपना उपास्यदेव बनावे तो उनकी कृपा से महात्माओं से मित्रता होगी, बन का वास मिलेगा; और गुफाओं में, रति होगी। यदि कुछ काल राजकीय ठाट बाट भोग कर वैकुण्ठ प्राप्ति की इच्छा हो तो विष्णु भगवान् को अपना उपास्य देव बनावे तो उनकी कृपा से राजाओं से मित्रता होगी, और शहरों का आवास मिलेगा, सुन्दराङ्गनाओं में रति प्राप्त होगी। विष्णुजी से लक्ष्मी वामांगी होने से अल्प गुण वाली हैं, इसलिये उनका वीज (मनःशिला) भी अल्प गुण वाली ठहरी ॥२॥

यथाद्विजादीन्वदनादिजाताञ्
श्रुतिर्वदन्ती प्रियतां च नृणाम् ।
लोकस्थितेर्मूलमभिप्रयन्ती
गुणापकर्षं च यथोत्तरं तत् ॥३॥

जैसे ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यःकृतःऊरू तदस्य यद्वैश्या पद्भ्यां शूद्रो अजायत" यह श्रुति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को परमात्मा के मुख, बाहु, ऊरु, पाद से जन्य बतलाती हुई, और "प्रिया मे मानुषी प्रजा" यह श्रुति सर्वसृष्टि में मनुष्यों को परमात्मप्रिय बतलाती हुई, सम्पूर्ण लोकस्थिति के मनुष्य लोग ही मूलकारण हैं, इस अभिप्राय को जाहिर करती है। और साथ ही साथ हम लोगों को यह भी शिक्षा करती है कि मनुष्यों में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उत्तरोत्तर हीन गुण वाले हैं। अर्थात् जैसे मुख (शिरोभाग) परिमाण में तो कबन्ध (धड़) की अपेक्षा बहुत अल्प है, परन्तु काम की चीज (नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, विचारशक्ति आदि) से परिपूर्ण है। इसीलिये उसको "उत्तमाङ्ग" कहते हैं; जिन चीजों से सर्व शरीर की पूर्ण रक्षा हो रही है। यदि इनमें से कर्ण, नेत्र, जिह्वा आदि कोई वस्तु भी नष्ट हो जाय तो शरीर की उतनी रक्षा नहीं हो सकती। तैसे ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों, की अपेक्षा पुरुषार्थ धन आदि वस्तुओं से रहित होकर भी

ब्राह्मण लोग ज्ञान, वैराग्य, जप, समाधि आदि काम की चीजों को धारण करते हुए व्याकरण, न्याय, मीमांसा, साङ्ख्य, योग, वैद्यक, ज्योतिष आदि अनेक शास्त्र बनाकर सर्वजगत् का पूर्ण कल्याण करते हैं, इसीलिये इनको "भूदेव" कहा जाता है। यानी मनुष्य शरीर से भी ये देव-रूप हैं। और क्षत्रिय लोगों में उक्त गुण नहीं होने पर भी अपने पुरुषार्थ, प्रताप, शक्ति आदि के बल से सर्वजगत् की रक्षा करते हुए वे लोग वैश्य, शूद्रों से कहीं अधिक गुणवाले हैं। परन्तु वैश्यों में वे उक्त गुण नहीं रहने से भी अपनी दयादृष्टि, दातृत्वशक्ति, आदि गुणों करके वे लोग सर्वजगत् का पालन करते हैं। इसीलिये शूद्रों से कहीं अधिक गुणवाले हैं। और शूद्र लोग भी लक्ष्मी की तरह सर्वजगत् की सेवा करके प्रेमास्पद बने रहते हैं। सेवाधर्म इतनी अच्छी चीज है जिसका अनुकरण सबको करना पड़ता है। जैसे बड़े बड़े पुरुष चिट्ठी के नीचे लिखा करते हैं कि—भवदीय, विनीतसेवक, "अमुकशर्मा" "अमुकवर्मा" "अमुकगुप्त" इत्यादि। यह मनुष्यों में ही शक्ति है कि सर्व पशु, पक्षी आदि जन्तु मात्र की रक्षा करके अपनी भी रक्षा कर सकें। इसीलिये श्रुति ने "प्रिया मे मानुषी प्रजा" ऐसा कहा है।

प्रकृत में यह सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण जैसे सर्वसृष्टि में उत्तम होकर उत्तरोत्तर हीन गुण हैं तैसे ही पारद, गन्धक, हरिताल, मैंनशिल, सर्वौषधियों में उत्तम होकर उत्तरोत्तर हीनगुण हैं। इसीलिये "हरितालं हरेर्बीजम्" इस न्याय से इनके योग से चन्द्रोदय, मकरध्वज, स्वर्णसिन्दूर, सिन्दूररस आदि सभी रस उग्रवीर्य बनते हैं ॥ ३ ॥

मकरध्वज विधिः—

स्वर्णं पलं जातबुभुक्षसूते
पलाष्टके स्वेदनमर्दनाभ्याम् ।
विधाय जीर्णं च प्रदाय गन्धं
सूतेऽत्र शुद्धं द्विगुणं विमर्दत् ॥१॥

मकरध्वज की विधि—

बत्तीस तोले बुभुक्षित पारद में चार तोले शुद्ध सुवर्ण के पत्रों का ग्रास देकर बुभुक्षाविधि के अनुसार स्वेदन मर्दन द्वारा पचा दे। बाद पारद से द्विगुण (चौंसठ तोले) शुद्ध गन्धक लेकर कज्जली करले ॥१॥

कर्पासशोणप्रसवाम्बुभिस्तां
कन्याद्रवैः पञ्च च भावयित्वा।
घर्मप्रशुष्कां च मसिं भरेत
समृत्पटायामथ कूपिकायाम् ॥२॥

इस कज्जली में कपास के लालफूलों (नांदन-वन के फूलों) के स्वरस की पाँच भावना दे। और घृतकुमारी के रस की भी पाँच भावना दे। जब घोटते-घोटते कज्जली सूख जाय, तब कपरमट्टी की हुई आतशीशीशी में उस कज्जली को भर दे॥ २॥

संस्थाप्य कूपीं सिकताऽऽख्ययन्त्रे
बब्बूरकाष्ठेन पचेत पञ्च,।
दिनानि रात्रिन्दिवमत्र तिष्ठन्
तापैश्च वेह्नर्मृदुमध्यतीव्रैः ॥३॥

इस शीशी को बालुकायन्त्र में रखकर चन्द्रोदय बनाने वाली भट्ठी पर पाँच अहोरात्र तक मन्द, मध्यम, तीव्र, क्रम से बबूर (कीकर) की लकड़ी की आँच दे। और चन्द्रोदय विधि के अनुसार वैद्य शीशी के तरफ ध्यान रखे कि जिसमें शीशी फूटने नहीं पावे॥ ३॥

शीते च यन्त्रे मकरध्वजं ज्ञः
सूर्य्यप्रभाभासितरक्तवर्णम्।
कूपीगलस्थं समुपाददीत
चन्द्रोदयप्रायफलानुपानम् ॥४॥

स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी के गले पर लगे हुए, प्रातःकाल के सूर्य्य के समान रक्तवर्ण वाले मकरध्वज को निकाल लें। इस मकर-

ध्वज का गुण और अनुपान लगभग चन्द्रोदय के समान जान ले ।

चन्द्रोदय में सुवर्णग्रास पारद से चतुर्थांश दिया जाता है, और मकर-ध्वज में अष्टमांश दिया जाता है । इसीलिये चन्द्रोदय की अपेक्षा मकरध्वज कुछ न्यून गुणकारी है ॥ ४ ॥

सहस्रधा मकरध्वज विधिः—

चन्द्रोदयोक्तं विधिमास्थितश्चे-
दन्तर्बहिर्धूमविधीरितं चेत् ।
शिलाऽमृताऽऽलोक्तपथावलम्बी
कर्तुं तथेष्टे मकरध्वजं च ॥१॥

सहस्रधा मकरध्वज की विधि—

चन्द्रोदयों के बनाने की विधि में जितने प्रकार कह चुका हूँ उस विधि के अनुसार अन्तर्धूम–मकरध्वज, बहिर्धूम–मकरध्वज, शिला-मकरध्वज, विषमकरध्वज, तालमकरध्वज, आदि सर्व प्रकार के मकर-ध्वज भी बन सकते हैं ॥ १ ॥

सहस्रधा वा शतधाऽपि षोढा
कूप्यां च हण्ड्यां नलिकाख्ययन्त्रे ।
यथामनीषं परिजारयेत
भिषग्वरो गन्धकमत्र सूते ॥२॥

और गन्धक जारण के विषय में भी पूर्वोक्त विधि समझ लेनी चाहिए कि शीशी में, या हाँडी में, या नलिकाडमरूयन्त्र में अपनी इच्छा के अनुसार षड्गुण, शतगुण, सहस्रगुण, गन्धक जारण से चन्द्रोदय की तरह सहस्रधा मकरध्वज भी बनाले ॥ २ ॥

स्वर्णसिन्दूर विधि—

सौवर्णपत्राणि पलं विशुद्धा-
न्यष्टौ रसेन्द्रस्य च हैङ्गुलस्य ।

संमर्द्य युग्मं विदधीत पिष्टिं
पलान्यथो षोडश गान्धकानि ॥१॥

स्वर्णसिन्दूर की विधि—

शुद्ध किये हुए सुवर्ण के पत्र चार तोला, हिङ्गुल से निकाला हुआ या लाल ईंट के चूर्ण आदि पदार्थों में शुद्ध किया हुआ (अम्लवर्ग और क्षारवर्ग में दोलायन्त्र विधि से चार पहर स्वेदित किया हुआ) पारद आठ पल (बत्तीस तोले) दोनों को मर्दन करके पिट्ठी बनाले। बाद इसमें शुद्ध की हुई सोलह पल (चौंसठ तोले) गन्धक डालकर कज्जली करले ॥ १ ॥

दत्त्वा बलिंशुद्धमिहाऽऽविमर्द्दत्
कर्पासपुष्पोत्थजलैः सुभाव्य।
त्रिः पञ्च वारानथ कज्जलींतां
शुष्कां भरेत् काचमयींच कूपीम् ॥२॥

इस कज्जली में कपास के फूलों [नांदन वन के लाल फूलों] के स्वरस की तीन बार या पाँच बार भावना देकर घोटते घोटते कज्जली को सुखा ले। इस कज्जली को कपरमट्टी की हुई आतशीशीशी में भरदे ॥ २ ॥

धृत्वा सुसज्जां सिकताख्ययन्त्रे
रात्रिन्दिवं पञ्च दिनान्यखण्डम्।
दास्यन् कृशानुं मृदुमध्यतीव्रं
दिनद्वयान्ते प्रददीत मुद्राम् ॥३॥

इस शीशी को बालुकायन्त्र में रखकर पाँच अहोरात्र की मृदु, मध्य, तीव्र, क्रम से अखण्ड अग्नि देनी होगी इसलिये दो दिन तक तो शीशी से धूम निकलने दे। दो दिन के बाद धूम निरोध करने के लिए शीशी के मुख पर मुद्रा कर दे ॥ ३ ॥

स्वाङ्गे शीतेऽथ सञ्जाते गृह्णीयात् कूपिकोर्द्धगम् ॥
स्वर्णसिन्दूरनामानं स्वर्णभस्माप्यधस्तले ॥४॥

पाँच दिन के बाद लकड़ी लगाना बन्द करे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब उक्त विधि के अनुसार शीशी के गले पर लगे हुए स्वर्ण-सिन्दूर को निकाल ले और शीशी के तलभाग से सुवर्णभस्म को अलग निकाल ले ॥ ४ ॥

यथाचन्द्रोदयं सर्वे स्वर्णसिन्दूरनिर्मितौ ।
प्रकाराश्चावतिष्ठन्ते नामान्यल्पफलानि च ॥५॥

और पूर्वोक्त चन्द्रोदयों की विधि के अनुसार स्वर्णसिन्दूर बनाने के भी हजारों भेद समझ लेने चाहियें। और उनके नाम भी उक्त चन्द्रोदयों के अनुसार ही होंगे। जैसे तालस्वर्णसिन्दूर, मल्लस्वर्णसिन्दूर, विषस्वर्णसिन्दूर, इत्यादि इत्यादि।

उक्त चन्द्रोदय और स्वर्णसिन्दूरों में इतना ही तारतम्य है कि वे चन्द्रोदय बुभुक्षित पारद के बनाये जाते हैं, इसलिये उनमें अधिक गुण होते हैं। और सुवर्णसिन्दूर अबुभुक्षित [केवल हिङ्गुलोत्थ] पारद के बनते हैं, इसलिये इनमें उनकी अपेक्षा अल्प गुण हैं ॥ ५ ॥

केचिच्चन्द्रोदयं प्राहुर्ग्राहुर्ध्वजमिमं परे ।
वुभुक्षाहीनसूतोत्थं स्वर्णसिन्दूरकं वयम् ॥६॥

इस स्वर्णसिन्दूर को कोई आचार्य्य चन्द्रोदय मानते हैं और कोई कोई आचार्य इसको मकरध्वज कहते हैं। परन्तु मैं इसको स्वर्ण-सिन्दूर मानता हूँ। क्योंकि पारद को बुभुक्षित किये बिना सुवर्ण ग्रास पच नहीं सकता। जो स्वर्णग्रास पारद में दिया गया है उसको हिङ्गुलोत्थ पारद जब पचा ही नहीं सकता तब उसके बने हुये रस को चन्द्रोदय, या मकरध्वज, शब्द से कैसे कहा जाय ? हाँ ! सिन्दूररस से सुवर्णसिन्दूर कहीं अधिक गुण वाला है इसमें सन्देह नहीं है ॥६॥

सिन्दूररस विधिः—

रक्तेष्टकादौ परिशोधितो वा
स्विन्नश्चसूतो दरदोत्थितोवा ।
पादैकसेटो वलिरर्द्धसेटो
दुग्धाऽऽज्यशुद्धः कृतकज्जलीकौ ॥१॥

सिन्दूररस की विधि—

लाल ईंट के चूर्ण आदि पाँच पदार्थों में शोधन किये हुए या हिङ्गुल से निकाले हुए पारद को दोलायन्त्र विधि से चार पहर तक गोमूत्र, लवण और नींबू के रस में स्वेदन करले। यह पारद पाव भर, व घी में शोधी हुई गन्धक आध सेर, इन दोनों की कज्जली करले ॥ १ ॥

जटाप्ररोहोत्थजलैर्वटस्य त्रिः
पञ्चकृत्वोऽप्युत भावयित्वा ।
मसिं सुशुष्कां च भरेत कूप्यां
समृत्पटायां सिकताऽऽख्ययन्त्रे ॥२॥

इस कज्जली में वटजटा प्ररोह (बरोह) के क्वाथ की तीन या पांच भावना दे। जब घोटते घोटते कज्जली सूख जाय, तब कपरमट्टी की हुई शीशी में कज्जली को भरकर बालुकायन्त्र में रखदे ॥ २ ॥

चन्द्रोदयिन्त्र्यामथ कोष्ठिकायां
पचेत चत्वारि दिनानि यन्त्रम् ।
यच्छन्हुताशं मृदुमध्यतीव्रं
दिनद्वयान्ते कवलीं ददीत ॥३॥
शीशीमुखे तां परितोऽपि मुद्रां
दृढाभिधानां रसरोधहेतुम् ।
शीतेऽत्र सिन्दूररसो गलस्थो
ग्राह्योऽखिलातङ्ककृतान्तकर्मा ॥४॥

इस यन्त्र को चन्द्रोदय बनाने वाली भट्ठी पर रखकर चार अहोरात्र की मृदु, मध्य, तीव्र क्रम से अग्नि दे। परन्तु दो दिन अग्नि लगने पर शीशी के मुख में खड़ियामट्टी की डाट घुसा कर उसकी दर्जों में दृढ़ नामक (गुड़ चूने की) मुद्रा करदे, जिसमें कि पारद उड़े नहीं और अधिक गुणकारी हो। चार दिन के बाद लकड़ी

लगाना बन्द करदे। जब यन्त्र ठंडा हो जाय, तब शीशी के गले पर लगे हुए सिन्दूररस को निकाल ले। वह सिन्दूररस अनुपानवश सभी रोगों को नष्ट करता है। इसलिये इसको वैद्य लोग जरूर बनाकर अपने पास रखें ॥ ४ ॥

सुगमसिन्दूररस विधिः—

सूतं हिङ्गुलाज्जातं दोलायन्त्रेण बुद्धिमान्।
क्षाराम्लैर्मन्द-मन्दाग्नौ स्वेदयेत्प्रहरत्रयम् ॥ १ ॥
विधिनानेन जातेऽस्मिन् निष्षण्ढत्वे क्षिपेत्समम्, ।
गन्धं शुद्धं द्वयं पश्चान्मर्दयेत्खल्वके दिनम् ॥ २ ॥

सुगमसिन्दूररस की विधि—

पूर्वोक्त डमरूयन्त्र या गोलकयन्त्र द्वारा हिङ्गुल से पारद को निकालकर पूर्वोक्त रीति से तीन प्रहर दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से जब पारद का क्लीवत्व दोष दूर हो जाय, तब उसके बराबर शुद्ध आमलासार गन्धक मिलाकर खरल में दिन भर घोटे ॥ १।२ ॥

ता कज्जलीं भावयेता वटस्य
जटाप्ररोहाज्जनिते कषाये।
त्रिधाऽथ शुष्कां ननु कूपिकायां
वैद्योभरेन्मूर्च्छनकार्य्यहेतोः ॥३॥

जब कज्जली हो जाय, तब बरोह के काथ की तीन भावना दे, जब कज्जली बिल्कुल सूख जाय, तब उस कज्जली को कपड़मट्टी की हुई शीशी में भर दे ॥ ३ ॥

या प्रस्तरेङ्गालवती च कोष्ठी
विनाकृता चुल्लिकयैव तस्याम्।
निधाय शीशीं सिकतान्तरस्थां
ददीत वह्निं मतिमानधस्तात् ॥४॥

अनन्तर उस शीशी को हांडी वाले बालुकायन्त्र में रखकर सर्वार्थ-करीभ्राष्ट्री की लोहजाली पर भरे हुए पत्थर के कोयलों के ऊपर उस बालुकायन्त्र को रखदे, और भट्ठी के दोनों दरवाजों में दो दो लड़कियों की आँच दे। जब कोयले खूब सुलग जांय तब लकड़ी लगाना बन्द करदे ॥ ४ ॥

या सूतरक्षाकरणे क्षमा स्याद्
विनिर्मिता वस्त्रमृदा सुशुष्का।
कूप्यां शनैस्तां कवलीं प्रदाय
प्रतीक्षमाणःकलिकाग्निमास्ताम् ॥५॥

और चिकनी मट्टी वो कपड़े की; शीशीके मुख के अन्दाज से बनी हुई और सुखाई हुयी डाट को इस प्रकार शीशी के मुख पर रखे जिस में धूआँ भी कुछ कुछ निकलता रहे। उस अवसर पर वैद्य को उचित है कि दूर बैठा हुआ शीशी को देखता रहे ॥ ५ ॥

शीशीमुखोत्थितां लम्बां कूपीरिक्तत्वकारिणीम्।
ज्वालामपानुनुत्सुर्नो सिञ्चेदङ्गारकाञ्छनैः ॥ ६ ॥

यदि अग्नि के अधिक वेग होने के कारण शीशी के मुख से ज्वाला निकलने लगे, तब यन्त्र को बचाकर अङ्गारों के ऊपर धीरे धीरे पानी छिड़ककर अग्नि के वेग को कम कर दे। ऐसा करने से ज्वाला तुरन्त बन्द हो जायगी। यदि ज्वाला कम न की जायगी तो पारा बिलकुल बाहर निकल जायगा और शीशी खाली पड़ जायगी। सिन्दूररस कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। तीन चार घंटे के बाद जब अङ्गारों का वेग कम पड़ जाय, तब भट्ठी के पास बैठने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ६ ॥

यन्त्रे शीतेऽत्र संजाते कूपिकाया गलं गतः
रसः सिन्दूरको नाम योगवाही ज्वरादिनुत् ॥७॥

यन्त्र को स्वतः शीतल हो जाने पर बालुकायन्त्र से शीशी को निकाल कर शीशी के ऊपर लगी हुई कपड़मिट्टी को चाकू से खुरच डाले, और गीले कपड़े से शीशी को पोंछ डाले। फिर धीरे से शीशी

को फोड़कर गले में लगी हुई "सिन्दूररस" की कटोरी को निकाल ले। ज्वरादि रोगों में तत्तद्रोगहर औषधों के अनुपान के साथ एक रत्ती से दो रत्ती तक बलाबल देखकर इस रस का व्यवहार कर सकते हैं।

यदि किसी कारणवश अग्नि पूर्ण न लगने से शीशी के गले पर सिन्दूररस नहीं जमे तो छटांक भर गन्धक और डालकर पूर्ववत् फिर घोटकर शीशी में चढ़ा दे ॥ ७ ॥

सहस्रधासिन्दूररस विधिः—

तालादिमल्लादिशिलादयो ये
यावत्प्रकाराश्च यथाविधोक्ताः।
गन्धेषु जीर्णेषु च यावदुक्ता
गन्धस्य शुद्धेरपि जातरूपाः ॥१॥
यावत्प्रकारासु च भावनासु
मर्सिं सुभाव्यापि विनिर्मिता ये।
चन्द्रोदयास्ते सकला भवन्ति
विनैव सिन्दूररसा बुभुक्षाम् ॥२॥

सहस्रधासिन्दूररस की विधि—

तालचन्द्रोदय, मल्लचन्द्रोदय, शिलाचन्द्रोदय, आदि आदि जितने प्रकार के चन्द्रोदय अनेक विधियों से बनने वाले जो जो पहिले कहे गये हैं; और समगुण, द्विगुण, त्रिगुण, षड्गुण, शतगुण, गन्धकजारण से जितने प्रकार के चन्द्रोदय पूर्व लिखे गये हैं; और अनेक प्रकार गन्धक शुद्धि से विशिष्टरूप सम्पन्न जितने चन्द्रोदय उल्लिखित हुए हैं; तथा अनेक प्रकार के स्वरसों की भावना से जो चन्द्रोदय बनाये गये हैं; वे सब पारद को बुभुक्षित नहीं करके यदि हिङ्गुलोत्थ पारद से अथवा रक्तेष्टकादि (लाल ईट के चूर्ण आदि) पदार्थों में शोधे हुए पारद से बनाये जायँ तो वे रससिन्दूर कहलाते हैं। अर्थात् पारद को बुभुक्षित करके और स्वर्ण ग्रास देकर जितने चन्द्रोदय बनते हैं, उतने

ही, और उसी रीति से सिन्दूररस भी बनते हैं। चन्द्रोदय, सुवर्ण-सिन्दूर तथा सिन्दूररस, इन तीनों के बनाने की समान विधि है। केवल भेद इतना ही है कि चन्द्रोदय बनाने के लिये पारद को बुभुक्षित करके उसमें स्वर्णग्रास को जीर्ण करना पड़ता है। और सुवर्णसिन्दूर बनाने के लिये पारद को बुभुक्षित करने की तथा स्वर्णग्रास देने की कोई आवश्यकता नहीं। चन्द्रोदय की तरह तालसिन्दूर, मल्लसिन्दूर, विषसिन्दूर, शिलासिन्दूर, ताम्रसिन्दूर, वङ्गसिन्दूर, नागसिन्दूर, अभ्रसिन्दूर, सुदर्शनसिन्दूर, कट्फलसिन्दूर, समगुणगन्धकजारितसिन्दूर एवम् द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण, षड्गुण, दशगुण, शतगुण, गन्धकजारित सिन्दूररस सैकड़ों हजारों बन जाते हैं ॥१।२॥

गुणातिदिष्टाश्च तथैव सर्वे
सहस्रधा किन्तु ततोऽल्पवीर्याः ।
जीर्णेन गन्धेन परिश्रमेण
द्रव्येण हीनाऽधिकशक्तिकाःस्युः ॥३॥

और गुणों में भी सम्पूर्ण सिन्दूररस चन्द्रोदयों के गुणों के समान समझने चाहियें। गुणों में केवल इतना ही भेद है कि चन्द्रोदयों में अति तीव्र गुण हैं, और सुवर्णसिन्दूरों में उनसे अल्पगुण हैं। और सिन्दूरसों में उन दोनों से न्यून गुण हैं। अधिक गुण करने में और न्यून गुण करने में भी वैद्यों का स्वातन्त्र्य है। जितनी अधिक गन्धक जीर्ण की जाय और जितना अधिक परिश्रम हो, तथा जितना अधिक द्रव्य खर्च हो उतनी ही शक्ति रस में अधिक होगी। इसी भांति जितना न्यून गन्धक जारण किया जाय व जितना अल्प परिश्रम हो, और जितना अल्प द्रव्य खर्च हो, उतना ही रस में अल्प गुण होगा ॥ ३ ॥

समद्विगन्धेन विनिर्मितं तु
चन्द्रोदयं चापि गुणेषु तेषु ।
गन्धैः सुजीर्णैःशतकृत्वइद्धः
सर्वोऽपि सिन्दूररसोऽतिशेते ॥४॥

और दूसरी यह भी बात है कि यदि चन्द्रोदयों में तो समगुण या द्विगुण गन्धक ही जारण किया हो; परन्तु रससिन्दूरों में शतगुण गन्धक जारण किया हो, तो वे सिन्दूररस उन चन्द्रोदयों से भी अधिक गुणकारी बनेंगे ॥ ४ ॥

सिन्दूरनिर्माणविधेः प्रकाराश्च-
न्द्रोदयस्यापि भिषग्वराणाम् ।
पारेसहस्रं सुशका विधातुं
सूतेन्द्रसेवासु कुतूहलं चेत् ॥५॥

वैद्य लोग मेरे लिखने पर ही निर्भर न रहें। क्योंकि केवल चन्द्रोदयों व रससिन्दूरों के इतने प्रकार हो सकते हैं जिनको लिखते लिखते और बनाते बनाते सम्पूर्ण आयुष्य व्यतीत हो जाय तो भी अन्त नहीं आवे। इसलिये जिन वैद्यों को अनेक प्रकार के चन्द्रोदयादि बनाने का शौक़ हो वे महाशय तत्तत् औषधियों के गुण देखकर उक्त रीति के अनुसार कितने ही हजार प्रकार के चन्द्रोदय बना सकते हैं ॥ ५ ॥

प्रवाससिन्दूर विधिः—

गन्धोऽम्लसारो लघुकूपिका च
शिलाऽऽलमल्लाऽमृतहिङ्गुलानि ।
यत्राऽपि तत्राऽऽपणिकाऽऽपणेषु
सप्ताऽपि लभ्यानि सुखेन मन्ये ॥ १ ॥

मुसाफिरी में सिन्दूररस की विधि—

मैंनशिल, हरिताल, चारों संखियाओं में से कोई संखिया,* वत्सनाभ विष, हिङ्गुल, आमलासार गन्धक, छोटी बड़ी सब प्रकार की शीशियाँ, ये सातों चीज सभी शहरों में जहाँ चाहो दूकानदारों की दूकानों पर मेरे ख़याल से आसानी से मिल जाती हैं ॥१॥

---

* काली संखिया मिले तो और भी अच्छी परन्तु धोखेबाज बहुत मिलते हैं, अतः संखिया, हरिताल, मैंनशिल, गन्धक इनको आँच पर धरकर देखले। जो गन्धेला धूआँ निकले तो सच्चा माल समझे। अतः सावधान !

मन्ये च सर्वत्र गवोपलानि
शिलाशिलापुत्रकयुग्मकानि ।
तदा तु मूर्च्छां प्रति साधनानि
शोकास्पदं सन्तु किमर्थकानि ॥ २ ॥

और जब सब जगह गोहरे, (कंडे) साफ पत्थर, पीसने का लोढ़ा आसानी से मिल जाते हैं, तब मूर्च्छा (शिलासिन्दूर तालसिन्दूर विषसिन्दूर) के साधनों का किस वास्ते शोच करना? अर्थात् उक्त दश चीजों के लब्ध हो जाने से जहाँ चाहो उसी जगह मुसाफिरी में उक्त सिन्दूररसों को बनाले। हिमामदस्ता, भट्ठी, बालुकायन्त्र आदि किसी चीज के जुटाने की आवश्यकता नहीं है। काम चलाने के लिए उक्त दश चीजों से भी बहुत आश्वास मिलेगा। यों तो जितना कम द्रव्य और कम परिश्रम होगा उतना ही फल भी कम होगा ॥२॥

व्यायत्तमध्या मुखसङ्कटाग्रा
समृत्पटोपाग्नि विशोषिता च ।
कूपी क्षमा मूर्च्छनकार्यसिद्धौ
सा नोपलभ्येत यदि प्रसङ्गात् ॥ ३ ॥

शिलादि, सिन्दूर बनाने के लिये शीशी ऐसी खोज लेनी चाहिये क जिसका गले से नीचा-मध्य भाग तो चौड़ा हो, और मुख का अग्रभाग सकड़ा (संकुचित) हो उस शीशी पर एक कपरमट्टी करके जहाँ पर हलवाइयों की भट्ठी जलती हो, उसके सामने भी शीशी को रख आने से दो घंटे में शीशी सूख जायगी। इस शीशी में इच्छानुसार कोई भी सिन्दूररस बना सकते हैं। कदाचित् गले से नीचे चौड़ी और मुख पर सकड़ी शीशी नहीं मिले तो ॥ ३ ॥

तज्जाग्धिका तत्र निवेशनीया
मृन्निर्मिता स्विन्नकलायरन्ध्रा ।
पञ्चाङ्गुलोन्मानमिता च वक्त्रे
चाकण्ठमग्ना ननु कूपिकायाः ॥ ४ ॥

चौड़े मुख वाली ही शीशी लेकर उसके मुख के माप की पाँच अङ्गुल लम्बी खड़ियामट्टी की डाट उसके मुख में घुसादे । परन्तु उस डाट के बीच में इतना बड़ा छिद्र करदे, जिसके अन्दर पानी में उबालने से फूला हुआ मटर का दाना प्रविष्ट हो जाय । उस डाट को शीशी में इस प्रकार फँसा कर देखले जिसमें डाट शीशी के गले तक (अन्दाज दो अंगुल) घुस जाय, बाकी तीन अंगुल बाहर दीखती रहे ॥ ४ ॥

यतो न धूमाग्निलतानिरोधः
कश्चिन्न मूर्च्छासु भवेद्विरोधः ।
यकोऽपि सिन्दूररसो विधेयस्त-
दीयवस्तुत्रयमत्र कूप्याम् ॥ ५ ॥
शिलाशिलापुत्रककुट्टनेन
समानमानं भ्रियतां ततः सा ।
भ्रियेत सेटत्रयगोमयेषु
गलान्ततावत्तु च कूपिकायाः ॥ ६ ॥

डाट में फूले हुए मटर के दाने के प्रमाण छिद्र करने का यह अभिप्राय है कि जिसमें शीशी का धूआं और अग्नि की लपट उस छिद्र द्वारा निकलने से शिलासिन्दूर आदि रसों का नुकसान न हो । जब इस प्रकार शीशी और डाट बनकर तैयार हो जाय, तब यदि शिलासिन्दूर बनाना हो तो हिंगुल, मैंनसिल, आम्लासार गन्धक, इन तीनों को शिल लोढ़ी से पीसकर चूर्ण कर ले । यदि तालसिन्दूर बनाना हो तो तबकिया हरिताल, हिंगुल, आम्लासार गन्धक, इन तीनों को कूटकर चूर्ण करले । अर्थात् जिस नाम वाला सिन्दूररस बनाना हो उसी के समानभाग हिंगुल गन्धक को लेकर तीनों चीजों को कूटकर शीशी में भर दे । परन्तु यह स्मरण रहे कि शीशी में आधपाव (दश तोले) से अधिक चूर्ण न भरे । उस शीशी को तीन सेर उपलों (कंडों) पर जमादे बाद शीशी के चारों तरफ तीन सेर उपले और भी जमादे ॥ ५ । ६ ॥

वह्निं दृदीताऽत्र यदाग्नियष्टि-
रुदेति शीशीमुखतस्तदाग्निम्।
सिञ्चेत् पृषद्भिश्च तथा जलानां
यथा न तैक्ष्ण्यं च शमोस्तु वह्नेः ॥ ७ ॥

इन उपलाओं में आंच लगा दे। जब शीशी के मुख से धूआं निकलने लगे, या कुछ कुछ अग्नि की लपट निकलने लगे तहां तक तो कुछ भय मानने की आवश्यकता नहीं है परन्तु जब शीशी के मुख से दण्ड के समान लम्बी लपट निकलने लगे तब अग्नि की तेजी को कम करने के लिये शीशी को बचाकर अग्नि पर चारों तरफ थोड़ा पानी छिड़क दे। ऐसा करने से शीशी के मुख से निकलती हुई लम्बी लपट तुरन्त मन्दी पड़ जायगी। परन्तु इतना अधिक पानी न छिड़क डाले जिसमें अग्नि भी बुत जाय। अग्नि के बुत जाने से तालादिसिन्दूररस कच्चा निकलेगा। अग्नि की अधिक लपट शीशी के मुख द्वारा निकलने से सिन्दूररस कुछ उड़ जाता है, इसलिये उस मौके पर, मैं शीशी के मुख पर एक ठीकड़ी रख दिया करता हूँ। ऐसा करने से भी तोले दो तोले रस अधिक हाथ पड़ जाता है ॥ ७ ॥

होराद्वयान्ते शनकैः शलाकां
निवेश्य संजातपरीक्षकःस्यात्।
रुद्धा शलाका यदि तत्र मूर्च्छा
जातेति सञ्जातविनिर्णयश्च ॥ ८ ॥

दो घण्टे के बाद शीशी के मुख में एक शलाका घुसाकर परीक्षा भी करले। जो शलाका शीशी के अन्दर नहीं जा सके, किन्तु गले पर ही अटक जाय तो, समझले कि सिन्दूररस शीशी के गले पर आ लगा है। तब अग्नि की तेजी को थोड़ा-थोड़ा पानी छिड़क कर और भी कम कर दे! कदाचित् शलाका गले पर नहीं अटके तो अग्नि को कम करने की कोई आवश्यकता नहीं। इस प्रकार पांच छः घण्टे मेहनत करने से शीशी की कपरमट्टी सुखाना, बाजार से हरिताल वगैरह लेना;

शीशी को पकाकर स्वाङ्गशीतल करना, ये सर्व कृत्य मुसाफिरी में किसी धर्मशाला में बैठा हुआ भी मनुष्य कर सकता है ॥ ८ ॥

द्रव्यैरशुद्धैर्जनितेषु चैषु
वैद्यैरशुद्धिर्न च शङ्कनीया ।
गन्धस्य माहात्म्यमनुस्मरद्भि-
र्नैम्बूकनीरेण च शोधयद्भिः ॥ ९ ॥

यहां पर ऐसी शङ्का हो सकती है कि हरिताल, मैंनशिल, संखिया, हिङ्गुल, गन्धक, सभी चीज शुद्ध नहीं की गई हैं तो उनके बने हुए तालसिन्दूरादि सभी दूषित बनने चाहियें ? इसका उत्तर यह है कि सर्व दोषों के नष्ट करने वाली गन्धक एक ही चीज है । इसका समर्थन "गन्धकप्रधान्यम्" "हिङ्गुलोत्थपारदे मतभेदाः" एतच्छीर्षक गत लेख में पूरा हो चुका है । और जैसे अशुद्ध पारद, अशुद्ध गन्धक से बने हुए हिङ्गुल की शुद्धि केवल नींबू के रस में घोटने से हो जाती है; तैसे ही शिलासिन्दूर आदि रसों को भी उक्त रस में घोटकर शुद्धि कर लेते हैं ॥ ९ ॥

इमे च सिन्दूररसाः शिलाद्या
नैम्बूकनीरेण सुभावनीयाः ।
प्रवासमित्राणि भिषग्वराणां
चैकाकिपश्यान्तकतस्कराणाम् ॥१०॥

उक्त प्रकार बने हुए शिलासिन्दूर, मल्लसिन्दूर, विषसिन्दूर आदि रसों को दो पहर या एक पहर मात्र नींबू के रस में घोट सुखाकर शीशी में रख लेने से ये मुसाफिरी में ऐसे सङ्कट के सहायक मित्र हैं, कि जहां पर रोगी के पास गये हुए वैद्य को अकेला समझ कर सन्निपातादि भयङ्कर यमराज के भेजे हुए रोगरूपी तस्कर कुछ असर नहीं कर सकते । यह बात तो दूसरी है कि यदि रोगी का आयुष्य-कर्म ही अवशिष्ट नहीं हो तब तो कोई भी सहायता नहीं कर सकता ॥ १० ॥

बद्धाद्विजानामपि मूर्च्छितानां
भैषज्यसेवासु पराङ्मुखानां ।
मूर्च्छान्तनस्येन प्रबोधितानां
प्राणप्रदाः सन्ततमातुराणाम् ॥११॥

यदि रोगी के दांत भिच गये हों, और बेहोश पड़ा हुआ हो । इसी कारण कोई प्रकार से वह रोगी दवा खाने में असमर्थ हो तो आगे लिखी हुई "मूर्च्छान्त नस्य" उसको सुंघाकर प्रथम उसकी मूर्च्छा को निवृत्त कर दे । बाद सिन्दूरादि की मात्रा देने से रोगी के प्राण बचेंगे । परन्तु यह स्मरण रहे कि जहां पर ये उक्त रस अपनी शक्ति दिखाने में कुण्ठित हो जांय, वहां पर मल्लचन्द्रोदय, विषचन्द्रोदय, आदि का मुख अवश्य ताकना होगा ॥ ११ ॥

मूर्च्छान्तनस्य विधिः-

सुधोपलानां नवसादरं च
समानभागे कुसुदस्य पादः ।
कूपीभृतं तत्त्रयमाविमर्द्य मूर्च्छा-
न्तनस्यं सफलप्रभावम् ॥१॥

मूर्च्छा से जगाने की सुंघनी—

बिना बुझाया हुआ पत्थर का चूना एक तोला, नवसादर एक तोला, कपूर तीन मासे तीनों चीजों को पीसकर एक छोटी शीशी में भर कर शीशी के मुख पर डाट लगाकर रख छोड़े । इसको 'मूर्च्छान्त-नस्य' कहते हैं । अर्थात् हैजा, सन्निपात आदि किसी रोग से, या सर्प, बीछू आदि किसी जन्तु के काटने से जो प्राणी मूर्च्छित पड़ा हो उसको मूर्च्छा से जगाने वाली यह सुंघनी है । इसका प्रयोग व्यर्थ नहीं जा सकता ॥ १ ॥

घ्राणेन्द्रियान्ते निहितोर्ध्वकोटौ
कूप्यां तदीयोत्कटगन्धयोगैः।
मूर्च्छात उत्तिष्ठति मानवोऽरं
भवेत् स्वकीयार्त्तिनिवेदकश्च ॥२॥

रोगी को जगाने की यह विधि है कि मूर्च्छान्तनस्य की शीशी की डाट खोलकर शीशी के मुख को मूर्च्छित रोगी की नांक के पास लगादे, तो शीशी के अन्दर से ऐसी उत्कटगन्ध नासिका के अन्दर पहुँचेगी कि रोगी मूर्च्छा से तुरन्त जग उठेगा। एक बार में मूर्च्छा नहीं खुले तो एक दो बार और लगावे। रोगी अवश्य चैतन्य होकर अपना समाचार कहने लगेगा। और जिस रोग से वह रोगी आक्रान्त होगा वह रोग भी शिथिल पड़ जायगा। बाद चन्द्रोदयादि जो दवाई उसको देनी हो तब वह भली भाँति खाकर लाभ उठा सकेगा। इसके अतिरिक्त मस्तक पीड़ा, बेचैनी आदि अनेक रोगों में इस नस्य का उपयोग होता है ॥ २ ॥

तालादिचन्द्रोदयादीनां गुणतारतम्यम्—

कण्डूतिकुष्ठास्रविषत्रिदोषाँ-
श्चन्द्रोदयस्तालगुणैर्निकुर्य्यात्।
गुदाङ्कुराँश्चापि निषेवणेन
तद्युक्तसिन्दूररसादयोऽपि ॥१॥

तालादि चन्द्रोदयादिकों में गुणों की न्यूनाधिकता—

चन्द्रोदयों में जितने प्रकार के गुण कह चुका हूँ, वे गुण तो सभी चन्द्रोदयों में विद्यमान हैं; इस विषय में तो पुनः पिष्टपेषण करना व्यर्थ है। परन्तु हरितालादिकों के योग से तालचन्द्रोदयादिकों में जितने गुण अधिक हो जाते हैं, उनका कुछ दिग्दर्शन लिखता हूँ कि जैसे हरिताल में जितने गुण हैं; उतने गुण तालचन्द्रोदय में अवश्य बढ़ जायंगे। अर्थात् हरिताल के योग से बना हुआ ताल-

चन्द्रोदय खुजली, कोढ़, रक्तजन्य दोष, विषजन्य दोष, सन्निपात व्याधि और बवासीर को नष्ट करता है। इसी प्रकार हरिताल के योग से बने हुए तालसिन्दूर, तालस्वर्णसिन्दूर और तालमकरध्वज भी पूर्वोक्त व्याधियों को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

स्निग्धोष्णवर्ण्यत्वविलेखनानि यच्छन्
नियच्छँश्च विषास्त्ररोगान् ।
श्वासाँश्च कासानपि भूतबाधां
चन्द्रोदयो जीवयते शिलाढ्यः ॥२॥

तद्वत् मैंनशिल के योग से बने हुए शिलाचन्द्रोदय, शिलामकरध्वज शिलास्वर्णसिन्दूर, और शिलासिन्दूर, के सेवन करने से शरीर में चिकनाई, उष्णता, कान्ति बढ़ती है। और शरीर का फूलना नष्ट हो जाता है। और विष-दोष, रक्त-विकार, श्वास, [दमा] कास [खाँसी] नष्ट हो जाते हैं। और रस, रक्तादि सभी धातु वृद्धावस्था में भी विकृत नहीं होतीं ॥ २ ॥

रसायनो वीर्यसुखे ददानो विना-
शयेद् वातकफाग्निसादान् ।
दोषत्रयं कुष्ठचलास्त्रगुल्म श्वास-
व्रणार्शोभगदारणानि ॥३॥
कण्डूदरव्याधिविनाशनैको
व्यवायितो रक्तकरो वहेत ।
योगानशेषाँश्च विषप्रभावाद्
विषाढ्यचन्द्रोदय आतुराणाम् ॥४॥

विष के योग से बने हुए चन्द्रोदयादि रस सेवन करने से वीर्यवृद्धि, सुख, रसादि धातुओं की उत्तमता दिनों दिन अधिक होते हैं। और वातव्याधि, मन्दाग्नि, सन्निपात, कोढ, वातरक्त, गुल्म, दमा, घाव, बवासीर, भगन्दर, पाण्डुरोग, उदर रोग, नष्ट हो जाते हैं। और यह चन्द्रोदय शरीर में शीघ्र व्याप्त होकर पचता है। व इसके

सेवन से शरीर में खून बढ़ता है। और उक्त गुणों के अलावे जिस योग के साथ में इसको सेवन करे तो वह योग भी शीघ्र फायदा करता है ॥ ३।४ ॥

एकाकिमल्लोऽपि कफप्रकोपं कोपं-
चलस्याऽपि निहन्ति तज्जान् ।
रुणद्धि रोगान्विरुणद्धि हेतून्,
वायोस्तुन स्याद्यदितान्निकारः ॥५॥

मल्लचन्द्रोदय के विषय में भी यह वक्तव्य है कि केवल मल्ल (संखिया) सेवन करने से कफ का प्रकोप, और वायु का प्रकोप नष्ट हो जाता है। और कफ व वायु के प्रकोप से होनहार रोग भी नहीं उत्पन्न होते। संखिया के सेवन में यह विशेष बात है कि वायु के प्रकोप करने वाले—"व्यायामादपतर्पणात् प्रपतनाद् भङ्गात् च्चयाज् जागरात् वेगानां च विधारणादतिशुचः शैत्यादतित्रासतः रूक्ष-क्षोभकषायतिक्त कटुकैरेभिः प्रकोपं व्रजेद् । वायुर्वारिधरागमे परिणते चान्ने पराह्णेऽपि च" इस न्याय से जो व्यायामादि हैं उनसे संखिया सेवी पुरुष बचता रहे। क्योंकि संखिया सेवन काल में व्यायाम करना विरुद्ध पड़ता है। परन्तु वायु के और विषाग्नि के शमन करने वाले घृतादि पदार्थ यदि सेवन करता रहे तो संखिया व्यायाम (कसरत) करने से भी कुछ नुकसान नहीं कर सकती ॥ ५ ॥

कफप्रतीपोऽपि निजप्रभावात्
पुष्टिं रतिं यच्छति सेवनेन ।
यदैष तद्युक्तरसस्तदोक्तान् गुणान्
ददातीति किमत्र चित्रम् ॥६॥

और संखिया कफ से विरुद्ध होने पर भी पुष्टि तथा मैथुन शक्ति को बढ़ाती है, यह इसका विलक्षण प्रभाव है। क्योंकि पुष्टि और मैथुन शक्ति कफ के गुण से जन्य है। इस लेख से जब यह बात स्थिर हो चुकी कि संखिया के इतने गुण हैं; तो इसके योग से बने

हुये मल्लचन्द्रोदय में उक्त गुणों का होना आश्चर्य कारक नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

मल्लोपसेवा उपशेरते वा नवेति
संशेरत एवलोकाः।
सर्वेऽपि तद्योगयुतस्तुसूतः
कस्याऽपि नैवापकरोति मन्ये ॥७॥

परन्तु संखिया में इतने गुण होने पर भी विष भक्षण दोष के कारण सभी बुद्धिमान् पुरुषों की यह शङ्का बनी रहती है कि संखिया का सेवन जाने माफकत आवे कि नहीं ? यदि माफकत नहीं आवे तो लाभ के बदले भारी नुकसान उठाना पड़े ? परन्तु इसके योग से यदि मल्लचन्द्रोदय बना लिया जाय, फिर उसको किसी भी मनुष्य को सेवन कराया जाय तो कभी नुकसान नहीं हो सकेगा यह विषय मेरा अनुभव किया हुआ है ॥ ७ ॥

यतस्तदीयाऽखिलदोषसङ्घाँल्लेढि
गन्धोऽखिलसात्म्यहेतुः।
तथा शिलाऽऽलऽमृतनिष्ठदोषा-
नशेषभावं वलिरानयेत ॥८॥

यहाँ पर यह भी शङ्का हो सकती है कि जब मल्ल (संखिया) का सेवन किसी २ पुरुष को नुकसानकारक भी देखा जाता है तो मल्लचन्द्रोदय में भी तो संखिया ही का योग है ? तब वह नुकसान क्यों नहीं करेगा ? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि संखिया में बहुत दोष रहते हैं; तथापि उसका मल्लचन्द्रोदय बनाने से उसके दोषों को गन्धक साफ चाट जाती है। इसलिये मल्लचन्द्रोदय सभी को माफकत पड़ जाता है। संखिया के दोषा की तरह मैनशिल, हरिताल, बछनाभ विष, इन तीनों के दोषों को भी गन्धक नष्ट कर देती है। अर्थात् जिस प्रकार पूर्वोक्त युक्ति से मल्लचन्द्रोदय किसी को नुकसानकारक नहीं होता, उसी प्रकार शिलाचन्द्रोदय, तालचन्द्रोदय, विषचन्द्रोदय, और

इसी इसी नाम वाले सिन्दूररस, स्वर्णसिन्दूर, मकरध्वज भी नुकसान कारक नहीं ठहर सकते ॥ ८ ॥

इत्थं गुणानामिह तारतम्य-
मूह्यंसहस्रेषु रसेषु तेषु ।
सर्वंतु सङ्ख्यातुमलं न पुंसा
शताऽतिसङ्ख्याऽऽदमितायुषाऽपि ॥९॥

इन्हीं चारों के दृष्टान्त से अन्य २ औषधियों के साथ बने हुए हजारों प्रकार के चन्द्रोदय, मकरध्वज, स्वर्णसिन्दूर, सिन्दूररसों में भी गुणों के तारतम्य की विद्वान् लोग कल्पना करलें । क्योंकि यदि सर्व चन्द्रोदयों के सर्व गुणों को कोई लिखने बैठे तो सौ वर्ष से अधिक काल पर्यन्त भी लिखते २ गुणों का पार नहीं पा सकता । इसलिये मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ मार्ग बतला दिया है । इतना मात्र भी अवलम्बन पाकर विद्वान् लोग अच्छी तरह सर्व रहस्य को समझ लेंगे ॥ ९ ॥

संग्रहसिन्दूर रसः (संघातसिन्दूर रसः)—

चन्द्रोदयादेः परिपक्वतायां स्फोटे
च कूप्याः प्रविकीर्णचूर्णम् ॥
काचेन मिश्रं न रुजार्दिताहं
प्रक्षेपणात्खिद्यति चापि चित्तम् ॥१॥
सिन्दूरनामाङ्कितचूर्णमेवं काचेन
मिश्रं परिशिष्यते चेत् ॥
पृथक् विधातुं यदि नैव शक्यं
ब्रवीम्युपायं परितोषहेतुम् ॥२॥

संग्रहसिन्दूर (संघातसिन्दूर) की विधि—

चन्द्रोदय आदि रसों की शीशियों को फोड़कर जब रस निकालते हैं, तब कितने ही रस के बारीक टुकड़े शीशियों के टुकड़ों में

मिल जाते हैं, जो कि रोगियों के देने योग्य भी नहीं हैं, (कांच मिली हुई दवा के खाने से आंतें कट जाती हैं) और फेंकने से भी हजारों रुपयों का नुकसान होता है, परन्तु क्या किया जाय ? वैद्य विचारों को हारकर फेंकना ही पड़ता है। इसलिये उसकी रक्षा का उपाय लिखता हूँ ॥ १।२ ॥

आदाय सर्वाणि सटङ्कणानि
भरेत कूप्यां समगन्धकानि ॥
सर्वार्थकर्यामथ कोष्ठिकायां
निधाय यन्त्रं परिपाकहेतोः ॥३॥
यामद्वयं तीव्रतरं च वह्निं
ददीत संधाय मनश्च तत्र ॥
स्वाङ्गे च शीते रसमाददीत
कूपीगले लग्नमभग्नशक्तिम् ॥४॥

कांच मिला हुआ चन्द्रोदय आदि का जितना चूर्ण संगृहीत है, उससे चतुर्थांश चौकिया सुहागा * और उसके बराबर शुद्ध गन्धक डालकर लोहे की खरल में खूब कूटकर कपरछन करले। इस रस मे काच मिला हुआ है इसलिये इसको पत्थर की खरल में कभी न घोटे नहीं तो खरल का सत्यानाश हो जायगा। उस चूर्ण को आतशीशीशी में भरकर सर्वार्थकरी भट्ठी पर रखकर दो पहर की आंच दे। स्वाङ्गशीतल होने पर गले में लगे हुए सिन्दूररस को निकाल ले ॥३।४॥

उत्थास्नुयावद्रसङ्ग्रहेण
संगृह्यतेऽयं ननु सङ्ग्रहादिः ॥
सिन्दूरनामा च रसो ज्वरादौ
दृष्टप्रभावो बहुशोऽनुभूतः ॥५॥

* चौकिया सुहागा डालने से रस में भूख लगाने की शक्ति हो जाती है। किसी वैद्य की मरजी न हो तो इसे नहीं भी डाल सकते हैं।

इसी प्रकार उड़ने वाली जितनी चीजों (पारा, हरिताल, संखिया, मैंनशिल, दालचिकना, रसकपूर, आदि) से बने हुए सिन्दूररस, चन्द्रोदय आदि रसों के संग्रह से यह सिन्दूररस संगृहीत किया है इस लिये इस रस का नाम, "संग्रहसिन्दूर" या "संघातसिन्दूर" रखा है, इसकी मात्रा एक रत्ती से दो रत्ती तक की है। इसको मात्रा ज्वर आदि रोगों में अच्छा काम करती है ॥ ५ ॥

रसकर्पूर विधिः—

रक्तेष्टकाचूर्णमथापि गैरिकं
स्फटी खटी सैन्धवपांशुजं पटु ।
वल्मीकमृत्कुम्भसुरञ्जनी मृदा
समं समं सर्वसमं च पारदम् ॥ १ ॥
दीर्घायते खल्वतले विमर्दयेद्दि-
नाष्टकं पुष्टनरेण तत्ततः ।
नान्दीद्वयीजे डमरौ तु यन्त्रके
निधाय मुद्रां च ददीतहादिनीम् ॥ २ ॥

रसकपूर की विधि—

लाल ईंट का चूर्ण (कपरछन किया हुआ), सोंनागेरू (नरमगेरू), फिटकरी (बिना भुजी), खड़ियामट्टी, सेंधानोंन, खारीनोंन, बमई (सर्पों के बिलों) की मट्टी,* वर्तन रंगने की मट्टी, ये आठों चीज छटाँक-छटाँक ले और सबके समान भाग (आठ छटांक) हिङ्गुल से निकाला हुआ पारद। ऊपर लिखी हुई आठों चीजों को कूटकर अलग अलग कपरछन कर वजन करे। इन नौ चीजों को लम्बे चौड़े खरल में आठ दिन तक बलवान् पुरुष से घुटवावे। बाद दो नाँद के बनाये हुए

* सर्पों के बिलों की मट्टी लेने का यह अभिप्राय है कि हवा खाने को सर्पगण अपने बिलों पर बैठकर मल, मूत्र, लार, बिष डाला करते हैं, उस मट्टी से पारद उत्तम गुणकारी होता है।

डमरूयन्त्र में रखकर यन्त्र के जोड़ पर वज्रमुद्रा करदे। (वज्रमुद्रा की विधि परिभाषा प्रकरण में देखो)। परन्तु यह स्मरण रहे कि पहले दोनों नादों को चिकने पत्थर पर पानी डालकर इस प्रकार घिसले, जिसमें दोनों नादों के मुख ऐसे मिल जाँय जिसमें कहीं पर सन्धि न रहे। नहीं तो सन्धि के द्वारा पारद उड़ जायगा और वज्रमुद्रा के ऊपर उक्त विधि के अनुसार सात कपरमट्टी भी करदे ॥१॥२॥

यन्त्रं प्रशुष्कं प्रदद्दीत वह्निं निधाय
तालादि विधातृ कोष्ठ्याम् ।
दिनानि चत्वारि निरन्तरेण
रात्रिन्दिवं च क्रमवर्द्धमानम् ॥ ३ ॥

जब यन्त्र धूप में खूब सूख जाय, तब उस यन्त्र को तालादि भस्म बनाने वाली भट्टी के ऊपर रखकर चार दिन तक रात दिन मन्द, मध्यम, तीव्र क्रम से निरन्तर आँच दे ॥३॥

स्वांगे शीतेऽत्र सञ्जाते चन्द्रवद्धवलं रसम् ।
रसकर्पूरकं नाम गृह्णीयान्नान्दिकोर्ध्वगम् ॥ ४ ॥

जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय तब डमरूयन्त्र की मुद्रा को खोल कर ऊपर की नांद के तलभाग में लगे हुए कपूर के समान सफेद वर्ण के रसकपूर को निकाल ले ॥४॥

कस्तूरिका चन्दनदेवपुष्पे
शाणाष्टकर्षप्रमितानि तानि ।
कर्षद्वयं केसरमाविमर्देन्माषेण
कर्पूररसेन सम्यक् ॥ ५ ॥

इस रसकपूर में से एक मासे लेकर और इसमें तीन मासे कस्तूरी, आठ तोला चन्दन का चूर्ण, आठ तोला लौंग, इन सबको खरल में डालकर घोटे। इसकी मात्रा इस अन्दाज से लेनी चाहिये जिसमें दो चावल से लेकर एक रत्ती तक (बलाबल देखकर) एक मात्रा में रसकपूर आ सके ॥५॥

रोगं निरस्येदुपदंशमुग्रं
सोपद्रवं जाठरमग्निमेषः।
करोति पुष्टिं बलवीर्यवृद्धिं
पद्वमुवर्जी रससेवकः स्यात्॥ ६॥

इसके सेवन करने से सहित उपद्रव के महाकठिन–साध्य उपदंश (गरमी) नष्ट हो जाता है और भूख खूब लगती है, तथा पुष्टि बलवृद्धि वीर्यवृद्धि भी इसके सेवन से होती है। परन्तु इस रस को सेवन करने वाले को चाहिये जबतक रस का सेवन करे तब तक नमक, खटाई न खाय। किन्तु दूध, माखन, मिश्री और मिष्ट पदार्थ जितने पच सकें खाया करे। और जबतक औषध सेवन करे तबतक ब्रह्मचर्य्य भी पाले।

विधिपूर्वक रसकपूर के नहीं बनने से मुख शोथ प्रभृति अनेक रोग हो जाते हैं। इसलिये इसके बनाने में ऊपर लिखी हुई विधि का अवश्य अवलम्बन करे।

कोई २ वैद्य रसकपूरादि ऊपर लिखे हुए चूर्ण को मलाई या शहत में दिया करते हैं; हमतो दूध के साथ दिया करते हैं॥६॥

रसकर्पूरस्य द्वितीयो विधिः—

सेटार्द्धसूतं पटु पांशुजातं
स्नुहीजदुग्धेन विमर्दयेत।
ताभ्यां समानेन प्रशोषणान्त
मुपर्य्यधः स्थापित सैन्धवं तत्॥ १॥

रसकपूर की दूसरी विधि—

आध सेर हिङ्गुलोत्थ पारद, आधसेर खारीनोंन, एक सेर सैंहुड़ (थूहड़) का दूध, तीनों को खरल में खूब घोटे। जब घोटते-घोटते बिलकुल सूख जाय; तब इस चूर्ण के ऊपर नीचे तीन २ चार २ अंगुल चूर्ण किया हुआ सेंधानोंन रखदे, अर्थात् सेंधेनोंन के बीच में रसकपूर के सामान का चूर्ण रखा जायगा॥१॥

वज्राभिधानां प्रददीत मुद्रां
यन्त्रेऽपि मृत्कर्पटकांश्च सम्यक् ।
ततश्च तीव्रातपशुष्कयन्त्रं दधीत
तालादिविधातृकोष्ठ्याम् ॥ २ ॥

इस डमरूयन्त्र की सन्धियों पर वज्रमुद्रा करदे, और वज्रमुद्रा के ऊपर सात कपरमट्टी भी करके सूर्य्य के तीव्र ताप में खूब सुखाले । इस यन्त्र को तालादिभस्मकरी भट्टी पर रखदे ॥२॥

रात्रिन्दिवं चात्र ददीत वह्निं
दिनानि चत्वार्यपि वर्द्धमानम् ।
शीतेऽत्र यन्त्रे त्वपनीय मुद्रां
हिमांशु शुभ्रं रसमाददीत ॥ ३ ॥

बाद चार दिन तक अहोरात्र मन्द मध्यमादि क्रम से अग्नि दे । जब यन्त्र स्वाङ्गशीतल हो जाय तब यन्त्र की मुद्रा को खोलकर डमरू· यन्त्र की ऊपर की नांद में लगे हुए रसकपूर को निकाल ले ॥३॥

द्वित्रैस्तु वारैर्यदि सूतचन्द्रं
सम्मर्दनोत्थापनदिव्यरूपम् ।
उक्तेन मार्गेण करोति वैद्यः
फलश्रुतिश्चास्य करस्थितास्ति ॥ ४ ॥

इस विधि से यदि दो तीन बार मर्दन करके और पाँच २ दिन की अग्नि देकर उड़ाले तो रसकपूर बहुत उत्तम बने। और जैसा इसका फल लिखा है, वह अविकल रूप से अवश्य प्राप्त हो ॥४॥

लवङ्ग चूर्णेन सहाऽत्ति मात्रा-
मेतस्य यः कोऽपि विषार्दितो ना ।
षाण्माससाम्वत्सरिकोऽपि रोगी
सुखी भवेदूर्ध्वविरेचनेन ॥ ५ ॥

इस रसकपूर की दो चावल से एक रत्ती परिमाण तक लौंग के चूर्ण के साथ में यदि मात्रा को शहत, माखन या मलाई किसी के साथ सेवन करे तो वमन के द्वारा छः महीने या वर्ष दिन तक का भी विषदोष (बछनाग, बीछू, सर्प, सिंह, बावला-कुत्ता, आदि स्थावर, जङ्गम कोई प्रकार का विष क्यों न हो) नष्ट हो जाता है और शरीर में बलवृद्धि होती है ॥५॥

रसकपूर के सिद्ध होने पर निर्मल रस को तो अलग निकाल ले, और नांद के खुरचन से या ईंट के चूर्ण वगैरह के ऊपर बिखरे हुए रस के संग्रह करने से जो मलिन रसकपूर मिले उसके समान गन्धक घोटकर कज्जली करले, बाद सिन्दूररस की विधि से इसका कपूरसिन्दूर बनाले। बाजार में दुकानदारों के यहाँ जो रसकपूर और दालचिकना मिलता है उनको भी नींबू के रस में दो दिन तक घोटकर द्विगुण गन्धक के योग से "कर्पूरसिन्दूर" तथा "कर्पूरकसिन्दूर" बनाले, इसी प्रकार अनेक युक्तियों से रस तैयार कर लेने चाहिए। वैद्य के यहाँ कोई चीज फेंकने काबिल नहीं है।

पारदमूर्च्छा माहात्म्यम्—

संक्षयात् पापराशीनामीश्वरानुग्रहादपि।
विधित्सा जायते नृणां शिवशुक्रस्य मूर्च्छने ॥ १ ॥

रसस्य मूर्च्छया जन्तून शेषान् नीरुजः कदा।
करिष्यामीति वाञ्छाऽपि विपाकः पुण्यसञ्चितैः॥२॥

॥ इति पारदमूर्च्छा प्रकरणम् ॥

अथ धातुशोधनमारण प्रकरणम्

ग्राह्यस्वर्णम्—

निष्टप्तं वह्निना स्वर्णं द्युतिं स्वीयां जहाति चेत् ॥
दुष्टमित्यवगन्तव्यं शुद्धमेतत्ततोऽन्यथा ॥ १ ॥

स्वर्ण ग्राह्य (लेना)—

सुवर्णभस्म बनाने में सबसे पहले सुवर्ण को अग्नि में तपाकर देखले । यदि स्वर्ण अपनी कान्ति को छोड़कर काला पड़जाय, तो जानले कि इस स्वर्ण में धात्वन्तर का योग (बट्टा) है । यदि अपनी कान्ति को न छोड़े, तो समझले यह सुवर्ण शुद्ध (खालिस) है ॥ १ ॥

श्यामिकाऽपहरणम्—

सुवर्णनिष्ठां समपानुनुत्सुश्चेच्छ्या-
मिकां वैद्यवरः प्रकुर्यात् ।
इमं प्रयोगं बहुशोऽनुभूतं
मयापि चान्यैरपि वृद्धवैद्यैः ॥ १ ॥

श्यामिका [बट्टा] निकालने की विधि—

जब अग्नि में तपाने से सुवर्ण की कान्ति मैली मालूम पड़े, तब जानले कि इसमें ताम्रादि धातुओं का योग (बट्टा) है । उस दोष की निवृत्ति के लिये नीचे लिखे हुए उपाय को करे। जिसका मैंने तथा अन्य वृद्ध वैद्यों ने कई बार परीक्षा करके अनुभव लिया है । यह दोष प्रायः भूषणों के सुवर्ण में हुआ करता है, और बटर तथा पन्ना एवं वर्क (जिसको अमीर लोग पान में देकर खाया करते हैं) इनके सुवर्ण में प्राय धात्वन्तर योग नहीं होता है, तथापि अग्नि में तपाकर परीक्षा कर लेनी आवश्यक है ॥१॥

पटुरक्तेष्टकाचूर्णे क्रमेण स्वर्णपत्रकम् ।
ऊर्द्धाधो गोमये धृत्वा सिञ्चेत्सार्षपबिन्दुभिः ॥२॥
सेटद्वयकरीषाग्निं दद्यान्निःश्वसनस्थले ।
पञ्चषाणि पुटान्येवं दद्याद् दोषापनुत्तये ॥ ३ ॥

रुचकलवण (साँभरनोंन) साँभरनोंन नहीं मिलने पर सैंधानोंन से भी काम चल सकता है, परन्तु साँभरनोंन बाजार में बहुत मिला करता है, और उसी के बराबर लाल ईंट का चूर्ण दोनों को कपड़छान करके एक बड़ा उपला [गोंयठा] पर चूर्ण को बिछाकर सुवर्ण पत्र रख दे, फिर चूर्ण रखे, इसी क्रम से सब सुवर्ण पत्रों को जमादे । ऊपर से एक उपला और रखदे । बगल में सरसों के तेल से तर करके ऊपर से चूर्ण लगादे, जिसमें सुवर्ण पत्र कहीं से दीख न पड़े । उस सम्पुट को निर्वात स्थान [जहाँ पर हवा न जाय ऐसा घर] में दो सेर उपलों के अन्दर रखकर अग्नि लगादे, स्वाङ्गशीतल होने पर देखले, यदि सम्पुट में किसी जगह कुछ लाली दीख पड़े तो जानना चाहिये कि अभी बट्टा नहीं निकला है, इसलिये पुनः अग्नि दे, स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट को खोलकर देखे, यदि स्वर्णपत्र काले निकलें तो फिर उसी प्रकार सम्पुट बनाकर अग्नि दे । इस प्रकार पाँच छः बार अग्नि देने से श्यामिका दोष (बट्टा) सब जल जायगा; और स्वर्ण प्रातः काल के सूर्य्य के समान चमकने लगेगा ॥२॥३॥

स्वर्णशुद्धिः—

तैलादिवर्गे प्रथमं विशोध्य पृथक्
पृथग् हेम च सप्तकृत्वः ।
ततो विशिष्टां गुणभूमदात्रीं
शुद्धिं चिकीर्षुः प्रथितेऽत्र वर्गे ॥ १ ॥
काञ्जीजलं निम्बुजलं च
तक्रं दुग्धंगवामित्यातितप्ततप्तम् ।
निर्वापयेद्धेम च सप्तकृत्वो
विशुद्धयति स्वर्णमिति प्रसिद्धम् ॥२॥

स्वर्ण शुद्धि—

स्वर्णादि सभी धातुओं की प्रथम सामान्य शुद्धि हुआ करती है, बाद विशिष्ट शुद्धि की जाती है, इस नियम के अनुसार सुवर्ण पत्रों को

प्रथम तिल का तेल, गौ का मठा, (गौ का मठा नहीं मिले तो भैंस के मठा से भी काम चल सकता है) गोमूत्र, कांजी, (कांजी बनाने की विधि परिभाषा प्रकरण में देखिये) कुलथी के बीजों का काढा (जिसकी दाल होती है) यदि कुलथी के बीज नहीं मिलें तो कुलथी का पञ्चाङ्ग (मूल, डाल, फूल, फल, पत्ती) के काढे से भी काम चल सकता है । इन पाँचों चीजों में सात-सात बार बुझाले, बाद गुण वृद्धि के लिये काँजी, नींबू का रस, मठा, गो दुग्ध, इन चार वस्तुओं में स्वर्ण पत्रों को अग्नि में तपा तपा कर सात सात बार बुझा लेने से विशेष शुद्धि हो जाती है, स्वर्ण में ताम्र के ऐसा बहुत दोष नहीं है, इसलिये सामान्य शुद्धि नहीं करके विशेष शुद्धि से भी काम चला लिया करते हैं । यह पक्ष भी बुरा नहीं है, क्योंकि "शुद्धस्य शोधनं गुणाधिक्याय, मृतस्य मारणं गुणाधिक्याय" एतन्मूलक ही दो शुद्धि की जाती है, नहीं काम तो एक शुद्धि से भी चल सकता है ॥१॥२॥

स्वर्णभस्म विधिः—

सुशुद्धसूते त्रिगुणेसुवर्णं विमर्द्य
कुर्य्यान्मृदुपिष्टिकां ज्ञः ।
कन्याद्रवै र्निम्बुरसेन चापि
सिन्धूद्भवेनापि पुनः कुमार्य्या ॥ १ ॥
तयोः समे शोधितगन्धकेच
दत्त्वा मसिं मर्दनयोगजाताम् ।
नैम्बूकनीरेण त्रिधा विभाव्य
कूप्यां भरेताथ पचेत यन्त्रे ॥ २ ॥
दिनद्वयं वालुकया प्रपूर्णे
शीतेस्वयं चाथ गलेविलग्नम् ।
स्वर्णादिसिन्दूरमथो तलेऽपि
स्वर्णस्य भस्मोत्तममाददीत ॥ ३ ॥

पुनः कुमारीस्वरसेन कृत्वा
भूतेश्च चक्रीरथ कुक्कुटाख्ये ।
पुटे पुटेन्मल्लपुटेन सम्यक्
स्वर्णस्य योगे विनियोजयेत ॥ ४ ॥

स्वर्णभस्म विधि—

चार तोले शुद्ध सुवर्ण, बारह तोले शुद्ध पारा, दोनों को पहले खूब घोट ले, जब पिट्ठी हो जाय तब घृतकुमारी का रस, नींबू का रस, व सैन्धव लवण, तीनों के साथ में उस पिट्ठी को खूब घोटे । दो दिन घोटने के बाद पानी से पिट्ठी को धो डाले, जब पिट्ठी खूब कोमल हो जाय तब फिर केवल घृतकुमारी के रस में दो दिन घोटे । इन चीजों में घोटने का यह अभिप्राय है कि "क्षारा मुखकरास्सर्वे सर्वे ह्यम्ला: प्रबोधका:" इस शास्त्र सिद्धान्त से सैन्धव लवण व नींबू का रस ये दोनों पारद में ग्रासार्थ मुख पैदा कर देते हैं, और घृतकुमारी का रस मालिन्य को दूर करता है । अन्त में घृतकुमारी के रस का योग दिया गया है, वह पारद के बचे हुए मल को निकाल कर पारद को एकदम साफ कर देता है । [इस बात को बहुत से अनुभवी लोग जानते हैं कि चाँदी बनाने के शौकीन मनुष्य पारद को एक महीना तक घृतकुमारी के रस में पहले घोट लिया करते हैं । पारद का बिना मालिन्य निकाले चाँदी भी मलिन होती है] फिर उस पिट्ठी के बराबर (१६ तोले) शुद्ध गन्धक घोटकर कज्जली बना ले; फिर तीन भावना नींबू के रस की देकर कपरौटी की हुई आतशीशीशी में कज्जली को भरकर सिन्दूररस की तरह बालुकायन्त्र में दो दिन तक पकावे, स्वाङ्गशीतल होने के बाद शीशी के गले पर लगे हुए स्वर्णसिन्दूर को निकाल कर रख ले, और शीशी के तलभाग में स्थित स्वर्णभस्म को घृतकुमारी के स्वरस में घोटकर टिकिया बना ले । बाद टिकिया सूख जाने पर शरावसम्पुट में रखकर कुक्कुटपुट (परिभाषा प्रकरण में देखिये) में फूंक दे । अनन्तर जहाँ स्वर्णभस्म देने की आवश्यकता हो वहाँ इसको दे सकते हैं ॥ १।२।३।४ ॥

कदापि भस्मन्यवभाति चान्द्री
सूतस्य योगेन पुनः पचेत ।
तथापि भायाद्यदि चन्द्रिकाभा
द्विस्त्रिः पुटेत्सोमलता कुमार्य्या ॥ ५ ॥

पर यह स्मरण रहे कि कुक्कुटपुट में देने के बाद भी यदि स्वर्णभस्म में सोने की चमक मालूम होती हो तो फिर भी पूर्ववत् पारद गन्धक के साथ घोटकर आतशीशीशी में रखकर सिन्दूर-रस की विधि से बालुकायन्त्र में दो दिन अग्नि दे। अनन्तर सुवर्णभस्म को निकाल कर देख ले, यदि फिर भी कुछ चमक मालूम होती हो तो घृतकुमारी व गिलोय के स्वरस के साथ घोटकर टिकिया बनाय सुखाय तथा शरावसम्पुट में रखकर दो तीन बार गजपुट में फूँकने से स्वर्णभस्म अवश्य निश्चन्द्र हो जायगी तब योगों में देना युक्त है। यों तो एक बार में ही स्वर्ण-सिन्दूररस के साथ ही साथ तैयार हुई भस्म योगों में देने से नुकसान नहीं कर सकता किन्तु फायदा ही करेगी; परन्तु निश्चन्द्र करने का उद्योग इसलिये किया गया है कि जिसमें गुण अधिक हो। वैद्यों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जिस धातु में पारद या शिंगरफ का योग देकर पाक करना हो, उसको गजपुट में नहीं दे क्योंकि ऐसा करने से पारद या शिंगरफ उड़ जायगा इसलिये उसको नलिकाडमरूयन्त्र में अथवा आतशीशीशी में भरकर पकाना चाहिये। यदि जहाँ पर पारद या हिङ्गुल का योग नहीं हो उस दवा को गजपुटादि पुटों में फूँकना अच्छा है ॥ ५ ॥

द्वितीय स्वर्णभस्म विधिः—

सेटोन्मितं स्वर्णमथापि सूतं
चतुर्गुणं तच्छनकैर्विमर्द्य ।
तथा यथेतस्तत उच्छलेन्न
पिष्टिप्रमाणेन समश्च गन्धम् ॥ १ ॥

सुवर्णभस्म की दूसरी विधि—

शुद्ध सुवर्ण पत्र एक सेर, हिङ्गुलोत्थ पारद चार सेर, दोनों को इस प्रकार धीरे-धीरे मर्दन करे कि जिससे पारद उछलकर इधर उधर गिरे नहीं। प्रथम स्वर्णभस्म विधि के अनुसार घृतकुमारी का स्वरस, नींबू का रस और सैन्धवलवण इन तीनों के साथ मर्दन करके पिट्ठी बना ले। फिर दो दिन घोटने के बाद केवल घृतकुमारी के रस के साथ दो दिन घोटकर पानी से पिट्ठी को ऐसी होशियारी के साथ धो डाले कि जिससे पारे का नुकसान न हो। और वैद्यों को दूसरे प्रयोग में भी यह स्मरण रहे कि जहाँ पर सुवर्ण व पारद की पिट्ठी की आवश्यकता हो वहाँपर उक्त तीनों चीजों में घोटकर पिट्ठी को स्वच्छ करले। फिर पिट्ठी के बराबर (पांच सेर) शुद्ध आमलासार गन्धक डालकर दो दिन तक मर्दन करे। यदि दश सेर पक्की कज्जली को एक खरल में घोटने में दिक्कत हो तो उसके चार पाँच हिस्सा करके घोटे ॥ १ ॥

स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्दयेत
सम्यग्विशुष्कां खलु कज्जलीं ताम्।
यन्त्रे द्वयोर्नान्दिकयोः कृते च
खट्वाङ्गसंज्ञे नलिकायुतेऽपि, ॥ २ ॥

बाद उस कज्जली में थूहर व मंदार के दूध की तीन भावना दे। जब कज्जली बिलकुल सूख जाय तब उसको रख छोड़े। फिर दो मट्टी की नादों का डमरूयन्त्र बनावे। परन्तु डमरूयन्त्र की ऊपर वाली नाँद में इतना बड़ा छिद्र करदे जिसमें अठन्नी घुस सके, उसमें एक बिलांद लम्बी लोहे की नली घुसा दे, नली घुसाने का यह अभिप्राय है कि गन्धक का धूआं नली के द्वारा निकलता रहे, जिससे यन्त्र फूटे नहीं और पारद का सुवर्ण-सिन्दूररस बनकर नली के चारों ओर जा लगे, यदि नली नहीं लगाते और धूआं निकलने के लिये केवल नान्दी में छिद्र बना देते, तो पारा भी धूआं के साथ ही साथ निकल कर उड़ जाता और सुवर्ण-सिन्दूररस नहीं बनता ॥ २ ॥

रसस्यरोधाय भरेद्ददीत
नान्द्योर्मुखे नालिमुखे च मुद्राम्।
निर्यासतूले ननु लोहभस्म
मृत्स्नेति च द्रव्यचतुष्टयस्य ॥ ३ ॥

दोनों नांदों को साफ पत्थर के ऊपर पानी डाल कर इस प्रकार धीरे धीरे घसे, जिसमें नांद नहीं फूटे, और दोनों का मुँह ठीक मिल जाय [कहीं दर्ज नहीं रहे] फिर दोनों नांदों पर सात सात कपरौटी करके सुखाले। बाद जिस नांद में छिद्र नहीं किया है उस नांद में दस सेर पक्की कज्जली को भरकर दोनों नांदों का मुख मिलाले, पश्चात् रुई, पीपल का गोंद, लोह की भस्म, चिकनी मट्टी इन चारों चीजों को पानी के योग से दो दिन तक कूटकर कल्क बनाले, फिर इसी कल्क से दोनों नांदों के मुख पर व नली के मुख पर मुद्रा करदे, और उस मुद्रा के ऊपर सात कपरौटी करके सुखाले ॥ ३ ॥

पचेदहर्युग्ममथोग्रवह्नि-
र्योगोन्दवस्त्रे प्रददीत यन्त्रे, ।
रसस्य पाकाय च रोधनाया-
तीते च यामे विरमेत्क्रियातः ॥ ४ ॥

फिर उस नलिकाडमरूयन्त्र को भट्ठी पर रखकर दो दिन तक मन्द, मध्यम व तीव्राग्नि क्रम से दे। परन्तु दो दिन के बाद नली द्वारा लोहशलाका डालकर देख ले, यदि शलाका में गन्धक लपटी हुई निकले तो एक दिन अग्नि और दे। जब गन्धक जीर्ण हो जाय तब एक पहर खूब तीव्रतम अग्नि दे, जिससे अवशिष्ट गन्धक भी जल जाय, और पारद का भी सुवर्ण-सिन्दूररस बनकर नली के अगल बगल में लग जाय ॥ ४ ॥

स्वाङ्गे शीते च सञ्जाते नान्दिकोर्द्धतलं गतः।
स्वर्णसिन्दूरनामायं स्वर्णभस्माप्यधस्तले ॥ ५ ॥

स्वाङ्गशीतल होने पर चाकू से मुद्रा को खुरच कर यन्त्र को खोल ले। ऊपर की नांद में स्वर्णसिन्दूर मिलेगा और नीचे की नांद में सुवर्णभस्म मिलेगी। यह स्वर्णसिन्दूर वैसा चमकदार नहीं होता है जैसा शीशी में बनता है, तौभी रससिन्दूर से कहीं अधिक गुणकारी होता है ॥ ५ ॥

अर्कस्नुहीगन्धकयोगजातं
शतं पुटं चेत्प्रददीत वैद्यः।
शास्त्रोक्तसिद्धिर्निखिलापि हस्ते
वर्वर्त्ति रोगप्रवरेषु स्वस्य ॥ ६ ॥

यदि इसको भी खूब चमकदार बनाना हो तो इसमें द्विगुण गन्धक और डालकर वटजटाप्ररोह [बरोह] के क्वाथ की तीन भावना देकर आतशीशीशी में भरकर रससिन्दूर विधि से स्वर्णसिन्दूर तैयार कर ले। और नीचे की नांद में जो एक सेर सुवर्ण भस्म तैयार हुई है, उसमें गन्धक छटांक भर, थूहर का दूध छटांक भर, मंदार का दूध आध पाव इन तीनों चीजों के साथ घोटकर तथा घृतकुमारी के रस के योग से टिकिया बनाकर, खूब सुखा ले तब गजपुट में फूँक दे। यदि थूहर व मंदार का दूध पूरा मिल सके तो घृतकुमारी का रस डालने की कोई आवश्यकता नहीं, उन्हीं दूधों के योग से टिकिया बन जायगी। इस प्रकार जहां तक हो सके सौ पुट तक दे। यदि सौ पुट नहीं दे सके तो १०, १५, २० अर्थात् जितने अधिक पुट दिये जांय उतना ही अच्छा गुण होगा। इस भस्म को जिस योग में देंगे वह तत्काल फायदा करेगा। यदि थूहर व मंदार का दूध पर्य्याप्त नहीं मिल सके तो मंदार के पत्तों के स्वरस और थूहर के डण्डों के स्वरस से भी काम चल सकता है। यदि समय पर ये भी नहीं मिल सकें तो घृतकुमारी का रस व गुरुच का स्वरस व गन्धक इन तीन चीजों की भावना देकर सौ पुट पूरा कर ले। यदि इनके योग से भी १०० पुट पूरे नहीं कर सके तो २० पुट तो अवश्य पूरे करे। बाद गन्धक का योग नहीं देकर, केवल घृतकुमारी और गुरुच [गिलोय] के रस में

ही तीन भावना देकर टिकिया बनाले। बाद सुखाकर गजपुट में फूँक दे। इस प्रकार से बनी हुई सुवर्णभस्म के बल से राजयक्ष्मादि बड़े बड़े रोगों में वैद्य लोग सिद्धहस्त हो सकते हैं ॥ ६ ॥

तृतीय स्वर्णभस्म प्रकारः—

इक्षोररिष्टेन दृढं प्रलिम्पेत्
कङ्कुष्ठचूर्णेन च मृच्छरावम् ॥
सुवर्णलोष्ठीश्च निधाय मध्ये
पिधाय चान्येन च तस्य वक्त्रम् ॥१॥

वनोपलानां युगसेटकानां
दद्यीत वह्निं पुनरित्थमेव ॥
यावत्पुटानान्तु शतं प्रमाणं
भवेत् सुवर्णस्य निरुत्थभस्म ॥
निष्काक्षराणाञ्च न मार्जनं स्यात्
स्पर्शस्य काठिन्यमपि प्रजह्यात् ॥२॥

सुवर्णभस्म का तीसरा प्रकार—

जिस पुरवे (कूल्हा) में आध पाव (दश तोला) दूध आ जाय ऐसे सौ पुरवा मँगाकर रख ले, एक पुरवा के अन्दर ईख के सिरका को पोत दे, बाद उसी समय, मुर्दाशंख के कपरछन किये हुए एक मासे चूर्ण को भी सिरका के ऊपर चारों तरफ लपेट दे। उस पुरवा के अन्दर तल में एक एक तोले सोने की डली (शुद्ध की हुई) रख दे उस पुरवे के मुख को दूसरे सकोरा से ढँक दे। फिर दो सेर उपला के बीच में रखकर फूँक दे। ठँडे हो जाने पर धीरे से सुवर्ण की डली को निकाल कर पहिले के तरह दूसरे परवा में रख के

सिरका और मुर्दाशंख के चूर्ण को लीपकर उसी सुवर्ण की डली को रख दे, और पुरवा को ढाँककर दो सेर उपला की आँच दे। ऐसे सौ पुट देने से सुवर्ण की निरुत्थ भस्म भूरे रङ्ग की बनेगी। परन्तु यह स्मरण रहे कि जब सुवर्ण की डली को पुरवा से निकाले, तब बड़ी होशियारी के साथ डली को उठावे, धरती में गिर जायगी तो जितना सुवर्णभस्म हो गया होगा उतना ही गिर जायगा इसी प्रकार यदि अशरफी की भस्म बनाई जाय तो अशरफी को शुद्ध करके पूर्वोक्त विधि से सौ पुट देने से अशरफी के अक्षर भी न बिगड़ेगें और कोमल भी ऐसी हो जायगी कि चोंहोंटी से मलने पर मिस जायगी। यह भस्म मित्रपञ्चक से जिलाने पर जी नहीं सकती।

बहुत वैद्यों का यह कथन है कि, मुर्दाशंख में सीसे का भाग रहता है तो सीसे से मारा हुआ सोना उत्तम गुण नहीं करता; क्योंकि "अरिलोहेन लोहानां मारणं दुर्गुणप्रदम्" अर्थात् दूसरी धातु से मारी हुई धातु गुण के बदले अवगुण पैदा करती है। इस शङ्का का उत्तर यह है कि, यह तो मैं भी मानता हूँ कि जैसी भस्म पारद गन्धक के योग से उत्तम बनती है वैसी धातु के योग से यद्यपि नहीं बनती; तौ भी "गुण के बदले अवगुण करती है" यह बात माननीय नहीं हो सकती। देखिये ? शार्ङ्गधर आदि अनेक शास्त्रों में सीसे के योग से सुवर्णभस्म विधि लिखी है, और उस रीति से सुवर्णभस्म बनाकर योग में डालते हैं तो गुण भी करती है। इसलिये "अरिलोहेन लोहानां दुर्गुणप्रदम्" इस वचन का यह आशय है कि मारक धातु के योग से बनी हुई धातु की भस्म पारद गन्धक की कज्जली की अपेक्षा अल्प गुण करती है। परन्तु इस हमारी भस्म विधि में तो मुर्दाशंख का सम्बन्ध मात्र है कुछ सोने के साथ घोटा तो गया नहीं है। और उसमें यह भी अंश शोधनीय है कि मुर्दाशंख में सीसे का अंश रहता है, और वह कितना है ? शास्त्रकारों ने तो सुवर्ण को सीसे में घोटकर भस्म विधि लिखी है, और गुण भी लिखा है व वैसा ही होता भी है। जो हो ! हम अपना अनुभव लिख रहे हैं, विद्वान् लोग युक्तायुक्त का निर्णय कर लें ॥ १ ॥ २ ॥

चतुर्थ सुवर्णभस्म प्रकारो रजतभस्म प्रकारश्च–

पलेन सूतेन तदर्धहेम
प्रमर्द्य कुर्वीत दिनद्वयेन, ।
पिष्टिं ततो गन्धकमल्लयुग्मं
सूतेन तुल्यं परिमर्दयेत ॥१॥
पचेत यन्त्रेऽनु च बालुकाख्ये
गले विलग्नं रस-माददीत ।
तले विलग्नं च सुवर्णभस्म
तारोऽप्यनेनैवपथा सुसिध्येत् ॥२॥

सुवर्णभस्म का चौथा प्रकार-और चांदी की भस्म विधि—

चार तोले शुद्ध पारा, दो तोले शुद्ध सोने के पत्र, दोनों को दो दिन तक घोटकर पिट्ठी बनाले। फिर चार तोले शुद्ध गन्धक और चार तोले शुद्ध सफेद संखिया विष, इन दोनों को डालकर दो पहर मर्दन करके कज्जली करे। सब चौदह तोले कज्जली को शीशी में रख कर बालुकायन्त्र में पकावे। परन्तु यह स्मरण रहे कि इस संखिया के धूँआ से बचता रहे, इसका संपर्क शरीर के साथ होने से नुकसानकारी है स्वाङ्गशीतल होने पर गले में लगे हुए मल्लसिन्दूर को निकाल ले, और शीशी के तलभाग में लगी हुई सुवर्णभस्म को भी

[illegible] सुवर्ण [illegible] स [illegible]

लिये शीतज्वर या कफजन्य व्याधि में या वातव्याधि में तो बहुत गुणकारी होगा, परन्तु पित्तजन्य व्याधि में अथवा नीरोग पुरुष के बल बढ़ाने के लिये देनी हो तो इस भस्म को शीशी में भरकर एक महीना तक केला की जड़ में गाड़ दे, अथवा धनियाँ और इसबगोल में गाड़कर पानी भर दे, एक महीने के बाद निकाले।

इसी प्रकार चांदी की भस्म भी बनती है। अर्थात् पांच तोले चाँदी को गलाकर पांच तोले पारद छोड़दे दोनों की पिट्ठी हो जायगी। इस पिट्ठी को दो पहर घोटकर पांच तोले गन्धक

और पांच तोले संखिया डालकर फिर दो पहर घोटे। उस कज्जली को शीशी में भर कर बालुकायन्त्र में मल्लसिन्दूर की विधि से पकाले, तो फिर वही बात, कि "गले विलग्नं रसपाददीत तले विलग्नं रजतस्य भस्म" अर्थात् गले पर मल्लसिन्दूर मिलेगा, और शीशी के तलभाग में चांदी की भस्म मिलेगी ॥ १ ॥ २ ॥

सर्वधातु-भस्म प्रकारः—

रीत्यानया वैद्यवरः प्रकुर्या-
द्रीत्यास्तथा ताम्रमुखस्य धातोः ।
मनः शिलालस्य च योगतोऽपि
कृत्वा मासिं कूप्युदरे च भृत्वा ॥
सर्वस्य धातोस्तलपाति भस्म
कुर्वीत सूतं गलपातिनश्च ॥१॥

सब धातुओं की भस्म का प्रकार—

सुनिये ! एक बात और याद आ गई है। लगे हाथ उसको भी निबटा देता हूँ, जिस प्रकार चाँदी, सोने की भस्म संखिया के योग से लिख चुका हूँ उसी प्रकार मैंनशिल और हरिताल के योग से भी सभी धातुओं (पीतल, ताँबा, काँसी, चाँदी, लोहा, सोना, बंग, सीसा) की भस्म बनती है, और शीशी के गले पर रस भी साथ ही साथ तैयार हो जाता है। अर्थात् जिस धातु की भस्म बनानी हो उस धातु के समान समान पारद गन्धक डाल कर पारद के समान शुद्ध हरिताल को भी उसी कज्जली में घोट दे, फिर सब कज्जली को शीशी में भर कर बालुकायन्त्र से मल्लसिन्दूर की तरह पकावे तो शीशी के गले पर तालसिन्दूर मिलेगा, और शीशी के तल भाग में धातु की परम विशुद्ध भस्म मिलेगी। और यदि उस कज्जली में मैंनशिल घोटकर उक्त बालुकायन्त्र में पकावेंगे तो शीशी के गले पर शिलासिन्दूर मिलेगा, और शीशी के तल भाग में धातु भस्म मिलेगी।

और यदि उस कज्जली में संखिया घोट कर पकावेंगे तो शीशी के गले पर मल्लसिन्दूर मिलेगा, और शीशी के तल भाग में धातु भस्म मिलेगी। परन्तु इतनी बात यहाँ विशेष जान लेना चाहिये कि, सुवर्णभस्म बनानी हो तो शुद्ध सुवर्ण के पत्रों को पारद में घोट कर गन्धक मिलाकर कज्जली कर ले, बाद शुद्ध की हुई हरिताल, संखिया, मैंनशिल को कपरछन करके कज्जली में घोटे; तब शीशी में भरे। और यदि चाँदी, सीसा, रांगा, जस्ता की भस्म करनी हो तो इनमें से किसी को गला कर उस द्रुति में पारा छोड़ दे। फिर दो पहर घोट कर गन्धक डाल कर कज्जली करे, बाद हरिताल आदि के चूर्ण को डाल कर घोटे, और पकावे। और यदि पीतल, तांबा, कांसी की भस्म करनी हो तो इन तीनों को प्रथम हमारी कही हुई विधि के अनुसार पृथक् पृथक् शुद्धि करले। बाद जौ के समान छोटे छोटे टुकड़े करके पारद के साथ नींबू का रस और सैन्धव लवण डाल कर दिन भर घोटे। पीछे धीरे २ पानी से उसे धोकर (जिसमें नींबू का रस और नमक तो निकल जाय और पारा न बह सके) दूसरा नींबू का रस और सेंधानमक डालकर रात्रि भर रखदे। फिर प्रातःकाल से कम से कम दो पहर घोटे। इस प्रकार तीन दिन करने के बाद गन्धक डाल कर कज्जली करे। फिर संखिया आदि का चूर्ण उसमें घोटकर पकावे। और यदि लोहभस्म करनी हो तो लोह के चूर्ण को मेरी लिखी हुई विधि के अनुसार शुद्ध करके कपरछन करले बाद पारद गन्धक की कज्जली में लोह चूर्ण और संखिया आदि के चूर्ण को मिलाकर घोटकर पकावे ॥ १ ॥

ये सब विधि अशेष-विशेष रूप से किसी ग्रन्थ में नहीं मिलेगी। मैंने स्वयं अनुभूत करके वैद्यों की सेवा में अर्पण की हैं, और आप लोग भी जब इन्हीं का अनुभव करेंगे तब स्पष्ट हो जायगा

सुवर्णरसायनम्—

सौवर्ण भस्मद्विगुणो मृगाङ्कस्तत्पादचन्द्रोदयहेमगर्भौ।
कस्तूरिका-ग्राहमदौ रसार्द्धौ कर्पूरसारश्च रसेन्द्रतुल्यः १

सुवर्णरसायन विधि—

यद्यपि सुवर्णरसायन विधि इस प्रकार शास्त्रों में नहीं मिलती है तथापि मैं अपने अनुभवानुसार लिखता हूँ। सुवर्णभस्म एक तोला, मस्कमृगाङ्क (बङ्ग की सुनहरी भस्म) दो तोला, चन्द्रोदय (षड्गुण गन्धकजारित) छः मासे, सुवर्णगर्भपोटली छः मासे, (इनकी विधि आगे लिखूंगा) कस्तूरी तीन मासे, ग्राहमद (अम्बर)❀ तीन मासे और भीमसेनी कपूर छः मासे, इन सात चीजों को खूब घोटकर बारीक कर ले ॥१॥

जो चन्द्रोदय नहीं प्राप्त हो सके तो उसके स्थान में षड्गुण गन्धकजारित-सुवर्णसिन्दूर ही डाले। अगर यह भी प्राप्त नहीं हो सके तो षड्गुण गन्धकजारित-रससिन्दूर तो अवश्य ही डाले।

चतुर्गुणं चाग्रिमवस्तुजातं चन्द्रप्रभैलामधुयष्टिरुग्रा।
द्राक्षाऽमृता वंशविधुर्लवङ्गं कटुत्रयं चाऽथ वरा समांशाः २

बाद आगे लिखी हुई इन चीजों को भी कूट कपरछन करके मिला दे। बावची, छोटी इलायची के दाने, मुलहठी, बच, दाख, गुरुच, बंशलोचन, लोंग, त्रिकटु, (सोंठ, मिरच, पोपल) त्रिफला, इन चौदह चीजों, को समान समान भाग कूट कपरछन करके उक्त सातों चीजों से चतुर्गुण ले। अर्थात् सुवर्णभस्मादि सात चीजों का परिमाण साढ़े चार तोले रखा गया है; इस लिये इन चौदह चीजों का परिमाण अठारह तोले होना चाहिये ॥२॥

❀ मकरमत्स्य जब यौवन से मस्त होता है तब जल से बाहर आकर किनारे पर अपने मुख द्वारा मद के फेनों को पृथ्वी पर डाल देता है, जब वे फेन सूख जाते हैं उसी को अम्बर कहा करते हैं। बम्बई, कलकत्ता आदि अनेक शहरों में बिकता है इसमें भी जो सफेद वर्ण वाला और जिसके ऊपर मोती के ऐसे दाने छोटे २ दीख पड़ें वह अम्बर उत्तम होता है। जो ग्राह एक दो सन्तति पैदा करने के बाद मस्ती में आकर झागों को उगलता है, अथवा जो मकर स्त्री जाती है उसका झाग समुद्रों के किनारे पर सूखा हुआ मिलता है वह न्यून गुणकारी और मलिन वर्ण का होता है।

वातामबीजं तु समस्ततुल्यं सन्तानिकायां सिकतायुतायाम्
लिह्यादथो वा नवनीतनीतं क्षौद्रेऽथवा स्वर्णरसायनं चेत् ।३।

छिलका दूर करके बादाम की सफेद मींगी सब चीजों के समान भाग (साढ़े बाईस तोले) ले । बादाम गिरी से छिलका उतारने की यह रीति है कि बादाम की गिरियों को गरम जल में एक घण्टे या ठंडे जल में दो घण्टे भिगो देने से लाल छिलका दूर हो जाता है अन्दर की सफेद गिरी निकल आती है । इन बाईस चीजों को खूब घोटकर किसी काच के पात्र में ढक्कन लगाकर रख छोड़ो । इसमें से चार रत्ती से दो मासे तक बलाबल देखकर मलाई मिश्री के साथ, या मांखन मिश्री के साथ, या शहत के साथ प्रातःकाल खाया करे ॥३॥

रसादिधातुस्थविकारजाताः शमं व्रजन्त्येव च दीर्घमायुः ।
भवेज्जरा चाऽस्य न लब्धपादा संसेवमानस्य रसायनं नुः ४

इस सुवर्णरसायन के सेवन करने से रस रक्त मांसादि शुक्र पर्यन्त सभी धातुओं के विकार नष्ट हो जाते हैं । और पूर्णायुः प्राप्त होगी । यदि इस रसायन का मनुष्य सदा सेवन किया करे तो वृद्धावस्था के पैर नहीं जम सकते । ॥४॥

सुवर्ण गुणाः—

शीतं स्वर्णसमानकान्तिकरणं बल्यं च शुक्रप्रदं
निश्शेषाऽऽमयनाशनं क्षयहरं वार्द्धक्यनिर्मूलनम् ।
चक्षुष्यं वमिमेहकासहरणं पित्तास्ररोगाञ् जयेद्
वृष्यं मेध्यमपस्मृतिक्षयकरं सौवर्णभस्माऽमृतम् ॥१॥

सुवर्णभस्म के गुण—

सुवर्णभस्म ठंढी है, सोने के समान कान्ति बढ़ाने वाली है, बलकारक है, शुक्र को बढ़ाती है । क्षयरोग, वृद्धाऽवस्था, वमन, प्रमेह, श्वास, कास, पित्तरोग, रक्तरोग, अपस्मार, (मिर्गी) को नाश करती है । नेत्र की ज्योति को बढ़ाती है, पुष्टिकारक है, और सम्पूर्ण रोगों

को नाश करती है, अधिक क्या कहें ? मनुष्यों को अमृत के समान गुणकारक है ॥ १ ॥

स्वर्णभस्मानुपानम्—

दाहध्वंसि सितायुतं च ददते भृङ्गेण दुग्धेन तु
वृष्यत्वं प्रबलं बलं हितकरं नेत्राय वर्षाजया।
कान्तिं यच्छति केसरेण वचया बुद्धिप्रदं हैमने,
भस्माऽऽज्येन रसायनं हितकरं मातुःपयोवन् नृणाम्।१।

स्वर्णभस्म के अनुपान—

मिश्री के साथ सुवर्णभस्म को खाने से शरीर का दाह नष्ट हो जाता है, और भृङ्गराज (भांगरे के स्वरस) के साथ चाटने से शरीर पुष्ट होता है, दूध के साथ सेवन करने से शरीर में बहुत बल बढ़ता है, पुनर्नवा (गधपूरणा-सांठी) के साथ सेवन करने से नेत्र के समस्त रोगों को दूर करके ज्योति बढ़ाती है, केसर के साथ सेवन करने से बुद्धि प्रदान करती है, घी के साथ चाटने से रसायन है, (रसादिक सब धातुओं के विकारों को नष्ट करके पुष्ट करती है) माता के दूध के समान सब मनुष्यों को हितकारक है ॥ १ ॥

दुष्ट स्वर्णभस्म विकारशान्तिः—

नाऽपाकृत्य विनिर्मितं गिरिभवां दुष्टिं तथा श्यामिकां
दुष्टं हैमनभस्म खादति नरश्चेत्तस्य वीर्यं बलम् ।
ह्रासं यात इति प्रणश्यति सुखं पुष्यन्ति रोगव्रजाः
तद्दोषाऽपनुनुत्सया त्रिदिवसीं सेवेत धात्रीं मधु ॥१॥

सुवर्णभस्म के दोषों की शान्ति—

जो बेशहूर मनुष्य गिरि (खांन) के दोषों को दूर करने के लिये तैलादि वर्ग में सुवर्ण की शुद्धि नहीं करके, तथा श्यामिका (बट्टे) को भी हमारी लिखी हुई विधि के अनुसार नष्ट न करके, सुवर्णभस्म

बना बैठते हैं; उस दूषित सुवर्ण के सेवन करने से हमेशा बेचैनी रहती है, और अनेक-रोग शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं । यदि ऐसी दूषित भस्म कोई खा बैठा हो तो वह मनुष्य आमले के चूर्ण को शहत के साथ तीन दिन तक दो दो तोले रोज चाटे तो सुवर्णभस्म के सर्व विकार नष्ट हो जांय ॥ १ ॥

दूषित स्वर्णभस्म शुद्धिकरणम्—

धात्रिकामधुनोर्दत्त्वा भावनां सप्तधा पुटेत् ।
स्वर्णभस्म ततो जग्धं नो विकाराय कल्पते ॥१॥

दूषित स्वर्णभस्म की शुद्धि—

जो वैद्य भूल से सुवर्ण की शुद्धि विधि पूर्वक नहीं करके सुवर्ण की भस्म बना बैठा हो तो उसकी शुद्धि इस प्रकार करे कि आंमले के चूर्ण और शहत के साथ सुवर्णभस्म में भावना दे दे कर सात बार बराहपुट में फूँक दे तो वह सुवर्णभस्म खाने से कोई विकार नहीं करेगी । अर्थात् तैलादि वर्ग में शुद्धि करने से सुवर्णभस्म में जो गुण प्राप्त होता है वह गुण तो दुर्लभ है किन्तु सुवर्णभस्म का दोष दूर हो जायगा ॥ १ ॥

इति सुवर्णभस्म विधिः ।

रजत शुद्धि विधिः—

तैलादिवर्गे कृतशुद्धि तारं
द्राक्षाम्लिकागस्त्यभवाम्बुमध्ये ।
निष्टप्य निष्टप्य च सप्तकृत्वो
निर्वापयेच्छुद्धिविशेषहेतोः ॥ १ ॥

चांदी की शुद्धि—

जिस चांदी के आजकल भूषण बना करते हैं, (जो बहुत सफेद, मुलायम, और हथौड़े की चोट से नहीं टूटने वाली) वही चांदी दवा

के काम में ली जाती है। जैसा कि शास्त्रकारों ने कहा है कि "घनं स्वच्छं मृदु स्निग्धं दाहे छेदे सितं गुरु। शङ्खाभं मसृणं स्फोटरहितं रजतं शुभम्" अर्थात् चांदी वही उत्तम होती है जो तौल में भारी, और सफेद, व मोड़ने से मुड़ जाय, हाथ फेरने से बहुत चिकनी मालूम हो, और तपाने पर, या टांकी लगाने से भी, सफेद ही रहे, और वजन में भी हलकी न पड़े, और शंख की तरह चिकनी रहे, चोट से फटे नहीं। आजकल इस चांदी को ईंट की चांदी कहते हैं।

जैसे सभी धातुओं की सामान्य शुद्धि शास्त्रकारों ने लिखी है कि—"तैले तक्रे गवांमूत्रे कांजिके च कुलत्थके" अर्थात् तिल का तेल अथवा सरसों का तेल, गौ अथवा भैंस का मट्ठा, गोमूत्र, कांजी, कुलथी के अन्न का काढ़ा, इन पांच चीजों में सात सात बार बुझाने से सब धातुओं की सामान्य शुद्धि होती है इसी नियम के अनुसार चांदी की भी उक्त पांचों चीजों में सामान्य शुद्धि कर ले। बाद दाख का काढ़ा, और इमली के पत्तों अथवा छाल का काढ़ा, और अगस्तिया के पञ्चाङ्ग (फल, फूल, पत्ता, छाल, जड़) का काढ़ा, जुदा जुदा करके प्रत्येक काढ़े में चांदी के पत्रों को सात सात बार बुझाने से चांदी की विशेष शुद्धि हो जाती है। यद्यपि चांदी में तांबा, कांसा, पीतल के समान दोष नहीं है इस लिये कितने ही वैद्य चांदी की सामान्य शुद्धि कर लेते हैं; विशेष शुद्धि नहीं करते। और कितने ही वैद्य तो विशिष्ट शुद्धि मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं। तथापि "शुद्धस्य शोधनं गुणाधिक्याय" इस न्याय से सामान्य व विशेष दोनों शुद्धि करने से धातु में अधिक गुण होता है ॥ १ ॥

रजतमारणम्—

निम्बूद्रवेऽम्बुन्यवपात्य तारं त्रिषाष्टिवारान् परितप्ततप्तम्।
जातश्चजातं भसितं द्वितीये पात्रे निदध्यात्परिवापसंख्याः १
समाप्नुवन्तीत्यथ सर्वभस्म तदम्बुयोगात् परिमर्द्य चक्रीः ;।
करोत्वथो सम्पुटगाश्च सर्वा वाराहसंज्ञे च पुटे पुटेत्ताः ॥२॥

चांदी की भस्म करने की विधि—

चांदी के पत्रों को अग्नि में तपा तपा कर नींबू के रस में तरेसठ बार बुझावे, ज्यों ज्यों भस्म होती जाय, त्यों त्यों उस भस्म को निकाल निकाल कर दूसरे पात्र में रखता जाय । ६३ बार ऐसा करने से सब चांदी के पत्रों की भस्म हो जायगी । परन्तु यह स्मरण रहे कि चांदी के पत्रों को आंच में रखनेमें और उससे उठानेमें भस्म खिर खिर (झर झर) के गिरती रहती है इसलिये किसी मट्टी के शराव में रखकर तपावे । फिर सब भस्म को इकट्ठी करके नींबू के रस में घोटकर टिकिया बनाले जब टिकिया खूब सूख जाय तब सम्पुट में भरकर मुद्रा करके बराहपुट में फूंकदे, बहुत उत्तम सफेद भस्म बनेगी ॥ १ ॥ २ ॥

रजतभस्मनो द्वितीयः प्रकारः—

ताम्रस्य भस्मार्थमपि प्रकारा
अतोऽग्रतो ये परिवक्ष्यमाणाः ।
सर्वेऽपितेऽत्राप्युपयुज्यमानादृष्टाः
सदाऽव्यर्थतया मयाऽऽर्याः ॥ १ ॥

चांदी के भस्म का दूसरा प्रकार—

ताम्बे की भस्म बनाने के लिये जितने प्रकार मैं लिखूंगा वे सब प्रकार चांदी की भस्म बनाने में भी सदा अनुभूत किये गये हैं ॥१॥

रजतभस्मनोतृतीयः प्रकारः—

सेटार्धमात्रं दरदं गृहीत्वा
संमर्द्य नैम्बूकरसेन तेन ।
प्रलिप्य तारस्य दलान्तदर्द्धान्-
खट्वाङ्गयन्त्रे निदधीत शुष्कान् ॥१॥

चांदी के भस्म का तीसरा प्रकार—

आध सेर हिङ्गुल को चार पहर तक नींबू के रस में घोटे । बाद

चांदी के पतले पतले पाव भर पत्रों के ऊपर इस कल्क को लेप करके पत्रों को सुखा ले, बाद डमरुयन्त्र में रखदे ॥१॥

क्रमेण वह्निं प्रददीत याम-
चतुष्टयं शीतमथोद्धरेत् तत् ।
स्यादूर्ध्वहण्डीस्थविशुद्धसूतस्ता-
रादिभस्मापि भवेदधः स्थम् ॥२॥

बाद मुद्रा, कपरमिट्टी आदि जो डमरूयन्त्र का प्रकार है, उस सबको सम्पन्न करके मन्द, मध्यम, तीव्र क्रमपूर्वक चार पहर की आंच दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि कपड़े के पांच,चार परतों (तहों) को पानी में भिगोकर डमरूयन्त्र की ऊपर की हांडी पर रखदे, जब जब कपड़ा गरम होता जाय तब तब दूसरा बदलता रहे, चार पहर के बाद यन्त्र को "तालादिभस्मकरी" भट्टी के ऊपर ही छोड़ दे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब डमरूयन्त्र को खोलकर ऊपर की हांड़ी में लगे हुए पारे को कपड़े से पोंछकर निकाल ले, और डमरूयन्त्र की नीचे की हांड़ी में विशुद्ध चांदी की भस्म भी मिलेगी। यदि आंच के कम लगने से या मोटे पत्रों के होने से भस्म में कसर रह जाय तो उसको पहिले की तरह दूसरी बार भी हिङ्गुल में रखकर आंच दे।

इसी रीति से तांबा, कांसी, पीतल, जस्ता, रांगा, सीसा की भस्म भी हो जाती है। परन्तु यही क्रिया दो, तीन, चार बार करनी पड़ती है, उसका कारण यह है कि रांगे व सीसा के पत्र गलकर (द्रुत होकर) एक ढिप्प (पिण्डरूप) बन जाते हैं इसलिये उसमें अग्नि का असर कम पहुँचता है। और जो नीचे की हांड़ी में हिङ्गुल की वजनदार काले वर्ण की राख सी बचे, उसको भी फेंक न दे, किन्तु "भस्म में खजाना" शीर्षक विधि के अनुसार रससिन्दूर बनाले ॥ १ ॥ २ ॥

रजतभस्म गुणाः—

रौप्यस्यभस्म प्रकरोति लीढं
मध्वादिभिः प्रातरथापि सायम् ।

नृणां शरीरे गुणसन्ततीनां
योगान् विशेषेण तु मेहनाशम् ॥१॥
बलञ्च बृष्यत्वमथापि वृद्धिं-
शुक्रस्य शैत्येन च दाहनाशम् ।
अन्येषु योगेषु च दत्तमेतद्
बहूपकारीति विदन्ति वैद्याः ॥२॥

चांदीभस्म के गुण—

चांदी की भस्म को मधु और आदी के स्वरस के साथ चाटने से शरीर में बहुत गुणों का प्रादुर्भाव होता है, विशेष करके प्रमेह को यह भस्म नाश करती है और ताकत, पुष्टि, शुक्रवृद्धि करती है। और यह भस्म ठंडी होने के कारण दाह को नाश करती है। और जिन २ रसों में चांदी की भस्म डालनी लिखी है वे सभी रस अच्छे बनते हैं इस बात को सभी वैद्य जानते हैं। बहुत से वैद्य वनस्पतियों के योग से धातुओं की भस्म में अधिक गुण बतलाया करते हैं परन्तु शास्त्रकारों ने तो पारद गन्धक की कज्जली तथा हरताल आदि के योग से भस्मों की प्रसंशा की है ॥१॥२॥

रजतरसायनम्—

भागौ राजतभस्मनोऽभ्रकमृतेरेको रवेः केवलः
व्योषः सर्वसमो रसायनमिदं क्षौद्राश्रितं राजतम् ।
कासश्वासगदाक्षिपित्तजरुजः पाण्डूदराशांस्यपि
यक्ष्माणंच निहत्य निर्जरयते सन्ध्याद्वयं सेवानात् ॥१॥

रजतरसायन—

चांदी की भस्म चार तोले, शतपुटी अभ्रकभस्म दो तोले, ताम्रभस्म दो तोले, सोंठ, मिरच, पीपल का चूर्ण (कपरछन किया हुआ) आठ तोले, सबको घोट कपरछन करके शीशी में भर कर रख छोड़े। इसको "रौप्य (रजत) रसायन" कहते हैं। इसकी मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक बलाबल देखकर दोनों समय सेवन करे तो

खांसी, श्वास, नेत्ररोग, बवासीर, राजयक्ष्मा, ये रोग नष्ट होते हैं। और निरन्तर सेवन करने से वृद्धावस्था नहीं दबा सकती ॥१॥

रौप्यदोषशान्तिः—

दोषा दूषितरौप्यभस्मभजनात् कण्डूतिपाण्डूदर
ग्रीवाबन्धशिरोरुजो बलहतिं वीर्य्यक्षतिं कुर्वते
रोगाँस्तानपनेतुकामधिषणः संशीलयेत त्र्यहम्
क्षौद्रं शर्करयाऽऽतुरो द्विसमयं सौख्यं ततोऽन्वश्नुते ॥१॥

चांदी के विकारों की शान्ति—

चांदी की विधिपूर्वक शुद्धि नहीं करके जो लोग भस्म बनाते हैं उसके सेवन से खुजली, पाण्डुरोग, गले का जकड़ना, मस्तक पीड़ा, बलहानि, शुक्रक्षय, आदि अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं। उनको दूर करने के लिये वह रोगी तीन दिन तक सायंकाल प्रातःकाल मिश्री के साथ शहत को दो तीन तोले चाटा करे। ऐसा करने से उक्त रोग शान्त हो जाते हैं ॥१॥

तारभस्म शुद्धिकरणम्—

शर्करामधुनोर्दत्त्वा भावनां सप्तधा पुटेत्
रौप्यभस्म ततो जग्धं नो विकाराय कल्पते ॥१॥

चांदीभस्म की शुद्धि—

जिस मनुष्य ने भूल से चांदी की पूर्ण शुद्धि नहीं करके भस्म बना डाली हो उसकी शुद्धि का उपाय यह है कि उस चांदी को भस्म में मिश्री और शहत की भावना देकर सात बार वराहपुट में फूंक दे तो वह चांदी की भस्म कुछ विकार नहीं करेगी। अर्थात् तैलादि वर्ग में शोधन करने से जो गुण चांदी की भस्म में उत्पन्न होता है, वह गुण तो नहीं प्राप्त हो सकेगा किन्तु चांदी की भस्म का दोष दूर हो जायगा ॥ १ ॥

इति रजतभस्म विधिः।

भस्मनि कोशः ।

खट्वाङ्गयन्त्रेण समुद्धृते तु
सूतेऽवशिष्टं दरदस्य किट्टम् ।
निम्बूकनीरेण विमर्दयेत त्रिधा
त्रिधा चापि कुमारिकाद्भिः ॥१॥

भस्म में खजाना—

डमरूयन्त्र द्वारा हिंगुल से पारद निकाल लेने पर जो डमरूयन्त्र की नीचे की हांडी में हिंगुल का किट्ट काले वर्ण का बचता है; उसको फैंके नहीं किन्तु उसमें नींबू के रस की और घृतकुमारी के रस की तीन तीन भावना दे ॥ १ ॥

घृष्ट्वा च तुल्यं परिशुद्धगन्धं
सिन्दूरपाकोक्तविधानतस्ताम्, ।
मसिं पचेतातिहुताशनेन
मन्दादिवह्निक्रममुक्तवर्त्मा ॥२॥

उस किट्ट के समान भाग शुद्ध गन्धक डालकर फिर उक्त रसों की तीन तीन भावना दे । जब कज्जली बिलकुल सूखजाय, तब उसको शीशी में भरकर रससिन्दूर विधि से पकाले परन्तु मन्दादि अग्निक्रम का अवलम्बन नहीं करके प्रथम से ही तीव्राग्नि दे । क्योंकि मन्द मध्यादि क्रमाग्नि देने से नींबू की खटाई पारद गन्धक का वियोग कर देती है तब पारद सम्पूर्ण उड़ जाता है अर्थात् शीशी खाली पड़जाती है ॥ २ ॥

कूपीगलस्थं रसमाददीत
किट्टस्य पादोनमितं विपश्चित् ।
अज्ञातसूतेन्द्ररहस्यमार्गाः क्षिपन्ति
वैद्या दरदस्य किट्टम् ॥३॥

इस विधि से एक सेर हिंगुल के किट्ट में तीन पाव रससिन्दूर परमोत्तम बनकर शीशी के गले पर लग जाता है। यह विधि किसी ग्रन्थ में नहीं लिखी है और प्रायः सभी वैद्यलोग इस किट्ट को फैंक दिया करते हैं। क्योंकि ब्रह्म की तरह पारद की कहां तक महिमा है इस बात को कौन जान सक्ता है ? ॥ ३ ॥

क्षिप्त्वा भिषक्सम्मतिभिस्त्वहं-
चतद्भारसंदिग्धमना यदाऽऽसम् ।
तदैव केनापि कृपेश्वरेण
स्वभक्तबुद्ध्या परितोषितोऽस्मि ॥४॥

मैंने भी इस विषय में बहुत वैद्यों से पूछा था परन्तु किसी ने कहा कि हिंगुल से जब पारद निकाल लिया, तब वह किट्ट निस्सार भूत है अतः फेंक देना चाहिये। और दूसरे ने कहा कि नींबू के रस की भावना देकर एक दो बार उसको और उड़ाकर देख ले; यदि पारा उसमें से नहीं निकले तो फेंक दे। और तीसरे ने कहा कि उस किट्ट को पानी से धो डाले; यदि कुछ हिंगुल का भाग निकले तो निकाल ले बाकी अंश आपही जल द्वारा निकल जायगा। इत्यादि वैद्यों की सम्मति से सात सेर किट्ट मैंने भी फेंक दिया था। परन्तु उसके वजन को देखकर हमेशा शङ्का रहती थी कि यदि यह किट्ट निस्सार है तो इतना वजन कहां से आया ? पश्चात् अकारणकरुणाकर भगवान् शङ्करजी ने मुझे उपर्युक्त विधि का उपदेश देकर सन्तुष्ट किया। अर्थात् ऊपर लिखी हुई विधि ईश्वरीय देन है। जो पुरुष सबको बांट कर खाना चाहता है; उसको ईश्वर इसी प्रकार दिया करते हैं और जो स्वार्थपरायण होता है; उसका उपदिष्ट विषय भी गायब हो जाता है ॥४॥

नैपालताम्र शुद्धिः—

नैपालताम्रमिति यत्सुप्रसिद्ध ताम्रं
पत्राणि तस्य सुलघूनि हि कारयित्वा

दोषाष्टकं किल तदीयमपानुनुत्सु
धर्मातताग्निसाद्रवनभाञ्जि कृतानि तानि ॥१॥
निर्वापयेच्च शनकैः परिससकृत्वः
प्रत्येकशोधनकवस्तुनि वक्ष्यमाणे ।
तैलञ्च तक्रमथ गव्यमपीह मूत्रं
काञ्जी कुलत्थभवमम्बु तथाम्लिकायाः ॥२॥
नैम्बूकमम्बु च रसश्च कुमारिकायाः
स्यात्सूरणस्य च पयोऽपि गवां ततोऽन्ते ।
स्यान्नारिकेलजलमप्यथ माक्षिकञ्चा
प्येतेषु शुद्धिकरणेषु रवेर्मितेषु ॥३॥

नैपालताम्र शुद्धि—

ताम्रभस्म बनाने के लिये लाल वर्ण का नैपाली ताम्र लेना चाहिये, आजकल सबही शहरों में नैपाली ताम्र के बने हुए पुराने बरतन मिलते हैं, उन बरतनों का ताम्बा भस्म के लिये अच्छा होता है, उसके पतले पतले पत्र बनवा कर तद्गत आठ (वान्ति, भ्रान्ति, ग्लानि दाह, शूल, कण्डू, रेचन, वीर्य्यनाश) दोषों को दूर करने के लिये पत्रों को अग्निमय निष्टप्त करके इन बारह चीजों में सात सात बार बुझावे। बारह चीजों के नाम ये हैं—(१) तिल का अथवा सरसों का तेल, (२) गौ का या भैंस का मट्ठा, (३) गौमूत्र, (४) कांञ्जी (परिभाषा-प्रकरणोक्त), (५) कुलथी के बीजों का क्वाथ, (६) इमली की छाल का अथवा पत्तियों का क्वाथ, (७) नींबू का रस, (८) घृतकुमारी (ग्वार का पाठा) का स्वरस, (९) सूरण (जिमिकन्द) का स्वरस, (१०) गौ का दूध, (गौ का दूध नहीं मिले तो बकरी या भैंस के दूध से भी काम चल सकता है) (११) नारियल का पानी (जो गोला के भीतर रहता है) और (१२) सहत ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

सूरणस्वरस आप्यते न चेद्यत्र कुत्रचन तत्रतत्पुटे ।
ताम्रपत्रगणमानिधाय वै त्रिःपुटम्परिपचेत्तु शुद्धये ॥४॥

यदि सूरण का स्वरस नहीं मिले तो सूरण के कन्द में ही ताम्र-पत्रों को रखकर तीन बार गजपुट देने से शुद्धि हो सकती है ॥४॥

नारिकेलजलमाप्यते न चेद्यत्र कुत्रचन तत्र तद्भवे ।
तैलएव विनिमज्जयेत् त्रिधा ध्मातमग्निमयपत्रसञ्चयम् ॥५॥

यदि नारियल का पानी नहीं मिले तो नारियल के तेल में तीन बार पत्रों को बुझाने से काम चल सक्ता है ॥ ५ ॥

सर्वेषां धातूनां संशुद्धिः शास्त्रतो विनिर्दिष्टा ।
गुणभूमार्थं भिषजा सम्पाद्यैवेति हि प्रसिद्धमिदम् ॥६॥
किन्त्वल्पशुद्धियोगेऽप्यन्ये न तथा वहन्त्यनर्थांस्तु ।
एकन्ताम्रं शुद्धावल्पोनम्भ्रान्तिवान्तिकृत्तु यथा ॥७॥
तस्मान्ताम्रविशुद्धावायातिपश्येन वैद्यवर्य्येण ।
अणुमात्रमपि च नैव प्रमादयोगो विधातव्यः ॥८॥

सबही धातुओं की शुद्धि शास्त्र में बतलाई गई है उसको गुण वृद्धि करने के लिये वैद्य लोगों को करना चाहिये यह तो प्रसिद्ध ही है, परन्तु और धातुओं की शुद्धि में कुछ कमी रहने पर भी उतना नुकसान नहीं होता जैसा कि ताम्र शुद्धि में कुछ न्यूनता रह जाने से वान्ति, भ्रान्ति, आदि दोष उपस्थित होते हैं। इस लिये वैद्यों से हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि अपनी भलाई चाहने वाले वैद्यवर ताम्र शुद्धि में किञ्चिन्मात्र भी आलस्य तथा प्रमाद न करे। क्यों कि शास्त्रों में लिखा है कि "न विषं विषमित्याहुस्ताम्रन्तु विषमुच्यते। एको दोषो विषे सम्यकूताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः" ॥६॥७॥८॥

ताम्रभस्म विधिः—

इत्युक्तरीत्या सुविशुद्धताम्र-
पत्राणि खण्डानि विधाय कामम् ।

तेषां समानं खलु हिंगुलोत्थं
रसं समादाय च मर्दयेत् ॥ १ ॥
ताम्रार्द्धमानेन च निम्बुनीरं
विनिक्षिपेन्मर्दनकालएव ।
यामत्रयं प्रत्यहमाविमर्द्य
नैम्बूकनीरञ्च नवम्प्रदेयम् ॥ २ ॥
प्रयत्नतश्चैव जलेन सायं
प्रक्षालनीयं खलु ताम्रपत्रम् ।
यथा न सूतस्तु परिस्रुतः स्यान्न
चाम्लयोगः परिशेषितस्स्यात् ॥ ३ ॥

ताम्रभस्म विधि—

पूर्वोक्त रीति से शुद्ध किये हुए ताम्र पत्रों के छोटे छोटे टुकड़े बना कर उनके समान हिंगुलोत्थ पारद मिलावे, फिर तांमे से आधे नींबू के रस में घोटे। जब तीन पहर घोट ले, तब सायंकाल को बहुत होशियारी के साथ (जिसमें पारद पानी के साथ खरल से बाहर न गिर जाय) जल से धो डाले। ऐसा धोना चाहिये कि जिसमें नींबू का खटाई बिलकुल निकल जाय। बाद दूसरा नींबू का रस डाल कर रात्रि भर रख दे; प्रातःकाल फिर तीन पहर घोटे। इस प्रकार कम से कम तीन दिन घोटे ॥१॥२॥३॥

ताभ्यां समानञ्च विशुद्धगन्ध-
मावाप्य कार्य्या खलु कज्जली सा ।
तां काचकुप्यां शनकैर्निधाय
सिन्दूरयुक्त्या प्रपचेत वैद्यः ॥ ४ ॥

फिर ताम्र व पारद के तुल्य, शुद्ध की हुई आमलासार गन्धक डाल कर कज्जली बनावे। उस कज्जली को कपरमट्टी की हुई आतशीशीशी में भर कर रससिन्दूर की विधि से पकावे। यह स्मरण रहे

कि जिस शीशी में चार सेर कज्जली अट सके उसमें एक सेर कज्जली भरनी चाहिये अर्थात् पावभर ताम्र, पावभर पारद, व आध सेर गन्धक इन तीनों चीजों की बनी हुई कज्जली (एक सेर) को शीशी में भर कर चार अहोरात्र की अग्नि दे ॥ ४ ॥

तले च तिष्ठेदिह ताम्रभस्म
गले च सिन्दूररसो विलग्नः ।
प्रत्यक्षिताऽनेन हि किंवदन्ति
एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥ ५ ॥

ऐसा करने से स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी के तल भाग में पाव भर ताम्रभस्म मिलेगी और गले पर कुछ कम पावभर रससिन्दूर मिलेगा। बस ! अब क्या चाहते हो ? रससिन्दूर बनाने के लिये शीशी चढ़ानी ही पड़ती सो, इस प्रकार करने से रससिन्दूर भी बन गया और ताम्रभस्म मुफ्त में मिल गई तो "एक पन्थ दो काज" यह कहावत चरितार्थ हो गई। वैद्य लोग ताम्बे में पारद को इस कारण नहीं दिया करते हैं कि गजपुट में देने से पारा उड़ जायगा तो नुकसान होगा, वह भय अब नहीं करना चाहिये। क्योंकि पारद के योग से ताम्रभस्म भी अच्छी बन जाती है, और सिन्दूररस भी तैयार हो जाता है ॥ ५ ॥

ताम्रभस्म निरुत्थीकरणम्—

अथो निरुत्थीकरणं ब्रवीमि
ताम्रस्य यत्स्याद्द्विलो गुणोऽस्य ।
मित्रैः पुरः पञ्चभिरुत्थितं त-
द्भस्म प्रकुर्य्यात्परिघट्टनेन ॥१॥
स्नुगर्कयोर्नूतनशुद्धदुग्धे
चक्रीं च तामातपसंविशुष्काम् ।

पुटे गजाख्ये विनिधाय वन्हिं
दद्याच्च शीतां तु समुद्धरेत्ताम् ॥२॥
स्नुह्यास्तथार्कस्य च दुग्धयोस्तां
विघट्य सम्यक् प्रपचेत् पुरोवत् ।
एकक्रियोगोऽयमुदीरितो वः
कुर्य्यादितीत्थं खलु पञ्चकृत्वः ॥३॥
एवंकृते सत्यपि यत्कथञ्चि-
द्भवेत्प्रकाशो लघु ताम्रकान्तेः ।
तदा द्विवारं पुनरित्थमेव
कुर्य्यान्निरुत्थीकरणं ह्यवश्यम् ॥४॥

ताम्रभस्म निरुत्थीकरण—

अब मैं ताम्रभस्म की निरुत्थीकरण क्रिया बतलाता हूँ, जिससे ताम्रभस्म संपूर्ण गुण युक्त हो। जब मित्रपञ्चक के साथ ताम्रभस्म को घोटकर अग्नि में देने पर ताम्र की कान्ति कुछ मालूम पड़ने लगे तब फिर मंदार व थूहर के दूध में घोटकर ताम्रभस्म की टिकिया बनाले। जब टिकिया धूप में खूब सूख जाय, तब फिर सम्पुट में रखकर गजपुट में देकर भस्म करले। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब निकाल ले। इसी प्रकार मित्रपञ्चक से जिला जिला कर पांच बार मारण करे। ऐसा करने पर भी मित्रपञ्चक में घोटकर सम्पुट में रखकर गजपुट देने से कुछ कुछ यदि ताम्र की झलक मालूम हो तो फिर भी दो बार उक्त प्रकार से जरूर भस्म करले ॥१।२।३।४॥

अर्कस्नुहीदुग्धयुगस्य यत्र
लाभो न सम्यग्यदि तत्र वैद्यः ।
मित्रोत्थितं तच्च सुगन्धकेन
कन्याद्रवैः पूर्ववदेव कुर्य्यात् ॥५॥

यदि मंदार व थूहर का दूध नहीं मिले तो शुद्ध गन्धक व घृत-

कुमारी के रस के साथ ताम्रभस्म को घोटकर पूर्ववत् निरुत्थीकरण कर ले, ॥ ५ ॥

यथा विदग्धं नहि पच्यतेऽन्न-
मौदर्य्यवह्नौ नच तत्समस्तम्, ।
स्वीयं गुणं भुक्तवतः प्रदद्या-
दुत्थास्नवो धातव एवमेव ॥६॥

निरुत्थीकरण करने का तात्पर्य्य यह है कि जैसे अधपका अन्न जठराग्नि में नहीं पचकर खाने वाले को पूरा फायदा नहीं करता है। इसी प्रकार जिनका निरुत्थीकरण संस्कार नहीं हुआ है, वे धातु भी अपना पूर्ण गुण नहीं करती हैं ॥ ६ ॥

यूनानवैद्यश्च तथाऽऽर्य्यवैद्यः
परस्परं सङ्गिरतेस्म कामम् ।
सुवर्णपत्राणि निषेवितानि
सम्यक् फलन्तीति नचेति चेति ॥७॥
अन्येन केनापि निषेवितानि
स्वर्णस्य पत्राणि तु मासमात्रम् ।
तदाऽऽर्य्यवैद्येन तदीयविष्ठा
संग्राहिता चाथ सुदाहिता च ॥८॥

इस विषय का पुष्ट करने वाला दृष्टान्त यह है—किसी हकीम का मत था कि सुवर्णगर्भपोटली इत्यादि रसों में अथवा केवल सुवर्ण सेवन में सोने के तबक देने चाहिये, और वैद्य का मत था केवल सुवर्ण जठराग्नि में नहीं पचेगा, अतः उसकी भस्म देनी चाहिये। दोनों का बिवाद बढ़ने पर वैद्य ने एक आदमी को हकीम जी के कहने के मुताबिक एक महीने तक सुवर्ण के तबक खिलाये, और उस आदमी की बिष्ठा प्रतिदिन इकट्ठी कराई, जब बिष्ठा सूख गई तब उसको जलाकर पानी में धोकर सुवर्ण निकाल लिया और हकीम जी को अपना पक्ष छोड़ना पड़ा ॥ ७।८ ॥

प्रदाहितायामथ तत्र तेन
स्वर्ण परिक्षालनतोऽत्रकृष्टम् ।
उत्थास्तुधातोश्च निरुत्थधातो-
र्निषेवणे चापि निदर्शनं तत् ॥९॥

इस कारण वैद्यों से हमारी प्रार्थना है कि यदि पूर्ण फल चाहते हों तो जहाँ पर शास्त्रों में किसी रस-प्रयोग में सुवर्ण देना लिखा हो तो वहां उसकी भस्म ही डाला करें। यद्यपि शास्त्रोक्त रीति से शुद्ध किये हुए धातु के देने पर भी अपकार नहीं होगा किन्तु अल्प गुण होगा ॥९॥

ताम्रभस्मामृतीकरणम्—

पञ्चामृतैरत्र कृते कषायके
विमर्द्य कुर्यात् खलु भस्म चक्रिकाम् ।
पचेत्पुटे नाम गजे त्रिवारक-
मिमां वदन्ति ह्यमृतीकृतिं पराम् ॥१॥

ताम्रभस्म का अमृतीकरण—

अमृतपञ्चक (सोंठ, गिलोय, सफेद मुसली, शतावर, गोखरू) के बनाये हुए काथ में ताम्रभस्म को घोटकर टिकिया बनाले। खूब सूख जाने पर सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक दे। इसी प्रकार तीन बार संस्कार करने को अमृतीकरण कहते हैं ॥ १ ॥

तुत्थात्ताम्र-निस्सारण विधिः—

अध्यर्द्धसेटद्वयमात्रतुत्थं
सम्पिष्य सुश्लक्ष्णकटाहिकायाम् ।
विस्तीर्य्य तामन्यकटाहमध्ये
संस्थाप्य चाच्छाद्य पटेन तुत्थम् ॥१॥

तूतिया से तांबा निकालने की विधि—

बहुत वैद्य नैपाली तांबे की तलाश में इधर उधर भटकते फिरते

हैं, और नहीं मिलने पर ताम्रभस्म बनाने में हताश होकर बैठ जाते हैं। उनही महाशयों के उपकारार्थ मैं तूतिया से तांबा निकालने की विधि लिखता हूँ। यह तांबा नपाली तांबे से किसी अंश में कम नहीं है।

अढ़ाई सेर तूतिया को खूब पीसकर साफ छोटी लोहे की कड़ाही (जैसी हलवाई लोग मावा (खोआ) बनाने के लिये साफ रखते हैं) में बिछाकर उस कड़ाही को एक बड़े लोहे के कड़ाह में [यदि बड़ा लोहे का कड़ाह नहीं मिले तो बड़ी मट्टी की नांद से भी काम चल सकता है] रखकर तूतिये के चूर्ण को कपड़े से ढाँक दे, जिससे तूतिया त्रिफला में न मिल जाय ॥ १ ॥

तस्मिन् कटाहे खलु पञ्चसेटी-
छयोन्मितां सुत्रिफलां प्रपूर्य्य।
मणप्रमाणं जलमत्र दद्यात्
संस्थापयेदातपयोग्यदेशे ॥२॥

बाद कड़ाह में दस सेर पक्का बिना कूटा हुआ त्रिफला (बड़ी हरड़े, बहेड़ा, आमला) भर दे। उस त्रिफला से छोटी कड़ाही इतनी ढक जायगी कि दीख नहीं पड़ेगी। फिर उस कड़ाह में एक मन पक्का मीठा पानी भरदे, और वह कड़ाह ऐसी जगह में रखा जाय, जहां दिन भर सूर्य्य का ताप पड़े, ॥ २ ॥

यथाऽऽतपश्चन्द्रमरीचयश्च
वायुश्च तस्मिन्नभिसञ्चरेयुः।
त्रिंशद्दिनं तत्समुपेक्ष्यमाणं
ताम्रं विशुद्धं खलु सेटकार्द्धम्, ॥३॥

व हवा भी लगे और रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी भी पड़ती रहे। इस प्रकार एक मास बीतने पर कड़ाह के पानी को कपड़े में छानकर रखले; यह पानी स्याही का काम देगा, तथा प्रातःकाल इस पानी का नेत्रों में छींटा देने से नेत्र का परम हित होता है। यदि स्याही को और भी पक्की करनी हो तो एक सेर पीपल की लाख का

काढ़ा व एक सेर कसीस कूट कर डाल दे। और जो त्रिफला कपड़े में छानने से बच गया है उसको भी धूप में सुखा कर रखले। इसको जला कर क्षार बनाया जायगा, जो पाचक के काम में आवेगा। वैद्यों के यहां कोई चीज फेंकने काबिल नहीं है। और छोटी कड़ाही के पेंदे में आध सेर पक्का विशुद्ध ताम्र जमा हुआ मिलेगा जो चाकू से खुरच खुरच के उठाने से एक पत्र रूप में प्राप्त होवेगा ॥ ३ ॥

तले विलग्नं समुपाददीत
जलं विपक्कं तु मसीमयं स्यात् ।
तथाच नेत्रेषु हितं परं स्यात्
प्रातः परिक्षालनतो नराणाम् ॥४॥

इस ताम्र में उतना दोष नहीं है जितना कि नैपाली ताम्र में होता है। संयोग की महिमा अचिन्तनीय है। देखिये! तूतिया, लोह, त्रिफला, पानी, एक मास काल, वायु, धूप, चाँदनी, इन आठ पदार्थों के संयोग से विशुद्ध ताम्र, स्याही, नेत्र की दवा, और पाचक योग्य क्षार, कैसे उत्तम पदार्थ बन जाते हैं। तूतिया से ताम्र निकालने के और भी प्रकार हैं पर यह सुगम होने के कारण लिखा गया है ॥ ४ ॥

तुत्थोत्थ ताम्र शुद्धिः—

अर्कस्य पत्रस्वरसेषु ताम्रं
निष्टप्य वह्नावथ सप्तकृत्वः ।
निर्वाप्य सेटार्द्धकसैन्धवाढ्ये
चिञ्चादल क्काथजले पचेत ॥१॥

यामेष्वतीतेषु चतुर्षु शुद्धं
तत्ताम्रमाहुः खलु भस्मयोग्यम् ।
नैपालताम्रेण समोऽत्र दोषो
नैवास्त्यतः शुद्धिरियम्प्रपूर्णा ॥२॥

तूतिया से निकाले हुए तांबे की शुद्धि—

तूतिया से निकाले हुए ताँबे को अग्नि में खूब निष्टप्त करके मंदार के पत्तों के स्वरस में सात बार बुझाले, पश्चात् दो सेर इमली के पत्तों को दस सेर पानी में डालकर कड़ाही में काढ़ा बनावे। जब आधा पानी जल जाय तब उसमें आध सेर सेंधानोंन डालकर साथ ही साथ तूतिया से निकले हुए आध सेर तांबे को भी डाल दे। बाद चार पहर तक अग्नि दे। यदि पानी जल जाय तो गोमूत्र डालता जाय, गोमूत्र नहीं हो तो पानी से भी काम चल सकता है। बस, इतनी ही शुद्धि इस ताम्र की पर्य्याप्त है क्योंकि तूतिया के तांबे में, नैपाली तांबा के बराबर दोष नहीं होता है ॥१॥२॥

तुत्थताम्रस्याऽल्पदोषत्वे युक्तिः—
तुत्थ निर्माण विधिश्च—

ताम्रस्य चूर्णं कुरु घर्षणात-
स्तत्तुल्यमस्मिन्नवसादरं च।
सम्मेल्य निम्बूकजलं च तुल्यं
मासेन तुत्थं स्वयमेव सिद्ध्येत् ॥१॥

तूतिया के तांबे में अल्प होने में युक्ति-
और तूतिया बनाने की विधि—

एक सेर तांबे को रेती से रितवा कर चूर्ण बनाले। उसके समान भाग (एक सेर) नवसादर डालकर कूटले, जब कूटते कूटते दोनों खूब मिल जायं तब उन दोनों के समान (दो सेर) नींबू का रस भरकर किसी मट्टी के पात्र में रख छोड़े। इस प्रकार एक महीना रखने से अपने आप तूतिया बन जायगा। परन्तु यह स्मरण रहे कि एक महीने में भी यदि नींबू का रस नहीं सूखे तो उसको धूप में रखकर सुखाले ॥ १ ॥

तुत्थस्य निर्माणविधौ च ताम्रं
क्षाराऽम्लयोगेन जहात्यशुद्धिम् ।
अतो हि तुत्थोद्भवमल्पदोषं
सूतो यथा हिङ्गुललब्धजन्मा ॥२॥

इस प्रकार तूतिया के बनाने में जो नवसादर और नींबू का रस एक महीना तक ताम्र के साथ पड़ा रहा है, सो उन दोनों के योग से ताम्र का सब दोष नष्ट हो जाता है। इसी लिये तूतिया के तांबे में अल्प दोष हुआ करता है। जैसे पारद में कञ्चुकी आदि बहुत दोष हुआ करते हैं, वे दोष गन्धक के साथ कज्जली करके हिङ्गुल बनाने से सब नष्ट हो जाते हैं। इसलिये हिङ्गुल के पारद को निर्दोष माना जाता है। और कुछ अल्प दोष रहता भी है सो; गोमूत्र, लवण और नींबू के रस में दोलायन्त्र विधि से पारद का स्वेदन कर लेने से वह भी नष्ट हो जाता है। तैसे ही तूतिया के तांबे में कुछ दोष बाकी रह जाते हैं सो वे भी गोमूत्र, लवण, और इमली के काढ़े में चार पहर उबालने मात्र से नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

खनावपि क्षारमुखस्य योगः
शताऽतिसंवत्सरजो निरस्येत्, ।
ताम्रस्य दोषानिव पारदस्य
गन्धोऽतएवाल्पविशोधनं तत् ॥३॥

यह कथा तो कृत्रिम हिंगुल और कृत्रिम तुत्थ (तूतिया) की हुई। अब खांन से निकले हुए तूतिया और हिंगुल की भी कथा सुनिये—जहां पर ताम्र की खांन होती है और पारद की खांन होती है, वहां पर ही तूतिया और हिंगुल भी मिला करता है। इस लिये उस खांन में रहे हुए क्षार अम्लादिक के योग से ताम्र ही तूतिया के आकार में बन जाता है, और गन्धक के योग से पारद भी हिंगुल के आकार में परिणत हो जाता है। हम लोगों को सूर्य्य के ताप या अग्नि के ताप से ताम्र का तूतिया और पारद का हिंगुल बनाना पड़ता

है परन्तु ताम्र की खांन में और पारद की खांन में, सैकड़ों वर्ष को पृथ्वी की गरमी से तथा सूर्य्य के ताप से तूतिया और हिंगुल बन जाते हैं। इसी लिये खनिज ताम्र के दोषों को क्षाराम्लवर्ग और खनिज पारद के दोषों को गन्धक चाट जाते हैं। इसीलिये चाहे खांन के तूतिया से या बनावटी तूतिया से ताम्र को निकालिये, और चाहे खांन के हिंगुल से या बनावटी हिंगुल से पारा निकालिये; उन दोनों में बहुत अल्प दोष रहता है ॥ ३ ॥

सङ्कुट्टय तुत्थं पटगालितं च
कुर्वीत तस्माद्वांशेष्यते चेत्, ।
शौल्वं रजः पूर्ववदेव कुर्य्यात्
तुत्थं ततस्ताम्रविनिःसृतिं च ॥४॥

एक महीने के बाद बनकर तैयार हुए तूतिया को लोहे के हिमामदस्ता में कूट कर कपरछान करके देखले यदि थोड़ा बहुत ताम्र कपड़े पर रह जाय तो उसमें भी उक्त विधि के अनुसार नवसादर और नींबू का रस डालकर तूतिया बनाले। और इस तूतिया से "तुत्थात् ताम्रनिःसारण विधिः" इस उक्त शीर्षक विधि के अनुसार तांबा निकाल ले ॥ ४ ॥

सेटप्रमाणं यदि ताम्रचूर्णं
तत्पादगन्धेन मृतिं नयेत ।
एकेन वारेण हि तस्य तुत्थं
बनेन्मदुक्तेन पथा विशुद्धम् ॥५॥

यदि एक बार में ही ताम्र का तूतिया बनाने की इच्छा होय तो एक सेर ताम्र के चूर्ण में पाव भर आमलासार गन्धक मिलाकर हांड़ी में भरदे, उस हांड़ी को एक ढकन से ढांककर रोटी बनाने वाले चूल्हे पर रखदे, और मन्दी मन्दी चार पहर तक आँच दे। जब गन्धक का धूआं निकलना बन्द होजाय तब स्वाङ्गशीतल करके उस ताम्रभस्म को लोहे के खरल में कूटकर कपरछान करले। उस भस्म

के समान भाग नवसादर डालकर और दोनों के समान नींबू का रस डालकर एक महीना तक पूर्व की तरह रखदे तो परम विशुद्ध तूतिया बनकर तैयार हो जायगा। इससे भी यदि ताम्र निकाला जाय तो वह भी बिना ही शोधे शुद्ध किया हुआ निकलेगा ॥ ५ ॥

द्वितीय ताम्रभस्म विधिः—

ताम्रस्य तुल्यं तु विशुद्धगन्धं
चूर्णीकृतं मृत्स्नितहण्डिकायाम् ।
तले प्रपूर्य्योपरि शुद्धताम्रं
निधाय तस्योपरि तावदेव, ॥१॥
गन्धस्य चूर्णं पुनरावपेच्च
शरावमस्याश्च मुखे पिदध्यात् ।
शरावमध्ये विदधीत रन्ध्रं
प्रवेशयोग्यं बदरीफलस्य ॥२॥

ताम्रभस्म की दूसरी विधि—

शुद्ध तूतिया का तांबा अथवा नैपाली तांबा आध सेर और शुद्ध आमलासार गन्धक आध सेर ले। गन्धक को खूब पीसकर तीन कपरमिट्टी की हुई चिकनी हांड़ी में पाव भर गन्धक का चूर्ण रखकर, ऊपर आध सेर ताम्र पत्र रखकर पश्चात् बचे हुए पाव भर गन्धक के चूर्ण को रखकर, ताम्र पत्र को ढाँक दे। उस हांड़ी के मुख को एक शराव (सकोरा, ढकना) से ढांक दे, उस शराव के बीच में धूआं निकलने के लिये इतना बड़ा छिद्र कर देना चाहिये कि जिसमें जंगली छोटा बेर (लाल बेर) समा जाय ॥१॥२॥

मृद्भस्मसिन्धूद्भवमुद्रया त-
त्पिधानमावेष्ट्य च सप्तकृत्वः ।
चुल्ल्यां चतुर्य्याममिदं पचेत
क्रमेण तापैर्मृदुमध्यतीव्रैः ॥३॥

हाँडी का मुख व शराव के मध्य में चिकनी मट्टी, उपला की राख, सेन्धानमक इन तीनों को खूब पीसकर पानी में सांन कर मुद्रा करदे। पश्चात् उस पर उसी कीचड़ में सने हुए कपड़े से सात कपरौटी करदे; खूब सूख जाने पर रोटी बनाने वाले चूल्हे पर रख कर क्रम से मन्द मध्यम व तीव्र आँच चार पहर दे। शराव के छिद्र द्वारा धूआँ बराबर निकलता रहेगा। यदि तीन पहर में धूआँ निकलना बन्द हो जाय तौ भी एक पहर और आँच दे। यदि चार पहर में भी धूआँ निकलना बन्द न हो तो एक पहर और, खूब तेज आँच दे। ॥ ३ ॥

स्वाङ्गे शीते च सञ्जाते ताम्रभस्म प्रशस्यते।
सर्वयोगेषु धीमद्भिर्वान्तिभ्रान्तिवियुक्तियुत् ॥४॥

जब स्वाङ्गशीतल (अपने आप ठंढा) हो जाय तब मुद्रा को खोलकर हाँड़ी के तल भाग में जमी हुई ताम्रभस्म को निकाल ले। इस भस्म में भी वान्ति भ्रान्ति आदि दोष कुछ नहीं है, जिस योग में ताम्रभस्म डालना लिखा हो उसमें इस ताम्रभस्म को निश्शङ्क डाल सकते हैं। प्रथम जो ताम्रभस्म प्रकार लिखा है, उस प्रकार से, नैपाली ताँबा या तूतिया से निकाला हुआ ताँबा में से कोई की भस्म कर सकते हैं। और जो ग्रन्थों में ताम्र प्रयोग लिखे हैं उन योगों में नैपाली ताँबे की भस्म अथवा तूतिया के ताँबे की भस्म दोनों में कोई भी ले सकते हैं॥ ४ ॥

तृतीय ताम्रभस्म विधिः—

त्रिसेटकोन्मानमितं विशुद्धं
तुत्थोत्थताम्रं ददतामुतापि, ।
नैपालिकं शास्त्रविधानयोगैः
संशोधितं तैलमुखेषु मस्याम्, ॥१॥

निष्पादितायां रसगन्धयोस्त-
त्साद्धीधिकायामवधानचेताः ।
यन्त्रे द्वयोर्नान्दिकयोः कृतेत-
स्योद्र्ध्वस्थनान्द्यां विदधीत रन्ध्रम् ॥२॥

छिद्रे वितस्त्या मितलम्बमानां
ददीत नालीं रसरोधनाय ।
निर्यासतूले ननु लोहभस्म
मृत्सामितिद्रव्यचतुष्टयञ्च ॥३॥

पानीययोगेन दिनद्वयं ज्ञः
कुट्टेत्तथा श्लादण्यमियाद्यथा तत् ।
अस्यैव कल्कस्य ददीत मुद्रां
नान्दीमुखे नालिमुखे च धीमान् ॥४॥

सर्वार्थकर्य्याः खलु कोष्ठिकायां
विशालचुल्यान्निदधीत यन्त्रम् ।
ताम्रस्य पत्रञ्च मसीक्रमेण
संस्थापिते यत्र ददीत वह्निम् ॥५॥

ताम्रभस्म की तीसरी विधि—

तूतिया का ताँबा (उक्त विधि से शुद्ध किया हुआ) अथवा तैलादिवर्ग में शुद्ध किया हुआ नैपालिक ताँबा तीन सेर ले। और डेढ़ सेर शुद्ध पारा व तीन सेर शुद्ध गन्धक की कज्जली बनाले। फिर दो नाँद के ऊपर सात सात कपरमट्टी करले। दोनों नाँद का मुख मिला कर देखले, कहीं छिद्र न रह जाय। फिर ऊपर वाली नाँद के पेंदे में इतना बड़ा छिद्र करदे कि जिसमें अँगुली जा सके। उस छिद्र में एक बिलांद (बीता) लम्बी एक लोहे की नली लगादे, जो नाँद के अन्दर लटकती रहे। इस नली के लगाने का यह अभिप्राय है कि नाँद के पेंदे में किए हुए छिद्र के द्वारा पारा बाहर न निकल

जाय; किन्तु सिन्दूररस बनकर नली के चारों तरफ नाँद के पेंदे में जा लगे। नीचे वाली नाँद में पारद गन्धक की थोड़ी सी कज्जली रखकर थोड़ा सा ताम्र पत्र रखे; फिर कज्जली दे, पुनः ताम्र पत्र रखे। इस प्रकार क्रम से साढ़े चार सेर (ऽ४॥) कज्जली व तीन सेर ताम्र पत्रों को रखे, और कज्जली को हाथ से खूब दबा दे। बाद उस नाँद के ऊपर, नली लगाई हुई दूसरी नाँद को रख कर इन चीजों के कल्क की मुद्रा लगावे, पीपल का गोंद, रुई, लोहभस्म,* और चिकनी मिट्टी, इन चारों चीजों को पानी के योग से दो दिन तक कूट कर खूब चिकना कल्क बना ले। इसी कल्क चतुष्टय की मुद्रा कर दे। और इसी कल्क से नाँद के पेंदे में लगी हुई नली के मुख पर भी मुद्रा करदे। मुद्रा के ऊपर सात कपरौटी करके खूब सुखा दे। पश्चात् इस 'नलिकाडमरूयंत्र' को सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री के मुख पर बड़ा लोहे का चूल्हा रखकर रखदे, और लोह जाली के ऊपर दस सेर पत्थर के कोयले भर कर भट्ठी के नीचे लकड़ी की आँच दे ॥१॥२॥३॥४॥५॥

होरात्रयं मन्दमथ क्रमेण
मध्योत्तमौ चापि तथा विदध्यात् ।
यथोग्रवह्नेः परिताप एनद्
न स्फोयेन्नेत्रदिने ततोऽथ ॥ ६ ॥

प्रथम तीन घण्टे तो मन्दाग्नि लगनी चाहिये, बाद चार घण्टे तक मध्याग्नि लगानी चाहिये, पश्चात् तीव्राग्नि दे। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि जब पत्थर के कोयले की आँच है तब अग्नि क्रम का पालन किस प्रकार हो सकता है ? उसका उत्तर यह है कि जब

* मुद्रा देने को कान्तिसार या तीक्ष्ण लोहभस्म की जरूरत नहीं है किन्तु सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री में जो लोह जाली रखी जाती है वही दो चार मास में भस्मीभूत हो जाती है उसी को कूटकर कपड़े में छान कर रख छोड़े। अथवा लुहारों के यहाँ जो लोह जल कर भस्मीभूत निकम्मे पड़े रहते हैं उसी को ले।

मन्दाग्नि लगाने की आवश्यकता होगी तब भभकते हुए कोयलों के ऊपर दो तीन नंबरी ईंट रख देंगे । और मध्याग्नि देनी होगी । तब इटों को हटा कर लोहे का तवा रख देंगे और जब तीव्राग्नि देनी होगी तब तवे को भी हटा देंगे । अथवा मन्दाग्नि व मध्याग्नि के समय लोह जाली के ऊपर कोयला नहीं रखेंगे, किन्तु केवल लकड़ी की ही आँच दी जायगी, तीव्राग्नि के समय पत्थर के कोयले भी भर देंगे । इस प्रकार दो दिन तक आँच दे । ऐसा करने से अग्नि का प्रचण्ड ताप यन्त्र को फोड़ नहीं सकेगा । क्योंकि यन्त्र सर्वदा पत्थर के कोयलों से एक बिलांद ऊँचा रहता है ॥ ६ ॥

पुनःपुनर्लोहशलाकयापि
पश्यन् यदाऽवैति च जीर्णगन्धम् ।
उत्तार्य्य चुल्ल्या निदधीत यन्त्रं
या प्रस्तराङ्गालवती च कोष्ठी, ॥७॥

तस्याश्च गन्धस्य विपाचनाय
ताम्रस्य सम्यक् परिपाकहेतोः ।
नालीं विहायोन्दपटेन नान्दीं
सम्यक् पिदध्यात्पुनरुन्दयेत ॥८॥

पश्चात् जब देखे कि नली से धूआँ नहीं निकलता है तब नली द्वारा शलाका डाल कर देख ले । जब शलाका में कज्जली नहीं लगे तब समझे कि गन्धक जीर्णप्राय हो गया है, तब यन्त्र को ठंढा हो जाने पर बहुत होशियारी के साथ यन्त्र को (उत्थापक संदंश द्वारा) उतार ले, और सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री के मुख से चूल्हे को हटा कर लोह जाली के ऊपर तीन चार सेर पत्थर के कोयले रखकर यन्त्र को कोयलों पर रख दे, और नीचे से लकड़ी की आँच दे । परन्तु इस तीव्र आँच में नली के द्वारा पारा उड़ जाने की शङ्का है, इस लिये नली के छिद्र को बचा कर ऊपर की नाँद को चार तह भीगे कपड़ों से ढाँक दे । जब कपड़ा सूख जाय तब फिर दूसरा भीगा

कपड़ा बदल दे । यदि किसी वैद्य को सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री बनाने का सौकर्य नहीं हो तो हलवाइयों की सी भट्ठी पर ही यन्त्र को रखकर बबूर की सूखी लकड़ियों की आँच दे । परन्तु इस प्रकार करने से चार अहोरात्र अग्नि देनी पड़ेगी, तब माल तैयार होगा ॥७॥८॥

स्वाङ्गशीतेऽथ सञ्जाते नन्दिकोर्द्धतलं गतः ।
रसःसिन्दूरनामा स्यात् ताम्रभस्माप्यधस्तले ॥९॥

यन्त्र को स्वाङ्गशीतल हो जाने पर होशियारी से खोले । ऊपर वाली नांद के पेंदे में लगा हुआ सिन्दूररस मिलेगा, और नीचे की नाँद के तल भाग में वान्ति भ्रान्ति रहित ताम्रभस्म मिलेगी ॥९॥

श्यामसुन्दरवैद्येन सम्यगेतत्परीक्षितम् ।
विधातव्या न शङ्काऽत्र कर्मासिद्धौ भिषग्वरैः ॥१०॥

यह विधि किसी शास्त्र में लिखी हुई तथा वैद्य की बतलाई हुई नहीं है, किन्तु मैंने स्वयं अनुभव से निकाल कर आज़मा ली है । हर एक वैद्य बना सकते हैं । इसमें शङ्का करने की कोई आवश्यकता नहीं है । यह सिन्दूररस उतना लाल नहीं होगा जितना कि शीशी वाला होता है ॥ १० ॥

चतुर्थ ताम्रभस्म विधिः—

भागं सूतस्य शुद्धस्य द्वौ भागौ गन्धकस्य च ।
तयोः कज्जलिकां जातां हण्डिकायां प्रपूरयेत् ॥१॥

ताम्रभस्म की चौथी विधि—

शुद्ध किया हुआ या हिंगुलोत्थ पारा पांच तोले, शुद्ध गन्धक दस तोले दोनों की कज्जली करके, (कोई कोई वैद्य इस कज्जली में तीन बार नींबू के रस की भावना दिया करते हैं, वह प्रकार भी अच्छा ही है) सात बार कपरौटी की हुई हांड़ी में भर दे ॥ १ ॥

शुद्धताम्रपिधानेन पिदध्याद्धण्डिकां सुधीः ।
भस्ममृल्लवणैर्मुद्रां कृत्वा सप्त च मृत्पटान् ॥२॥

बाद हण्डी के मुख के बराबर का ताँबे की मोटी चादर (जो बाजार में बिकती है) को कुटवा कर ढक्कन बनवा ले, और रेती से ऐसा रितवा ले, जिसमें हण्डी के मुख पर ठीक बैठ जाय, और कहीं सन्ध न रहे। ढक्कन वजन में तीन पाव रहना चाहिये। पश्चात् इस ढक्कन की तुत्थोत्थ-ताम्र की तरह शुद्धि करले। यहां पर ऐसी शङ्का हो सकती है कि नैपाली तांबा बहुत शुद्धि करने पर शुद्ध होता है तब यह चादर (चद्दर) का तांबा अल्प शुद्धि से किस प्रकार शुद्ध हो सकता है ? इसका उत्तर यह है कि अन्तर्धूम पाक को इतनी बड़ी शक्ति है कि जो ताम्र दोष को निर्मूल कर देती है। इस ढक्कन से हण्डी को ढांक कर देखले कहीं सन्ध नहीं रहनी चाहिये। यदि कहीं सन्ध मालूम पड़े तो ढक्कन को कूटकर ठीक कर ले। बाद राख, चिकनी मिट्टी, सेंधा नमक तीनों को कपरछान करके समभाग ले। फिर पानी में कीचड़ सा बना कर हण्डी के मुख पर मुद्रा करदे। मुद्रा को धूप में खूब सुखा कर उक्त कीच में सने हुए कपड़े से सात बार कपरौटी कर दे ॥२॥

आतपेन विशोष्यापि यन्त्रं चुल्ल्यां धरेत्ततः ।
मन्दमध्यमतीव्रेण क्रमवृद्धेन वह्निना ॥ ३ ॥
अहोरात्रं पचेदेन-दन्तर्धूमविधानतः ।
पाककाले प्रतीतिः स्याद्धूमगन्धस्य चेत्तदा ॥ ४ ॥
गाढमुद्रा प्रदातव्या स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
सिन्दूरसदृशं सूतं ताम्रभस्म विधानगम् ॥ ५ ॥

जब मुद्रा की कपरौटी खूब सूख जाय तब यन्त्र को रसोई बनाने वाले चूल्हे पर रखकर पतली पतली दो लकड़ी की मन्दाग्नि दे। चार घंटे के बाद एक लकड़ी और लगाकर कुछ आँच तेज कर दे। फिर छः घंटे के बाद चार लकड़ी की आँच लगावे इस प्रकार कुल आठ पहर अग्नि देनी चाहिये। परन्तु यह स्मरण रहे कि अग्नि लगाते समय जहाँ से गन्धक के धूआँ की गन्ध आती हो वहाँ पर उक्त कीच को लगाकर मुद्रा को दृढ़ करदे। यदि मुद्रा दृढ़ नहीं की

जायगी तो धूम के निकलने से रस कमजोर पड़ जायगा। स्वाङ्गशीतल होने पर मुद्रा को खोल कर रस निकाल ले। छटांक भर सिन्दूर-रस के तुल्य पारद निकलेगा, और आध पाव के अन्दाज ताम्रभस्म या तो ढक्कन में लगी हुई मिलेगी अथवा ढक्कन को उठा लेने पर ताम्र-भस्म का ही चिपका हुआ ढक्कन मिलेगा ॥३॥४॥५॥

सम्पिष्य द्वितयञ्चापि सर्वयोगेषु योजयेत्।
शीतज्वरे च शूले च दृष्टशक्तिरयं रसः॥
तत्तद्योग्यानुपानेन ज्वरशूलेभकेशरी ॥ ६ ॥

पश्चात् सिन्दूररस के तुल्य लालवर्ण पारद व ताम्रभस्म दोनों को पीस कर शीशी में रखदे। कोई कोई वैद्य इसबगोल और बीदाना, दोनों के लोआब में घोटकर मसूर की बराबर गोली बनाय सुखा कर रखा करते हैं, यह भी प्रकार अच्छा है। इस रस को ज्वरशूल-गज केशरी कहते हैं। तीन पाव बजन वाले ताम्र के ढक्कन से आध पाव भस्म बन जाने के बाद जो अढ़ाई पाव वजन का ढक्कन बाकी बच जाता है, उसकी भी उक्त विधि से भस्म बना कर काम में ला सकते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम ताम्रभस्म विधिः—

शोधितो दरदोत्थो वा सूतो द्विगुणगन्धकः।
तन्मासिं निम्बुनीरेण शृङ्गवेररसेन च ॥१॥
भावयित्वा त्रिधा तेन ताम्रपत्रविनिर्मितम्।
तैलादित्रितये वर्गे सूरणस्य रसेऽपि च ॥२॥
शोधितं सप्तधा सम्यग् मूषायुग्मं प्रपूरयेत्।
विंशतिं मृत्पटान् दत्त्वा शोषयित्वाऽऽतपे भिषक् ॥३॥
सैन्धवेन भृतायाश्च हण्डिकायां निधाय तत्।
पचेच्चुल्ल्यामहोरात्रं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥४॥

रक्ष्यतां यत्नतो ह्येष रसः शूलेभकेशरी ।
तत्तद्योग्यानुपानेन तत्तद्योगेषु योज्यताम् ॥५॥

ताम्रभस्म की पांचवीं विधि—

"रक्तेष्टका निशा धूम" इत्यादि, उक्त प्रकार से शुद्ध किया हुआ पारद अथवा हिंगुलोत्थ पारद दो तोले, शुद्ध गन्धक चार तोले, दोनों की कज्जली बनाकर नींबू व आदी के रस की तीन तीन बार भावना देकर सुखाले। फिर तांबे की चादर के बनाये हुए दो मूषों (कटोरिओं) को तैल, तक्र, गोमूत्र व सूरण (जिमीकन्द) के स्वरस में अग्नि में निष्टप्त करके सात २ बार बुझाले। ऐसा करने से जब कटोरियां शुद्ध हो जांय तब इनमें उक्त कज्जली को भरदे। पश्चात् बालूरेता, चिकनी मिट्टी व नमक, इन तीनों की मुद्रा दोनों कटोरियों के मुख पर लगाकर सम्पुट बनाले। पश्चात् बीस कपरौटी सम्पूर्ण सम्पुट के ऊपर करके धूप में सुखा ले। बाद तीन कपरौटी की हुई हांड़ी में ऊपर नीचे नमक भरकर बीच में सम्पुट रख दे। बाद रोटी बनाने वाले चूल्हे के ऊपर हण्डिकायन्त्र को रखकर आठ पहर मन्द, मध्यम तथा तीव्र अग्नि में क्रमशः पकाले, स्वाङ्गशीतल हो जाने पर निकाल ले। कटोरियों के अन्दर सिन्दूररस मिलेगा, और सम्पूर्ण कटोरियां भस्म रूप में मिलेंगी। फिर सिन्दूररस व ताम्रभस्म दोनों को पीसकर रखले। इस रस का नाम शूलगजकेशरी है। जहाँ ताम्रभस्म देने की आवश्यकता हो वहाँ इस रस को दे सकते हैं ॥१।२।३।४।५॥

षष्ठ ताम्रभस्म विधिः—

शोधितं भावितं चापि मन्दारपयसा त्रिधा
ऊर्द्धाधस्तालकं दत्त्वा ताम्रपत्राणि सम्पुटे, ।
शरावयोःकृत धृत्वा चुल्ल्यां मन्दाग्निना पचेत् ॥१॥
प्रहरत्रितयेऽतीते पुटेद् वाराहसंज्ञके ।
ताम्रभस्मविधावेवं प्रकारा बहवः स्मृताः ॥२॥

ताम्रभस्म की छठवीं विधि—

मंदार के दूध में तीन भावना दी हुई शुद्ध हरिताल को शुद्ध ताम्र पत्रों के नीचे ऊपर दो शरावों (सिकोरे) के बनाये हुए सम्पुट में रखकर बालुरेता, चिकनी मिट्टी व नमक इन तीनों की बनी हुई कीच से शरावों के मुख पर मुद्रा करके सम्पूर्ण सम्पुट पर सात कपरौटी करदे । खूब सूख जानेपर तीन पहर मन्दाग्नि से चूल्हे पर पकाले । बाद बाराहपुट में फूंक दे । स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल ले । इत्यादि ताम्रभस्म के बहुत प्रकार हैं, वैद्यों के दिग्दर्शन के लिए कुछ लिख दिये हैं, अवशिष्ट प्रकार भी रसायनसार के द्वितीय भाग में यथाऽवसर प्रकाशित किये जायँगे ॥१॥२॥

दूषित ताम्रभस्म शुद्धिः—

यदि पर्य्याप्तविशुद्धं कथमपि न कृतं कृतं तु भस्मापि ।
तप्त्वा तद्गोमूत्रे निर्वाप्यं त्वेकविंशतिं वारान् ॥ १ ॥

दूषित ताम्रभस्म शुद्धि—

यदि किसी वैद्य ने ताम्र की पूर्ण शुद्धि नहीं करके ताम्रभस्म बना डाली हो तो, उस ताम्रभस्म को घृतकुमारी के रस में घोटकर टिकिया बनाले । जब टिकिया खूब सूख जाय तब कलछा में रखकर शोधनार्थ भ्राष्टी में तपाकर इक्कीस बार गोमूत्र में बुझादे । ऐसा करनेसे ताम्रभस्म शुद्ध हो जायगी, वान्ति, भ्रान्ति, इत्यादि दोष निवृत्त हो जांयगे ॥१॥

एक बार हमने "सप्तैव वारांश्च पृथक् पृथक् वै" इस ग्रन्थ का ख्याल नहीं करके "त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्यात्स्वर्णादीनां समासतः" इस साधारण नियम के अनुसार ताम्र पत्रों को उक्त तैलादि वस्तुओं में तीन तीन बार ही बुझाकर सात सेर ताम्रभस्म बना डाली; उस भस्म को हमने खाकर देखा तो खाते ही वमन हुआ, और चक्कर आने लगे, तबियत बहुत खराब रही । अतः हमने उस भस्म को घृतकुमारी के रस में टिकिया बना कर २१ बार गोमूत्र में बुझाई, तब शुद्ध हुई ।

टिकिया बनाने का अभिप्राय यह है कि ताम्रभस्म बुझाने से बरबाद न होगी ॥१॥

ताम्रभस्म गुणाः—

गुल्मार्शःक्षयपाण्डुशोथवमनप्लीहज्वरश्वासरुक्
तन्द्रामोहमरुत्कफोदरकृमीन् कुष्ठाग्निमान्द्यभ्रमान्।
हिक्काकासप्रमेहमोहपतनाऽतीसारकायव्यथाः
शौल्वं भस्म निराकरोति विधिवन् निष्पादितं बृंहयेत् ॥१॥

ताम्रभस्म के गुण—

विधि पूर्वक बनाई हुई ताम्रभस्म के सेवन करने से गुल्म रोग, बवासीर, क्षयरोग, पाण्डुरोग, शरीर का सूजना, बमन, प्लीहा (तिल्ली—बरवट), ज्वर, श्वासरोग, तन्द्रा,* मूर्च्छा, बातरोग, कफरोग, उदररोग, कृमिरोग, कोढ, मन्दाग्नि, चक्करआना, हिचकी, खाँसी, प्रमेह, बेहोशी से गिर जाना, अतीसार, शरीर का दुखना, ये सब रोग तत्तद् रोग-नाशक अनुपान के बश नष्ट हो जाते हैं। और शरीर पुष्ट होता है ॥ १ ॥

ताम्रविकार शान्तिः—

श्यामकाऽन्नं सितायुक्तं सितायुक्तं च धान्यकम्।
पीतं दिनत्रयं दोषान् दुष्टताम्रभवाञ्जयेत् ॥ १ ॥

ताम्र के विकारों की शान्ति—

जिस मनुष्य ने "न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते एको दोषो विषे सम्यक् ताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्त्तिताः" इस बचन पर ध्यान न देकर अपनी बेशहूरी से ताम्र का पूर्ण शोधन नहीं करके भस्म बना डाली हो तो उसके सेवन करने से कुष्ठ, जड़ता, फोड़े आदि अनेक व्याधियाँ शरीर में उत्पन्न हो जाती हैं, उनको नष्ट करने के लिये तीन

* जागना भी नहीं, सोना भी नहीं, किन्तु बैठे २ आँख झिपी जाती हों।

दिन तक मिश्री के साथ सांवा अन्न का पतला भात बना कर पिआ करे, और जब प्यास लगे तब धनिये के पानी में मिश्री डाल कर पीआ करे, इसके अतिरिक्त दूसरा खानपान कुछ सेवन नहीं करे। ऐसा करने से सर्व विकार शान्त हो जांयगे। और चन्द्रोदय को सेवन करने से भी दो तीन दिन में सर्व विकार शान्त हो जाते हैं। यह मैंने अपने ही शरीर पर आजमा लिया है। और दूषित ताम्रभस्म की शुद्धि बीस बार गोमूत्र में बुझाने से जो होती है उसको मैं प्रथम लिख चुका हूँ ॥ १ ॥

इति ताम्रभस्म विधिः ।

बङ्ग ग्राह्यता—

स्निग्धश्च शुभ्रं त्वरितं द्रवेच
विनामितं नापि करोति शब्दम् ।
भाराढ्यमेतत्खुरबङ्गमाहुर्मृत्यै
प्रशस्तं त्ववरं ततोऽन्यत् ॥१॥

मारण योग्य राँगा-

मारण के लिये खुरकबंग अच्छी होती है। उसको पहिचान यह है कि बहुत चिकनी, बहुत सफेद, और आंच में तपाने से जल्दी गल जाय, व जिसके पत्र के नवाने से शब्द नहीं हो, तथा बहुत बोझल हो, इसको खुरकबङ्ग [खुरासानीराँगा] कहते हैं। आजकल जिन पर नम्बर पड़े हुए हैं ऐसी चार कूंट की बङ्ग की टिकिया बाजार में मिलती हैं। इसीको सब वैद्य लिया करते हैं और फायदा भी होता ही है। परन्तु वैद्य लोग कहते हैं कि असली बंग नहीं मिलती है। भगवान् जाने असली बंग कैसी होती है ? और बंग के पत्र भी आते हैं। इसको कली भी कहते हैं जिसको बर्तनों पर चढ़ाते हैं ॥ १ ॥

वङ्ग शुद्धिः—

चिश्चाकषायेऽम्बुनि काञ्जिकाया
नैम्बूक नीरेऽथ गवांजलेऽपि ।
चाराम्बुमध्ये स्नुहिकार्क दुग्धे
निशायुते पीतसहाकषाये ॥१॥

शुद्ध्यर्थकोष्ठ्यां परितप्ततप्तं
वङ्गं पृथग् वापय सप्त सप्त ।
तैलादिवर्गे कृतशुद्धि धीमन् !
नैरोग्यसिद्धिर्यदि रोचते ते ॥२॥

बंग की शुद्धि—

इमली की छाल का काढ़ा, कांजी का पानी, नींबू का रस, गोमूत्र, सज्जीखार का पानी, थूहर का दूध और मंदार का दूध (ये दोनों दूध नहीं मिले तो; इनके पत्तों के स्वरस से, अथवा पञ्चाङ्ग के काढ़े से भी काम चल सकता है) और हल्दी के चूर्ण सहित निर्गुण्डी (सम्हालू) का काढ़ा, प्रथक् २ इन आठ चीजों में बंग के शोधनार्थ भट्टी में तपा तपाकर सात सात बार बुझावे । यह बंग की विशेष शुद्धि है । परन्तु यह स्मरण रहे कि तैल, तक्र, गोमूत्र, कांजी, कुलथी का काढ़ा, इन पांचो चीजों में बंग को सात सात बार बुझाकर सामान्य शुद्धि पहले करले । इस प्रकार सामान्य व विशेष दोनों शुद्धियों के यथार्थ सम्पादन करने से बंगभस्म बहुत गुण करती है । आजकल बहुत से वैद्य दोनों प्रकार से पूर्ण शुद्धि इसलिये नहीं किया करते हैं कि बहुत बार बंग के बुझाने से एक सेर बंग का छटांक, आधपाव बंग रह जाता है बाकी सब किट्ट हो जाता है । उस किट्ट से बंग निकालना मुशकिल पड़ता है, इसलिये बहुत वैद्य उस किट्ट को फेंक देते हैं । तब बिचारिये ? एक सेर बंग से आधपाव बंग पाकर कौन सन्तुष्ट होगा ? । और कोई २ वैद्य सामान्य शुद्धि को बिलकुल नहीं

करते हैं और विशेष शुद्धि में भी निर्गुण्डी के क्वाथ में हल्दी का चूर्ण डालकर सात बार या तीन बार मात्र बुझा कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, इस गरज़ से कि बंग बहुत छीजे नहीं। परन्तु ऐसा करने से दोष तो नहीं रहता है, किन्तु गुण वृद्धि नहीं होती है ॥१॥२॥

किट्टाद्वङ्ग निःसारणम्—

किट्टं तदीयं परिशिष्टशिष्टं
कृत्वा विशिष्टं नवसादरेण, ।
गुडार्धमानेन सुकुट्टितेन
सर्वार्थकोष्ठ्या परितापयेत् ॥१॥

तप्तन्तु सम्यक् परिचालयेत
लोहस्य दर्व्याऽथ ततः स्रुतं तत् ।
बङ्गं पृथिव्यां परिपातयेता-ऽथागौरवं
किट्टमपि क्षिपेन्न ॥२॥

किट्ट से बंग निकालने की विधि—

बंग के बुझाते २ जो किट्ट इकट्ठा होता जाय, उसमें से आध सेर किट्ट में कूटा हुआ दो तोला नवसादर और चार तोला गुड़ डालकर उसको लोहे के कलछा में रखकर सर्वार्थकरी भट्ठी में सुलगते हुए पत्थर के कोयलों के ऊपर उस कलछे को रखदे, और जब निष्टप्त हो जाय तब लोहे की कलछी से चलाता जाय। ऐसा करने से किट्ट सब हलका पड़ जायगा और बंग बहकर एक तरफ इकट्ठा हो जायगा। तब कलछे को उठा कर बंग को जमीन में ढालदे, और बिना वजन के किट्ट को भी फेंक न दे। अर्थात् उसको भी घृतकुमारी के स्वरस से टिकिया बांधकर गजपुट में फूँक कर दवा के काम में लावे ॥१॥२॥

एतद्विधानेन शताख्यसंख्ये
संशोधने चाऽपि विधीयमाने ।

बङ्गं त्तयं नैष्यति वापि
शुद्धिर्द्वयात्मिका नाप्यवशेषिता स्यात् ॥३॥

इस प्रकार सो बार भी बंग के शोधन करने पर, बंग भी बहुत नष्ट नहीं होगा, और दोनों प्रकार की शुद्धि में भी संकोच नहीं करना पड़ेगा ॥ ३ ॥

बङ्गादिशोधनयन्त्रस्याऽऽवश्यकता—

बङ्गं च नागो जसदश्च धातु-
रुच्चाटिरूपः परिशुद्धिकाले ।
समुच्छलन् हन्ति भिषक्कपालं
ब्रवीम्यतो यन्त्रविधिं विशुद्ध्यै ॥१॥

बंग आदि शोधने के लिये यन्त्र की आवश्यकता—

रांगा, सीसा, जस्ता आदि जो उछलने वाली धातु हैं उनकी शुद्धि करते समय वे उछल कर वैद्य के माथे पर न पड़ें इस वास्ते शोधनार्थ यन्त्र विधि लिखता हूँ ॥ १ ॥

बङ्गादिशोधकं पिठरनामकं यन्त्रम्—

लोहस्य कुण्डं सुविशोधनीय-
धात्वष्टगुण्याम्बुमितं विधाय, ।
मुष्टेर्मितच्छिद्रयुतेन सम्यक्
पिधानकेनाऽऽशु पिधापनेच, ॥१॥
उद्घाटने वा सुशकेन तस्य-
च्छिद्रान्तदेशोदरानिम्नता स्यात् , ।
तथा यथा बंगमुखद्रुतिः
स्यात्स्रुत्वा विशोदुध्यद्रवमध्यपाता ॥२॥

बंग आदि धातुओं के शोधने के लिये पिठरयन्त्र—

जिसमें शोधनीय धातु से अठगुना पानी अमावे ऐसा एक लोह का तसला लेवे। और उस तसला का ढक्कन उसी के नाप का ऐसा हो जिसके ढकने में या उठाने में विलम्ब न लगे। अर्थात् न बहुत सटा हुआ हो, और न बहुत ढीला हो। और उस ढकने में इतना बड़ा छिद्र रहे जिसमें मुट्ठी अमाय (घुस) जाय। उस छिद्र के किनारे को हथौड़ा से ठोक कर कुछ नीचा करदे, जिस रास्ते से बङ्ग आदि की द्रुति बह कर तसला में भरे हुए द्रव पदार्थ (तैल, तक्र आदि) में पड़े ॥ १ ॥ २ ॥

पिधानरन्ध्रं पिदधीत येन
समुच्छलन्ती द्रुतिरंगभंगम् ।
विधातुमीष्टे न भिषग्वरस्य
नचापि गन्तुं बहिराशु कुण्डात् ॥३॥

उस छिद्र को किसी साफ पत्थर या शिला से ढक दे जिसमें उछलती हुई रांगे आदि की द्रुति वैद्यराज की आँख नाक को न फोड़े, और बाहर भी न जा सके ॥३॥

निष्टप्तबंगाश्रितदर्विकान्तं
पिधानकोणे विनिधाय वैद्यः ।
निरन्तरं तच्च निपातयेत
निष्टप्तबङ्गं पथि मन्दधारम् ॥४॥

अग्नि में तप्त हुए बंग के कलछे के पेंदे को ढक्कन के किनारे पर रखकर उसी रास्ते से निरन्तर मन्दी धार से द्रुत बङ्ग को डालता चला जाय (जिसको ठोक कर नाली के तरह नीचा बनाया है) ॥४॥

यन्त्रान्तरुद्घोषपरेऽपि बंगे
बिभेतु नैवापि निवर्त्तताश्च ।

उद्घाट्य रन्ध्रं खजशिष्टकिट्टं
विशोधनीयं च निपातयेत ॥५॥

बङ्ग को नली के द्वारा तसला में डालते समय में यदि बङ्ग तसला के अन्दर उछलता रहे और शब्द करता रहे तो भी वैद्य डरे नहीं, और बराबर डालता चला जाय। जब सब बङ्ग को डाल चुके, और कलछे में बंग का मैल बचे तब ढक्कन के छिद्र के ऊपर से शिला को हटा कर उस किट्ट (मैल) को भी ढक्कन के छिद्र द्वारा तैलादि पदार्थ में डाल दे, जिसमें वह भी शुद्ध हो जाय ॥५॥

उद्धृत्य कुण्डादधिदर्वि बङ्गं
निधाय संशोधनकोष्ठिकायाम् ।
तप्तं च पूर्वोक्तविधानरीत्या
पुनः पुनः शोधयतां यथेष्टम् ॥६॥

बाद उस लोह के तसले से बङ्ग को और किट्ट को निकाल कर कलछे में भरदे, और जिसमें शोधन किया है उस तैल आदि पदार्थ को बदल डाले। बाद पूर्व की तरह कलछे को शोधनार्थ भट्ठी में रखकर तपावे। परन्तु इतनी बात यहाँ विशेष समझनी चाहिये कि तैल में डालने से बंग आदि कोई धातु उछलती नहीं है ॥६॥

ख्यातं च यन्त्रं पिठराभिधानं
बंगादिसंशुद्धिविधानदक्षम् ।
सादृश्यमस्मिन् पिठरेण यस्माद्-
ऽन्वर्थ संज्ञां च बिभर्ति तस्मात् ॥७॥

यह यन्त्र एक पिटारी की तुल्य बनाया गया है इसी वास्ते इसका नाम पिठरयन्त्र रखा है। इस यन्त्र में बङ्ग आदि शोधन करने से कोई पदार्थ छीजता नहीं है, और वैद्यराज के अङ्ग भङ्ग की भी शङ्का नहीं है। इस यन्त्र से एक अनभिज्ञ पुरुष भी बड़ी आसानी के साथ बङ्ग आदि की शुद्धि कर सक्ता है ॥७॥

वैद्यानां विवादाः—

केचित्तु वैद्या इह संगिरन्ते
बंगादिधातुः परिशुद्धिकाले, ।
अवाप्य धात्वन्तरयोगमाशु
स्वीयं फलं संविदधाति नेति ॥१॥

वैद्यों के परस्पर विवाद—

लोह पात्र में बङ्ग की शुद्धि करने के विषय में कितने एक वैद्यों का मत है कि बङ्ग आदि के शोधने के समय बङ्ग आदि धातुओं का यदि धात्वन्तर के साथ सम्बन्ध हो जाय तो उन बंग आदि की बनाई हुई भस्म अपना पूरा फल नहीं कर सकती। इसका तात्पर्य यह है कि जब बङ्गादि को तपा तपा कर तैलादि वर्गों में बुझाते हैं, उस समय उनके प्रत्येक अवयव समस्त औषधियों के गुण ग्रहण करने में उन्मुख हो जाते हैं, इसीलिये बङ्ग आदि के दोष निकल जाते हैं और गुण वृद्धि होती है। ऐसी दशा में जिस लोह पात्र में बङ्ग आदि का शोधन किया है उस लोह पात्र के गुण को भी बंग अवश्य खींचेगा ॥१॥

रोगी यथा वान्तिविरेचकाले
संसेवते पथ्यमुताप्यपथ्यम् ।
फलं तदीयं दृढभूमि दृष्टं
तथैव बंगादिभिरन्ययोगः ॥२॥

जैसे वमन विरेचन के समय में रोगी मनुष्य जिस पथ्य या अपथ्य का सेवन करता है तो उसीका फल शरीर में दृढ़ (कालान्तर स्थायी) हो जाता है। अर्थात् यदि उस समय रोगी पथ्य पालन करेगा तो चिरकाल तक नीरोग रहेगा। और यदि कुछ भी कुपथ्य सेवन करेगा तो चिरकाल तक अधिक रोगी रहेगा। तैसे ही बंग आदि के साथ अन्य धातु का सम्बन्ध भी अपथ्य रूप है, और मृत्पात्र का योग पथ्यात्मक है ॥२॥

तन्नातियुक्तं तु वदन्ति केचि-
ल्लोहस्य दर्व्यां परितापयन्ति ।
सर्वेऽपि वैद्याःपरिवापयन्ति
लोहस्य पात्र्यां सकलं च धातुम् ॥३॥

परन्तु कोई वैद्य इस उक्त मत का आदर नहीं करते हैं । क्योंकि सभी वैद्य लोह के कलछे में बंग को तपा तपा कर तैलादिवर्ग में बुझाया करते हैं । यदि लोह का सम्बन्ध बंग में अपथ्य जनक होता तो सभी वैद्य लोह के कलछे में क्यों तपाते ? और लोह के तसले में क्यां बुझाते ? ॥३॥

ब्रूमोऽधिकं किं ननु सूतराजो-
ऽप्यामर्द्यते पश्यत लोहखल्वे ।
अतो न बङ्गं भजतेऽन्यधातोर्योगेन
दोषानिति सम्प्रदायः ॥४॥

अधिक क्या कहें धातुओं की बात तो छोड़ दीजिये पारद का मर्दन भी लोह की खरल में महर्षियों ने लिखा है । जैसा कि "खल्वो लोहमयः श्रेष्ठस्तस्माच्छ्रेष्ठस्तु सारजः । कान्तलोहमयस्तस्मान्मर्दकश्च तथा विधः । अभावे लोहखल्वस्य स्निग्धः पाषाणजः शुभः तादृश-स्त्वच्छमसृणमर्दकेन समन्वितः ।" अर्थात् पारद आदि घोटने के लिये साधारण लोह का भी खरल अच्छा होता है, उससे भी बढ़कर फोलाद लोह का होता है, और उससे भी उत्तम कान्त लोह का होता है । और खरल का दस्ता भी इसी प्रकार समझ लेना । लोह के खरल के अभाव में चिकने पत्थर का बना हुआ खरल वो दस्ता अच्छा होता है । इस प्रमाण से सिद्ध हुआ कि बंग आदि किसी धातु के साथ लोह का सम्बन्ध अपकारकारी नहीं है, ऐसा वैद्यों का सम्प्रदाय है ॥४॥

वयश्च दोषं ननु कश्चनापि
मन्यामहे योगनिबन्धनं तत् ।

लोहस्य बंगे तु तथापि यन्त्रं
संब्रूमहे तोषहिताय मार्तम् ॥५॥

मैं भी जहाँतक जानता हूँ बङ्ग आदि सब धातुओं के लोहे के कलछे में तपाने से और लोहे के बने हुए पिठरयन्त्र में बुझाने से कोई दोष नहीं है। तो भी जो लोग बङ्ग, नाग आदि धातुओं का लोहे के साथ सम्बन्ध अच्छा नहीं मानते हैं उनके सन्तोषार्थ मट्टी का पिठर-यन्त्र लिखता हूँ ॥५॥

द्वितीय पिठरयन्त्रम्—

हण्डीगलेष्वष्टदशाः प्रबध्य
त्रिमृत्पटा लोहमयैश्च सूत्रैः।
गुञ्जार्धमानाऽधररन्ध्रयुक्तैः
समृत्पटैश्चापि पिधानकैस्ताः, ॥१॥
मुखेषु सम्यक् पिदधीत
यन्त्राण्येतानि सर्वाणि विशुद्धये स्युः।
बंगादितापद्रवयोग्यधातो
रुचाटिरूपस्य निरोधकानि ॥२॥

दूसरा पिठरयन्त्र—

मट्टी की आठ दश हांड़ियों पर तीन २ कपरमिट्टी करले, और हांड़ियों के गलों को चार पाँच लपेटा देकर लोहे के तारों से बाँध दे। और उन्हीं हांड़ियों के नाप के मट्टी के सकोरों पर तीन २ कपरमट्टी करदे, और उनके बीच में आधी घूँमची (चिरमिठी) के समान (जिन छिद्रों से छोटी ज्वार निकल जाय) छिद्र करदे, उन ढकनों से उन हांड़ियों को ढककर रख छोड़े। ये सब हांड़ियाँ उछलने वाली बङ्ग, नाग आदि धातुओं के शोधने में परम उपयोगी हैं। इन हांड़ियों के ढकनों के छिद्र के ऊपर बङ्ग आदि धातुओं को तपाकर डालने से बहुत पतली, धीरे से, बङ्ग आदि धातु, हाँड़ी के अन्दर भरे हुए क्वाथ,

स्वरस आदि द्रव्य में गिर कर ठंडे हो जाते हैं। इस लिये उछल नहीं सकते ॥१॥२॥

समृत्पटास्वेव च मृन्मयीषु
हण्डीषु बङ्गं परितापयेत।
सन्दंशकेनाप्यवतारयेत बङ्गं
शरावे परिपातानार्थम् ॥३॥

बङ्ग आदि धातुओं के तपाने के लिये भी दस पाँच हांड़ियों पर कपरमिट्टी करके रख छोड़े। उन हांड़ियों में बङ्ग को रखकर दम-चूल्हे के ऊपर हांड़ी को रखकर बङ्ग को द्रुत करले। जब बङ्ग द्रुत हो जाय तब हांड़ी को सँड़सी से उतार कर हांड़ी के ढक्कन के छिद्र के ऊपर धीरे धीरे बङ्ग को बारीक धार से डाले। बङ्ग भी छिद्र द्वारा निकल कर क्वाथ आदि में "सुन-सुन" शब्द करता हुआ ठंढा हो जायगा ॥३॥

यन्त्रस्थमम्भः परिवर्तयेत
पुनःपुनश्चान्यदपि क्षिपेच्च।
काथाऽबहुत्वे चरमे तु पाते
नवः कषायः परिवर्त्य एव ॥४॥

हांड़ी के अन्दर जो क्वाथ आदि द्रव पदार्थ है, जिसमें बङ्ग को बुझाया है उसको नवीन बदलता जाय। यदि कई बार बदलने लायक क्वाथ, स्वरस आदि नहीं संगृहीत हो तो जब सम्पूर्ण बङ्ग की शुद्धि हो चुके तब अखीर के बुझाव में तो जरूर ही कषाय को बदल दे ॥ ४ ॥

किट्टाच्च बङ्गं परिकर्षयेत तप्त्वा
गुडार्धे नवसादरे च।
हण्डी यदि स्यात्परिभज्यमाना
चान्या भिषग्भिः परिवर्तनीया ॥५॥

और जो जो बङ्ग, नाग का किट्ट बच जाय उसको भी निष्टप्त करके गुड़ और गुड़ से आधा नवसादर दोनों का कल्क डालकर गीली लकड़ी के डण्डा से चलावे। जब किट्ट से बह कर बङ्ग एक तरफ हो जाय तब हांड़ी को संड़सी से उतार कर बङ्ग को पृथ्वी में ढालदे। ठंडे होने पर इस बङ्ग को भी पूर्व की तरह बुझा २ कर शुद्ध करले।

यदि अधिक आँच पाकर अथवा बङ्ग के चटकने से हांड़ी फूट जाय तो उन हांड़ियों में से तुरन्त बदल दे। इस प्रकार बङ्ग शुद्धि करने में किसी धात्वन्तर का भी सम्पर्क नहीं होता, और कुछ बङ्ग के उछलने का भय भी नहीं है। इस यन्त्र से भी हमने बीसों बार बङ्ग आदि का शोधन किया है। शास्त्रों में बङ्ग आदि का शोधन एक दो पदार्थों में भी लिखा है वैसा करने से भी कुछ दोष नहीं रहता परन्तु इतना शोधन गुण वृद्धि के लिये किया जाता है। वैद्य लोग अधिक शुद्धि इस भय से नहीं करते हैं कि बङ्ग उछल कर शरीर का नुकसान करेगा अथवा शोधते शोधते सेर का छटांक—आधपाव ही बङ्ग हाथ लगेगा, बाकी किट्ट फेंक देना ही पड़ेगा। क्यों कि किट्ट से बङ्ग निकालना बहुत थोड़े मनुष्य जानते हैं। परन्तु हमारे कहे हुए शोधन में पूर्वोक्त भय की आशङ्का हो ही नहीं सक्ती ॥ ५ ॥

बङ्ग मारणम्—

कटाहिकायामुत मृत्तिकायाः
कुण्डे द्रुतं बंगमयःस्वजेन।
निम्बस्य दण्डेन यवानिकाया
दत्त्वाऽल्पभागं परिमर्दयेत ॥१॥

बंगभस्म विधि—

लोहे की कड़ाही में अथवा मट्टी के कूंड़े में (परन्तु कूंड़े पर तीन चार कपरमिट्टी करले) बङ्ग को द्रुत करके थोड़ी २ अजवायन डालता जाय और लोहे की कलछी से अथवा नीम की गीली लकड़ी

के डंडा से चलाता जाय। गीली लकड़ी के डंडे को लेने का यह अभिप्राय है कि–अग्नि के ताप से डंडा जल्दी जले नहीं। इस प्रकार एक सेर बङ्ग की भस्म एक सेर अजवायन में हो जाती है ॥ १ ॥

अश्वत्थचिञ्चान्यतरस्य चर्म-
चूर्णेन वा बंगसमेन यामौ ।
शीतं पटेन प्रविगालितं तद्बंगोद्भवं
भस्म च योगवाहि ॥ २ ॥

अथवा पीपल की छाल यद्वा इमली की छाल के चूर्ण को थोड़ा २ बुरकता जाय और पूर्व की तरह लोह की कलछी से अथवा नीम के डंडे से चलाता जाय, तो एक सेर चूर्ण से एक सेर बङ्ग की भस्म दो पहर में हो जाती है। जब बङ्ग की कड़ाही ठंडी हो जाय तब बङ्ग को कपरछन करके रख छोड़े। यह योगों में डालने के लिये परम विशुद्ध भस्म है ॥ २ ॥

गालनावशिष्ट चूर्ण व्यवस्था—

वशिष्टचूर्णं परिमर्दयेत
भूयोऽपि चिञ्चादिजचर्मचूर्णैः ।
भूयोऽवशिष्टं त्वनुसन्दधीत
तालादियोगेन मृतिं तदीयाम् ॥१॥

वंगभस्म के छानने से बचे हुए चूर्ण की व्यवस्था—

पूर्वोक्त तीनों प्रकार से की हुई बङ्गभस्म को कपरछन करने पर जो मोटा चूर्ण बच रहे उसको फिर कड़ाही में डालकर तालादि-भस्मकरी भट्ठी पर तपावे ओर थोड़ा २ पूर्वोक्त तीनों का चूर्ण डालता जाय, और कलछी से चलाता जाय। इस प्रकार तीन चार घण्टे करने से अवशिष्ट चूर्ण की भी भस्म हो जायगी। फिर उस भस्म को कपरछन करले। यदि छटांक आधी छटांक चूर्ण और बच रहे तो फिर उसके पीछे नहीं पड़े, किन्तु हरिताल आदि के सम्बन्ध से जिस

भस्म को मैं कहने वाला हूँ उस विधि से इस चूर्ण को भी भस्म करले। ऐसी २ बहुत विधियों से वैद्य लोग बङ्गभस्म किया करते हैं। जैसे-घूमची, मेंहदी, भांग, आदि के योग से भी पूर्व प्रकार से भस्म बन जाती है। और कोई २ वैद्य दस सेर के दो उपलों के बीच में पूर्वोक्त चूर्ण को बिछाकर बीच में बङ्ग के पत्रों को रखकर गोबर की मुद्रा लगाकर फूँक देते हैं। स्वाङ्गशीतल होने पर धीरे २ बङ्ग की खीलों को बीन लिया करते हैं। परन्तु इस विधि से बङ्ग कुछ छीज भी जाती है। इसी प्रकार दस सेर के एक उपला पर हरिताल का चूर्ण बिछाकर उसके ऊपर बंग पत्र रखकर हरिताल के चूर्ण से उनको ढककर ऊपर से उतना ही बड़ा दूसरा उपला ढककर गोबर की मुद्रा लगाकर फूंक देने से भी बंगभस्म हो जाती है। परन्तु इस विधि में तो हरिताल का भी नुकसान है। हां! बंगभस्म तो दो चार पुट देने में उत्तम बन ही जाती है। इत्यादि ॥ २ ॥

द्वितीय बङ्गभस्म प्रकारः—

तद्बङ्गभस्माम्बुनि निम्बुजाते
तालस्य चूर्णेन समेन मर्दत्।
दिनद्वयं श्लक्ष्णतदीयकल्कं
शङ्खे सुशुभ्रे परिपूरयेत ॥ १ ॥

द्वितीय बंगभस्म विधि—

ऊपर कही हुई बंगभस्म के समान शुद्ध हरिताल ले दोनों को नींबू के रस के साथ दो दिन तक घोटे। जब खूब चिकना कल्क हो जाय तब अति श्वेत वर्ण वाले शंख में भर दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि कांजी में अथवा सैन्धवलवण युक्त गोमूत्र में तीन पहर औटा कर शंख को प्रथम शुद्ध कर ले ॥१॥

दत्त्वाऽथमुद्रां दृढसंज्ञयोक्तां
संशोष्य हण्ड्यां निदधीत शङ्खम्।

विधाय मुद्रामथ हण्डिकायां
मध्याग्निना चुल्लिकया पचेत ॥२॥
यामेष्वतीतेषु चतुर्षु हण्डीं
पुटेद् गजाख्ये हिमसुद्धरेत ।
महोग्रवीर्यं स्वगुणेषु भस्म
प्लीहाग्निमान्द्यादिनिवर्त्तनाय ॥३॥

बाद शंख के मुख को उसके नाप के ठिकड़े से ढांककर दृढ़मुद्रा करदे । जब मुद्रा सूख जाय तब उस शंख को कपरौटी की हुई हांडी में रखकर हांड़ी पर भी मुद्रा करके सुखा ले । उस हांड़ी को "तालादिभस्मकरी" भट्ठी पर रखकर चार पहर की मध्यमाग्नि दे । जब जाने की अब हण्डिकायन्त्र आंच को सह गया, फूटने की आशङ्का नहीं है तब उस हण्डीयन्त्र को गजपुट में फूँक दे । और स्वाङ्गशीत होने पर निकाल ले । यह बंगभस्म प्लीहा, मन्दाग्नि, श्वास, कास आदि रोगों में अच्छा काम करती है । इस बंगभस्म के साथ शङ्खभस्म को भी घोटले ॥ २ ॥ ३ ॥

तृतीय बङ्गभस्म प्रकारः—

बङ्गे द्रुते तत्समसूतराजं
संपात्य पिष्टिं समतालचूर्णैः ।
नैम्बूकनीरेण विमर्दयेत दिनैक-
मात्रं च विधाय चक्रीम्, ॥ १ ॥

तृतीय बंगभस्म विधि—

आधपाव बंग को शराव (सकोरा) में रखकर अग्नि पर तपा कर द्रुत करे, तिसमें आधपाव शुद्ध पारद डाल दे । इस पावभर पिट्ठी को खरल में डालकर इसमें कपड़े से छाना हुआ शुद्ध हरिताल का पावभर चूर्ण भी डालकर नींबू के रस के साथ चार पहर घोटे, और सबकी एक टिकिया बनाले ॥ १ ॥

संशोष्य घर्मे परिलग्नचेताः
खट्वांगयन्त्रेण पचेत यामौ।
एवं त्रिवारेण परं विशुद्धं
संजायते भस्म निरुत्थरूपम् ॥ २ ॥

उस टिकिया को खूब सुखाकर तथा डमरूयन्त्र में रखकर खूब सावधानी के साथ दो पहर की आंच दे। स्वाङ्गशीतल हो जाने पर डमरूयंत्र की ऊपर वाली हांड़ी में लगे हुए पारद और हरिताल के सत्त्व को जुदा निकाल ले, और नीचे की हांड़ी में लगी हुई वंगभस्म को निकाल कर उसमें आधपाव पारद हरिताल की कज्जली डालकर नींबू के रस के साथ फिर घोटे। बाद पूर्व की तरह टिकिया बनाकर डमरूयन्त्र में पकावे। ऐसे तीन बार करने से बंग की निरुत्थ भस्म होती है और हरिताल, पारद भी व्यर्थ नहीं जाता ॥ २ ॥

यन्त्रोर्द्ध्वहण्ड्यास्तललग्नतालसूतौ
च लभ्यौ परमं विशुद्धौ।
याभ्यां समानं परिमर्द्य गन्धं
सिन्दूरसंज्ञं रसमापचेत ॥ ३ ॥

फिर उन दोनों के समान शुद्ध गंधक डालकर कज्जली करले, और सिन्दूररस की विधि से सर्वार्थकरी भट्ठी पर या चन्द्रोदयादि भट्ठी पर पकाकर सिन्दूररस बनाले ॥ ३ ॥

श्वासं च कासं क्षयरोगमेतत्
क्षौद्रेण लीढं सततं निहन्ति।
सिन्दूरनामापि विसूचिकादे-
र्द्वित्र्यादिवारेण निराकरोति ॥४॥

इस प्रकार बनी हुई बंगभस्म सहद के साथ चाटने से श्वास, कास और क्षयरोग को दूर कर देती है। और उक्त विधि से बनाया हुआ तालसिन्दूर भी २ या ३ ही बार आदी के रस के साथ चाटने से हैजा, ज्वर आदि रोगों को दूर कर देता है ॥ ४ ॥

चतुर्थ बङ्गभस्म प्रकारः—

बङ्गं प्रविष्टे खलु सूतराजे
शिलालमल्लानि तयोः समानि ।
सर्वेण तुल्यं परिशुद्धगन्धं
गन्धार्द्धकं हिङ्गुलमाददीत ॥ १ ॥

बंगभस्म की चौथी विधि—

पावभर बङ्ग को अग्नि पर द्रुत करके उसमें पावभर पारा डाल दे। बाद मैंनशिल, हरिताल और संखिया, इनकी शुद्धि करके आध सेर ले और पूर्वोक्त बंग पारद की पिट्ठी में डाल दे। बाद सबके समान (एक सेर) शुद्ध गंधक और पावभर हिङ्गुल डालकर कज्जली करले ॥१॥

नैम्बूकनीरेण दिनत्रयं च
सम्मर्द्य पिष्टिं परिशोषयेत ।
शुष्कं च चूर्णं निखिलं निदध्यात्
खट्वाङ्गयन्त्रे नलिकायुतेऽपि ॥ २ ॥
दिनद्वयं तीव्रहविर्भुजा तद्
यन्त्रं पचेद् गन्धकजारणान्तम् ।
बंगेश्वरं यन्त्रनले लभेत गले
च सिन्दूररसं महोग्रम् ॥ ३ ॥

पश्चात् नींबू के रस के साथ तीन दिन तक घोटे। जब यह पिट्ठी घोटते २ सूख जाय तब इस सवा सेर चूर्ण को नलिकाडमरूयंत्र में रखकर वज्रमुद्रा कर दे, पश्चात् दो अहोरात्र तक तालादिभस्मकरी भट्ठी पर रखकर जब तक गन्धक जारण हो तब तक तीव्र अग्नि देकर पचावे। ऐसा करने से बंगेश्वर रस नलिकाडमरूयंत्र की नीचे की हांडी में तैयार मिलेगा, और उर्द्धयंत्र के ऊपर की हांडी में अति उग्रवीर्य्य विचित्र सिन्दूररस मिलेगा ॥३॥

नेदं भजेदुत्थितिमत्र मित्रैः
पञ्चात्मकैः पाचनयोगतोऽपि ।
स्वीयेषु वर्गेषु महोग्रवीर्यौ रसा-
विमौ सूष्णतमौ च विद्यात् ॥४॥

इस बंगभस्म को मित्रपंचक (सहत, सुहागा, घी, घूंघची, भैंसा-गूगल) के साथ घोटकर गजपुट में देने पर भी उज्जीवन नहीं होगा। ये दोनों रस (बंगेश्वर और सिन्दूररस) अपने २ वर्ग में बहुत प्रशंस-नीय हैं, और अति उष्ण हैं ॥ ४ ॥

बङ्गभस्मनः पञ्चम प्रकारः—

सूतेन बंगस्य करोतु पिष्टिं
तुल्येन तालेन च गन्धकेन ।
मसि विधेयाऽथ च पञ्चकृत्वो
निम्बुद्रवैर्मर्दितशोषिताच ॥ १ ॥

बंगभस्म की पांचवीं विधि—

एक छटाँक बंग को अग्नि पर द्रुत करके उसमें एक छटाँक हिङ्गुलोत्थ पारद छोड़ दे (इस पिट्ठी को नींबू के रस के साथ तीन दिन तक घोटकर तथा पानी से धोकर खटाई को निकाल दे ऐसा भी किसी वैद्य का मत है) व एक छटाँक शुद्ध गन्धक और हरिताल का चूर्ण डालकर कज्जली करले। बाद नींबू के रस की पाँच भावना देकर खूब सुखाले ॥१॥

पचेत कूप्यां परिपाकपश्यः
शलाकया तत् त्रिचतांश्च यामान् ।
आस्वर्णकान्तेर्विरमेत्क्रियाया
उद्घाटयेच्छीतलशुद्धयन्त्रम् ॥ २ ॥

इस कज्जली को शीशी में भरकर बालुकायंत्र में रखकर तीन चार पहर की आँच दे, परन्तु वैद्य महाशय शीशी में लोह की शलाका

डालकर पाक परीक्षा करता रहे । जब शलाका के ऊपर स्वर्ण के सदृश कान्ति देखे तब आँच लगाना बन्द करदे, और स्वांगशीत होने पर शीशी को तोड़कर बहुत बुद्धिमानी के साथ रस को निकाल ले जिसमें कि काँच के टुकड़े इसमें न मिल जाँय ॥ २ ॥

तूलेन तुल्यं रसमाददीत
समुच्छ्वसद्रूपमथापि चान्यम् ।
गले विलग्नं खलु कूपिकाया
गृह्णातु सिन्दूररसं च वैद्यः ॥ ३ ॥

यह बंगभस्म रुई के समान फूली हुई मिलेगी । और शीशी के गले पर सिन्दूररस भी कुछ मिलेगा ॥३॥

बङ्गभस्मनः षष्ठः प्रकारः—

यवानिकाभिः कृतभस्मवङ्गं
द्वित्रैः पलैर्ग्राह्यमथो विशुद्धम् ।
तालस्य चूर्णं च समं विमर्द्दैन्म-
न्दारदुग्धेन दिनानि पञ्च ॥१॥

बंगभस्म का छठवाँ प्रकार—

पूर्वोक्त विधि के अनुसार अजवायन से बंगभस्म कर ले । बाद दो तीन पल प्रमाण (१० तोले) बंगभस्म और शुद्ध हरिताल का चूर्ण भी (कपरछन किया हुआ) १० तोले दोनों को खरल में मंदार के दूध के साथ पाँच दिन तक घोटे ॥१॥

एकाञ्च चक्रीम्प्रविधाय तेन
कल्केन सूर्य्यातपसंविशुष्काम् ।
सुधाभृते खल्वसुधादियन्त्रे
चुल्ल्यां पचेदष्टदिनानि काष्ठैः ॥२॥

बाद उस कल्क की एक टिकिया बनाले और उसको घाम में पाँच छः दिन तक खूब सुखा ले पश्चात् बिना बुझा हुआ व कपरछन किया

हुआ चूना लोहे की खरल में (खल्व सुधादि यन्त्र विधि से) भर दे और उस यन्त्र पर तीन कपरमिट्टी कर सुखाले उस यन्त्र को लोहे के बड़े चूल्हे पर (जो चित्र में दिखाया गया है) रख कर उसके ऊपर बीस सेर पक्के की एक शिला रख दे जिसमें अग्नि का वेग पाकर हरिताल उड़ने न पावे ॥ २ ॥

प्रारम्भयामद्वयमात्रकाले
तिष्ठन् स्वयं तद् भिषगीक्षमाणः ।
शिलां समुत्थामवधानतोऽयं
शनैश्शनैः खल्वमुखं नयेत ॥३॥

चूल्हे में अग्नि लगाकर शुरू-शुरू में दो पहर तक वैद्य महाशय यन्त्र को देखते हुए स्वयं बैठा रहे। जब अग्नि के वेग को पाकर अङ्गुल दो अङ्गुल शिला ऊँची उठने लगे तब बहुत सावधानी के साथ धीरे धीरे शिला को खरल के मुख पर बैठा दे। इसी प्रकार जब जब शिला उठने लगे तब तब उसको खरल के मुख पर जमाता रहे। ऐसा करने से दो पहर के बाद शिला उठती बन्द हो जायगी ॥ ३ ॥

पुनश्च बालोऽपि ददीत वह्निं
न विभ्यदस्मान्न च शङ्कमानः ।
रात्राविदं यन्त्रमुपेक्ष्य याम-
त्रयं शयीताऽपि च वैद्यवर्य्यः ॥ ४ ॥

फिर बिना भय के और बिना किसी शङ्का के साधारण बालक भी अग्नि लगाता रहे। इस प्रकार दिन भर अविच्छिन्न रूप से (लगातार) अग्नि दी जाय और रात्रि को चूल्हे में सुलगते हुए कोयलों को छोड़ कर तीन पहर तक निद्रा भी ले सकते हैं अर्थात् रात्रि में चूल्हे के पास बैठने की कोई आवश्यकता नहीं। यन्त्र ठंडा हो जाय तो भी कुछ चिन्ता नहीं ॥ ४ ॥

इत्थं च यन्त्रे परिपच्यमाने
तीव्राग्निनाष्टौ दिवसांश्च शीतम् ।

समुद्धरेच्चाप्यवधानचेताः
सुधामपाकृत्य लभेत चक्रीम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार चार पहर दिन में और एक पहर रात्रि में अग्नि लगाते लगाते जब आठ दिन बीत जाँय तब यन्त्र को उतार कर ठंडा करदे जब बिलकुल यन्त्र ठंडा हो जाय तब खूब होशियारी से धीरे धीरे चूने को खुरच खुरच कर निकाल दे और चूने के बीच में पकी हुई सफेद वर्ण की टिकिया को निकाल ले ॥ ५ ॥

मान्द्येन वह्ने रथ चेत्कथञ्चि-
च्चक्र्यन्तरीद्दयेत च कालिमा तम् ।
निराचिकीर्षुः पुनरप्यहस्ता-
मेकं पचेत्पूर्ववदेव यन्त्रम् ॥ ६ ॥

कदाचित् मन्दी अग्नि लगने के कारण टिकिया अन्दर से कुछ काली निकले तो उस टिकिया को वैसी की वैसी ही फिर उसी चूने के अन्दर रख कर पूर्व ही की तरह एक अहोरात्र की आँच दे ॥ ६ ॥

इत्थं निरुत्थं कुरु वङ्गभस्म
श्वेतं क्षयश्वासरुजापहारि ।
व्याघ्रीजचूर्णैस्समभाक्षिकेण
लीढन्तु सद्यः फलदायि दृष्टम् ।
आवल्यमेहज्वरपीडितानामा-
श्वासहेतुर्दहतामहेतुः ॥ ७ ॥

यह वङ्गभस्म हरिताल भस्म से मिली हुई निरुत्थ (मित्रपञ्चक से नहीं जीने वाली) सफेद वर्ण की बनेगी । यह भस्म कटेरी (भट-कटैया) के कपरछन किये हुए चूर्ण और सहत के साथ दो दो रत्ती सायंकाल प्रातः काल चाटने से श्वास कास में बहुत शीघ्र फलदायक होती है । और कमजोरी, प्रमेह, ज्वर आदि रोग में भी योग्यानुपान के अनुसार रोगियों को अच्छा सन्तोष करती है । जैसे—मलाई के

साथ देने से कमजोरी को, सहत इलाइची के साथ देने से प्रमेह को, पीपल सहत के साथ देने से ज्वर को दूर कर देती है। परन्तु इसका गरम स्वभाव होने से दाह रोगी को फायदा नहीं करती है यदि दाह रोग में भी इसको देना हो तो सितोपलादि चूर्ण के साथ दे।

सितोपलादि चूर्ण को सब ही वैद्य जानते हैं, उसको जानने का सब से सुगम उपाय यह है कि सि–तो–प–ला–दि–ये पाँच अक्षर हुए और इसमें दवा भी पाँच ही हैं और पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर आधी आधी ली जाती हैं जैसे "सि" शब्द से सिता (मिश्री) सोलह तोला। "तो" शब्द से त्वगाक्षीरी (बंशलोचन) आठ तोला। "प" शब्द से पिप्पली (छोटी पीपल) चार तोला। "ला" शब्द से लायची (छोटी इलायची के दाने) दो तोला। "दि" शब्द से दालचीनी एक तोला लिये जाते हैं ॥ ७ ॥

बङ्गभस्मनः सप्तमः प्रकारः–

बङ्गेन तुल्यं च विमर्द्य तालं
मन्दारदुग्धेन करोतु चक्रीम् ।
खरातपे तां परिशोष्य सम्यक्
मन्दार दुग्धस्य करोतु लेपम् ॥

बङ्गभस्म की सातवीं विधि—

छठवीं विधि के अनुसार बङ्गभस्म आध पाव और शुद्ध हरिताल का चूर्ण (कपरछन किया हुआ) आध पाव दोनों को मंदार के दूध के साथ घोट कर एक टिकिया बनाकर खूब सूखाले। उस टिकिया को मंदार के दूध में डुबो दे जब दूध गाढ़ा हो जाय तब उस दूध को उसी टिकिया के चारों तरफ चिपका दे जब टिकिया सूख जाय तब फिर दूध में डुबो दे। इस प्रकार टिकिया के चारों तरफ एक एक अङ्गुल गहरा दूध का लेप होने पर एक महीना तक उस टिकिया को जमीन में गड़वा दे॥ १ ॥

एकाङ्गुलोच्छ्रायमथो पृथिव्यां
निखानयेन्मासमितं तु कालम् ।
षष्ठोक्तयन्त्रे निदधीत चक्रीं
पचेत चुल्ल्यां च दिनानि पञ्च ।
अत्युग्रवीर्यं खलु बङ्गभस्म
सञ्जायतेऽनेकरुजपाहारि ॥२॥

बाद उस टिकिया को निकाल कर और खूब सुखा कर छटवीं बङ्गभस्म विधि के अनुसार खल्वसुधा यन्त्र में रख कर पाँच दिन की अग्नि दे । यह बङ्गभस्म और भी उग्र वीर्य्य बनेगी और मित्रपञ्चक से कभी नहीं जीवेगी तथा अनेक रोगों में तत्काल चमत्कारक होगी ॥२॥

केचित्तु वैद्याःखलु शेखरोत्थे
यन्त्रे भृते भस्मनि साधयन्ति ।
कन्याद्रवैर्भावितपाचिते त्रिश्चार्यं
प्रकारोऽप्ययवभाति सम्यक् ॥३॥

परन्तु कोई कोई वैद्य इस टिकिया को चूने में नहीं रख कर अपामार्ग के पञ्चाङ्ग की भस्म बनाकर और उस भस्म को घृतकुमारी के रस में घोट घोट कर तीन बार गजपुट में फूँक कर इसी भस्म को उस चूने के स्थान में भर कर और उसके बीच में उक्त चक्री (टिकिया) को रख कर पाँच दिन की आँच दिया करते हैं । उनका अभिप्राय यह है कि चूने के सम्बन्ध से बनी हुई भस्म कमजोर पड़ जाती है । यह प्रकार भी अच्छा है ॥ ३ ॥

स्वर्णमृगाङ्कः—(बङ्गभस्मनोऽष्टमःप्रकारः)

बङ्गे तु शुद्धे द्रुतमात्र एव
तुल्यं सुशुद्धं रसमाददीत ।
ताम्पिष्टिकां सैन्धवनिम्बुनीरै
र्यामत्रयं खल्वतले विमर्द्य ॥१॥

स्वर्णमृगाङ्क विधिः—

शुद्ध बग एक छटाँक को मिट्टी के शराब (सकोरा) में डाल कर अग्नि पर रख कर द्रुत कर ले, उसमें हिंगुलोत्थ शुद्ध पारद डाल दे। दोनों की पिट्ठी बन जायगी, उस पिट्ठी को पत्थर के खरल में डाल कर नींबू के रस व सैन्धव लवण के साथ तीन पहर घोटे, ॥ १ ॥

प्रक्षाल्य नीरैर्बहुशो ददीत
गन्धं विशुद्धं नवसादरं च।
तुल्यैश्चतुर्भिर्दृढहस्तकेन तथा
विमर्दैन्न यथोच्छलेयुः ॥२॥

फिर कई बार पानी से घोट २ कर धो डाले। उस कोमल पिट्ठी में एक छटाँक शुद्ध आमलासार गन्धक और एक ही छटाँक नौसादर डाल कर तीन दिन ऐसी होशियारी के साथ घोटे कि चारों चीज की कज्जली उछल कर खरल से बाहर न जाय। बाहर जाने की शङ्का दूर करने के लिये खरल के नीचे एक लम्बा चौड़ा कागज बिछा दे। जिसमें कज्जली यदि गिरे भी तो कागज पर ही रहे ॥२॥

द्वित्रैर्दिनैर्मर्दनयोगजातां
श्लक्ष्णस्वरूपां शुभकज्जलीं ताम्।
निधाय कूप्यां सिकताख्ययन्त्रे
सिन्दूर पाकेन समं पचेत ॥३॥

उस उत्तम कज्जली को कपड़मिट्टी की हुई शीशी में डाल कर हंडी के बने हुए बालुकायन्त्र में रख कर सर्वार्थकरीभाष्ट्री की लोहजाली पर भरे हुए पत्थर के कोयलों के ऊपर उस बालुकायन्त्र को रख दे और दोनों भट्टी के दरवाजों में बबूल की दो दो लकड़ियों की आँच दे। जब कोयले सुलग जायँ तब आँच लगाना बन्द कर दे। ॥ ३ ॥

शीशीमुखं नैति कदापि रोधं
यथा तथा तप्तशलाकयातम्।

पुनः पुनः क्षारमपानुदेत
कूप्यन्यथा ध्वंसमुपैत्यवश्यम् ॥४॥

जब देखे कि शीशी का मुख क्षार से बन्द हो गया; तब निष्टप्त लोहशलाका से शीशी के मुख को इतना साफ करता रहे कि धूम शीशी के मुख से बाहर निकलता रहे, दो तीन घंटों के बाद जब धूम निकलना बन्द हो जाय तब शीशी के मुख में एक डाट लगा दे। यदि शीशी से धूम निकालने का उद्योग नहीं किया जायगा तो शीशी अवश्य फूट जायगी, सम्पूर्ण रस बालू में मिल जायगा ॥ ४ ॥

धूमे निश्शेषिते जाते स्वाङ्गशीते च यन्त्रके।
सिद्धःस्वर्णमृगाङ्कोऽयं सर्वमेहेषु पूजितः ॥५॥

स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी को निकाल कर कपड़मिट्टी को चाकू से खुरच कर शीशी को गीले कपड़े से पोंछ कर शीशी को फोड़ने का ऐसा यत्न करे कि शीशी के मध्य भाग में एक डोरा लपेट दे अनन्तर उस तागे को मिट्टी के तेल (घासलेट) से भिगो दे, उस तागे में दियासलाई से अग्नि लगा दे, तब शीशी बीच से स्वयं फूट जायगी। अथवा लोहे की मोटी शलाका को आग के सदृश्य लाल करके शीशी के बीच में छुआ दे, तो भी शीशी बीच से फूट जायगी। परन्तु पत्थर मार कर शीशी को नहीं तोड़े क्योंकि यदि शीशी पत्थर से फोड़ी जायगी तो काँच के सूक्ष्म कण मृगाङ्करस में मिल जाने से या तो दवा फेंक देनी पड़ेगी, या किसी रोगी को दी गई तो उसके आंतड़े कट जाने से रोगी की जान लेगी। सिन्दूररस की शीशी को पत्थर से तोड़ने में भी हर्ज नहीं है। क्यों कि सिन्दूररस शीशी के गले पर लगता है, इससे उस शीशी के कण मिलने की शङ्का नहीं हो सकती, परन्तु मृगाङ्करस तो शीशी के गले में भी लगता है और तलभाग में भी रहता है। शीशी को फोड़ देने पर तलभाग व गलभाग से सब मृगाङ्क को धीरे धीरे चाकू से खुरच कर निकाल ले, और शीशी के मुख में लगा हुआ कुछ क्षार भी मिलेगा, उसको भी पृथक् निकाल रखे। इस मृगाङ्क को चार छोटी

इलायची के दानों का चूर्ण व छः मासे सहत के साथ दो रत्ती प्रमेह रोगी को देने से महीना दो महीना में प्रमेह दूर हो जायगा। मृगाङ्क के साथ निकला हुआ सिन्दूररस प्रमेह रोगी को रात्रि के समय एक रत्ती से दो रत्ती तक सहत के साथ दिया करे ॥ ५ ॥

तले गले सोऽस्त्यथ कूपिकाया
गले च सिन्दूररसोऽपि लग्नः।
क्षारोऽपि वक्त्रे ननु कूपिकायाः
कासप्रतिश्यायगदोपयोगी ॥६॥

त्रुटिमधुना सह मेही सतताभ्यासं यदि प्रकुर्वीत।
मूलेनास्य व्याधिं स च किमु न निराचरीकर्त्ति? ॥७॥

जैन लोगों को सहत खाने में परहेज रहता है, अतः वे लोग सहत की जगह मिश्री की चासनी के साथ खा सकते हैं। शीशी के मुख से जो क्षार निकला है उसको एक रत्ती पान के साथ देने से तरखांसी दूर हो जाती है, और जिसको जुकाम हुआ हो उसको क्षार के बराबर छोटी पीपल मिला कर नस्य देने से शिर की पीड़ा भी नष्ट हो जाती है और जुकाम भी जाता रहता है। इस मृगाङ्क का वर्ण सुवर्ण के समान होता है, इस लिये यह नकली स्वर्णमृगाङ्क है ॥ ६।७ ॥

बङ्गभस्म गुणाः—

शीतं बुद्धिविवर्द्धकं क्षयहरं सौन्दर्य्यकृद्रोचनम्।
सर्वान्मेहगणान् क्षिणोति बलदं भुक्त्यग्निसंरक्षकम्॥
वार्द्धक्यार्द्दितदेहमानवगणान् संयापयेच्छीलनात्।
स्वस्थस्यापि हितं यथाविधि कृतं बङ्गं मृतं शुक्रदम्॥१॥

बङ्गभस्म के गुण—

बङ्गभस्म ठंढी है, बुद्धि को बढ़ावे, क्षयरोग का नाश करे, शरीर की कान्ति बढ़ावे, बीस प्रकार के प्रमेहों का नाश करे, बल बढ़ावे, जठराग्नि की रक्षा रखे, और जिनका शरीर वृद्धावस्था से जीर्ण शीर्ण

हो गया है वे यदि इसको हमेशा खाते रहें तो उनको भी हितकारी है और शुक्र को बढ़ावे, इतने गुण विधिपूर्वक बनाई हुई बङ्गभस्म के हैं॥१॥

बङ्गभस्मानुपानानि—

अम्लपित्तं निशा हन्ति पित्तं शर्करया युतम् ।
कणया वह्निमान्द्यं च वक्त्रगन्धं हिमांशुना ॥१॥

बंगभस्म के अनुपान—

हल्दी के चूर्ण के साथ बङ्गभस्म खाने से अम्लपित्त दूर हो, मिश्री के साथ पित्तप्रकोप, पीपल के साथ में मन्दाग्नि, कपूर के साथ में मुख की दुर्गन्धि दूर हो ॥ १ ॥

व्याघ्रीमाक्षिकतो हन्याच्छ्वासं पूगैरजीर्णकम् ।
चर्म्मरोगान् कषायेण खादिरेण सुशीलनात् ॥२॥

कटेरी के चूर्ण और सहत के साथ खाने से श्वासरोग, सुपारी के साथ अजीर्ण, खैर के क्वाथ के साथ कुछ दिन सेवन करने से चर्मरोग (दाद, खाज, बनरफ आदि) रोग नष्ट हों ॥ २ ॥

अस्थ्नां चैव हितं भस्म बङ्गस्य नवनीततः ।
वीर्य्यकृन्नागवल्ल्या च जातिकोषेण पौष्टिकम् ॥३॥

लोनी घी (मक्खन) के साथ खाने से हड्डियों को मजबूत करे, नागरपान के साथ खाने से वीर्य्य की रक्षा करे, जायफल के साथ खाने से पुष्टि करे ॥ ३ ॥

मेहं दलेन वृन्दायाः पाण्डुरोगं घृतेन च ।
शुद्धटङ्कणयोगेन गुल्मरोगं विनाशयेत् ॥४॥

तुलसी के पत्र के साथ प्रमेह को, घृत के साथ पाण्डु रोग को, शुद्ध सुहागे* के साथ गुल्म रोग को, नष्ट करे ॥ ४ ॥

---

* चौकिया सुहागे को कड़ाही में रख कर भून ले जब उसकी खील हो जाय तब सुहागे को शुद्ध समझे ।

दाहं च निम्बुतोयेन सितायुक्तेन नाशयेत् ।
शुक्ररोधं तु कस्तूर्य्याः कुर्य्याद् दुग्धेन तुष्टिदम् ॥५॥

मिश्री और नींबू के रस के साथ दाह को नष्ट करे, कस्तूरी के साथ लेने से शुक्र का स्तम्भन, दूध के साथ तृप्ति कारक है ॥ ५ ॥

वातपीडां रसोनेन निर्गुण्ड्याऽब्धिफलेन च, ।
कुष्ठोपयोगि हन्यात्तु प्लीहानं टङ्कणेन च ॥ ६ ॥

लशुन के साथ वातव्याधि को, सम्हालू (सिन्धुवार) और समुद्र-फल के साथ सर्व प्रकार के कोढ़ नष्ट हों, शुद्ध सुहागे के साथ प्लीहा (बरवट) को दूर करे ॥ ६ ॥

एरण्डोद्भवमूलेन शिरोर्त्ति लेपनाज्जयेत् ।
जातिफलाश्वगन्धाभ्यां कटिजातां तु वेदनाम् ॥७॥

जायफल और असगन्ध के चूर्ण के साथ लेने से कमर की पीड़ा को हरे, रेंड़ी की जड़ के साथ बङ्ग को पानी में घोट कर लेप करने से मस्तक की पीड़ा को हरे ॥ ७ ॥

देशं कालं स्वभावं च प्रसमीक्ष्यानुपानतः ।
शीलयेद् भस्म बङ्गस्य शास्त्रकारमतानुगः ॥८॥

इस प्रकार देश काल रोगी की प्रकृति देख कर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बङ्गभस्म का प्रयोग करे तो अनेक रोग नष्ट हों ॥ ८ ॥

बङ्गरसायनम्—

बङ्गाभ्रकान्तानि समानि
मर्द्दैन्मृतानि वस्त्रे घनगालितानि ।
मयूरधत्तूरशुकेष्टनिम्बदलाम्बु-
भीराजमणेश्च भस्म ॥ १ ॥
गोमूत्रशैलाम्बुपलङ्कषोत्थ-
पानीययोगेन च मर्दयेत् ।

पृथक् पृथक् चाष्ट दिनानि पश्चात्-
संशोष्य कुर्य्यान्मसृणं च चूर्णम् ॥२॥

वङ्गरसायन विधि—

वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, कान्त लोह की भस्म इन तीनों भस्मों को समान भाग लेकर गाढ़े कपड़े में छानकर; अपामार्ग का स्वरस और धतूरे के पत्ते, अनार (दाड़िम) के पत्ते, नींबू के पत्ते के जुदे-जुदे स्वरस निकाल कर प्रत्येक में आठ आठ दिन तक उस चूर्ण को घोटे। बाद सब चूर्ण के बराबर राजावर्त्तमणि की भस्म ले (राजावर्त्तमणि की भस्म नहीं हो तो बिल्लौर की भस्म अथवा काँच की भस्म से भी काम चल सकता है। जिनकी बनाने की विधि अगाड़ी लिखूँगा) ॥१॥२॥

बब्बूरनिर्य्यासकमाज्यभृष्टं
समानमानं नवनाकुली च।
संकुट्य सर्वं पटगालितं च
रसायनं वाङ्गमिदं सुरक्षेत् ॥ ३ ॥

पश्चात् पूर्वोक्त सब चूर्ण को गोमूत्र, शिलाजीत का पानी, गूगल का पानी (शिलाजीत को अथवा भैसागूगल को त्रिफला के काढ़े में औटाय ले, बाद कपड़े में छान ले बस यही शिलाजीत का या गूगल का पानी कहलाता है) में आठ आठ दिन तक घोटकर सुखा ले, और कपरछन भी कर ले; बाद बम्बूर का गोंद और रासना सब चूर्ण के समानभाग लेकर कपरछन करके उस चूर्ण में मिलादे। यह वङ्ग-रसायन बनकर तैयार हो गई। इसको किसी काच के पात्र में भरकर रख छोड़े ॥३॥

गुञ्जाष्टकोन्मानमिताऽस्य मात्रा
निशाढ्यतक्रेण मता मुनीनाम्।
प्रमेहमन्दाग्निमुखाँश्च रोगान्
ध्रुवं निरस्येद् द्रढयेच्च देहम् ॥४॥

इसकी मात्रा एक मासे से कम नहीं है, हल्दी के चूर्ण और गौ के मट्ठा के साथ रोज प्रातःकाल सेवन करने से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं और शरीर मजबूत हो जाता है ॥ ४ ॥

तण्डुलं द्विदला मौद्गी नवनीतं पटोलकम् ।
गोरसास्तिलजं तैलं पथ्यं चात्र प्रशस्यते ॥५॥

इसके ऊपर चावल, मूँग की दाल, मक्खन, परवर की तरकारी, गाय का मट्ठा और तिल का तेल उत्तम पथ्य हैं ॥ ५ ॥

बङ्ग विकाराः—

शुद्धेर्हीनं मृतेर्हीनं बङ्गं यः सेवते नरः ।
पाण्डुमेहाऽपचीगुल्माऽनिलरक्तादिमान्भवेत् ॥१॥

बङ्ग के विकार—

जिस बङ्ग का शोधन मारण भली भांति से नहीं किया गया है उसके सेवन करने से पाण्डु रोग, प्रमेह, अपची रोग, गुल्म, वात-रक्त आदि अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं ॥१॥

बङ्ग विकारशान्तिः—

सितया मेषशृङ्गीं यस्त्रिदिनं सेवते यदि ।
बङ्गसेवाजरोगांस्तानुज्झित्वा सुखितो भवेत् ॥१॥

बङ्ग विकारशान्ति—

अशुद्ध बङ्ग के खाने से जो पूर्वोक्त विकार उत्पन्न हुए हों तो मेंढासींगी को मिश्री के साथ तीन दिन खाने से सर्व विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

॥ इति बङ्गभस्म विधिः ॥

ग्राह्य नागः—

वहिःकृष्णं गुरुत्वाऽढ्यं छेदे कृष्णसमुज्ज्वलं ।
ग्राह्यं नागं विदुःपूतिं विपरीतं तु दूषितम् ॥१॥

भस्म के योग्य सीसा—

जो सीसा बाहर से काले वर्ण का हो, और भारी हो, व काटने से काले वर्ण का उज्ज्वल (चमकदार) निकले, तथा जिसमें दुर्गंधि आती हो वह सीसा भस्म करने के योग्य है। और जिसमें उक्त गुण नहीं घटते हों वह सीसा दवाई के योग्य नहीं है ॥ १ ॥

नाग शुद्धिः—

तैलादिवर्गेष्वतितप्तनागं सप्तैव
वारान् पिठराऽऽख्ययन्त्रे ।
निर्वापणेन प्रथमं विशोध्य ततो
विशिष्टां विदधीत शुद्धिम् ॥१॥

सीसे की शुद्धि—

"तैले तक्रे गवांमूत्रे" इस न्याय से तेल, मठा, गोमूत्र, कांजी, कुल्थी का काढा, इन पाँच चीजों में सात सात बार बुझाने से अन्य धातुओं की तरह सीसे की सामान्य शुद्धि हो जाती है। और बङ्ग की तरह सीसा भी बहुत उछलता है, इसलिये बङ्ग की शुद्धि के अनुसार शोधने के समय ज्यों ज्यों सीसे का जलन इकट्ठा होता जाय उसको भी खूब तप्त करके गुड़ और नौसादर डालकर उस जले हुए सीसे के कतवार से सीसे को निकालता जाय। यह सब विधि बङ्ग शोधन प्रकरण में और पारद के लय प्रकार में कह चुका हूँ उस विधि का यहां पर भी अनुसन्धान कर लें ॥ १ ॥

वराकषायेऽम्बुनि कन्यकाया मूत्रे
च नागस्य निपात्य नागम् ।

गायत्रिकाऽग्नौ परितप्त तप्तं शुद्धिं
चिकीर्षुः खलु सप्तकृत्वः ॥२॥

सीसे की विशेष शुद्धि इस प्रकार करना चाहिये कि उक्त पिठर-यन्त्र में त्रिफला का काढा, घृतकुमारी का रस, हाथी का मूत्र, भरकर प्रत्येक में सात सात बार बुझाने से सीसा बहुत शुद्ध हो जाता है। अन्य धातुओं के तपाने के लिये शोधनार्थभ्राष्ट्री में बबूर आदि किसी काष्ठ के जलाने का नियम नहीं किया गया है परन्तु सीसे को तपाने के लिये जहांतक होसके खदिर (खैर) की लकड़ी जलानी चाहिये। यदि खैर की लकड़ी नहीं मिले तो नींब की लकड़ी जलावे यदि वे भी नहीं मिलें तो पीपल, पलाश, (ढांक) बबूर की लकड़ी जलावे ॥ २ ॥

नागभस्म विधिः—

सेटार्द्धनागेऽनलगालिते च
सेटार्द्धसूतं विनिपात्य शुद्धम् ।
निम्बूकनीरेण विमर्द्य पिष्टिं
दिनद्वयं तत्र तृतीयगन्धम् ॥१॥
द्वयोःसमानं विधिशोधितं च
मृत्कुण्डके वाऽथ कटाहिकायाम् ।
भृत्त्वा च धृत्त्वा लघुचुल्लिकायां
गुञ्जाकषायेण शनैःपचेत ॥ २ ॥

सीसाभस्म विधि—

आध सेर शुद्ध सीसे को लोहे की कड़ाही में रखकर अग्नि दे। जब सीसा द्रुत हो जाय, तब उसमें आध सेर शोधन किया हुआ हिङ्गुल से निकाला हुआ पारद डाल दे। दोनों के मिल जाने से पिट्ठी बन जायगी। उस पिट्ठी को दो दिन तक नींबू के रस में घोटे बाद पानी से धोकर खटाई को निकाल दे इस पिट्ठी को खरल में

डालकर उस पिट्ठी के समान (एक सेर) तीसरी गन्धक (मैंनशिल) शुद्ध की हुई को डालकर कज्जली करले। इस कज्जली को, किनारे पर तारों से बांधे हुए और कपरमट्टी किये हुए, मट्टी के कूँड़े में अथवा लोहे की कड़ाही में भरकर रोटी करने के छोटे चूल्हे पर रखकर मन्दाग्नि से पकावे और थोड़ा थोड़ा गुञ्जा, (सफेद चिरमिठी) के काढ़े को भी डालता जाय और कलछी से चलाता जाय ॥१॥२॥

क्वाथेऽत्र शुष्केऽनलमन्दयोगैः
सेटार्द्धषष्ठे मृदुघट्टनेन।
वासारसे निम्बरसेपि तद्वत्
कन्याम्बुमर्द्दन मासिं विदध्यात् ॥३॥

जब मन्दी २ आंच से और धीरे २ नीम के डंडे से चलाते चलाते साढ़े पांच सेर चिरमिठी का क्वाथ कज्जली में सूख जाय तब साढ़े पांच सेर ही अडूसे का स्वरस डालना शुरू करे। जब वह भी सूख जाय तब नीम के पत्तों का स्वरस भी डालना शुरू करे। जब कज्जली में वह भी सूख जाय तब घृतकुमारी के साथ उस कज्जली को खरल में डालकर घोटे। यदि अडूसा ताजा नहीं मिले तो सूखे अडूसे के क्वाथ से भी काम चल सकता है ॥ ३ ॥

भृत्त्वा मासिं तां डमरौ च यन्त्रे
नलीयुतेऽग्निं प्रददीत यामान्।
शीतेऽत्र लग्नं परितो नलीं तं
सूतं तले भस्म समाददीत ॥४॥

जब घोटते घोटते कज्जली बिलकुल सूख जाय तब उस कज्जली को नलिकाडमरूयन्त्र में भरकर तीन पहर की आंच दे। यद्यपि श्लोक में "यामान्" यह बहुवचन लिखा है इससे बहुत पहर भी ले सकते हैं परन्तु मीमांसोक्त कपिञ्जलाधिकरण न्याय से तीन ही पहर लेना चाहिये। तीन पहर के बाद यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होने पर नली

के चारों तरफ लगे हुए पारद को जुदा निकाल ले और नलिका-डमरुयन्त्र के तलभाग में जमी हुई सीसे की भस्म को जुदी निकाल ले ॥ ४ ॥

तद्भस्म कुण्डे विनिधाय वह्निं
तीव्रं ददच्चूर्णमथाऽपि गौञ्जम् ।
विकीर्णयन् निम्बखजेन भूयो
भूयोऽपि कुर्य्यात् पटगालितं च ॥५॥

इस भस्म को कपरमट्टी किये हुए मट्टी के कूँड़े में डालकर तालादिभस्मकरी भट्टी पर चढ़ाकर अग्नि दे और ऊपर श्वेत गुञ्जा (सफेद चिरमिठी) के चूर्ण को भी थोड़ा थोड़ा बुरकता जाय और नीम के डण्डे से चलाता जाय। इस प्रकार आधसेर चूर्ण खप जाने पर भस्म को गाढ़े कपड़े में छानकर शीशी में भर ले। जो कुछ भस्म का मोटा अंश कपड़े में बच जाय तो उसको भी कूट कर कपरछन करके कूँड़े में डालकर भट्टी पर रखकर तपावे और थोड़ा थोड़ा श्वेत गुञ्जा का चूर्ण डालता जाय और नीम के डण्डे से या मन्दार के डण्डे से चलाता जाय स्वाङ्गशीतल होने पर इसको भी कपरछन करके रखले इस रीति से बनी हुई नाग की भस्म भूरे वर्ण की बहुत उत्तम बनेगी ॥ ५ ॥

बलं च शुक्रं प्रबलं करोति
शुक्रस्थदोषांश्च निहन्ति नागः ।
नेत्रस्थकासाग्निमृदुत्वशूल-
क्रमिक्षयार्शःकफवातरोगान् ॥६॥

इस भस्म की एक रत्ती से दो रत्ती तक मात्रा मधु आदि के साथ देने से शरीर में बहुत बल बढ़ता है, शुक्र पुष्ट होता है और इसके अलावे नेत्र रोग, खाँसी, मन्दाग्नि, शूल, कृमि (पेट के कीड़े), क्षय, बवासीर, कफरोग, बातरोग, शुक्र के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

नागभस्मनो द्वितीयो विधिः—

मृन्नान्दिकायां भुजगं विशुद्धं
तीव्राग्नितप्तं परिघर्षयेत ।
अर्कस्य दण्डेन कुमारिकायाः
भस्मीभवन्तं पटगालितं च ॥१॥

सीसाभस्म की दूसरी विधि—

कपरमट्टी किये हुए मट्टी के कूंड़े में शोधे हुए सीसे को डालकर अग्नि पर चढ़ावे । जब टिघल कर सीसा खूब तप्त होजाय तब मन्दार की जड़ के डण्डे से अथवा घीकुआर की जड़ के डण्डे से उस द्रुत सीसे को चलाता जाय और तीव्राग्नि जारी रखे । ऐसा करने से पाव भर सीसे की दो पहर में भस्म हो जायगी । जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब कपड़े में छानले और जो कपड़े के ऊपर मोटा भाग सीसे का निकले उसको भी पूर्व की तरह भस्म करले यह भस्म कुछ हरे वर्ण की और पीले वर्ण की बनती है इसको भी योगों में वैद्य लोग डाला करते हैं ॥ १ ॥

नागेन्द्रफेनेन तदर्द्धकेन
सम्मर्द्य मन्दारपयोभिरेतत् ।
पुटेद्वराहेण पुटेन षोढा द्वेधा
त्रिधा वाऽखिलकर्म्महेतोः ॥२॥

यदि सीसे की भस्म को और भी उत्तम बनाना हो तो पांच तोले पूर्व विधि के अनुसार सिद्ध की हुई सीसे की भस्म ले, और अढाई तोले अफीम इन दोनों को मन्दार के दूध के साथ घोट कर (मन्दार का दूध नहीं मिले तो मन्दार के पत्तों के स्वरस से भी काम चल सकता है) टिकिया बनाकर धूप में सुखाले । उन टिकियाओं को सरावसम्पुट में रखकर वराहपुट में फूँक दे । इस प्रकार छः पुट, तीन पुट, दो पुट, जहां तक हो सकें तहां तक दे । इस भस्म को रोग के अनुपान के साथ प्रयोग करे तो तत्काल फलीभूत हो ॥ २ ॥

नागभस्मनो तृतीयो विधिः—

मन्दारदण्डेन मृतं भुजङ्गं
मनश्शिलाहिङ्गुलचूर्णतुल्यम् ।
निम्बूकनीरेण विमर्दयेत
दिनत्रयं सर्वसमंच गन्धम् ॥१॥

सीसाभस्म की तीसरी विधि—

द्वितीय विधि के अनुसार मन्दार के डण्डे से सीसे की भस्म बनाकर, यदि भस्म पावभर हो तो आधपाव शुद्ध मैंनशिल; और आधपाव शुद्ध हिङ्गुल इन तीनों को नींबू के रस के साथ तीन दिन तक घोटे और तीनों के बराबर शुद्ध गन्धक डालकर तीन दिन तक नींबू के रस के साथ फिर घोटे ॥ १ ॥

नलीनियुक्ते डमरौ प्रशुष्कां
चक्रीं निधाय प्रददीत वह्निम् ।
दिनद्वयं शीतलयन्त्रतस्तद्
भस्माऽपि सिन्दूरमुपाददीत ॥२॥

सब की एक टिकिया बनाकर सुखाले उस टिकिया को नलिका-डमरुयन्त्र में रखकर दो दिन तक अग्नि दे । जब स्वाङ्गशीतल होजाय तब डमरुयन्त्र की नली के चारों तरफ लगे हुए शिलासिन्दूर को निकाल ले और तलभाग से सीसे की परमोत्तम भस्म को भी जुदी निकाल कर कपरछन करके रखले ॥ २ ॥

नागभस्मनश्चतुर्थो विधिः—

अश्वत्थचिञ्चाशुकतुण्डकाऽक्षक्षारं
क्षिपन्नल्पकमल्पकंच ।
द्रुते भुजङ्गे परिघट्टयेत लोहस्य
दर्व्या त्रितयं दिनानाम् ॥१॥

नागभस्म की चौथी विधि—

पीपल की छाल (बक्कल) का चार, इमली की छाल का क्षार, अनार के पञ्चाङ्ग का क्षार, बहेड़े का क्षार, इन चारों को जुदे जुदे बना कर रख ले। (क्षार बनाने की विधि परिभाषा प्रकरण में लिख चुका हूँ इसलिये उसको दुहराने की आवश्यकता नहीं है) जो मनुष्य चार नहीं बना सके तो वह उपरोक्त वस्तुओं की भस्म से भी काम चला सकता है। पूर्वोक्त विधि से शुद्ध किये हुए सीसे को कपरमट्टी किये हुए मट्टी के कूंड़े में या लोहे की कड़ाही में गलाकर थोड़ा थोड़ा चार डालता जाय, और लोहे की कलछी से चलाता जाय; इस प्रकार तीन दिन तक प्रचण्डाऽग्नि लगाने से सीसे की लाल भस्म हो जाती है ॥१॥

जातं तु रक्तं खलु नागभस्म
जलेऽवपात्यंच विलोडनीयम् ।
स्थिरेऽम्भसि चारमपाकरोतु
ततस्ततःशुष्कमिदं पटेन ॥२॥

उस लाल भस्म को जल में डालकर एक लकड़ी के डण्डे से चलादे, जिसमें सम्पूर्ण भस्म पानी में घुल जाय। इस प्रकार रात भर रखे रहने से सीसे की भस्म पात्र के पेंदे में जम जायगी और चारों प्रकार के क्षार पानी में घुल जायँगे। तब धीरे धीरे उस खारे पानी को किसी दूसरी मट्टी की नांद में गिरादे जिसमें नागभस्म खारे पानी के साथ न बह सके, उसके बाद भस्म को सुखाकर कपड़े से छान ले ॥२॥

प्रगाल्य सूतेन्द्रमनःशिलोत्थां
मसिं तदर्धां विनिपात्य मर्दत् ।
मन्दारदुग्धैरुत निम्बुनीरैर्गोलं
प्रशुष्कंच पचेत यन्त्रे ॥३॥

बाद जितनी भस्म तोल में ठहरे उससे आधी पारद और मैंनशिल की कज्जली * मिलाकर मंदार के दूध के साथ एक दिन घोटे। मंदार

* कज्जली करने के लिये शुद्ध पारद और शुद्ध मैंनशिल सम-सम भाग लिये

का दूध नहीं मिले तो नींबू के रस के साथ ही घोटे। बाद सब का गोला बनाकर नलिकाडमरूयन्त्र में पकावे ॥३॥

मन्दाग्निनातत् त्रितयं दिनानां
वारत्रयेणेत्थमिदं निरुत्थम्।
भवेद् भुजङ्गस्य रसायनं तत्
भस्म स्वयं योगबलोपकारि ॥४॥

इस प्रकार नलिकाडमरूयंत्र में तीन दिन तक आँच देकर तल भाग से सीसे की भस्म को निकाल ले और ऊर्ध्वभाग से मैंनशिल मिश्रित पारद को भी निकाल ले। बाद भस्म से आधी मैंनशिल पारद की कज्जली मिलाकर और मन्दार के दूध के साथ घोटकर पूर्वोक्त विधि से तीन दिन तक आँच दे। इस प्रकार तीन बार में नौ दिन तक आँच देने से सीसे की निरुत्थ भस्म हो जाती है, जो मित्रपञ्चक (शहत, सुहागा, घी, गूगल, चिरमिठी) से नहीं जी सकती। परन्तु मित्रपञ्चक के साथ भस्म को बारंबार घोट घोट कर कुक्कुटपुट में जिला जिला कर मारण करे तो और भी अच्छा। यह भस्म स्वयं भी रसायन है और योगों के साथ में देने से उस योग को प्रबल बना देती है। क्योंकि "खर्परे निहितं नागं रविमूलेन घर्षयेत् त्रियामं जायते भस्म हरिद्वर्णमदूषणम्" अर्थात् शुद्ध आध सेर सीसे को मट्टी के खपड़े (कूड़े) में डाल कर भट्ठी पर तेज अग्नि दे, और मन्दार की जड़ के डण्डे से तीन पहर तक चलाता जाय तो हरे वर्ण की सीसे की निर्दोष भस्म हो जाती है जिसको किसी योग में निःशङ्क डाल सकते हैं। जब यह व्यवस्था शास्त्रकारों ने लिख दी है और इस भस्म का फल भी अच्छा देखते हैं, तब मेरी लिखी हुई सीसे की भस्म विधि क्यों नहीं परमोत्तम होगी ॥४॥

जाते हैं, और पूर्वोक्त क्षार भी जितना सीसा हो उसके तुल्य लिये जाते हैं। अर्थात् यदि एक सेर सीसे की भस्म बनानी हो तो चारों क्षार पाव पाव भर लेने चाहिये। शीशे की भस्म तालादिभस्मकरी भ्राष्ट्री पर रखकर बनानी चाहिये।

नागरसायनम्—

पलो भुजङ्गश्च तदर्द्धमाक्षिकं
सौवर्णमर्द्धंच ततोऽपि शुल्वकम् ।
भस्मीभवत्तद्विमलं च कान्तकं
वियन्मणिस्सुस्फटिकश्च सप्तकम् ॥१॥
वराकषायेण विमर्द्य सर्वकं
त्रिंशत्पुटान्येव ददीत त्रिंशता ।
वनोपलैस्तत् परिपिष्य वस्त्रके
घने प्रगाल्याऽपि रजः समानकम् ॥२॥
व्योषं च खल्वे परिकुट्य वस्त्रे
प्रगाल्य सम्मेलयतां सुरक्षेत् ।
यथाबलं नागरसायनं तत्
प्रदीयमानं निखिलाऽऽर्त्तिहन्तृ ॥३॥
वातं धनुर्वातकफार्तिमूत्र-
रोगाँश्च कासं क्षयपाण्डुरोगौ ।
श्वासं च शीतज्वरमामरोगं
ग्रहण्युदव्याधिमपाकरोति ॥४॥
मन्दाग्निशोथौच निरस्य तत्तद्यो-
ग्याऽनुपानेन सुखीकरोति ।
प्रयुज्यते चेत्परिशोध्य कोष्ठं
वान्त्या विरेकेण च वैद्यवर्यैः ॥ ५ ॥

नागरसायन विधि—

सीसे की भस्म चार तोले, सुवर्णमाक्षिक की भस्म दो तोले, ताम्रभस्म एक तोला, रजतमाक्षिक भस्म एक तोला, कान्त लोहे की भस्म एक तोला, शतपुटी अभ्रकभस्म एक तोला, स्फटिक मणि की

भस्म एक तोला, इन सातों भस्मों को त्रिफला के काढे के साथ घोटकर टिकिया बनाकर सुखाले । बाद शराव सम्पुट में रखकर तीस बीनवाँ कण्डाओं की आँच दे । जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब पूर्व की तरह फिर त्रिफला के काढे में घोटकर तीस जङ्गली उपलाओं की आँच दे इस प्रकार तीस बार पुट दे । बाद सोंठ, मिरच, पीपल, इन तीनों को कूट कर कपरछन कर ले इस चूर्ण में से भी ग्यारह तोला ले, और बायविड्ङ्ग को भी कूट कपरछन कर ले इस चूर्ण में से भी ग्यारह तोला ले । इस प्रकार कुल तेतीस तोले चूर्ण को खरल में घोटकर शीशी में भरकर रख छोड़े । इसको नागरसायन कहते हैं । इसकी मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक घी शहत के साथ दी जाती है । इसके, तत्तद् रोगों के अनुपानों के साथ सेवन करने से सभी रोग नष्ट होते हैं । परन्तु मुख्यतया इन रोगों को यह रसायन अच्छा है । सर्व प्रकार की वातव्याधि, विशेष कर धनुर्वात (जिसमें शरीर धनुष की तरह नव जाता है), कफरोग, बहुमूत्र रोग, खाँसी, क्षयरोग, पाण्डुरोग, श्वास, शीतज्वर, आमरोग, सङ्ग्रहणी, जल विकार, (परदेश घूमने वाले पुरुषों के शरीर में अनेक जल के विकार हो जाते हैं जिससे पेट फूल जाय, दस्त साफ नहीं होय, अन्न नहीं पचे इत्यादि) मन्दाग्नि, शोथ, इन रोगों को अनुकूल अनुपान के साथ नष्ट करके यह रसायन मनुष्य को सुखी कर देता है । परन्तु वमन विरेचन द्वारा कोष्ठ की शुद्धि करके इसका सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

नागभस्म गुणाः—

वातश्लेष्मविकारगुल्मगुदजाञ्छूलप्रमेहक्षयान्
कासश्वासकृमिभ्रमान् ग्रहणिकां मन्दाग्निपाण्ड्वामयान् ॥
विधिना निर्मितनागभस्म सततं संसेवनाद् निर्जयेत्
नोचेत्तत्प्रतियोगिकारि कुरुते कुष्ठादिकाँश्चामयान् ॥१॥

नागभस्म के गुण—

विधिपूर्वक बनाई हुई नागभस्म के सेवन से वातव्याधि, कफ-व्याधि, गुल्मरोग, बवासीर शूल, प्रमेह, क्षयरोग, खाँसी, श्वास, कृमि, भ्रम, सङ्ग्रहणी, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, नष्ट हो जाते हैं। यदि विधिपूर्वक नहीं बनी हो; अर्थात् शोधन मारण में कसर रह गई हो तो उस नागभस्म के सेवन करने से वे ही रोग उत्पन्न हो जाते हैं और कुष्ठ, भगन्दर आदि अनेक रोग और भी उत्पन्न हो जाते हैं ॥१॥

नाग दोषशान्तिः—

स्वर्णभस्मसितायुक्तां सेवेत त्रिदिनं शिवाम् ।
नागदोषानपाकृत्य जायते सुखितो नरः ॥१॥

सीसाभस्म के विकारों की शान्ति—

एक रत्ती सुवर्णभस्म, एक तोला मिश्री, एक तोला बड़ी हरड़े तीनों को मिलाकर दोनों सन्ध्या खाया करे। इस प्रकार तीन दिन खाने से सीसे की दूषित भस्म के विकारों की शान्ति होती है ॥ १ ॥

नागभस्म शुद्धीकारणम्—

हस्तिमूत्रैर्विभाव्यार्कपयोभिः सप्तसप्तधा ।
नागभस्म कृतं शुद्धं नो विकाराय कल्पते ॥१॥

दूषित नागभस्म की शुद्धि—

हाथी का पेशाब और मन्दार का दूध, इन दोनों की सात २ भावना देकर वराहपुट में फूँक देने से शीशे की भस्म शुद्ध हो जाती है। उसके सेवन करने से कोई विकार तो उत्पन्न नहीं होता। परन्तु तैलादि वर्ग में शोधे बिना गुण तो अवश्य कम होता है ॥ १ ॥

॥ इति नागभस्म विधिः ॥

——:०:——

ग्राह्य जसदम्—

भाराऽऽढ्य श्वेतवर्णं यत् भैषज्यं जसदं जगुः ।
भक्षणायाञ्जनायाऽपि दृष्टिप्रेयं च दन्तुरम् ॥१॥

दवा के योग्य जस्ता—

जो जस्ता भारी और श्वेत वर्ण वाला तथा नेत्र को आह्लादकर (चमचमाहट करने वाला) और दाँतों के समान जिसमें मोटे मोटे रवा हों, वही खाने के काम में और अञ्जन के काम में लिया जाता है ॥ १ ॥

जसद् शुद्धिः—

जसदं वह्निना तप्तं गोदुग्धे परिवापितम् ।
एकविंशतिवारेण विशिष्टां शुद्धिमृच्छति ॥१॥

जस्ते की शुद्धि—

तैलादि वर्ग में जस्ते को सात सात बार बुझाने से; और धातुओं के समान सामान्य शुद्धि प्रथम करले बाद गौ के दूध में इक्कीस बार बुझाने से जस्ते की विशिष्ट शुद्धि होती है ॥ १ ॥

जसद् मारणम्—

सेटोन्मितं तद् जसदं कटाह्यां
तीव्राग्नितप्तं पिचुमर्दजेन, ।
रसेन सार्कं यदि लोहदर्व्या
सञ्चालयेदुत्थितधूमकेतु ॥१॥
पुनः पुनर्निम्बरसं ददीत
तन्मानमानोन्मितमस्य भस्म, ।
प्रजायते शीतमथो प्रगाल्य
घनेन वस्त्रेण ततः सुरक्षेत् ॥२॥

जस्ते का मारण—

एक सेर शुद्ध किए हुए जस्ते को लोहे की कड़ाही में डालकर तालादिभस्मकरी भ्राष्ट्री के ऊपर तीव्राग्नि से तपावे और लोहे की कलछी से चलाता जाय। जब उसमें से अग्नि की ज्वाला उठने लगे तब उसमें नीम के पत्तों का स्वरस डालता जाय। जब एक सेर स्वरस उसमें खप जाय तब रस डालना बन्द करे, और अग्नि लगाये जाय। जब जस्ते की बिलकुल भस्म हो जाय तब स्वाङ्गशीतल करके कपड़े में छान ले। यदि बाकी बचा हुआ मोटा अंश जस्ते का रह जाय तो उसको भी कड़ाही में डालकर नीम के रस के साथ पकावे और लोहे की कलछी से खूब घोटता रहे। ऐसा करने से सब जस्ते की भस्म उत्तमोत्तम बन जायगी। उसको शीशी में भरकर रख छोड़े। कोई २ वैद्य इस भस्म को घृतकुमारी के रस के साथ घोट कर टिकिया बना कर गजपुट में फूँक कर टिकिया के ही आकार में रख छोड़ते हैं ऐसा करना भी अच्छा है॥ १ ॥ २ ॥

भस्मेदमक्ष्णोर्हितमञ्जनेन
शीतं भवच्चापि कफान्तकारि।
श्वासं च कासं समपाकरोति
करोति नेत्र्यं प्रबलं च योगम्॥३॥

इस भस्म का अञ्जन नेत्रों के लिये परम हितकारक है। यह भस्म शीतल है तौ भी कफ को नष्ट करती है और श्वास कास को भी दूर करती है। तथा आयुर्वेद में जितने नेत्र के हितकारक योग हैं उनमें भी इसको डालने से वे प्रयोग शीघ्र फायदा करते हैं॥ ३ ॥

जसद मारणस्य द्वितीयो विधिः—

पादांशगन्धं जसदस्य चूर्णं
विनीय पञ्चाङ्गुलतैलयोगैः, ।

पचेत लोहस्य कटाहिकायां
तीव्राग्निना शीतमनूद्धरेत ॥१॥

जस्ताभस्म की दूसरी विधि—

एक सेर शुद्ध जस्ते के चूर्ण में पाव भर शुद्ध गन्धक मिला कर कड़ाही में डाल दे और उसमें रेंड़ी (अंडोली) का तेल भी इतना छोड़ दे जिसमें वह चूर्ण डूब जाय। बाद उस कड़ाही को तालादि-भस्मकरी भट्ठी पर रखकर तीव्र अग्नि दे और चूर्ण को लोहे की कलछी से चलाता जाय। जब गन्धक और तेल बिलकुल जल जांय और जस्ते की भी भस्म हो जाय तब स्वाङ्गशीतल करके भस्म को कूटकर कपरछन करले ॥ १ ॥

कुमारिकाद्भिः परिमर्द्य चक्रीः
शुष्काः पचेद्धस्तिपुटे पुटस्थाः।
शीताः स्वयं ताविनियोजयेत
गुञ्जाद्वयोन्मानमिताऽस्य मात्रा ॥२॥

उस भस्म को घृतकुमारी के रस के साथ मर्दन करके टिकिया बनाले और टिकियाओं को सुखा कर हाँडी के सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूँक दे। जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब टिकियाओं को सम्पुट से निकाल ले। इस भस्म की मात्रा दो रत्ती की है ॥ २ ॥

जसदाऽनुपानम्—

गवां पुराणेन घृतेन नेत्र्यं
ताम्बूलपत्रेण प्रमेहहारि।
वह्नेर्निमित्तं ननु पञ्चकोलैस्त्रि-
गन्धकैस्त्रीनपि हन्ति दोषान् ॥१॥

जस्ते की भस्म के अनुपान—

जस्ते की भस्म को पुराने (दश वर्ष के) घी के साथ खाने से नेत्र का परम हित होता है, पान के साथ खाने से प्रमेह दूर होता

है, एवं पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) के साथ मन्दाग्नि को दूर करे, त्रिगन्धक (इलायची, दालचीनी, पत्रज) के साथ सन्निपात को दूर करे ॥ १ ॥

पित्तज्वरं गोस्तनतण्डुलाऽ-
क्षीरक्ताऽतिसारं जसदं चहन्ति ।
शीतज्वरंदीप्ययवानिकाभ्यां-
सितामिताऽजाजिकयाऽतिसारम् ।
वमिं च हृल्लासमपाकरोति
नेत्राऽमयं भीमहिमांशुकेन ॥२॥

पित्तज्वर और रक्ताऽतिसार में छुहारे और चावल के धोवन के साथ दे, शीतज्वर में लौंग और अजवायन के साथ दे, तथा अतिसार, वमन, जी मचलाने में मिश्री और जीरे के साथ दे ॥ २ ॥

जसद दोषाः—

हीनसंशोधनं मेहाऽजीर्णं भ्रान्तिं वमिं चलम् ।
कुरुते जसदं तेन शोधयेदुक्तरीतितः ॥१॥

जस्ते के दोष—

जस्ते की पूर्ण शुद्धि नहीं करके भस्म बना कर सेवन करने से प्रमेह, अजीर्ण, भ्रान्ति, वमन, वातरोग, उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिये पूर्वोक्त विधि से जस्ते की पूर्ण शुद्धि कर लेनी चाहिये ॥ १ ॥

जसद विकारशान्तिः—

शिवां सितायुतां खादेद्
दिवसत्रयमन्वहम् ।
विकारा जसदाज्जाता
निवर्त्तन्तेऽल्पशोधितात् ॥ १ ॥

जस्ते के विकारों की शान्ति—

अल्प शुद्धि किये हुए जस्ते की भस्म के खाने से जो पूर्वोक्त विकार हो गये हों तो वह मनुष्य दो तोले मिश्री के साथ दो तोले हरड़े को तीन दिन तक लगातार सेवन किया करे। ऐसा करने से वे विकार शान्त हो जायँगे।

॥ इति जसदभस्म विधिः ॥

ग्राह्य कांस्यम्—

झङ्कारयुक्तं मसृणं च दीप्तं
श्वेतं गुरु ह्लादि च काञ्जिकायाम्, ।
प्रवापितं ताम्रप्रभं यदि स्यात्
तत्कांस्यमाहुर्भिषजः प्रशस्तम् ॥१॥

दवाई के योग्य कांसी—

जिसके बजाने से खूब शब्द हो, और हाथ फेरने से चिकना मालूम हो, तथा जिसमें चमक हो, श्वेत वर्ण हो, भारी हो, नेत्र को आह्लादकारी हो तथा कांजी में बुझाने से ताँबे के समान वर्ण वाला हो, वह कांसा दवाई के काम का होता है। इसको (फूल) कांसी कहते हैं।

ग्राह्य पित्तलम्—

निष्टप्य वह्नौ परिवापिता या
काञ्ज्यां यदि स्यान्ननु ताम्रवर्णा।
पीता च गुर्वी घनपातशक्ता सा
राजरीतिर्भिषजां प्रशस्ता ॥१॥

दवाई के योग्य पीतल—

जिसको अग्नि में तपा कर कांजी में बुझाने से ताम्बे के समान

वर्ण निकले, और देखने में पीला, भारी, चोट को सहने वाला हो वह पीतल दवा के योग्य होता है । इसको संस्कृत में राजरीति कहते हैं । इससे विपरीत गुण वाला पीतल शुकतुण्डा कहलाता है, यह दवाई के योग्य नहीं है ॥ १ ॥

कांस्यरीत्योर्मारणम्—

संशोधनं मारणमेतयोस्तु
ताम्रेण तुल्यं सकलं विधेयम् ।
यतःस्त एते उपधातुताऽऽढ्ये
ताम्रस्य बङ्गस्य च खर्परस्य ॥१॥

कांसी, पीतल का शोधन मारण—

कांसी और पीतल का शोधन, मारण, निरुत्थीकरण, अमृतीकरण, विकार शान्ति आदि सम्पूर्ण विधि ताम्र के समान समझ लेनी चाहिये । क्यों कि कांसी, पीतल कोई भिन्न धातु नहीं है किन्तु ताम्र और बङ्ग की कांसी बनती है, व ताम्र और जस्ते का पीतल बनता है ॥ १ ॥

पित्तलरसायनम्—

आरकूटमयःकान्तं व्योम भस्मीकृतं त्रयम्, ।
समं तत्समभागं च व्योषं दीप्या यवानिका ॥१॥
जतुघ्नं वाकुची वह्नि भल्लाता विधिशोधिताः ।
कृष्णास्तिलाः समस्तानां चूर्णं तितउचालितम् ॥२॥

पीतल की रसायन—

पीतल की भस्म पाँच तोले, कान्त लोह की भस्म पाँच तोले, कृष्णवज्राभ्रक की भस्म पाँच तोले, और सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, अजवायन, बायविडङ्ग, बावची, चित्रक, शुद्ध किये हुए भिलावें, काले तिल, ये सब औषधि पाँच २ तोले ले सबको कूटकर चलनी में छान ले ॥ १ ॥ २ ॥

नारिकेलभवस्नेहे लक्षाघातेन घातितम् ।
ग्राह्यं द्विशाणमात्राभिरारकूटरसायनम् ॥३॥

सम्पूर्ण औषधियों को खरल में डाल कर थोड़ा थोड़ा नारियल (गरी) का तेल डाल २ कर कूटे । जब लक्षाघात हो जाय तब इस पीतल की रसायन में से छ छ मासे रोज शहद के साथ या घी के साथ खाया करे। नारियल के तेल के साथ कूटने का, और काले तिलों को डालने का यह अभिप्राय है कि शोधे हुए मिलावें भी किसी पुरुष को माफकत नहीं पड़ने से शरीर में खुजली उठ खड़ी होती है इसलिये उक्त दोनों चीजों के डालने से मिलावें का दोष नष्ट हो जाता है ॥३॥

कुष्ठं जन्तून् विशेषात्तु श्वित्रकुष्ठं विनाशयेत् ।
दीपनं पाचनं बल्यं पूर्णमायुः प्रवर्त्तयेत् ॥ ४ ॥

इसके सेवन करने से कोढ़ कीड़े, विशेष करके सफेद कोढ़ नष्ट होते हैं। और यह जठराग्नि को दीप्त करे, पाचक है, बलकारी है, पूर्ण आयु को दे ॥ ४ ॥

कांस्यताम्रयुगस्याऽपि विदध्यात्तद्रसायनम् ।
विधिना तेन किन्त्वेतत् सौम्यं खर्परयोगतः ॥५॥

इसी विधि से कांसी की रसायन, और ताम्बे की रसायन भी बनाले, ये दोनों रसायन उष्ण स्वभाव हैं। परंतु पीतल, ताँबे और जस्ते का बनता है, और जस्ते का स्वभाव शीतल है इसलिये पीतल की रसायन शीतल स्वभाव है ॥ ५ ॥

॥ इति कांस्य पित्तल भस्म विधिः ॥

अथ वृतवर्त्तकादीनां शोधनमारणे—

कांस्यायःपित्तलोद्भूतं वृतं स्याद् रीतिकांस्ययोः ।
वङ्गनागायसां जातो विकारो वर्त्तको मतः ॥ १ ॥
एवं संयोगजातानां धातूनां शुद्धिमाचरेत् ।
तैले तक्रे गवां मूत्रे काञ्जिके च कुलत्थके ॥ २ ॥

भर्त्त धातु वगैरह का शोधन मारण—

कांसी, लोहा, पीतल इन तीनों धातुओं को गला कर ढालने से वृत नामक धातु बन जाता है। और पीतल, कांसी, रांगा, शीशा, लोह इन पांचों धातुओं को गला कर ढालने से वर्त्तक (भर्त्त) नाम का धातु बन जाता है। इत्यादि संयोगजन्य सब धातुओं का शोधन अग्नि में तपा तपा कर तेल, तक्र, गोमूत्र, कांजी, कुलथी के काढे में सात सात बार बुझाने से हो जाता है ॥ २ ॥

मारणं रसगन्धाभ्यां तदुपादानहेतुवत् ।
वीकारः प्रशमो योगाः कल्पनीयाः स्वयुक्तिभिः ॥३॥

और उनकी भस्म भी तांबे की भस्म की तरह पारद गन्धक की कज्जली से हो जाती है। और उनके प्रयोग, व विकार तथा उनकी शान्ति, उनके कारणभूत धातुओं के माफिक अपनी युक्ति से करले ॥३॥

॥ इति वृतवर्त्तकादीनां शोधनमारण विधिः ॥

लोहचूर्णीकरणम्—

तीक्ष्णन्तथाकान्तमयोऽग्नितप्तं निर्वापयेत त्रिफलाकषाये ।
पुनःपुनर्वापनतोऽस्य चूर्णं यद्वद्भवेत्ताचिनुयाद्विपश्चित् ॥
यद्वाऽपि कार्येत सुलोहकारैः सामान्यशुद्धै च विशेषशुद्ध्यै ॥

लोहे का चूर्ण करने की विधि—

लोहे की भस्म बनाने के लिये फौलाद और कान्तीसार लोहे को सभी वैद्य ग्रहण किया करते हैं। मुझे तो बाजार में फ़ौलाद लोह सन्तोषदायक नहीं मिला था। इसलिये मैंने श्री १०८ महाराज बहादुर परमकृपालु काशीनरेश श्रीश्रीश्री प्रभुनारायण सिंह जी० सी० आई० ई० की सेवा में प्रार्थना की थी तब उन्होंने स्वयं अपने समक्ष बहुत पुरानी १३ तलवार, और कान्तीसार लोह अपने भण्डार से निकलवा कर मुझको दिया था। इसी प्रकार भारतवर्ष के बड़े २ राजा महाराजाओं के भण्डारों में फ़ौलाद की बनी हुई बहुत पुरानी हजारों तलवारें पड़ी

हुई हैं। वैद्य लोग उन भण्डारों से निकलवा कर भस्म बनावें। अथवा पुराने दुकानदारों के यहाँ से खरीद लें। यदि वहाँ से भी नहीं मिले तो जिनमें चाँदी सोने के तारों को सुनार लोग खींचा करते हैं उन जन्त्रियों का लोह, अथवा खेड़ी लोहे के वेलन, या रेती का लोह, भी अच्छा होता है। कान्तीसार लोह की कढ़ाई या खरल टूटे फूटे सभी शहरों में सुलभ है। फौलाद या कान्तीसार जिसकी भस्म बनानी हो उस लोह का पहिले चूर्ण करले बाद सामान्य शुद्धि और विशेष शुद्धि करे।

उसके चूर्ण करने की यह रीति है कि तीक्ष्ण लोह (फौलाद) और कान्तीसार लोह को अग्नि में खूब तपा २ कर त्रिफला के क्वाथ में बारंबार बुझाता जाय जितना २ चूर्ण होता जाय उतने २ को इकट्ठा करता जाय। एक रीति तो चूर्ण करने की यह हुई। दूसरी रीति यह भी है कि कारीगर लुहारों से रेती से रितवा २ कर अपने सामने चूर्ण कराले। चूर्ण कराकर शुद्धि करने का मतलब यह है कि जिसमें लोहे के समस्त परमाणु तैलादि द्रव पदार्थों को आत्मसात् करें (खींचें)। यदि पिण्डाकार लोह को तैलादि वर्ग में बुझाया जाता तो लोह के अन्दर के परमाणुओं में तैलादि पदार्थ नहीं पहुँचते ॥१॥

लोह सामान्यशुद्धिः—

तैलादिषट्के परिवापयेत लोहस्य चूर्णं परिसप्तकृत्त्वः।
शुद्ध्यर्थकोष्ठ्यां परितप्ततप्तं त्रिधा त्रिधा वा प्रणिधाय चेतः १

लोहे की सामान्य शुद्धि—

तेल, मट्ठा, गोमूत्र, काञ्जी, कुलथी का काढ़ा इन पाँच चीजों में फौलाद के चूर्ण को अथवा कान्तिसार के चूर्ण को कलछा में भरकर शोधनार्थ भट्ठी में खूब तपाकर सात सात बार अथवा तीन तीन बार बुझाने से सामान्य शुद्धि होती है। यह स्मरण रहे कि तैल आदि वर्ग में शोधन करते समय हाथ बहुत काले पड़ जाते हैं उनको तैल में धो डाले और हाथों से चिकनाई उतारने के लिये गोबर से मल डाले तो हाथ साफ हो जायँगे। चिकने पात्र भी गोबर के मलने से साफ हो जाते हैं ॥ १ ॥

लोह विशेषशुद्धिः—

वराम्लिकाक्काथजले शमित्वा
रसे तथा मूलभवे कदल्याः ।
निर्गुण्डिकायाश्च कषायकेऽपि
लोहस्य चूर्णं परितप्तसम् ॥
सप्तैव वारान् परिवापयेत
विशेषशुद्धिं परिकर्तुकामः ॥ १ ॥

लोहे की विशेष शुद्धि—

त्रिफला का क्वाथ, इमली की छाल का क्वाथ (इमली की छाल नहीं मिले तो पत्तों के काढ़े से भी काम चल सकता है), केला की जड़ का स्वरस, सम्हालू की छाल का काढ़ा, इन चार चीजों में लोहे के चूर्ण को सात-सात बार बुझाने से लोहे की सर्वोत्तम विशेष शुद्धि होती है। परन्तु जहाँ तक हो सके बुझाने में नवीन २ रस डालता जाय, अर्थात् बुझाये हुए में नहीं बुझावे ॥१॥

लोहभस्म विधिः—

गोमूत्रतुल्ये च वराकषाये
कषायमात्रेऽप्युत पाचयेत ।
पादांशनीतेऽप्युत दर्विलोप्ये
संमर्द्य लोहं पटगालितञ्च ॥ १ ॥
विधाय चक्रीश्च निधाय सम्यक्
सूर्यस्य तापे च विशोष्य धीमान् ।
पुटेद् गजाख्ये परिशुद्धभस्म
योगे नियुञ्ज्यादविकारकारि ॥ २ ॥

लोहभस्म विधि—

एक सेर गोमूत्र और एक सेर त्रिफला का काढ़ा इन दो सेर को

अथवा केवल दो सेर त्रिफला के काढ़े को पकाते २ चतुर्थांश रखले अथवा और भी पका कर इतना गाढ़ा करले जिसमें कलछी में लगने लगे। इसके साथ कपरछन किये हुए शुद्ध लोहे के चूर्ण को घोट कर टिकिया बनाले और धूप में रखकर खूब सुखाले, फिर सम्पुट में रख कर गजपुट की एक आँच दे। यह लोहभस्म योगों में डालने के लिये उत्तम है। उक्त पदार्थों के क्वाथ और स्वरस में सात २ बार शोधने ही से यद्यपि लोह भस्मीभूत हो चुका है तथापि गुणवृद्धि के लिये एक गजपुट कहे हुए प्रकार से देले ॥१॥२॥

सुश्रुतोक्तविधिना लोहादिसर्वधातुभस्म विधिः—

त्रिवृत्फञ्ज्यग्निमन्थाश्च वालेयः शंखिनीद्वयम्।
तिल्वकस्त्रिफला रक्तपुष्पाशिंशपवल्कलाः॥ १॥
एषां क्वाथे वपेताग्नितप्तपत्राणि भूयसा॥
स्वर्णादिसर्वधातूनामेकविंशतिवारकम्॥ २॥

सुश्रुत के कहे हुए प्रकार से सर्व धातुओं की भस्म—

निसोथ, विधायरो, सोनापाढ़ा, केवटीमोथा, दोनों प्रकार की शंखिनी, पठानीलोध, त्रिफला, पलाश (ढाँक) की छाल, शीशम की छाल, इन दस चीजों के जुदे-जुदे क्वाथ में सुवर्ण आदि सब धातुओं के पत्रों को शोधनार्थ भट्ठी में खूब तपा-तपा कर इक्कीस-इक्कीस बार बुझावे। यहाँ सुश्रुताचार्य ने खैर की लकड़ियों की आग में तपाना लिखा है यदि खैर की लकड़ी नहीं मिले तो शीशम पलाश आदि ऊपर लिखी हुई चीजों में से जिस किसी की लकड़ी मिल सकें उसी की आँच शोधनार्थ भट्ठो में दे। इस प्रकार सब मिला कर दो सौ दस बार बुझावे। शोधनार्थ भट्ठी के प्रताप से २१० बार भी बुझाना आसानी के साथ हो सकता है॥ १॥ २॥

सान्द्रतान्तवशुद्धात्तु तच्चूर्णात्पञ्चकोलकः,॥
द्विगुणो द्विगुणं क्षौद्रं वैषम्यं प्राप्तमाज्यकम्॥ ३॥

उक्तक्काथावलेहश्च धार्येत स्निग्धभाजने ॥
शुद्धलोहस्य पात्रे वा सिद्धायस्कृतिरिष्यते ॥ ४ ॥
देशकालाग्निसामर्थ्योऽपेक्षिणीं फलदामिमाम् ॥
कुष्ठादौ दीर्घजीवित्वेऽप्यूचे श्रीसुश्रुतो मुनिः ॥ ५ ॥

इस प्रकार भस्मीभूत हुए सुवर्ण आदि के पत्रों को कूटकर गाढे कपड़े में छानकर उस भस्म से द्विगुण पञ्चकोल (पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) का चूर्ण ले और भस्म से दूना ही सहद ले, और सहद से कम या ज्यादा घी लेना चाहिये । और उक्त दस चीजों के क्काथ को पकाकर अवलेह की भांति गाढ़ा करके सबको बराबर ले । बाद चिकने घड़े में अथवा शुद्ध किये हुए लोहे के पात्र में भरकर एक महीना तक रख छोड़े । इनको सुश्रुताचार्य अयस्कृति कहते हैं । जिस धातु की अयस्कृति बनानी हो पूर्वोक्त विधि से बनाले । इस अयस्कृति की मात्रा तीन मासे से छः मासे तक देशकाल, अग्निबल आदि देख कर घृत और मधु के साथ दे । मात्रा पच जाने पर नोंन खटाई छोड़ कर आहार करे । इसके सेवन से असाध्य कुष्ठ, प्रमेह, मेदोवृद्धि, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और इसका खाने वाला चिरकाल तक जीता है ॥३॥४॥५॥

चरकमतानुसारेण सर्वधातुभस्म विधिः—

त्रिफलाक्काथगोमूत्रे लावणाभःसु पञ्चसु ॥
इङ्गुदीकिंशुकक्षारे लोहपत्राणि वापयेत् ॥ १ ॥
यावन्मसिमयानि स्युस्तच्चूर्णं शोधयेत् पटे ॥
आलोड्य मधुना चैतद्रसेनामलकस्य च ॥ २ ॥
घृताक्ते भाजने धृत्वा पलाले यवसंभवे ।
स्थापयेद्वर्षमात्रञ्च मासे मासे तु चालयेत् ॥ ३ ॥

चरकाचार्य के मत से सर्व धातुओं की भस्म—

त्रिफला का क्काथ, गोमूत्र, पाँचों नोंन का पानी और हींगोट की

छाल का क्षार, पलाश का क्षार इन पाचों चीजों में लोहे के पत्रों को तपा २ कर तबतक बुझावे कि जबतक उनकी भस्म हो। फिर उस भस्म को गाढ़े कपड़े से छानले और भस्म से दूना सहद और चौगुना आँवले का स्वरस मिला कर घी के चिकने बरतन में रखकर जौ के भूसा में एक वर्ष गाड़ा रखे और महीने महीने में उस घड़े को हिलाता जाय। परन्तु यहाँ इतना विशेष समझे कि घड़े के मुख को खोलकर देखले यदि आँवले का रस सूख गया हो तो और छोड़ दे। वर्ष दिन तक तर रहना चाहिये ॥१॥२॥३॥

स्वर्णतारादिलोहानामेष एव विधिः स्मृतः।
समामेकां प्रयुञ्जानश्चैतल्लोहरसायनम् ॥ ४ ॥
जीवेत्समाः शतं भोक्ता व्याधिभिर्नाभिभूयते।
महामेधावितास्यस्य शास्ति कारुणिकः फणी ॥ ५ ॥

इसी प्रकार सोने, चाँदी आदि सभी धातुओं की भस्म बनाने की विधि है। इसको चरकाचार्य ने "लोहरसायन" कहा है। यदि इसको देश काल जठराग्नि के अनुसार एक वर्ष तक सेवन करे तो पूरी सौ वर्ष की आयु पावे, और रोगों से कभी पीड़ित नहीं हो, तथा अनेक शास्त्रों को धारण करने वाला परम बुद्धिमान् बने ॥४॥५॥

मत परीक्षणम्—

अयस्कृतीर्वा विदधीत वैद्यो याः सुश्रुतोक्ता अखिलार्तिहर्य्यः।
लोकोपकाराय महर्षिवर्यैः शेषावतारैश्चरकेऽपि दिष्टाः ॥१॥
वाक्भटस्तु विनाशुद्धे लोहस्योक्तविधिं व्यधात्।
मन्ये तस्योपयोगेन रोगेणाम्रियते जनः ॥ २ ॥

आचार्यों के मत की परीक्षा—

सम्पूर्ण रोगों के नाश करने वाली जो सुश्रुत के चिकित्सा स्थान दशमाध्याय में सर्व धातुओं की अयस्कृति लिखी है तथा लोकोपकारार्थ शेषावतार महर्षि पातञ्जलि ने चरकशास्त्र के चिकित्सास्थान प्रथमाध्याय

तृतीयपाद में लिखी है । उनको तो वैद्य लोग खुशी से बनावें । परन्तु अष्टाङ्गहृदयकार वाक्भटाचार्य ने उत्तर स्थान उनतालिसवें अध्याय में बिना ही लोहशुद्धि के लोहे का चूर्ण डालकर जो लोहरसायन लिखी है, मेरी समझ में उसको कभी नहीं बनाना चाहिये नहीं तो रोग दूर होना तो दूर रहा किन्तु अनेक रोग शरीर में उत्पन्न हो जायँगे । देखिये ! अशुद्ध लोह के अवगुण—"षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद् हृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीञ्च ॥ नानारुजाकाञ्च तथा प्रकोपं करोति हृल्लासमशुद्धलोहम्" । अर्थात् विना शुद्ध किया हुआ लोह नपुंसकत्व, कुष्ठ, हृद्रोग, शूल, पथरी, उबाकी (खाली रद), आदि अनेक रोगों को पैदा करके मार डालता है । इसलिये ऐसे स्थल में वाग्भट को चाहिये था कि लोह की शुद्धि तथा भस्म विधि का उपदेश करके लोहरसायन बनाते तो बहुत अच्छा था ।

आजकल के विना पढ़े बहुत से वैद्य कहा करते हैं कि चरक, सुश्रुत में धातुओं के भस्म करने का उपदेश कहीं नहीं लिखा है । उनसे पूछा जाय यह क्या है ? ॥१॥२॥

वाग्भटस्य प्रमादः—

तीक्ष्णाञ्जनस्रावहृते बलासे
दौर्बल्यवच्चतुरतीव भीरु ।
उष्णांशुतोऽतोऽञ्जनमत्र रात्रौ
योज्यं फणीत्याह सुयुक्तियुक्तम् ॥१॥

वाग्भट की भूल—

अष्टाङ्गहृदयकार वाग्भटाचार्य्य आयुर्वेद के ज्ञाता थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है । परन्तु अपने ग्रन्थ की प्रसिद्धि करने के लिये या अपने अज्ञान से चरकादि शास्त्रों का खण्डन भी कर बैठे हैं—जैसा कि चरक सूत्रस्थान के पाँचवें अध्याय में चरकाचार्य्य ने अञ्जन लगाने का समय बतलाया है कि दिन में तीक्ष्णाञ्जन लगाने से अश्रु द्वारा नेत्र का कफ बह जायगा तो नेत्र दुर्बल पड़ जाने से सूर्य्य की तेजी को पाकर

नष्ट हो जायगा । इसलिये तीक्ष्णाञ्जन को रात्रि में लगावे तो नेत्र नाश की शङ्का नहीं हो सकती; क्योंकि रात्रि सौम्यकाल है वह अग्निमय नेत्र को माफ़कत पड़ता है, और निद्रा लेने से भी नेत्र की तृप्ति हो सकती है । इस युक्ति से दिन में तीक्ष्णाञ्जन का निषेध करके रात्रि में अञ्जन लगाना सिद्ध किया है ॥१॥

तामस्पृशन् वाग्भट एव
युक्तिं दोषप्रकोपोद्भवमुज्जगार ।
युक्तिं विना प्रातरथापि सायं
व्यवास्थिताप्यञ्जनमाक्षियोज्यम् ॥२॥

इस चरक मत को वाग्भटाचार्य्य ने अष्टाङ्गहृदय सूत्र स्थान २३ वीं अध्याय में "निशि स्वप्ने न मध्याह्ने" इत्यादि ग्रन्थ से खण्डन किया है, परन्तु चरक में जो युक्ति लिखी है "चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मणो भयम् दिवा तन्न प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम्, विरेकदुर्वला दृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति तस्मान् स्राव्यं निशायां तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते" इस युक्ति का स्पर्श भी न करके रात्रि में अञ्जन लगाने से दोष प्रकोप बतलाया है । और अपने मत में किसी युक्ति को न लिख कर "प्रातः सायं च तच्छान्त्यै व्यभ्रेऽर्केऽतोऽञ्जयेत्सदा" इस ग्रन्थ से सायङ्काल और प्रातःकाल में तीक्ष्णाञ्जन लगाने की व्यवस्था दे डाली है । अब इनसे पूछा जाय कि जब इनको रात्रि में अञ्जन लगाना इष्ट नहीं है तो सायङ्काल में अञ्जन देना किस प्रमाण से सिद्ध हुआ ? और नेत्र को दिवस में सूर्य्य से भय होने पर भी जो प्रातःकाल में अञ्जन लगाना लिखा है उसमें भी क्या युक्ति है ? ॥ २ ॥

चारकं हेतुमद्वाक्यं नैव पश्यंश्च वाग्भटः ।
दिवसप्रतिषिद्धं तु व्यवतस्थे दिवाञ्जनम् ॥३॥

इसी प्रकार "हेतुमत्सु वाक्येषु हेतुरेव प्रधानम्" इस न्याय से चरकाचार्य्य के "विरेक दुर्वलादृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति" इस वचन का यह अभिप्राय है कि जब सूर्य्य का भय हो तब अञ्जन नहीं लगावे । अर्थात् शीतकाल में या कफ-प्रधान नेत्ररोग में दिन में भी अञ्जन

लगा सकते हैं क्योंकि ऐसी अवस्था में सूर्य्य का भय नहीं है । इस युक्ति वाक्य को भी नहीं समझ कर "अत्युद्रिक्ते बलासे तु लेखनी-येऽथ वा गदे काममह्न्यपि नात्युष्णे तीक्ष्णमक्ष्णि प्रयोजयेत्" चरकोक्त वचन के फलितार्थ रूप इस वचन को खण्डन रूप में लिखा है । यह खण्डन वाक्य तो तब चरितार्थ हो सकता था जब कि चरकाचार्य्य ने बिना युक्ति के सदा के लिये दिवसाञ्जन का प्रतिषेध किया होता ॥३॥

शब्दार्थदारिद्र्यहतोऽपि नैजं
यशःप्रचिख्यासितुमार्षतुल्यम् ।
फणीशधन्वन्तरितोऽपि बोधं
व्याजिज्ञपत्स्वस्य महोग्रमेषः ॥ ४ ॥

वाग्भट के देखने से मालूम होता है कि प्रायः चरक के ही आनुपूर्वी शब्द और अर्थ उठाकर रखे गये हैं । जैसे "हेतावीर्ष्येत्फले नेर्ष्येत्" इस चरक के प्रयोग को "हेतावीर्ष्येत्फले नतु" इस रूप में लिखा है । "अचिन्तनाच्च कार्याणां ध्रुवं सन्तर्पणेन च । निद्रयाऽतिप्रसङ्गाच्च वराह इव पुष्यति" इस चरक वचन के भावार्थ को लिखते हुए वाग्भट ने "इस वाक्य को ज्यों का त्यों लिख डाला है । यद्यपि इसके स्थान में "अशृङ्गो महिषो भवेत्" शुण्डाहीनो भवेद्धस्ती" अर्थात् बिना सींग का भैंसा हो जाता है बिना सूँड का हाथी बन जाता है । इत्यादि वाक्य चरकाभिप्राय के सूचक हो सकते थे परन्तु यहाँ तो शब्दों का दारिद्र्य था दूसरे शब्द कहाँ से लाते ?

और प्रयोग भी अपने ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय में उनही चरक और सुश्रुत के प्रयोगों से छाँट छाँट कर कुछ अदल बदल कर लिख डाले हैं । और अपने पाण्डित्य को ऋषियों से भी बढ़ कर बतलाने के लिये ग्रन्थ के अन्त में महाऽहङ्कार सूचक "एतत्पठन् सङ्ग्रहबोधशक्तः····· अभिनिवेशवशादभियुज्यते सुभणितेऽपि न यो दृढमूढकः............ अभिधातृवशात् किं वा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ?.........ऋषि प्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्" ।

अर्थात् मेरा ग्रन्थ आर्ष ग्रन्थों से बढ़कर है और जो मुझे ऋषियों के तुल्य नहीं माने वह महामूर्ख है। और बड़े महर्षियों के कहने से वस्तु में उत्कर्ष नहीं आता इत्यादि अभिप्राय वाले छः श्लोक लिखे हैं। यहाँ पर वाग्भट से यह पूछना है कि महर्षियों ने तो तपोबल की दिव्य दृष्टि से सम्पूर्ण आयुर्वेद के विषय का साक्षात् अनुभव करके चरकादि ग्रन्थ लिखे हैं परन्तु आपने किस तपोबल से अष्टाङ्गहृदय लिखा है? क्योंकि आयुर्वेदीय सर्व पदार्थों का एक जन्म में साक्षात् करना सम्भव नहीं है। और यदि महर्षियों के लिखित ग्रन्थों का ही अनुकरण करना है तो फिर उन पर वाग्वज्र-प्रहार क्यों किया जाता है? इत्यादि वाग्भट की बहुत चपलता है। जिनका स्पष्टीकरण खोज खोज कर रसायनसार के अन्य भागों में लिखूँगा॥ ४॥

लोहमारण चतुर्थ विधिः—

भागैकसूतं समगन्धकेन संमर्द्य कन्याद्रवमत्र दत्त्वा।
मस्यर्द्धलोहस्य रजो विमर्द्य मन्दारदुग्धेन करोतु चक्रीम्॥१॥

लोहमारण की चौथी विधि—

आध पाव शुद्ध पारद आध पाव शुद्ध गन्धक दोनों की कज्जली करके घृतकुमारी के रस की एक भावना दे। बाद उस कज्जली में आध पाव शुद्ध कपरछन किया हुआ लोहे का चूर्ण घोट कर मन्दार के दूध की एक भावना दे और सब की एक टिकिया बनाले॥ १॥

घर्मे सुशुष्कांश्च निधाय यन्त्रे नालीयुते तां डमरूद्भवे च।
दद्दीत वह्निं क्रमवृद्धमत्र यामाष्टकं स्वाङ्गहिमं विदद्ध्यात्॥२॥

बाद उस टिकिया को खूब धूप में सुखाकर "नलिकाडमरूयन्त्र" में 'तालादिभस्मकरी भट्ठी' पर रखकर मन्द, मध्यम, तीव्र क्रम के अनुसार आठ पहर तक आँच दे, भट्ठी में सुलगते हुए कोयलों को निकाले नहीं किन्तु उसी में सुलगते हुए छोड़कर यन्त्र को स्वाङ्ग-शीतल करले॥ २॥

एवं त्रिधा लोहविपाचनेन सिन्दूरलाभेन च तत्रतत्र ।
रोगान् घ्नतीं लोहमृतिं भवन्तीं जले तरन्तीश्च नयेत योगम् ३

फिर नलिकाडमरूयन्त्र की मुद्रा को खोल कर ऊपर की हांडी में से सिन्दूररस निकाल ले और नीचे की हांड़ी से लोहभस्म को निकाल कर पूर्व की तरह आध २ पाव पारे गन्धक की कज्जली में घृतकुमारी की और मंदार के दूध की एक भावना दे । मंदार का दूध नहीं मिले तो मंदार के पत्तों के स्वरस से भी काम चल सकता है । जब टिकिया सूख जाय तब फिर नलिकाडमरूयन्त्र में रखकर आठ पहर की आँच दे । ऐसे तीन बार करने से जल के ऊपर तिरने वाली परम विशुद्ध लोहभस्म तैयार हो जायगी । यह अनेक रोगों के नाश करने वाली है और लोहरसायन आदि अनेक योगों में डालने से तत्काल फ़ायदा करने वाली है । इस प्रकार आध पाव भस्म बनाने में डेढ़ पाव पारद खर्च हुआ है उसका भी सिन्दूररस मिल जायगा ॥३॥

लोहमारणस्य पञ्चम विधिः—

संमर्द्य लोहं नवसादरेण त्रिधा पचेतानिलचुल्लिकायाम् ।
क्षारोप्यपेक्ष्यो यदि नालियन्त्रे खट्वाङ्गसंज्ञे प्रपचेत वैद्यः १

लोहमारण की पांचवीं विधि—

कपरछन किया हुआ शुद्ध लोह आध पाव, नवसादर एक छटांक दोनों को खूब घोट कर कज्जली करले इस कज्जली को कपरमिट्टी की हुई हांड़ी में रखकर दमचूल्हे में कोयला सुलगा कर उस पर हांड़ी को रखदे । हांड़ी के ऊपर एक सराब रखदे जब हांड़ी से धूआँ निकलना बंद हो जाय तब उसको ठंडा होने पर निकाल ले और उस लोह में एक छटाँक नवसादर डाल कर घोटे इस प्रकार तीन बार पकाले । परन्तु इस विधि में नवसादर धूम होकर उड़ जायगा । यदि नवसादर न्तार के बचाने की इच्छा हो तो उस कज्जली को नलिकाडमरूयन्त्र में भर कर आँच दे । स्वाङ्गशीतल होने पर ऊपर की हांड़ी से नवसादर क्षार को निकालता जाय । इस प्रकार तीन बार आँच दे ॥ १ ॥

त्रिगन्धसूतोद्भवकज्जलेन संमर्द्य कन्याम्बुयुतेन लोहम् ।
विधाय चक्रीमथ पूर्वमुक्ते दिनद्वयञ्चापि पचेत यन्त्रे ॥२॥

बाद तीनों गन्धक (शुद्ध आमलासार गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल) और तीनों की बराबर शुद्ध पारद चारों को घोट कर कज्जली करले और उस कज्जली में पूर्वोक्त आध पाव लोह को डाल कर घृतकुमारी के रस के साथ एक दो दिन तक खूब घोटे । बाद सबकी १ टिकिया बना कर और धूप में सुखा कर 'नलिकाडमरूयन्त्र' में दो दिन (१६ पहर) तक आँच दे ॥ २ ॥

स्वाङ्ग च शीते भसितं सुशुद्धं गृह्णातु चोर्द्धस्थरसं विचित्रम् ।
सुधेन्दुतत्क्षारजनस्यमुग्रं क्षिणोति मूर्च्छाश्च शिरोर्तिमाशु ३

स्वाङ्गशीतल होने पर परम विशुद्ध लोहे की भस्म को निकाल ले और ऊपर की हांड़ी में लगे हुए विचित्र (तालशिलासिन्दूर) रस को भी निकाल ले । और जो ऊपर की हांड़ी से नवसादर का चार निकाला है उसकी भी बात सुनो ! बिना बुझाया हुआ और कपरछन किया हुआ छटांक भर चूना एक शीशी में भरदे तथा हांड़ी से निकाले हुए छटांक भर नवसादर क्षार को भी उसी शीशी में भरदे और छटांक भर कपूर को भी एक छटांक जल में घोट कर उसी शीशी में डाल दे और तत्काल उस शीशी के मुख पर डाट भरदे (लगादे) । उस समय वह शीशी इतनी गरम हो जावेगी कि उसको छू नहीं सकेंगे इसलिये उस शीशी को कपड़े से पकड़ कर खूब हिलादे जिसमें वे चारों चीजें खूब मिल जाँय । जब शीशी ठंडी पड़ जाय तब वह "मूर्च्छान्तनस्य" औषध तैयार हो जाती है । जो मनुष्य किसी भी बीमारी से मूर्च्छित पड़ा हो उसकी नासिका के अग्रभाग में शीशी की डाट खोल कर सुँघा देने से तत्काल मूर्छा जग जायगी । अथवा जिस मनुष्य के शिर में पीड़ा हो (शिर फटा जाता हो) या जुखाम हो उसको जितना वह सह सके उतना शीशी के मुख को खोलकर दूर से सुँघा दे । इस दवाई में इतनी भारी तेजी है कि डाट खोलते ही नासिकारन्ध्र को असह्य हो जाती है ॥ ३ ॥

लोहमारणस्य षष्ठः प्रकारः—

धत्तूरजम्ब्वर्ककुमारिगुञ्जास्नुहीक्षुमद्योपलभेदकादौ ।
पुटेद्यथाशक्ति विशुद्धलोहं शतं सहस्रं यदि कौतुकं स्यात् १॥

लोहभस्म की छठी विधि—

धतूरे का स्वरस, जामुन का सिरका, मन्दार का दूध (अथवा मंदार के पत्तों का स्वरस), घृतकुमारी का रस, सफेद घूमची (चिरमिठो) का क्वाथ, थूहर का दूध (अथवा थूहर का स्वरस), ईख का सिरका, पाखाणभेद लकड़ी का क्वाथ, इनके अलावे और जो तत्तद्रोग नाशक औषधि हैं उनके रस में घोट २ कर सौ, हजार जहाँ तक हो सके लोह में पुट दे । यह सब काम औषधि बनाने के शौखीन मनुष्यों का है ॥ १ ॥

पुटानि यावन्ति ददीत लोहे सहस्रसंख्यानि शतानि वापि ।
शतं तदर्धश्च तदर्धमेव पञ्चाऽपि वैकं गुणकारि तावत् ॥२॥

हजार, सैकड़े, सौ, पचास, पचीस, पाँच, एक, जितने लोह में पुट दिये जा सकें उतना ही लोह गुणकारी होता है । जैसा कि "गुणवृद्धिस्तु धातूनां पुटनादेव जायते" ॥ २ ॥

दत्तेषु दातव्यपुटेषु लोहं कान्तं तथा तीक्ष्णमथापि मस्या, ।
संमर्द्य यन्त्रे च निधाय चक्रीमूर्द्धस्थहण्ड्या रसमाहरेत॥३॥

जितने पुट देने की इच्छा हो उतने पुट कान्तीसार अथवा फौलाद लोह में देकर लोह से दूनी पारद गन्धक की कज्जली के साथ उसे घोटकर घृतकुमारी की भावना देकर टिकिया बनाले । उस टिकिया को सुखा कर नलिकाडमरूयन्त्र में रख कर जब तक गन्धक जारण हो और धूम निकलना बंद न हो तबतक एक या दो दिन तक आँच देकर स्वाङ्गशीतल करले । नीचे की हांडी में लोहभस्म मिलेगी ऊपर की हांडी में सिन्दूररस ॥ ३ ॥

शतपुट लोहभस्म (मृतोत्थापनम्) सप्तम विधिः—

शुद्धस्य लोहस्य रजो विमर्द्य पादांशमल्लश्च सहैव सम्यक्।
मद्येन चक्रीश्च विधाय हण्ड्याः पुटेत्पुटे कुक्कुटनामधेये॥१॥

शुद्धि क्रमानुसार लोहे के चूर्ण को शुद्ध करके एक पाव ले, और उसमें एक छटांक सफेद संखिया-विष डालकर असल ब्राण्डी मदिरा के साथ दोपहर तक घोटकर एक टिकिया बना ले, हांड़ी में रखकर मुद्रा कर दे, और कुक्कुटपुट में दो सेर उपला रख कर आँच दे उस अग्नि के ऊपर हांड़ी को रख दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि हांड़ी के ऊपर उपला न रक्खे, नहीं तो लोहभस्म में से संखिया उड़ जायगी, अर्थात्—हांड़ी के तलभाग में ही अग्नि लगे॥ १ ॥

एवंशतार्द्धेषु पुटेषु तत्र जातेषु भूयो दरदेषु दद्यात्।
खट्वाङ्गयन्त्रे दरदञ्च मल्लं निस्सारयेद् दत्तमनाश्च भूयः॥२॥

द्वयोःसमानं परिमर्द्य गन्धं
मल्लाख्यासिन्दूररसं विदध्यात्।
लोहस्य भस्माप्यातितीव्रवीर्यं मृतं
समुत्थापयतीति शीघ्रम्॥३॥

वनेच्च सिन्दूररसोऽपि तीव्रो
मृतं समुत्थापयतीति हेतोः।
रम्भातले भस्म निखातनात्तु
जलाक्तधान्येऽपि भवेत्सुसौम्यम्॥४॥

जब रात्रि भर में स्वाङ्गशीतल हो जाय तब प्रातःकाल टिकिया को निकाल कर और एक छटांक संखिया डालकर उसी मदिरा के साथ घोटे। इस प्रकार दिन में घोटे और रात्रि में कुक्कुटपुट की आँच दे, जब दो ढाई सेर बोझा होजाय तब टिकिया को डमरूयन्त्र में रखकर दो पहर की आँच दे। ऐसा करने से पावभर लोहभस्म

नीचे की हांडी में रह जायगी और संखिया सब ऊपर की हांडी में आ लगेगी तब फिर एक २ छटांक उसी उड़ी हुई संखिया में से या नवीन दूसरी संखिया में से रोज २ डालकर मदिरा में घोट २ कर कुक्कुटपुट दिया करे। इस प्रकार जब संखिया के ५० पुट हो जायं तब एक २ छटांक रोज हिंगुल डाल २ कर पूर्ववत् पुट देता रहे, और जब अधिक भार हो जाय तब पूर्व की तरह डमरूयन्त्र में रख कर हिङ्गुल को उड़ा लिया करे। इस प्रकार हिङ्गुल के भी पचास पुट पूरे हो जाने पर पावभर लोहभस्म की आध सेर या डेढ़पाव भस्म जरूर मिलेगी, इस भस्म को घृतकुमारी के साथ घोटकर गजपुट देने से हिंगुल के समान लाल भस्म तैयार होगी। तथा संखिया और हिंगुल की मिली हुई हीरा के समान चमकती हुई जो डलियें डमरूयन्त्र की ऊपर की हांड़ी से निकलें उनके समान गन्धक घोटकर कज्जली कर ले उस कज्जली को एक शीशी में रखकर बालुकायन्त्र से मल्लसिन्दूर बनाले।

यह लोहभस्म तथा मल्लसिन्दूर ऐसे उग्र वीर्य हैं कि मरते हुए आदमी को भी तत्काल प्राण दान देते हैं। जिस आदमी को सर्प काटले और मुख में झाग आने लगें मूर्च्छित होकर गिर गया हो उसको एक रत्ती पान के रस के साथ या आदी के रस के साथ देने से मूर्च्छा खुल जायगी और आदमी बच जायगा। इस लोहभस्म को पञ्चामृतपर्पटी आदि में डालने से चन्द्रोदय के समान चमत्कार दिखाई पड़ता है और यह मल्लसिन्दूर भी सन्निपात आदि ज्वर में तथा हैजा में कभी पीछे पाँव नहीं डालता। यदि इससे प्राण नहीं बचे तो दूसरी दवा भी काम नहीं कर सकती। वैद्य लोग इस लोह के तैयार करने के लिये गजपुट की अथवा वराहपुट की आंच दिया करते हैं उन लोगों का लोह तो अच्छा बन जाता है परन्तु संखिया हिंगुल का कुछ भी भाग हाथ नहीं पड़ता। ये दोनों रस अधिक गरम हैं इसलिये यदि इनको ठंडा करना हो तो एक महीने तक (कांच की शीशी में भरकर डट्टा लगाकर) केला की जड़ में गाड़ दे, अथवा एक घड़े में दो सेर धनियां भरकर पानी डाल दे, उस धनियां के बीच में लोहभस्स की शीशी को एक महीना तक

गाड़ दे तो यह रस ठंडा हो जाता है इसी प्रकार जिस रस को ठंडा करना हो इसी विधि से करले ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

लोहरसायनम्—

भागैकसूतो द्विगुणश्च गन्धो
द्वयोस्समानं मृदुलोहभस्म ।
कन्याऽम्बुमध्ये त्रिदिनं ततोऽस्य
निर्माय गोलं खरघर्मशुष्कम् ॥१॥
एरण्डपत्रैः परिवेष्ट्य पात्रे
ताम्रस्य धृत्वा निखनेच्च राशौ ।
धान्यस्य मासं समुपेक्ष्यमाणं
ततो रसैर्भावयताममीषाम् ॥२॥

लोह की रसायन—

एक छटांक शुद्ध पारा, दो छटांक शुद्ध गन्धक, तीन छटांक लोह की कोमल भस्म, इन तीनों चीजों को घृतकुमारी के साथ तीन दिन घोटकर गोला बना कर सुखा ले । इस गोला को रेंडी के पत्तों से लपेट कर ताम्बे के पात्र में रखकर इस पात्र को एक महीना तक धान की राशि में गाड़ दे (धान की राशि नहीं मिले तो गेहूँ, जौ की राशि के बीच में रखदे) एक महीने के बाद ताम्र पात्र में से गोले को निकाल कर इतनी चीजों के रसों की तीन तीन भावना देकर सुखाले ॥ १ ॥ २ ॥

निर्गुण्डिवासाकदलीगुडूची-
शुक्रेष्टनीलीकटुकत्रयाणि ।
शतावरीनिम्बुबलाद्वयाऽऽद्य-
बर्बूरिकागोक्षुरबीजसाराः ॥३॥
पलाशमुण्ड्यग्निसुवर्णदुग्धा
इति प्रजातैः परिभावयेत ।

त्रिधा त्रिधा चातपशुष्कशुष्क-
मेवं वनेल्लोहरसायनं तु ॥४॥

मीउड़ी (संभालू), अरडूसा, केला की जड़, गुरुच, अनारदाने, नील के पत्ता, इतनी चीजों का स्वरस व त्रिकुटा, (सोंठ, मिरच, पीपल) शतावर, इनका क्वाथ, नींबू का रस, खिरैटी, कंघई, बमूर की फली, (पातरा) गोखरू, बिजैसार, ढाक की छाल, गोरखमुण्डी, चित्रक, पीआबांसा, (कटसरैया) इन औषधियों में जो गीली मिलें उनका स्वरस, और जो सूखी मिलें उनका क्वाथ लेकर तीन तीन भावना दे । इसको लोहरसायन कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

मध्वाज्यसेव्यं नवतिं दिनानां
स्वस्थेन पुष्ट्यै स्थविराऽवलम्बि ।
रोगग्रहग्रासविमुक्तिहेतु-
र्योग्यानुपानैरतिकर्ममुक्त्या ॥५॥

इस रसायन को निरोग पुरुष पुष्टि के लिये तीन महीने तक शहत और घी के साथ खाया करे, और वृद्ध पुरुष वृद्धावस्था के दूर करने के लिये सेवन किया करे। अनुकूल अनुपान के साथ इसका सेवन करने से सभी रोग दूर हो जाते हैं। इसकी पूर्ण मात्रा एक मासे की है ॥५॥

मन्दाग्निकासा कफवायुपाण्डु-
श्वासान् निरस्येन्मधुपिप्पलीतः ।
ग्रहणीं च मूत्रोत्थविकारवात-
रक्ताण्डवृद्धीर्मधुयष्टिकातः ॥६॥

मधु पीपल के साथ खाने से मन्दाग्नि, कफरोग, खांसी, वातव्याधि, पाण्डुरोग, श्वास दूर हो जाते हैं और शहद मुलहटी के साथ खाने से सङ्ग्रहणी, मूत्रविकार, बातरक्त रोग, अण्डवृद्धि, दूर हो जाते हैं ॥ ६ ॥

बलं च वर्णं परिवर्द्धयेत
वृष्यं सदायुष्यमिदं नराणाम् ।
कूष्माण्डतैलाऽम्लकमाषवस्तु-
मद्यानि हेयानि रसायनेऽत्र ॥७॥

इसके सेवन करने से बल और कान्ति बढ़ती है यह रसायन पौष्टिक है, आयु को हितकारी है। इसके सेवन करने वाले मनुष्य को चाहिये कि काशीफल, तेल, खटाई, उर्द के पदार्थ, मदिरा न सेवन करे और ब्रह्मचर्य्य पाले ॥ ७ ॥

लोहभस्म गुणाः—

ददाति लोहं बलवीर्यमायु-
स्त्रिदोषकोपोत्थितरोगसङ्घान् ।
अपाकरोत्याशु करोति कामं
प्रकामवृद्धं चिरशीलितश्चेत् ॥१॥

लोहभस्म के गुण—

लोहभस्म के सेवन करने से बल, वीर्य, आयु बढ़ते हैं और बात पित्त कफ जन्य अनेक रोग नष्ट होते हैं यदि इसका चिरकाल तक सेवन किया जाय तो कामदेव की वृद्धि हो ॥ १ ॥

रुक्प्रागभावानवति प्रभूतं
कुर्याच्छरीराल्पबलं नराणाम् ।
योग्यानुपानेन समस्तरोगान्
निश्शेषभावं नयति प्रसह्य ॥२॥

लोहभस्म सेवन करने वाले पुरुष के पास कोई रोग नहीं आते और यह मनुष्यों को बहुत ताकत देने वाली चीज है, अधिक क्या कहें तत्तद्रोगनाशक अनुपान के वश से यह सभी रोगों को जड़ से उखाड़ देने वाली वस्तु है ॥ २ ॥

लोह विकारशान्तिः—

विडङ्गचूर्णं मुनिभावितञ्चे-
लिह्यात्तदीयेन रसेन रोगी ।
अपानुनुत्सुर्ननु लोहजातान्
विकारसंघान् द्रुतमातपस्थः ॥१॥

लोह के विकारों की शान्ति—

यदि कोई अशुद्ध लोहभस्म खाकर तज्जन्य रोगों से पीड़ित हो तो वायविड़ंग के चूर्ण में अगस्तिया के रस की भावना देकर उसी रस के साथ उस चूर्ण को गले से उतार कर धूप में बैठ जाय पसीना के साथ ही साथ सब विकार दूर हो जायँगे ॥ १ ॥

॥ इति लोहभस्म विधिः ॥

अथ सप्तोपधातवः—

स्वर्णस्य तार्प्यं विमलं शुभस्य
ताम्रस्य तुत्थं मलमायसं च ।
बङ्गस्य कङ्कुष्ठमुरङ्गमस्य
सिन्दूरकं स्याज्जसदस्य नेत्रम् ॥१॥

सात उपधातुओं के नाम—

संसार में देखा जाता है कि मुख्य के नीचे उसके अभाव में काम करने वाला उससे अल्प गुणी गौण भी हुआ करता है। जैसे तहसीलदार की गैर हाजिरी में काम करने वाले नायब तहसीलदार, सभापति की जगह उपसभापति, मन्त्री के स्थान में उपमन्त्री, आदि। इसी नियम के अनुसार धातुओं के स्थान में उपधातुओं की भस्म डालकर औषध प्रयोग को पूर्ण किया जाता है। परन्तु अनेक आचार्यों के मत से उपधातु कई प्रकार से मानी है। जैसे सुवर्ण की उपधातु स्वर्णमाक्षिक, चाँदी की उपधातु रूपामक्खी, ताम्बे की उपधातु तूतिया, बङ्ग की उपधातु मुरदाशंख, शीशे की उपधातु सिन्दुर (जिसको

हनुमान् जी की मूर्त्ति पर चढ़ाते हैं), जस्ते की उपधातु खपरिया, और सातवीं उपधातु लोह का मल (मण्डूर) ॥ १ ॥

स्वर्णं च तारं खलु माक्षिकाद्यं
सिन्दूरकांस्ये जतु तुत्थरीती ।
सप्तोपधातुत्वमुषन्ति केचि-
देषां तु धातोरुपकारमान्द्यात् ॥२॥

किसी आचार्य्य के मत से सोनामक्खी, रूपामक्खी, सिन्दूर, कांसी, शिलाजीत, तूतिया, पीतल, ये सात उपधातु हैं क्योंकि जो उपकार सात धातुओं से होता है उनसे न्यून इनसे भी होता है ॥२॥

अन्ये तु नीलाञ्जनमाक्षिके च
तुत्थं शिलाऽऽले रसकं च षष्ठम् ।
वदन्ति चाऽभ्रं खलु सप्तमं च
धातोरनुत्वादुपधातुतैषाम् ॥३॥

किसी आचार्य्य के मत से काला सुरमा, स्वर्णमाक्षिक, तूतिया, मैंनशिल हरिताल, खपरिया, अभ्रक, से सात उपधातु हैं क्योंकि धातुओं के अभाव में इनकी भी भस्म दी जाती है ॥ ३ ॥

सुवर्णरजतकांस्यमाक्षिकाणां शुद्धिः—

ताप्यं तदर्द्धं पटु तत्समानौ
पञ्चाङ्गुलस्नेहवराकषायौ ।
रम्भारसं लोहकटाहिकायां
भृत्त्वा ददीत क्रमशोऽग्निमुग्रम् ॥१॥

सोना, रूपा, कांसा, मक्खियों की शुद्धि—

एक सेर सोनामक्खी और आध सेर सेंधानोन, डेढ़ सेर रेंडी का तेल तीनों को कड़ाही में डाल कर तीव्राग्नि लगावे (इस कड़ाही को तालादि भस्म-करी भट्ठी पर रखकर अग्नि देनी चाहिये) और लोहे की कलछी से चलाता

जाय । जब एरण्ड का तेल बिलकुल जल जाय तब त्रिफला का काढ़ा डेढ़ सेर डाल कर पूर्व की तरह अग्नि दे और कलछी से चलाता भी जाय इसके बाद केले की जड़ का डेढ़ सेर रस डालकर अग्नि दे ॥१॥

स्नेहेऽम्बुनोस्तत्र गतेषु शोषं
निम्बूकनीरं च ददीत तत्र ।
तस्मिँश्च जातेऽपि पुनः प्रशोषं
प्रचण्डमग्निं प्रददीत यामम् ॥२॥

इस रीति से रेंडी का तेल, त्रिफला का काढ़ा और केला का रस इन तीनों के जलने पर नींबू का रस डेढ़ सेर डालकर अग्नि लगावे । जब यह भी सूख जाय तब एक पहर तक तीव्राग्नि और दे ॥ २ ॥

शीतं समुत्तार्य्य नयेत नीरं
ताप्यं विमर्देत् करयुग्मकेन ।
स्थिरे जले स्रावयताश्च भूयो
नयेज्जलं क्षारनिवृत्तिहेतोः ॥३॥

स्वाङ्गशीतल होने पर शुद्ध स्वर्णमाक्षिक को कड़ाही से निकाल कर पानी के कुंड़े में डालकर दोनों हाथों से मल डाले जिसमें सम्पूर्ण लवण पानी में मिल जाय । जब पानी नितर जाय और स्वर्णमाक्षिक पेंदे में बैठ जाय तब धीरे धीरे उस खारे पानी को पृथ्वी में गिरा दे और दूसरा पानी भर दे जिसमें सेंधानोंन पानी के द्वारा निकल जाय ॥ ३ ॥

क्षारेऽपनीते तु प्रशोष्य ताप्यं
प्रकुट्य वस्त्रेण प्रगालयेत ।
संशुध्यतीत्थं विमलं च रीत्या
कांस्योत्थमाक्षीकमपि प्रशुध्येत् ॥४॥

फिर पानी को चीखकर देखले जहां तक खारा पानी मालूम हो वहां तक दूसरा पानी डाल २ कर सब क्षार को निकाल दे। बाद स्वर्णमाक्षिक

को सुखाकर और लोहे के खरल में कूटकर कपरछन करले। बस ऐसा करने से सोंनामकूखी शुद्ध हो जाती है। इसी प्रकार रूपामकूखी भी शुद्ध होती है। बाजार में तीन प्रकार की माक्षिक मिलती है जिसमें सुवर्ण की सी झलक हो और वजन में भारी हो उसको सोंनामकूखी कहते हैं। और जिसमें चांदी के समान कान्ति हो उसको रूपामकूखी कहते हैं। परन्तु इन दोनों के अलावे कांसी के समान कान्ति वाली भी मिलती है उसको वैद्य लोग कांस्यमाक्षिक कहते हैं। इसकी शुद्धि भी स्वर्णमाक्षिक के समान जान लेनो चाहिये ॥ ४ ॥

माक्षिकाणां मारणम्—

सूतमाक्षिकगन्धानां कज्जलीं निम्बुभाविताम्।
कूप्यां यन्त्रेऽथवा पक्त्वा सिद्धिं समधिगच्छति ॥१॥

सोंना, चांदी, कांसी, मकूखियों की भस्म विधि—

स्वर्णमाक्षिक, रजतमाक्षिक, कांस्यमाक्षिक, इन तीनों में से कोई भी पाव भर, और पाव भर शुद्ध गन्धक तथा पाव भर हिङ्गुल का पारद तीनों की कज्जली करके और नींबू के रस की एक दो भावना देकर शीशी में अथवा नलिकाडमरुयन्त्र में पकाने से तलभाग में भस्म मिलेगी और ऊपर के भाग में सिन्दूररस मिलेगा ॥ १ ॥

भूयस्तद्भस्म संमर्द्य निम्बुनीरेण त्रिःपुटेत्।
पुटे गजे भवेद्भस्म विशुद्धं रक्तवर्णकम् ॥२॥

फिर स्वाङ्गशीतल होनेपर उस भस्म को नींबू के रस में घोट घोट कर तीन बार सुखा ले। बाद उसकी टिकिया बनाकर गजपुट में तीन पुट देने से तीनों माक्षिकों की उत्तम लाल भस्म हो जाती है ॥ २ ॥

माक्षिकत्रयस्य द्वितीयो भस्म विधिः—

अथवा केवलेनाऽपि निम्बुनीरेण भावितम्।
सप्तधा पुटनात्ताप्यं म्रियते रक्तवर्णवत् ॥१॥

तीनों माक्षिकों की दूसरी भस्म विधि—

स्वर्णमाक्षिक, रूप्यमाक्षिक, कांस्यमाक्षिक, इन तीनों के कपरछन किये हुए शुद्ध चूर्ण को नींबू के रस में घोट घोट कर टिकिया बना बना कर सुखाता जाय और सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंकता जाय, इस प्रकार सात पुट देने से तीनों माक्षिकों की लाल भस्म हो जाती है ॥ १ ॥

स्वर्णमाक्षिक गुणाः—

पाण्डुकुष्ठाऽर्शसां मेहपामाक्षयविषोदरान् ।
शोथवान्तित्रिदोषांश्च नाशयेत्स्वर्णमाक्षिकम् ॥१॥

स्वर्णमाक्षिक के गुण—

स्वर्णमाक्षिक की भस्म के सेवन करने से पाण्डुरोग, कोढ़, बवासीर, प्रमेह, खुजली, क्षयरोग, विष के रोग, उदररोग, शोथ, वमन, त्रिदोष, इनका नाश हो ॥ १ ॥

नेत्र्यं कण्ठ्यं तथा वृष्यं भूतबाधां निरस्यति ।
दीपयेदग्निमेतच्च स्वादुस्वादं कटु स्मृतम् ॥२॥

नेत्र का हितकारी, कण्ठ का हितकारी, और पौष्टिक है । तथा अग्नि को दीप्त करे और इसमें मधुर कटु गुण हैं ॥ २ ॥

स्वर्णमाक्षिक दोषशान्तिः—

माक्षिकं चन्द्रिकाऽऽक्रान्तं पोषयेद् विविधा रुजः ।
कुलत्थदाडिमक्काथौ शीलयेत्ता व्यपोहितुम् ॥१॥

स्वर्णमाक्षिक के दोषों की शान्ति—

स्वर्णमाक्षिक की भस्म को धूप में ले जा कर देखले जो चमक नहीं हो तो शुद्ध भस्म समझे । यदि चमक नहीं गई हो, और उस भस्म को सेवन करे तो शरीर में बहुत व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । उनके दूर करने के लिये कुलथी का काढा अथवा अनार के छिलके का काढ़ा पीने से सुखी हो ॥ १ ॥

रौप्यमाक्षिक गुणाः—

तारजं माक्षिकं मेहकुष्ठपाण्डुप्रमेहनुत् ।
अपस्मराऽश्मरीकीटान् नाशयेद् भक्षणाद् ध्रुवम् ॥१॥

रजतमाक्षिक के गुण—

चांदी की उपधातु रजतमाक्षिक प्रमेह, कुष्ट, पाण्डु, मधुमेह को दूर करे तथा मिरगी, पथरी, कृमि रोग, इनको भी सेवन करने से दूर करे ॥ १ ॥

कांस्यमाक्षिक गुणाः—

वराव्योमाऽन्वितं कांस्यमाक्षिकं नवनीतयुत् ।
जरामेहाऽरुचीः पाण्डुग्रहणीशोथशोषजित् ॥१॥

कांस्यमाक्षिक के गुण-

कांस्यमाक्षिक के सेवन करने से वृद्धाऽवस्था, प्रमेह, अरुचि, पाण्डुरोग सङ्ग्रहणी, शोथ, क्षयरोग, नष्ट होते हैं ॥१॥

विकारशान्तिः-

मेषशृङ्गी सितायुक्ता सेविता दिवसत्रयम् ।
कांस्यतारभवान् रोगान् मूलतोऽप्यपकर्षति ॥१॥

रजत कांस्य माक्षिक के विकारों की शान्ति—

मिश्री के साथ मैंढासींगी को तीन दिन सेवन करने से रजत-माक्षिक और कांस्यमाक्षिक के रोग दूर हो जाते हैं ॥१॥

खनिजतुत्थशुद्धिः-

गोमूत्रे माहिषीमूत्रेऽप्यजामूत्रे च तुत्थकम् ।
यामे यामे क्वथेत्तेन खनिजं शुद्धिमृच्छति ॥ १ ॥

खान के तूतिया की शुद्धि—

गो के मूत्र, भैंस के मूत्र, और बकरी के मूत्र में एक एक प्रहर क्वाथ करने से खाँन का तूतिया शुद्ध हो जाता है ॥१॥

कृत्रिमतुत्थ शुद्धिः—

कृत्रिमं तु जले पात्यं क्षारं तस्याऽपनोदयेत् ।
घर्म्मशुष्कं विशुद्धं तत् योगयोजनकर्म्मकृत् ॥ १ ॥

बनावटी तूतिया की शुद्धि—

बनावटी तूतिया को मट्टी के पात्र में पानी में घोलकर रखदे जब पानी स्थिर हो जाय और तूतिया तलभाग में बैठ जाय तब नींबू नौसादर के खारी पानी को धीरे धीरे निकाल दे। बाद धूप में सुखाकर काम में ले ॥१॥

तुत्थ मारणम्—

सूतगन्धककज्जल्या समं तुत्थं विमर्दयेत् ।
सूतार्धं टङ्कणं दत्त्वा भावयेल्लकुचद्रवैः ॥१॥

तूतिया का मारण—

पाव भर शुद्ध पारद, पाव भर शुद्ध गन्धक दोनों की कज्जली करके उसमें आध सेर तूतिया डालकर घोटे। बाद आध पाव शुद्ध सुहागा डालकर बड़हर के क्वाथ की भावना देकर सुखाले ॥१॥

भृत्त्वा कूप्यां पचेद् वह्नौ तीव्रे सूतं समुद्धरेत् ।
गले सिन्दूरनामा स्यात् तुत्थभस्माऽप्यधस्तले ॥२॥

इस कज्जली को शीशी में भरकर प्रथम से ही तीव्राग्नि दे। दो दिन के बाद अग्नि लगाना बन्द करे। स्वाङ्गशीतल होने पर शीशी के गले पर सिन्दूररस मिलेगा तलभाग में तूतिया की भस्म मिलेगी इसके गुण ताम्रभस्म के तुल्य हैं ॥२॥

कङ्कुष्ठ शुद्धिः—

कङ्कुष्ठं कुट्टितं खल्वे गालितं घनचीवरे ।
शृङ्गवेररसैस्त्रेधा भावितं परिशुध्यति ॥ १ ॥

मुरदाशंख की शुद्धि—

बङ्ग की उपधातु मुरदाशंख, को लोह के खरल में कूटकर गाढ़े कपड़ा में छान ले उसमें आदी के रस की तीन भावना देने से मुरदाशंख शुद्ध हो जाता है ॥१॥

कङ्कुष्ठ मारणम्—

कन्याद्रवेण कुर्वीत चक्रीमल्लकसम्पुटे ।
कुक्कुटे पुटनाद् भक्ष्यं जायते पटगालितम् ॥ १ ॥

मुरदाशंख की भस्म—

घृतकुमारी के रस में मुरदाशङ्ख के चूर्ण को घोटकर टिकिया बनाले । बाद उनको सुखाकर शराब सम्पुट में रखकर कुक्कुटपुट में फूंकने से तथा गाढ़े कपड़े में छानने से मुरदाशंख खाने योग्य हो जाता है ॥ १ ॥

कङ्कुष्ठ गुणाः—

कङ्कुष्ठं रेचकं चोष्णं शूलोदावर्तगुल्मनुत् ।
अर्शःप्लीहाऽऽमवातार्त्तिव्रणरोगान् विनाशयेत् ॥१॥

मुरदाशंख के गुण—

मुरदाशंख दस्तावर है, गरम है, और शूल, उदावर्त, गुल्मरोग, बवासीर बरवट, आमवात, व्रण, इनको नष्ट करता है ॥१॥

सिन्दूरोपधातु शुद्धिः—

स्निग्धं रक्तं गुरु ग्राह्यं सिन्दूरं परिशुद्ध्यति, ।
काञ्जीनिम्बवम्बुगोदुग्धैः प्रत्येकं भावनात् त्रिधा ॥१॥

सिन्दूर की शुद्धि—

शीशे की उपधातु सिन्दूर, चिकना और लाल तथा भारी दवा के काम का है। इसको कांजी, नींबू का रस, गो का दूध इन तीनों में तीन तीन बार भावना देने से शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

सिन्दूर गुणाः—

धातोर्यस्योपधातुर्यो गुणास्तस्याऽपि ते मताः ।
संयोगजनिताश्चाऽन्ये सिन्दूरे नागजे यथा ॥ १ ॥

सिन्दूर के गुण—

जिस धातु के जो उपधातु हैं उनके गुण भी अपनी २ धातु के समान हैं, परन्तु खाँन के संयोग से उपधातुओं में और भी गुण होते हैं । जैसे सिन्दूर शीशे की उपधातु है इस लिये सिन्दूर के गुण शीशे के समान तो हैं ही परन्तु खाँन के सम्बन्ध से शीशे से उसमें (सिन्दूर) अधिक गुण हैं ॥ १ ॥

मण्डूर ग्राह्यता—

वर्षाभिरुन्दं क्षमया स्ववाष्पैः
संस्वेदितं तीव्रगभस्तितप्तम् ।
नक्षत्रताराधिपगोप्रसिक्तं
शीतादिवातैरुपवीजितं च ॥१॥

ग्रहण करने योग्य लोह का मैल (मंडूर)—

जहाँ पर लोहे के कारखाने हुआ करते हैं वहाँ पर लोहे का मैल बहुत सा निष्प्रयोजन पड़ा रहता है उसीको लोहकीट्ट या मण्डूर शब्द से कहा करते हैं । परन्तु जो दो, चार, पांच वर्ष का पुराना होता है वह औषध के काम का नहीं है । किन्तु जो पचास, सौ वर्ष का पुराना जमीन के अन्दर या जमीन के ऊपर पड़ा हुआ मिलता है वही मण्डूर औषध के काम का होता है । उसके श्रेष्ठ होने में यह युक्ति है कि पचासों वर्ष से वह बरसात में भीगा है, और वर्षा के प्रारम्भ में जो पृथ्वी से ऊष्मा निकलती है उससे वह स्वेदित हुआ है और गरमियों में तीव्र सूर्य्य के ताप से तप्त भी होता रहा है, तथा नक्षत्र चन्द्रमा की

किरणों से सींचा भी गया है, और शीत ऊष्ण आदि वायुओं से संस्कृत होता रहा है। तथा ॥ १ ॥

दीर्घेण कालेन निगूहितं चेद्-
भूमौ निरुच्छ्वासतयेव तप्तम्।
शीतीकृतं चापि सुधेव जातं
मण्डूरकं ग्राह्यमुशन्ति वैद्याः ॥२॥

बहुत काल पर्यन्त पड़ा रहने से पृथ्वी में अपने आप कितने ही हाथ गहरा दब जाने से पृथ्वी की गरमी में तप्त और सरदी में ठण्डा होता रहा है, इस लिये अमृत के तुल्य उसमें गुण उत्पन्न हो गए हैं। इसी लिये उस मण्डूर को वैद्य लोग पसन्द करते हैं ॥ २ ॥

नदीरयैरुच्छलितं च तीव्रै
रान्दोलितं कोटरहीनतातः।
जातं शिलापुत्रकवत्स्वरूपं
सगौरवं चेष्यति लोहधातुम् ॥३॥

कुछ समयानन्तर नदियों के तीव्र बेग से मट्टी के बह जाने के कारण वह पृथ्वी के ऊपर दीख पड़ता है। और नदी के बेग में परस्पर आघात लगने से उसके गढ़े नष्ट हो जाने के कारण लोढ़ा के समान हो जाता है तथा लोह के समान भारी भी होता है। ऐसे ऐसे मण्डूर के टुकड़ों को वैद्यलोग ढूंढ़ २ कर संग्रहीत किया करते हैं। जहां पर वह मिलता है तो सैकड़ों मन मिल जाता है ॥ ३ ॥

मण्डूर शोधनम्—

महाखजेऽयोमलपिण्डमग्नौ
धृत्वा च तप्त्वाऽप्यनुकूलकोष्ठि।
गोमूत्रके वापनतश्च सप्तः
कृत्वो विशुद्ध्येच वराकषाये ॥१॥

मण्डूर का शोधन—

कलछे में मण्डूर के पिण्ड को रखकर उसके योग्य भट्टी (शोधनार्थ) में तपा कर गोमूत्र, और त्रिफला के काढ़े में सात सात बार बुझाने से मण्डूर शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

परन्तु तापं समवाप्य किट्टं
लोहस्य चट्चड्ध्वनिमावितन्वत् ।
उत्प्लुत्य कोष्ठ्यां पततीति दर्विं
पिधाय तापेन सुतापयेत ॥२॥

परन्तु जब कलछे में रखकर मण्डूर को शोधनार्थ भट्टी में तपाते हैं तब मण्डूर "चट् चट्" शब्द करता हुआ उछल २ कर भट्टी में बहुत कुछ गिर जाता है, इसलिये जिस कलछे में मण्डूर भरा है उसके ऊपर एक तवा ढक कर मण्डूर को तपावे, जिसमें मण्डूर छीजे नहीं ॥ २ ॥

शास्तीह शास्त्रं कलिवृक्षकाष्ठं
सन्तापहेतोर्यदि तस्य लाभः ।
न स्यात्तदा तत्फलसंयुतेन
बर्बूरकाष्ठेन प्रदीपयेत ॥ ३ ॥

मण्डूर के तपाने के विषय में शास्त्र की तो यह आज्ञा है कि मण्डूर को बहेड़े की लकड़ी की आँच से तपाना चाहिये । यदि उतनी लकड़ी नहीं मिल सके तो बमूर की लकड़ी की जब तेज आंच हो जाय तब उसी आंच के ऊपर बहेड़े के फल बीस पचीस सेर डाल दे, जब खूब लपट उठने लगे तब मण्डूर के भरे हुए कलछे को तप्त करे । ऐसा करने से भी शास्त्र विधि का कुछ पालन हो जाता है ॥३॥

लोहकिट मारणम्—

सङ्कुट्य किट्टं पटगालितं च
वराकषाये द्विगुणे घने च ।

सम्मेल्य संमर्द्य करोतु चक्रीः
सर्वार्थकोष्ठ्यां प्रपुटेद् गजे वा ॥१॥

मण्डूरभस्म विधि—

उक्त प्रकार से शोधे हुए मण्डूर को लोह के हिमामदस्ते में कूट कर कपड़े में छान ले। यदि मण्डूर का चूर्ण एक सेर हो तो त्रिफला के गाढ़े क्वाथ में (दस सेर त्रिफला में एक मन पानी डालकर चतुर्थांश रहने पर ठंडा करले यदि क्वाथ पतला निकले तो उसको कपरछन करके कड़ाही में मन्दाग्नि से पका कर गाढ़ा कर ले) मिलाकर और उसको घोटकर टिकिया बनाले। उन टिकियाओं को सुखा कर सम्पुट में रख कर गजपुट में फूंक दे, अथवा सर्वार्थकरी भट्ठी पर यदि कोई काम जारी हो तो भट्ठी के निचले भाग में मण्डूर के सम्पुट को जमादे। इस प्रकार भी दो तीन दिन तक आंच लगाने से गजपुट का काम निकल जाता है। स्वाङ्गशीतल होने पर मण्डूरभस्म को सम्पुट से निकाल ले ॥ १ ॥

स्पर्शे मृदु प्रेक्षणमोदकारि
वर्णेऽरुणं लोहमलं विशुद्धम् ।
वृद्ध्यै गुणानां त्रिफलाकुमारी-
स्नुगर्कदुग्धेषु पुटेत् त्रिधा तत् ॥२॥

यह भस्म स्पर्श करने में मृदु, देखने में सुन्दर, लाल वर्ण वाली, परम विशुद्ध बन जाती है। यदि इसमें और भी गुण वृद्धि करनी हो तो उसी गाढ़े त्रिफला के क्वाथ में तीन तीन पुट दे तब बहुत उत्तमोत्तम भस्म तैयार हो जाती है ॥ २ ॥

हंसमण्डूर विधिः—

वराकषायेण सुमर्द्य पूर्वं
मण्डूरभस्माऽष्टगुणेन तस्मात् ।
गोमूत्रकेणाऽनुपचेत वह्नौ चूर्णं
च तस्मिन्निदमौषधीनाम् ॥१॥

हंसमण्डूर की विधि—

मण्डूरभस्म को पहले त्रिफला के काढे के साथ खूब घोटले बाद मण्डूरभस्म से अठगुने गोमूत्र के साथ मन्दाग्नि में पकावे और साथ ही साथ इन तेरह औषधियों के कपरछन किये हुए चूर्ण को भी डाल दे॥ १॥

वरा कटूनांत्रयमुस्तचव्य-
विडङ्गदार्वग्निसुरद्रुमाश्च।
मूलं कणायाश्च समं प्रमाणं
त्रयोदशानामपि मन्दमन्दम्॥२॥

हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, नागरमोथा, चव्य, बायविड़ङ्ग, दारुहल्दी, चित्रक, देवदारु, और पीपरामूल, ये तेरहों चीज समान समान भाग ले, और इस चूर्ण के समान भाग मण्डूर रहे अर्थात् ये तेरह चीज तेरह तोले हों तो तेरह तोले ही मण्डूर-भस्म ले॥ २॥

चेद्धंसमण्डूरमिदं भजेत
कर्षं च तक्रं सति जीर्णमात्रे।
पाण्डुं हलीमं गुदजांश्च शोफं
स्तम्भं निरस्येन्ननु कामलाश्च॥३॥

इसे हंसमण्डूर कहते हैं इसकी पूर्ण मात्रा एक तोले की है बलाऽबल देखकर मात्रा को कमती भी कर सकते हैं। इसकी मात्रा को शहद के साथ या मट्ठा के साथ सेवन किया करे। जब औषध की मात्रा पच जाय तब जितना पी सके तृप्ति पूर्वक इसके ऊपर मट्ठा पीवे तो ये रोग नष्ट हों— पाण्डुरोग, हलीमकरोग, बवासीर, शरीर का सूजना, ऊरुस्तम्भ और कामला॥ ३॥

जरापिशाचीपरिखेदितानां
रक्तस्य दुष्ट्याऽप्युदूषितानाम्।

मन्दाग्निपीडाऽधिकपीडितानां
स्याद्धंसमण्डूरमिदं सुखाय ॥४॥

और इस हंसमण्डूर के सेवन करने से वृद्धाऽवस्था, रक्तविकार, मन्दाग्नि, नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

मण्डूरभस्मनो द्वितीयो विधिः—

वंशाङ्कुरोत्पन्नरसेन दद्यात्
पुटानि मण्डूररसे शतं चेत्।
लोहस्यभस्माऽप्यधरीकरोति
लोहे तु तान्येव विलक्षणानि ॥१॥

मण्डूरभस्म की दूसरी विधि—

जो बांस के अङ्कुर (कल्ला) निकलते हैं उनका कूट कर रस निकाल ले। (एक हाथ लम्बे कल्ला से एक सेर रस निकलता है) उस रस में घोट घोट कर टिकिया बना सुखा कर यदि सौ पुट दिये जाँय तो वह मण्डूरभस्म लोहभस्म से भी अधिक गुण वाली बने। परन्तु उसी रस के लोहभस्म में सौ पुट दिये जांय तो लोहभस्म के गुण विलत्तण ही होते हैं ॥ १ ॥

मण्डूर वटी—

मण्डूरभस्मार्द्ररसेन मर्दन्
निम्बूकनीरेण च यावदुत्थम्,।
खल्वस्य पश्चात्मककोलमत्र
निपात्य मानेन समं विमर्दत् ॥१॥
सर्वस्य तुल्यं मरिचस्य चूर्णं
शुकेष्टनीरेण विमर्दनीयम्।
वटी विधेया चणकप्रमाणा
बुभुक्षयन्ती ज्वरकासहन्त्री ॥२॥

मण्डूर की गोली—

पांच तोले मण्डूरभस्म को आदी के रस के साथ पत्थर के खरल में वहां तक घोटे कि जहाँ तक खरल मारे चिकनाई के जमीन से उठ जाय । बाद नींबू का रस डाल कर भी खरल के उठने पर्य्यन्त घोटे । बाद पञ्चकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) को पांच पांच तोले लेकर और कूट कपरछन करके मण्डूर में डाल दे और तीस तोले कालीमिरच भी कपरछन करके डालदे । इस साठ तोले औषध को अनारदाने के रस के साथ दो तीन दिन तक घोटकर चने की बराबर गोलियां बनाले । इन गोलियों का सायंकाल प्रातःकाल सेवन करने से खूब भूख लगती है और ज्वरकासादि रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

॥ इति मण्डूर विधिः ॥

अथाञ्जन भेदाः—

अञ्जनानि त्रिधेदानीं लभ्यन्ते नामवर्णतः ।
नीलपुष्परसै र्नीलश्वेतपीतप्रकाशनैः ॥ १ ॥

सुरमा के भेद—

मुझको अञ्जन तीन प्रकार का प्राप्त हुआ है, एक नीलाञ्जन (काला सुरमा) दूसरा पुष्पाञ्जन (सफेद सुरमा) तीसरा रसाञ्जन (रसौत) ॥ १ ॥

अञ्जनशुद्धिरुत्पत्तिश्च—

आद्ये निम्बवम्बुमर्दन शुध्यतो घर्म्मशोषणात् ।
तृतीयं त्रिफलाक्वाथे गालनात् परिशुध्यति ॥१॥

अञ्जन की शुद्धि और उत्पत्ति—

नीलाञ्जन और पुष्पाञ्जन को गाढ़े कपड़े में कपरछन करके नींबू के रस के साथ जहां तक चिकना हो वहां तक घोट कर धूप में सुखा

देने से विशुद्ध हो जाते हैं । और तीसरे अञ्जन रसौत को त्रिफला के काढ़े में घोट कर कपड़े में छान कर धूप में सुखा देने से शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

धातुवद्गुरुणी आद्ये खनिसञ्जातजन्मनी ।
अन्यद्दारुहरिद्रोत्थं सर्वं नेत्राहितं परम् ॥२॥

काला सुरमा और सफेद सुरमा धातु की तरह भारी होते हैं, और खाँन से निकलते हैं । और रसाञ्जन दारुहलदी के क्वाथ को जला कर गाढ़ा करने से बन जाता है । ये तीनों अञ्जन नेत्र के परम हितकारी हैं ॥ २ ॥

सौवीरस्रोतसोः स्थाने नीलपुष्पे मते बुधाम् ।
दुष्प्रापयोस्तयोर्योगे तत्समानगुणत्वतः ॥३॥

शास्त्रों में सौवीराञ्जन और स्रोतोऽञ्जन का बहुत जगह लेख मिलता है उनके अभाव में औषधि के काम में नीलाञ्जन और पुष्पाञ्जन लिये जाते हैं क्यों कि इनका भी लगभग समान गुण है ॥ ३ ॥

हिताञ्जनम्—

नीलपुष्पाञ्जनांशौ द्वौ समौ मर्द्द्य रसाञ्जने ।
वराक्वाथद्रुते चक्रीं शोषितां पलमानिताम् ॥१॥
षण्मासान् निम्बमूलान्तर्मासं रम्भातरौ न्यपेत् ।
भीमकर्प्पूरकस्तूर्य्योर्योगादान्ध्यं रुणद्धि सा ॥२॥

हितकारी सुरमा—

रसौत को त्रिफ़ला के क्काथ में घोल कर काले सुरमा और सफेद सुरमा को समान समान भाग लेकर उसमें खूब घोट ले बाद उसकी टिकिया बनाकर धूप में सुखा ले । वह टिकिया चार तोले से अधिक नहीं होनी चाहिये ॥ १ ॥

इस टिकिया को किसी कपड़े में बांधकर नीम की जड़ में एक बिलांद गहरा गड्ढा खोद कर रख दे, और जो खोदा हुआ नीम का चूर्ण

(बुरादा) निकले उसी से उस गड्ढे को भरकर, गोबर से ल्हेस दे। फिर उस जड़ को मट्टी से दाब दे। इस प्रकार छः महीने तक नीम के रस को वह टिकिया पीती रहेगी। छः महीने के बाद उस टिकिया को निकाल कर केला की जड़ के खम्भे में गड्ढा करके रख दे। एक महीने के बाद इस टिकिया को निकाल कर तथा छाया में सुखाकर खरल में खूब ऐसी घोटे कि आंख में करके (गड़े) नहीं। बाद एक तोला सुरमा में तीन मासे भीमसेनी कपूर, और चार रत्ती या एक मासे कस्तूरी घोट कर शीशी में बन्द करके रख छोड़े। इस अञ्जन को रोज लगाने से मनुष्य कभी अन्धा नहीं हो सकता और जितने नेत्र के विकार हैं सब नष्ट हो जाते हैं। अञ्जन जिस सलाई से लगाया जायगा उसके बनाने की विधि भी लिखूंगा ॥ २ ॥

वज्रकासीस शुद्धिः—

भावितं निम्बुनीरेण शोषितं च खरातपे ।
त्रिविधं वज्रकासीसं शुद्धिं यातीव हिङ्गुलम् ॥१॥

हीराकसीस की शुद्धि—

काला, पीला, सफेद, तीनों वर्ण का हीराकसीस नींबू के रस में घोटने से और तेज धूप में सुखाने से हिङ्गुल की तरह शुद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

वज्रकासीस मारणम्—

सूतगन्धककज्जल्या कासीसं म्रियते ध्रुवम् ।
केवलेनाऽपि गन्धेन मृतिं यायात् त्रिभिःपुटैः ॥१॥

हीराकसीस का मारण—

आधपाव पारद, आधपाव गन्धक, आधपाव शुद्ध हीराकसीस, इन तीनों की कज्जली को शीशी में चढ़ाकर और बालुकायन्त्र में रखकर पका लेने से सिन्दूररस शीशी के गले पर मिलेगा और हीराकसीस की

भस्म शीशी के तलभाग में मिलेगी। अथवा हीराकसीस के समान केवल गन्धक के साथ घोट घोट कर तीन बार पुट देने से भी उसकी भस्म हो जाती है ॥ १ ॥

कासीस गुणाः—

कासीसं हन्ति दोषांस्त्रीन् श्वित्रव्रणविषाऽपहम् ।
नेत्र्यं चोष्णकषायाऽम्लं केशानां चोपरञ्जनम् ।
मूत्रकृच्छ्रं च कण्डूतिमपस्मारं विनाशयेत् ॥१॥

कसीस के गुण—

कसीस त्रिदोष, सफेदकोढ़, घाव, विष को नाश करती है, नेत्र को हितकारक है, और इसमें उष्णता कषाय अम्ल गुण हैं और केश को रंगने वाली है। तथा मूत्रकृच्छ्र, खुजली, मिर्गी का नाश करती है ॥१॥

अथाभ्रक ग्राह्यता—

अग्नौ च तप्तं न विकारमेति
स्फुटेन्न शब्दश्च करोति नाऽपि ।
वज्राभ्रकं तन्निगदन्ति वैद्यास्तदेव
शंसन्ति च मारणाय ॥१॥

भस्म करने योग्य अभ्रक—

नाग, पिनाक, दर्दुर, वज्र, इन चार भेदों से अभ्रक चार प्रकार का होता है जिसके तपाने से सर्प के फुफकार का तरह शब्द हो उसको नागाभ्रक कहते हैं, जिसके तपाने से पत्र फूल फूल कर जुदे २ निकल आवें उसको पिनाकाभ्रक कहते हैं और जो तपाने पर मैंडक की तरह शब्द करे उसको दर्दुराभ्रक कहते हैं। ये तीनों अभ्रक भस्म के योग्य नहीं हैं। किन्तु अभ्रक की भस्म करने के लिये वज्राभ्रक ही लिया जाता है उसकी पहचान यह है कि अग्नि में तपाने से रङ्गत नहीं बदले, और फटे फूले भी नहीं व कोई प्रकार का शब्द भी नहीं

करे उसको वज्राभ्रक कहते हैं। यह वज्राभ्रक हमारे प्रान्त में कहीं नहीं मिला था इसलिये मैं रंगून से लाया था। परन्तु अब सुना गया है कि अजमेर के पहाड़ में वज्राभ्रक निकला है और बहुत वैद्य वहाँ से ले भी आये हैं ॥ १ ॥

अभ्रक शुद्धिः—

श्यामाभ्रकं दर्वितले निदध्या-
च्छुध्यर्थकोष्ठ्यां परितापयेत।
त्रिधा त्रिधा वापि च सप्तकृत्वो
निर्वापयेत्षट्स्ववधानचेताः ॥१॥

अभ्रक शोधन—

श्याम वज्राभ्रक को लोहे के कलछे में रखकर "शोधनार्थ भट्ठी" में रखकर तीन तीन बार या सात सात बार आगे कही हुई छः चीजों में बहुत होशियारी के साथ बुझावे ॥ १ ॥

गोदुग्धकाञ्जीत्रिफलाकषाय-
गोमूत्रकोलीसुरसाजलेषु ।
एतेषु निर्वापणकाल एव
सुवर्णकान्तिं भजतेऽभ्रमेनत् ॥२॥

गौ का दूध, कांजी, त्रिफला का काढ़ा, गोमूत्र, बेर व निर्गुण्डी (सम्हालू—मेवड़ी) का काढ़ा। वज्राभ्रक की एक और यह भी पहिचान है कि—उक्त छः चीजों में बुझाते समय अभ्रक का वर्ण सुवर्ण का सा हो जाता है जिसके देखने से यही मालूम होगा कि सुवर्ण के पत्र हैं ॥ २ ॥

निर्वापयन्नावृणुयाच्च
दर्वीमुड्डीयमानाभ्रनिरोधकेन ।
जलार्द्रवस्त्रेण शणोद्भवेन
छितीयदर्वीं परितापयेत ॥३॥

जिस समय गोदुग्ध आदि द्रव पदार्थ में निष्टप्त अभ्रक को बुझाते हैं तब अभ्रक के परमाणु इतने हलके हो जाते हैं कि आकाश में व्याप्त होकर पड़ोसियों के घर तक पहुँचते हैं। उस नुकसान को बचाने के लिये यह उपाय करें कि जिस समय अग्नि से तप्त कलछा के अभ्रक को दुग्ध आदि में डाले उसी समय उस कलछे को पानी से भींगे हुए सन के वस्त्र (टाट बोरी वगैरह) से ढाँक दे, जिसमें अभ्रक उड़कर बाहर नहीं जाय किन्तु बोरी के अन्दर ही रहे। हमने उस बोरी को सुखा कर आध २ सेर पक्की अभ्रक उससे निकाली है। अभ्रक के बुझाने और कपड़े में छानने तथा फिर उसी कलछे में भरने में प्राय: १५–२० मिनट निकल जाते हैं, इतने काल तक भट्ठी व्यर्थ जलती रहेगी इस वास्ते जब तपे हुए कलछा को भट्ठी से निकाले उसी समय दूसरा कलछा तपाने के लिये और रखदे ॥ ३ ॥

> प्रगाल्य च व्योम पटेन दर्व्यां
> यावन्निदध्यादपरा च तावत्, ।
> संजायते वह्निमयी ततस्तां
> निस्सार्य चैनां निदधीत वह्नौ ॥४॥

उस अभ्रक को कपड़े से छान ले उसके छानने की विधि यह है कि-एक नांद के ऊपर दो डंडे रख कर उन डंडों पर एक दौरी (छब-रिया, पलरा) रखदे, उसमें कपड़ा बिछा दे, उस कपड़े के ऊपर अभ्रक को डाल दे जिसमें दुग्ध आदि पदार्थ तो कपड़े से छनकर नांद में गिर जायँगे और अभ्रक कपड़े के ऊपर दौरी में रह जायगी। उस कपड़े के अभ्रक को निकाल कर कलछे में भरले, इतनी देर में दूसरा कलछा भी तपा हुआ तैयार मिलेगा। उसको निकाल कर पूर्व की तरह बुझाता रहे और दूसरे कलछे को शोधनार्थ भट्ठी में रखकर भट्ठी का दरवाजा बंद करदे ॥ ४ ॥

> द्रवे पदार्थेऽप्यवतिष्ठतेऽभ्रं
> चिनोतु तच्चापि चितं समस्तम् ।

शुद्धेः समाप्तौ गगनस्य रूपं
रक्तप्रकाशं प्रतिभाति सम्यक् ॥५॥

परन्तु यह बात स्मरण रहे कि जो द्रव पदार्थ दुग्ध आदि कपड़े से छनकर नांद में गिरे हैं उनके साथ ही साथ बहुत बारीक अभ्रक भी नांद में निकल जाती है और वह नीचे नांद के पेंदी में जम जाती है सो उसे भी निकाल कर रखता जाय । बाद सब को मंदार के दूध में या घृतकुमारी के रस में घोटकर फूँक दे । जो इसमें चन्द्रिका रहेगी, उसके मिटाने का प्रकार अगाड़ी लिखता हूँ । अभ्रक की शुद्धि समाप्त हो जाने के बाद सुवर्ण झलक कम पड़ते २ शुद्ध अभ्रक का स्वरूप लाल वर्ण हो जायगा ॥ ५ ॥

अभ्रक निश्चन्द्रीकरणम्—

सुवर्चिकामानमितं गुडं च
तयोः समानं गगनं प्रगृह्य ।
संमेल्य हण्ड्याञ्च निधाय सर्वं
सर्वार्थकर्यां प्रददीत वह्निम् ॥१॥

अभ्रक निश्चन्द्रीकरण—

वैद्य लोग अभ्रक में सौ सौ पुट देते हैं परन्तु तो भी अभ्रक की चन्द्रिका (चमक) नहीं मिटती, और अभ्रक में चमक रह जाने से रोगी की आंतें कट जाती हैं । (जैसे काँच की भस्म में चमक रह जाने से) इसकी चमक के एक ही पुट में दूर करने का उपाय लिखता हूँ—पाव भर कलमीसोरे का चूर्ण और पाव भर गुड़ दोनों में थोड़ा पानी डालकर मर्दन करले, इसमें आध सेर शुद्ध अभ्रक मिलाकर एक हांड़ी में भरदे और हांड़ी की मुद्रा करके सर्वार्थकरी भट्ठी की लोहजाली पर अथवा कषायकरी भट्ठी की लोहजाली पर पाँच सेर पत्थर के कोयले रखकर हांड़ी को रखदे, और नीचे लकड़ी की आँच जला कर कोयलों को सुलगा ले ॥ १ ॥

तीव्राग्नितापेन सशब्दवह्नि-
निर्याति चेदभ्रकहण्डिकातः।
भीतिर्विधेया न तदा कदापि
सुवर्चिका निःसरतीति मत्त्वा ॥२॥

तेज अग्नि के कारण जो हांड़ी से आवाज करती हुई अग्नि निकले तो कुछ भय की बात नहीं है क्योंकि तेज अग्नि लगने से सोरा उड़कर जा रहा है। कभी २ हांड़ी अग्नि को सह जाती है तो सोरा नहीं भी उड़ता है ॥ २ ॥

पुटैकमात्रेण समुज्झ्य चान्द्रीं
निश्चन्द्रभावं भजतेऽभ्रमेवम्।
सुवर्चिकाऽपायनिबन्धचान्द्री
निर्भाति चेदन्यपुटं प्रदेयम् ॥३॥

इस रीति से एक ही बार में बहुत आसानी और कम खर्च के साथ अभ्रक निश्चन्द्र हो जाती है। कदाचित् सोरा के उड़ जाने से हांड़ी के ऊपर के भाग की अभ्रक में कुछ २ चमक दीख पड़े तो उतने भाग को निकाल कर पूर्व की तरह गुड़, सोरा में रखकर एक पुट और दे, छुट्टी ? ॥ ३ ॥

ततोऽभ्रकं यामयुगं सतार्क्ष्यं
जले निधायाथ करेण मर्दृत्।
स्थितं जलं चाप्यवपातनीयं
शनैर्यथाऽभ्रं न परिस्रुतं स्यात् ॥
स्राव्याणि तावद्धि पयांसि यावत्
स्वादोऽत्रभासेत सुवर्चिकायाः॥४॥

इस निश्चन्द्र अभ्रक में सोरा मिला हुआ है इसलिये इसको कूट कर दो पहर तक जल में भिगो दे बाद हाथ से खूब मल डाले। जब पानी स्थिर हो जाय और अभ्रक पात्र के पेंदे में जम जाय तब धीरे २

होशियारी के साथ पानी को गिरावे जिसमें अभ्रक भी न बह जाय। फिर पानी भर के छोड़ दे। इसी तरह बराबर पानी गिराता जाय जब तक जिह्वा पर वह खारी लगे ॥ ४ ॥

अभ्रक मारणम्—

मन्दारदुग्धेन तदीयपत्रजाताम्बुना वा परिमर्दयेत।
निश्चन्द्रमभ्रं प्रहरद्वयञ्च विधाय चक्रीरथ घर्मशुष्काः ॥१॥

अभ्रकभस्म विधि—

निश्चन्द्र अभ्रक को मन्दार के दूध के साथ अथवा दूध नहीं मिलने पर मंदार के पत्तों के स्वरस के साथ दो पहर घोटे, बाद टिकियाँ बना कर धूप में सुखाले ॥ १ ॥

सर्वार्थकर्यां गजनामके वा पुटे पुटेत्सम्पुटमभ्रकस्य।
सिन्दूरकल्पं भसितं तदस्य सर्वेषु योगेषु बहूपकारि॥२॥

जब खूब सूख जाय तब सम्पुट में रखकर मुद्रा देकर सर्वार्थकरी भट्टी में अथवा गजपुट में फूँक दे। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाले। यह अभ्रकभस्म सिन्दूर के समान लाल बनेगी। इसको जिस योग में दिया जाय वह योग बहुत उपकार करेगा। शास्त्र सिद्धान्त ऐसा है कि जब तक अभ्रक की चमक न मिटे तब तक ५०० सौ पुट का अभ्रक क्यों न हो! अवश्य अनर्थकारी होगा। और जिस अभ्रक की चमक दूर हो गई हो तो वह एक पुट का भी अवश्य उपकारी होगा, और अपकार की शङ्का स्वप्न में भी नहीं हो सकती है। इसलिये वैद्यों को चाहिये कि पहिले अभ्रक को मेरी कही हुई विधि के अनुसार निश्चन्द्र करलें फिर घोटना शुरू करें ॥ २ ॥

वृद्धिर्गुणानान्तु पुटैर्भवन्ती
दृष्टाऽभ्रके लोहमुखे च धातौ।
अतो यथाशक्ति ददीत तानि
सहस्रसंख्यानि शतं पुटानि ॥३॥

अभ्रक में और लोह आदि धातुओं में जितने पुट दिये जाँय उतने ही अधिक गुणकारी होते हैं। इसलिये अपना सुभीता देख कर हजार पुट या सौ पुट आदि जितने बन पड़ें दे ॥ ३ ॥

पुटार्हौषधयः—

अभ्रकस्य पुटार्हाणि भेषजानि भिषग्वरैः।
दिष्टान्येवोपदिश्यन्ते यथालाभं पुटेच्च तैः ॥१॥

पुट देने के योग्य औषधियां—

अभ्रक के पुट देने योग्य औषधियाँ जो पूर्वाचार्यों ने कहीं हैं, उनको मैं लिखता हूँ। ये सभी औषधियाँ आज कल मिलती हैं तथापि जिस वैद्य को जितनी औषधियाँ मिल सकें उनमें अभ्रक के पुट दे ॥१॥

मन्दारदुग्धपानीये स्नुहीदुग्धं तदुद्भवम्,।
जलं वा तदभावे स्याद् गोमूत्रं चापि पञ्चमम् ॥२॥

मंदार (आक) का दूध, दूध न मिलने पर मंदार के पत्तों का स्वरस, थूहर का दूध, उसके अभाव में थूहर का स्वरस, पाँचवाँ गोमूत्र ॥ २ ॥

अश्वत्थोत्थजटैरण्डमूलं च कटुरोहिणी ॥
विजया गोक्षुरश्चापि कलशी धावनी तथा ॥३॥

बर की जटा, रेंडी की जड़, कुटकी, भांग, गोखरू, शालपर्णी, (सरिवन), पृश्निपर्णी (पिठवन) ॥ ३ ॥

अग्निमन्थाग्निबिल्वाश्च तिन्दुकास्त्रिफलापि च।
मुशली चाश्वगन्धा च लोध्रो देवद्रुमस्तथा ॥४॥

अरणी, चित्रक, बेल की छाल, तैंदू, त्रिफला, मूसली, (काली व सफेद दोनों मूसली ले सकते हैं) असगन्ध, लोध, देवदारू ॥४॥

कासमर्दोषणे भार्ङ्गी कपित्थः किंशुको जटा।
वरी ज्वरान्तकश्चान्यत् तलकूष्माण्डमेव च ॥५॥

कसौंदी, कालीमिरच, भारंगी, कैथ की छाल, ढाक की छाल, जटामांसी, शतावरी, अमलतास की फली, पताल कुम्हड़ा ॥ ५ ॥

पञ्चविंशतिसंख्यानां क्वाथो ग्राह्यः पृथक् पृथक् ।
रसो येषामुपादेयस्तेषां नामानि वच्म्यहम् ॥६॥

इन पच्चीस औषधियों का जुदा जुदा क्वाथ लेना । और जिन जिन औषधियों का स्वरस लिया जायगा उनके नाम लिखता हूँ ॥ ६ ॥

बृहती कारवेल्लश्चाऽमृता वासा च पाटला ।
श्यामा वृन्दा मुनिर्गुञ्जा भृङ्गराजश्च मादकः ॥७॥

बड़ी कटेली (बनभंटा), करेला, गुरुच, (गिलोय), अडूसा, पाढल, श्यामा तुलसी, सफेद तुलसी, अगस्तिया, चिरमिठी (घूंमची), भगरैया (भांगरा), धतूरे के पत्ते ॥ ७ ॥

दूर्वायुग्मश्च ताम्बूलं शङ्खपुष्पी यवासकः ।
मालती काकमाची च ब्राह्मिका दाडिमी बलाः ॥८॥

सफेद व काली दोनों दूब, नागरपान, शंखाहुली, जवासा, चमेली, अकोय, ब्राह्मी अनारदाना, बला (खिरैटी), महाबला (सहदेई), अतिबला (कंघई), नागबला (गंगेरन) ॥ ८ ॥

कोषातक्यौ पलाण्डुश्च लशुनाऽऽकाशवल्लिके ।
इन्द्रवारुणिकेत्यन्तः षड्विंशत्यौषधीगणः ॥९॥

कड़वी व मीठी दोनों तरोई, पियाज, आकाशबेल, इन्द्रायन (इनारू), लहसुन, इन छब्बीस औषधियों का स्वरस लिया जाता है। जिन औषधियों में रस कम निकलता है उनसे स्वरस निकालने की विधि परिभाषा प्रकरण में कह चुका हूँ। परन्तु इतना और यहाँ विशेष जान लेना चाहिये कि जो औषधी गीली नहीं मिल सकें उनका क्वाथ कर ले ॥ ९ ॥

क्वाथा वा स्वरसा वापि तत्तद्रोगहरौषधैः ।
अन्यैश्चाभ्रपुटार्थाय गृह्यन्तां बुधसत्तमैः ॥१०॥

इन औषधियों के अलावे और तत्तद्रोगनाशक औषधियों के क्वाथ या स्वरस की भावना देकर अभ्रक में पुट दे। यदि कोई भी औषधि मिलने का सुभीता नहीं हो तो मंदार के दूध में या मंदार के पत्ताओं के स्वरस में और गोमूत्र में ही पुट दे ॥ १० ॥

पुटदाने वृद्धानां मतम्—

शतानि देयानि पुटानि चाभ्रे
गजेपुटे शोधनशोधितेऽस्मिन् ।
दित्सुः सहस्रं तु पुटानि तत्र
विमर्द्य घर्मे परिशोषयेत ॥१॥
पुटेष्वतीतेषु दशात्मकेषु
ततो गजाख्ये परिशोधयेत ।
इत्थं शतैकं प्रपुटेद्गजाख्ये
शिष्टानि घर्मे त्विवतिवृद्धवाक्यम् ॥२॥

अभ्रक के पुट देने में वृद्धों की सम्मति—

पूर्वाचार्य वृद्धों का ऐसा मत है कि अभ्रक में सौ तक पुट देने की यदि इच्छा हो तब तो ऊपर लिखी हुई यथा लाभ औषधियों में घोट २ कर टिकिया बना कर धूप में सुखा ले बाद शराब सम्पुट में रख कर गजपुट में फूंक दिया करें। यदि सहस्र पुट देने की इच्छा हो तो उक्त औषधियों में घोट २ कर बारंबार धूप में दस बार सुखा ले। बाद गजपुट में फूंक दे तो ये दस पुट समझे जाते हैं। इसी प्रकार सौ बार गजपुट में फूंक देने से ही सहस्र पुटी अभ्रक कहलाती है। परन्तु यदि हजार बार भी गजपुट ही दे तो कहना ही क्या है ॥ १ ॥ २ ॥

अभ्रकस्य नित्योपयोगि भस्म—

पूर्वोक्तरीत्योज्झितचन्द्रिकाभ्रं
मन्दारपत्रोद्भववारिणापि ।
पुटत्रयेणापि पिपर्ति योगान्
बिभर्ति कायं खलु केवलश्च ॥१॥

हमेशा कार्य में आनेवाली अभ्रक की भस्म—

प्रथम कही हुई रीति से अभ्रक को निश्चन्द्र करके मंदार के पत्तों के स्वरस में घोटकर टिकिया बना ले। जब टिकिया खूब सूख जाय तब गजपुट में अथवा सर्वार्थकरी भट्ठी के तलभाग में सम्पुट को रखकर फूंक दे। ऐसे तीन पुट देने से लालवर्ण की अभ्रकभस्म बनेगी, इस भस्म को जिस रोग के योग में डालेंगे उसका गुण पूर्ण होगा। और इस केवल अभ्रकभस्म को मधु के साथ या पान में रखकर खाने से श्वास-कास, ज्वरादि अनेक रोग दूर हो जायंगे। और यदि अच्छा आदमी खायगा तो ताक़त बढ़ेगी और अनेक रोगों से बचता रहेगा ॥ १ ॥

मृतोत्थापनाभ्रकभस्म—

कृष्णेन मल्लेन च हिङ्गुलेन
समानमानेन चतुर्थभागम्।
निश्चन्द्रमभ्रं परिमर्दयेत
दत्त्वाऽऽसवं संपुटके च रुद्ध्वा ॥१॥

मृतोत्थापन अभ्रकभस्म विधि—

पावभर निश्चन्द्र अभ्रक (उक्त प्रकार से निश्चन्द्र किया हुआ) आधी छटांक काली संखिया (काली संखिया के न होने पर लाल पीली भी ले सकते हैं), आधी छटांक हिंगुल इन तीनों चीजों को कुमार्यासव आदि के साथ दो पहर घोटकर लुगदी को सम्पुट में रख कर मुद्रा बन्द कर दे ॥ १ ॥

वनोपलाङ्गारधृतं पचेत
तथा यथोद्गच्छति नेह मल्लः।
पुनर्विमर्द्यापि पुनः पचेत
दत्त्वा च दत्त्वा पुनरासवं तम् ॥२॥

बाद कुक्कुटपुट में दो सेर बन के उपला सुलगा दे जब निर्धूम अङ्गार हो जाय तब उनके ऊपर सम्पुट को रखदे। परन्तु यह स्मरण

रहे कि सम्पुट को अंगारों के बीच में न रक्खे नहीं तो संखिया व हिंगुल उड़ जायंगे । जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब पूर्व की तरह फिर उतना ही हिंगुल, संखिया डालकर आसव के साथ मर्दन करे ॥ २ ॥

एवञ्च कुर्यादुपविंशवारा-
नुत्थापयेच्चानु विशुद्धयुग्मम् ।
पुनर्यथापूर्वमिदं विमर्द्य
पचेत यावच्छतवारपाकाः ॥३॥

जब इस प्रकार लगभग बीस पुट के हो जाय तब उस लुगदी को डमरूयन्त्र में रखकर चार पहर की अग्नि देकर संखिया हिंगुल को उड़ाले । स्वाङ्गशीतल होने पर डमरूयन्त्र को खोल डाले, ऊपर की हाँड़ी में लगे हुए हीरा के समान चमकते हुए हिंगुल संखिया के सार को खुर्च कर निकाल ले, और नीचे की हाँड़ी में जो अभ्रकभस्म मिले उसको फिर पूर्व की तरह आधी २ छटाँक हिंगुल संखिया डाल कर आसव के साथ मर्दन करे । फिर लगभग बीस पुट के हो जाने पर डमरूयन्त्र द्वारा संखिया हिंगुल के सार को पूर्व की तरह निकाल ले । यदि कोई वैद्य संखिया हिंगुल ज्यादा खर्च करना नहीं चाहें तो डमरूयन्त्र से निकले हुए हिंगुल संखिया के सार को ही आधी आधी छटांक डालकर पूर्वोक्त क्रिया करे । इस प्रकार अभ्रक में सौ पुट दे ॥ ३ ॥

कन्याद्रवेणानु विमर्द्य सम्यक्
विधाय चक्रींश्च पुटेद्गजाख्ये ।
मृतं समुत्थापयतीदमभ्रं
मध्वादिलीढं वलकल्प्यमात्रम् ॥४॥

सौ पुट के बाद उस लुगदी को डमरूयन्त्र में रखकर चार पहर की खूब तीव्र लकड़ियों की आंच दे । स्वाङ्गशीतल होने पर ऊपर की हाँड़ी में लगे हुए हिंगुल संखिया के सार को जुदा निकाल ले और अभ्रकभस्म को घृतकुमारी के रस में घोटकर टिकिया बनाले। जब टिकिया

सूख जाय तब उनको सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक दे। इसका नाम मृतोत्थापन अभ्रकभस्म है। अर्थात् सन्निपात, हैजा (विसूचिका), सर्प-दंशन आदि किसी कारण से मनुष्य के प्राण जाते हों तो उस आसन्न-मृत्यु रोगी को आधी रत्ती से दो रत्ती तक बलाबल देखकर मधु आदि किसी अनुपान के साथ देने से रोगी अवश्य बच जायगा। यदि इसके देने पर भी रोगी के आसार कच्चे दीखें तो "इयं शतघ्नी यदि कुण्ठिता स्यान्नितान्तमन्तं कुरुते कृतान्तः" इस वक्ष्यमाण वचन का यहाँ भी अनुसन्धान कर ले। और जो डमरूयंत्र की ऊपर की हांड़ी में हिंगुल संखिया का सारभाग निकलता है उसका भी मृतोत्थापन लोह विधि में कहे हुए मल्लसिन्दूर के विधान से मल्लसिंदूर बनाले जिससे यह भी मृतोत्थापन और पौष्टिक बने॥ ४॥

अभ्रकभस्म गुणाः—

निश्चन्द्रमभ्रं पुटितश्च वारान्-
शतं वयस्थापि करोति वीर्यम्।
पराकरोति त्रिमलोत्थरोगान्
पित्तप्रकोपं च कफप्रकोपम्॥१॥

अभ्रकभस्म के गुण—

उक्त विधि से अभ्रक को निश्चन्द्र करके यथालाभ पूर्वोक्त औष-धियों में सौ पुट दे। यह अभ्रकभस्म वय को स्थापन करती है अर्थात् अल्पायु को रोकती है। इस बात को सभी भावुक लोग जानते हैं कि जितने टिकोरा गिरते हैं उतने बड़े आम नहीं गिरते, क्योंकि टिकोरों का मूलभूत वृन्त (डंठल) बहुत कमजोर होता है। इसी प्रकार जिन बच्चों के रस रक्तादि धातु परिपक्व नहीं हुए हैं ऐसे दस वर्ष से नीचे २ के बच्चे जितने मरते हैं उतने तरुण पुरुष नहीं मरते। अथवा जिनके माता पिता के शोणित शुक्र कमजोर हैं या जिनको अधिक काम करना पड़ता है वे लोग भी अल्पायुष्क होते हैं। ऐसे पुरुष यदि इस अभ्रक को सेवन करते रहें तो वे लोग पूर्णायु हों। और यह भस्म वीर्य को

बढ़ाती है। वात, पित्त, कफ त्रिदोष-जन्य रोगों को दूर करती है। पित्तप्रकोप तथा कफप्रकोप को नष्ट करती है ॥१॥

शुक्रक्षयं विस्मरणं च मेहं
वायूत्थरोगांश्च निराकरोति।
जरार्जितानामवलम्बयष्टि-
र्विष्कम्भको जीर्णगृहेषु यद्वत् ॥२॥

इसी तरह शुक्रक्षय, विस्मृति, प्रमेह वायुजन्य रोगों को दूर करे है। और अति वृद्धावस्थापन्न मनुष्यों को अवलम्बन देने वाली यह मानो लकड़ी है जैसे गिरते हुए मकान को थूँनी ॥२॥

गौरीरजः पोषयतीशशुक्रं
कामं न बध्नात्यपि जीर्यमाणम्।
पुष्णाति बध्नाति च सूतराजं
गन्धादतोऽभ्रं सुमतं मुनीनाम् ॥३॥

अभ्रक को मुनियों ने गन्धक से भी अधिक माना है क्योंकि पारद में कितना ही गन्धक जीर्ण किया जाय तो भी पारद बलवान् तो अवश्य हो जावेगा परन्तु बद्ध कदापि नहीं होगा। और अभ्रक तो पारद को बलवान् भी बनाती है और बद्ध भी करती है। (पारद बन्धन की क्रिया मैं अभी तक अनुभूत नहीं कर सका हूँ जब साक्षात्कार कर लूँगा तब रसायनसार के अन्य भागों में लिखूँगा) गन्धक से अधिक गुणशाली अभ्रक को क्यों माना है इसमें यह युक्ति है कि गन्धक को तो पार्वती जी का रज माना है और अभ्रक को उनका शुक्र माना है बस इसी से निर्णय हो गया क्योंकि रज तो शरीर का विकार है और शुक्र शरीर का सार है ॥ ३ ॥

बिभर्ति कस्यापि कदापि कस्या-
मभ्रं दशायां न विरुद्धभावम्।
वीर्येण शीतं नहि बालवृद्धा-
ङ्गनासु नीतं तु विकारमेति ॥४॥

अभ्रक की भस्म किसी पुरुष को किसी काल में किसी अवस्था में विरुद्ध नहीं पड़ती। और यह सौम्य होने के कारण बाल, वृद्ध, स्त्री किसी को दी जाय तो भी अवगुण नहीं करती ॥ ४ ॥

अभ्रकविषये विवादाः—

गृह्णन्ति केचित् खलु वैद्यराजाः
स्वीयानुभूत्या भसितार्थमभ्रम्।
चतुर्विधं चापि समर्थयन्ति
दोषाभिधायीनि वचांसि तेऽत्र ॥१॥
वज्राभ्रकं सुप्रसवं प्रसूते
इत्येव हेतोर्मुनिपुङ्गवास्तत्।
भृशं प्रशंसन्ति न कार्यवाही-
न्यन्यानि नो नैतदभिप्रयन्ति ॥२॥

अभ्रक के विषय में वैद्यों के विचार—

बहुत से वैद्य लोग अपने अनुभव से कहते हैं कि अभ्रकभस्म विधि में चारों प्रकार की अभ्रक लेनी चाहिये। यद्यपि वज्राभ्रक को छोड़कर बाकी तीन अभ्रकों (नागाभ्रक, पिनाकाभ्रक दर्दुराभ्रक) में शास्त्रकारों ने दोष बतलाये हैं, परन्तु उनका यह अभिप्राय है कि जैसा वज्राभ्रक उत्तम फल देती है वैसा बाकी वे तीन नहीं देती हैं। न कि एक वज्राभ्रक ही ग्राह्य है शेष तीन नहीं। क्योंकि यह लौकिक न्याय प्रसिद्ध है कि "नहि निन्दा निन्द्यं निन्दयितुं प्रवृत्ता किन्तु विधिं स्तोतुम्" जैसे किसी ने मिठाई की दूकान से अधिक लाभ उठाया है तो वह उसी की प्रशंसा करता है, अन्य दूकानों को व्यर्थ करता है। परन्तु उसके कहने से अन्य दूकानों का वैयर्थ्य सिद्ध नहीं होता ॥ १ ॥ २ ॥

शास्त्रोक्तदोषा यदि सन्ति तत्र
संशोधनैश्चापि पुटैः शतेन।

मन्यामहे स्थातुमशक्नुवन्त
एवापकुर्वन्ति न सर्वयोगे ॥३॥

यदि वास्तव में पूर्वोक्त तीनों अभ्रकों में दोष हों तो भी पूर्वोक्त संशोधन से और सौ पुट देने से अवश्य नष्ट हो जाते हैं। अन्यथा उनकी भस्म योगों में डालने से क्यों नहीं अपकार करती? और गुण क्यों करती है? ॥३॥

संशोधने चापि पुटेषु कुर्या-
द्भिषक्ब्रुवो योऽलसवृत्तिमेव।
स एव दोषोत्थफलानि भोक्तुं
क्षमेत युक्त्येति विमृष्यमेतत् ॥४॥

उन दोषों के फलों को वेही अज्ञ वैद्य भोग सकते हैं जो अभ्रक के शोधन करने में और पुट देने में आलस्य करते हैं। वैद्यों की इस युक्ति में क्या सारासार है सो विद्वान् लोग विचार लें ॥ ४ ॥

स्वमतम्—

मृतोत्थितौ त्वभ्रचतुष्टयंतच्-
शुभ्रश्च गृह्णाम्यहमप्यशुभ्रम्।
महाविषज्वालिकयाऽत्र दोषाः
स्वशेषतायै प्रभवन्ति नेति ॥१॥
युक्त्या फलेनापि विदाङ्करोतु
विद्वत्समाजोऽत्र विनिर्णयश्च।

अपना सिद्धान्त—

अभ्रकभस्म विधि में मैं वज्राभ्रक ही लेता हूँ परन्तु मृतोत्थापन अभ्रकभस्म विधि में मैं भी चारों प्रकार की श्यामाभ्रक और सफेद अभ्रक (भुडवल) को उक्त विधि से शोधन व निश्चन्द्र करके लेता हूँ। मेरा अभिप्राय यह है कि संखिया बड़ा भारी महाविष है; वह अभ्रक

के समस्त दोषों को चाट जाता है इसीलिए हैजा, सन्निपात आदि महाव्याधियों में तत्काल फायदा करता है। विद्वत्समाज भी इस युक्ति को समझ कर और फल देखकर निर्णय कर ले कि मेरे कहने में कहाँ तक सारासार है ॥ १ ॥

धान्याऽभ्रकम्—

तुषाढ्यधान्येन समं विशुद्धं
व्योमोर्णवस्त्रे शिथिलञ्च बद्ध्वा ।
जले निपात्याथ दिनानि पञ्चो-
पेक्ष्यं ततो गाढतरं विमर्दंत् ॥१॥
व्योम्नः कणा वस्त्रविनिसृतास्स्यु-
स्ते संगृहीताः परमं विशुद्धाः ।
धान्याभ्रकं तन्निगदन्ति वैद्या
भृशं प्रशंसन्ति च भस्महेतोः ॥२॥

धान्याभ्रक विधि—

एक सेर धान (सहित तुषों के चावल), एक सेर शुद्ध किया हुआ अभ्रक दोनों को मिलाकर ऊन की कम्बल में ढीली गाँठ बाँध दे, उस गाँठ को पांच दिन तक जल में भिगो दे, अन्न के सम्बन्ध से पानी खट्टा पड़ जायगा। कोई वैद्य पानी की जगह कांजी का जल भी डालते हैं। पांच दिन के बाद उस गाँठ को निकाल कर बड़ी परात में रखकर खूब मर्दन करे और उसी कांजी के पानी में गाँठ को भिगोता जाय। ऐसा करने से अभ्रक के कण (रवा) कम्बल से निकल कर परात में आ जायँगे। उन कणों को इकट्ठे करले। इसको धान्याभ्रक कहते हैं इसकी भस्म अच्छी होती है। जिस अभ्रक में बहुत मैल नहीं हो उस अभ्रक की धान्याभ्रक बनाने की आवश्यकता भी नहीं है जैसा कि शास्त्रकारों ने लिखा है कि "अथवा बदरीकाथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ॥ पाणिना मर्दितं शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥" अर्थात् अभ्रक को तपा-

कर बेर की छाल के काढ़े में बुझा दे जब पानी सूख जाय तब हाथ से मल डाले तो धान्याभ्रक से भी बढ़कर हो ॥ १ ॥ २ ॥

सत्त्वप्रधानमभ्रकभस्म—

सेटोन्मितं व्योम तदर्धमानं
सुटङ्कणं तद्द्वयमावपेत ।
हण्ड्यां तलच्छिद्रयुजि प्रगाढं
मल्लं पिधायात्र विधाय मुद्राम् ॥१॥
कषायकर्यामथ कोष्ठिकायां
दृष्ट्वाभ्रहण्डीमिव संहसन्त्याम् ।
निधाय हण्डीमथ कोष्ठयधस्तात्-
काचाभसत्त्वं पततीत्थमभ्रात् ॥२॥
नामापि नास्मिन्ननु चन्द्रिकानां
सत्त्वप्रधानं बहुसत्त्वयोगात् ।
मन्दारदुग्धेन दिनद्वयञ्चेद्
विमर्द्य सम्यक् च विधाय चक्रीः ॥
घर्मेण शुष्काः प्रपुटेत् गजाख्ये
वारेण चैकेन भवेत्सुभस्म ॥३॥

अभ्रक की सत्त्वप्रधान भस्म—

एक सेर शुद्ध अभ्रक, आध सेर चौकियासुहागा दोनों को मिलाकर जिसके तलभाग में सत्त्व गिरने के लिये छिद्र किया है ऐसी हाँडी में खूब भर दे उसके मुख पर शराब रखकर मुद्रा कर दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि हण्डी पर तीन कपरमिट्टी करके सुखाले। बाद कषायकरी भट्टी में पत्थर के कोयले भरकर नीचे से लकड़ी की आँच दे जब कोयले खूब दहकने लगें तब लोहे के छड़ से कुछ कोयलों को हटाकर बीच में स हाँड़ी को रखकर दहकते हुए कोयलों को उस हाँड़ी के

ऊपर से भी ढाँक दे। भट्टी के नीचे से सब आँच को निकाल कर हाँडी के ठीक नीचे भाग में एक लोहे का तसला रखदे। एक घण्टे के बाद हाँडी के अभ्रक का सम्पूर्ण सत्व बह २ कर तसले में गिर जायगा। इसका वर्ण काँच के समान काला होगा जिसको देखकर कोई नहीं पहचान सकता कि यह अभ्रक है। इसमें अभ्रक का भी अंश मिला हुआ है इसलिये यह खाली सत्त्व नहीं है इसमें चन्द्रिकाओं का नाम निशान भी नहीं है हमने इस सत्व को निकाल कर बहुत वैद्यों को दिखाया है जिसने देखा उसीने प्रशंसा की है। जैसे गुड़ और सोड़ा के योग से एक बार में ही अभ्रक निश्चन्द्र हो जाती है उसी प्रकार इस विधि से केवल सुहागे के योग से अभ्रक निश्चन्द्र हो जाती है और अभ्रक का सत्त्वांश अधिक रहता है इसलिये इसका नाम सत्त्वप्रधान अभ्रकभस्म रक्खा है। इस सत्त्व की भस्म करने की यह विधि है कि इस अभ्रक सत्त्व को दो दिन तक मंदार के दूध में खूब घोटे बाद टिकिया बनाकर धूप में सुखा ले और गजपुट में फूँक दे, छुट्टी ? परन्तु इस सत्त्व को कूट कर कपरछन करले बाद मंदार के दूध में घोटे ॥ १॥२॥३ ॥

अभ्रकरसायनम्—

सूतगन्धाभ्रकव्योषभृष्टटङ्कणकाः समे।
सूतगन्धककज्जल्यां जातायां पटगालितान् ॥ १ ॥
सन्नीय मर्द्दयेत्सर्वान् भावयेद्भिरौषधैः।
भृङ्गराजाग्निनिर्गुण्डी विजया ग्रीष्मजा जया ॥२॥
ब्राह्मी श्वेता समस्तानां मरिचं समचूर्णकम्।
श्लक्ष्णमर्दितकल्कस्य वटिका रेणुकोन्मिता ॥ ३ ॥

अभ्रकरसायन—

पाँच तोला शुद्ध पारद, पाँच तोला शुद्ध गन्धक, पाँच तोला निश्चन्द्र शतपुट अभ्रक, पाँच तोला सोंठ, पाँच तोला कालीमिरच,

पाँच तोला पीपल, पाँच तोला चौकिया सुहागे की खील इन चीजों में से पहिले गन्धक पारे की कज्जली करले बाद अभ्रक को भी उस कज्जली में डालकर खूब घोटले फिर सोंठ आदि सब चीजों को कूटकर कपरछन करले। तब सब चीजों को मिलाकर मर्दन करे, और इन चीजों के स्वरस की भावना दे। भँगरैया, चित्रक, सम्हालु, भाँग, मोगरा, अरणि, ब्राह्मी, श्वेतापराजिता (कोयल) इनमें जो सूखी चीज मिलें तो उनका क्वाथ करले और हरी पत्ती मिलें तो उनका स्वरस निकाल ले। जब सब चीजों की पृथक् पृथक् भावना समाप्त हो जाय तब उस चूर्ण की बराबर कालीमिरच का चूर्ण लेकर डालदे। उक्त स्वरसों की एक एक भावना और देकर मटर के समान गोलियाँ बनाले इनको छाया में सुखाकर रख छोड़े, इसको अभ्रकरसायन कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

समीक्ष्याग्निं बलं व्याधिं योजयेदनुपानतः ।
श्वासकासक्षयश्लेष्मवातिकव्याधिसम्भवम् ॥४॥
निहन्याज्जनयेच्चाशु शुक्रं वह्निं बलं प्रभाम् ।
अतीसारे ज्वर सूतौ पूज्यं चाऽभ्ररसायनम् ॥५॥

मनुष्य की जठराग्नि और ताकत तथा व्याधि को देखकर योग्य अनुपान के साथ दे तो श्वास, कास, क्षय, कफ-जन्य व्याधि वात-व्याधियों को यह अभ्रकरसायन दूर करे और शुक्र, जठराग्नि, ताकत और कान्ति को बढ़ावे तथा अतीसार, ज्वर, सूतिकारोग में अच्छा काम करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

आचारे भोजने पाने यन्त्रणा नापि विद्यते ।
दधि संसेव्यते चात्र मैथुनं च विवर्ज्जयेत् ॥६॥

इस रसायन के सेवन करने में भोजन पान आचार कुछ पालन करना नहीं पड़ता केवल मैथुन को त्याग देना चाहिये। और दही रोज सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥

अशुद्धाभ्रक सेवनदोषाः—

चन्द्रिकासहितं व्योमभस्म संसेव्यते यदि ।
मरणं जायते तस्य कश्चित्कालमुपेक्षणात् ॥ १ ॥
उदरस्थं यथा रोम सिंहस्य जनयेद्गदान् ।
तथा सचन्द्रकं व्योम कुर्य्यादेव गदान् बहून् ॥२॥

अशुद्ध अभ्रक सेवन के दोष—

जब तक अभ्रकभस्म में चन्द्रिका (चमक) रहे तब तक उसको कभी सेवन न करे नहीं तो वह चमकदार भस्म जरूर प्राण हर लेगी ॥ १ ॥

जैसे सिंह का बाल (रोम) यदि कोई प्रकार से उदर में चला जाय तो वह जैसे अनेक रोग पैदा कर देता है तैसे ही अभ्रक की चमकदार भस्म अनेक रोगों को उत्पन्न कर देती है ॥ २ ॥

अभ्रक विकारशान्तिः—

दुष्टाभ्रसेवाजनितांस्तु रोगानपानुनुत्सुर्यदि सेवते ना ।
उमाफलं वारिणि संविमर्द्य दिनत्रयं तेन लभेत शर्म ॥१॥

अभ्रक विकार की शान्ति—

चमकदार अभ्रक सेवन करने से शरीर में उत्पन्न हुए रोगों को दूर करने के लिये उमाफल (तीसी) को जल में घोट घोट कर तीन दिन तक पीवे ॥ १ ॥

॥ इति अभ्रकभस्म विधिः ॥

हरिताल ग्राह्यता—

सश्रितं स्वर्णवत् पत्रैर्गुणवत्तालकं मतम् ।
पिण्डाऽऽकारं परित्याज्यमल्पीयोगुणवत्त्वतः ॥१॥

ग्रहण करने योग्य हरिताल—

जिस हरिताल में सुवर्ण के ऐसे पत्र हों वह हरिताल औषधि के योग्य गुण वाली समझी जाती है और जो ढेला के आकार में पीले वर्ण की हरिताल मिलती है उसमें बहुत थोड़े गुण हैं इसलिये त्याज्य है ॥ १ ॥

गोदन्तं हरितालं तु गोदन्ताऽऽकृति शुभ्रभम् ।
नीलपीताऽऽभरेखाऽऽढ्यं ग्राह्यं स्निग्धं च यद् गुरु ॥२॥

जो गौ के दाँत के समान लम्बे चौड़े आकार में मिलती हो, व सफेद वर्ण की हो, और जिसमें नील वर्ण की या पीत वर्ण की रेखा भी हों, तथा बहुत चिकनी और भारी हो, वह गोदन्ती हरिताल उत्तम होती है । यद्यपि इस प्रकार की गोदन्ती हरिताल बाजार में नहीं मिलती है तो भी सफेद वर्ण के लम्बे २ टुकड़े जैसे मिलते हैं उसके भी शोधन मारण से कुछ तो गुण प्रतीत होते ही हैं ॥ २ ॥

हरिताल शुद्धिः—

कटाह्यां स्थापिते श्वेते कूष्माण्डत्रितये धृतम् ।
तालं मध्याऽग्निना स्विन्नं शुद्धिं याति समासतः ॥१॥

हरिताल की शुद्धि-

श्वेत कूष्माण्ड (पेठा—भतुआ) के मध्य में छटाँक से पाव भर तक तबकिया हरिताल को रखकर और उसी पेठे के टुकड़े से छिद्र को बन्द करके उस पेठे को लोह की कड़ाही में रखकर भट्टी पर कड़ाही को चढ़ा दे और मध्याग्नि (न मन्दी न तेज माफिक की अग्नि) दे । जब पेठा जलते जलते हरिताल के समीप तक कड़ाही

का पेंदा आ लगे तब उस कड़ाही को जमीन पर उतार दे इस प्रकार तीन पेठे में स्वेदन करने से तबकिया हरिताल शुद्ध हो जाती है। परन्तु यह स्मरण रहे कि पेठे के जिस छिद्र द्वारा हरिताल को घुसाकर रखा है उस छिद्र को कड़ाही के पेंदे की तरफ न रखे किन्तु ऊपर आकाश की तरफ रखे नहीं तो उसी छिद्र द्वारा सम्पूर्ण पेठे का पानी कड़ाही में गिर जायगा तो हरिताल का ठीक स्वेदन नहीं होगा। यह संक्षेप से हरिताल की पहिली शुद्धि हुई ॥ १ ॥

सुधापानीयमध्ये वा दोलायन्त्रेऽवलम्बितम् ।
प्रहरद्वितयं पाक्यं तालं तेन विशुध्यति ॥२॥

अथवा एक सेर पत्थर के बिना बुझाए हुए चूने में चार सेर पानी डालकर दोलायन्त्र विधि से हरिताल की पोटरी को लटका कर एक एक पहर तक मन्दाग्नि से तीन बार स्वेदन करने से भी तबकिया हरिताल की शुद्धि हो जाती है ॥ २ ॥

तैले तक्रे गवां मूत्रे काञ्जिके च कुलत्थजे ।
यामे यामे पचेत्तेन शुद्धिं याति विशेषतः ॥ ३ ॥

अथवा तेल, मठा, गोमूत्र, कांजी, कुल्थी का काढ़ा इन पाँचों चीजों में दोलायन्त्र विधि से एक एक पहर पकाने से तबकिया हरिताल की उत्तम शुद्धि होती है ॥ ३ ॥

हरितालभस्म विधिः—

संमर्द्य तालं प्रतिसारणीये
कन्याद्रवे यामचतुष्टयं च ।
विधाय चक्रीं परिशोषयेत
खरार्कतापे दिवसाँश्च सप्त ॥१॥

तबकिया हरिताल का मारण—

परिभाषा प्रकरण में कहे हुए प्रतिसारणीय क्षार के साथ हरिताल के चूर्ण को चार पहर घोटे और चार पहर ही घृतकुमारी के रस के

साथ घोटकर पूड़ी के समान चौड़ी टिकिया बनाकर सात दिन तक जेठ वैशाख की तेज धूप में सुखावे ॥ १ ॥

पचेत तां खल्वसुधाख्यन्त्रे
व्योमान्तरस्थां च कषायकोष्ठ्याम् ।
रात्रिन्दिवं पञ्च दिनानि शुष्कै-
र्वब्बूरकाष्ठैर्धवकाष्ठकैर्वा ॥२॥

उस टिकिया को अभ्रक के दो पत्तों के बीच में रखकर खल्वसुधा-यन्त्र के मध्य में रख दे । खल्वसुधायन्त्र की सम्पूर्ण विधि परिभाषा-प्रकरण में लिख चुका हूँ । उस यन्त्र को कषायकरी भट्टी की लोह-जाली पर रखकर या तालादिभस्मकरी भट्टी पर रखकर पाँच दिन तक अहोरात्र अखण्डाग्नि दे । आँच देने के लिये लकड़ी बहुत सूखी हुई बमूर की हों या धव (धौक) की हों ॥२॥

श्वेतं वनेद् भस्म कदापि वह्ने-
रल्पत्वहेतोर्यदि कालिमा स्यात् ।
चक्रयन्तरे पूर्ववदेव यामा-
नष्टौ ददीताऽग्निममन्दमत्र ॥३॥

पाँच दिन के बाद यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होने पर धीरे-धीरे चूने को यन्त्र से निकाल कर दोनों अभ्रक के पत्रों के बीच से टिकिया को निकाल ले । यह सफेद भस्म होगी । परन्तु टिकिया को बीच से तोड़-कर देखले यदि अग्नि के कम लगने से टिकिया के बीच में कुछ हरितालभस्म काली निकले तो फिर जैसी की तैसी टिकिया को खल्व-सुधायन्त्र में रखकर चर पहर आँच दे तो सम्पूर्ण सफेद भस्म हो जायगी । परन्तु यह स्मरण रहे कि जैसा जेठ वैशाख में पत्थर का चूना गरम रहता है वैसी तेजी अन्य ऋतु में नहीं रहती और टिकिया के सूखने का सुभीता भी जेठ वैशाख में अच्छा रहता है । इसलिये हरितालभस्म तथा वक्ष्यमाण संखिया और मैंनशिल की भस्म वैशाख जेठ में ही बनावे ॥३॥

तालभस्मनो द्वितीयः प्रकारः—

अश्वत्थचिञ्चाऽरुणपुष्पकाणां
जीर्णास्त्वचोऽग्नौ परिदह्य कुर्यात् ।
भस्मातु कन्याद्रवभावितं तत्
पुटेत् त्रिरस्यार्थमनल्पवह्नौ ॥१॥

हरितालभस्म की दूसरी विधि—

पीपल, इमली, पलाश, इन तीनों में से किसी की गली सड़ी मुरदार छाल (बक्कल) वृक्ष से उतार २ कर सङ्ग्रह करले । फिर उनको खूब सुखाकर अग्नि में जलाकर भस्म करले इस भस्म में घृतकुमारी के रस की भावना देकर तीन बार गजपुट में फूँककर इस भस्म के बीच में हरिताल की टिकिया को रखकर पाँच दिन अग्नि देने से भस्म हो जाती है ॥१॥

हरितालभस्मनस्तृतीयो विधिः—

स्नुह्यर्कदुग्धेन विमर्द्य तालं
दिनानि चत्वारि करोतु चक्रीम् ।
खरातपे शुष्कतमां पृथिव्यां
मासं खनेद् यन्त्रधृतां पचैनाम् ॥१॥

हरितालभस्म की तीसरी विधि—

सैंहुड़ (थूहड़) और मन्दार (आक) के दूध में हरिताल को चार दिन तक घोटकर टिकिया बनाले (यदि दोनों नहीं मिल सकें तो जो मिले सो ठीक) उस टिकिया को एक महीने तक पृथ्वी में गाड़ दे । बाद उस टिकिया को खूब सुखाकर चूने भरे हुए खल्वसुधायन्त्र में अथवा पीपल आदि की भस्म जिसमें भरी हुई है उस खल्वसुधायन्त्र में रखकर पूर्व्व की तरह पाँच दिन अग्नि देने से हरिताल की भस्म हो जाती है ॥१॥

शिला मल्ल मारणम्—

मनःशिलामल्लमृतौ च यत्नं
करोतु पूर्व्वेण समं परन्तु ।
निम्बवम्बुमर्द्दन दिनं च मल्लः-
शुद्ध्येच्छिलाऽऽर्द्राम्बुनि तूपविंशान् ॥१॥

मैंनशिल और संखिया का मारण—

तीन प्रकार से हरिताल की भस्म प्रथम कही गई है इसी प्रकार मैंनशिल और संखिया की भस्म भी हो जाती है परन्तु इन दोनों के शोधने की यह विधि है कि संखिया को नींबू के रस में चार पहर घोटने से और मैंनशिल को आदी के रस में इक्कीस बार घोटने से इनकी शुद्धि हाती है ॥ १ ॥

गोदन्त हरिताल शोधनमारणे—

गोदन्तं शोधयेन्मूत्रे गवां यामद्वयं तथा ।
कुमार्य्या पुटनात्तस्य भसितं सकृदुत्तमम् ॥१॥

.गोदन्ती हरिताल का शोधन मारण—

गोदन्ती हरिताल को गोमूत्र में दोपहर तक पकाने से इसकी शुद्धि होती है बाद घृतकुमारी के गूदे के बीच में रखकर गजपुट में फूँक देने से एक ही बार में उत्तम सफेद भस्म हो जाती है ॥१॥

गन्धक मल्ल मनशिला हरिताल तैल विधिः—

निशां निशां गन्धपयस्सु नीत्वा
दिवा दिवाकृत्प्रभया प्रशोष्य ।
सप्तस्वतीतासु च भावनासु
विधाय खण्डानि पुनः प्रशोष्य ॥१॥

गौरीरजोमल्लशिलालकानां
यस्यापि कस्यापि पलं प्रमाणम् ।
खण्डानि नैशानि पलद्वयानि
भृत्त्वा द्वयं मृत्पटकाचकूप्याम् ॥२॥
पातालयन्त्रे खलु बालुकाङ्के
निधाय कूपीश्च वनोपलानाम् ।
दद्दीत वह्निं पिदधीत यन्त्रं
यामत्रयेण द्रवतीह तैलम् ॥३॥
नैवात्र भीतिः स्फुटनाच्च कूप्याः
कदापि कार्या नच कापि शङ्का ।
तैलं स्रवेद् वापि नवेति चेति
धूमः प्रबाधेत मदिन्द्रियाणि ॥४॥

गन्धक, संखिया, मैनशिल, हरिताल से तेल निकालने की विधि—

एक सेर हलदी की गाँठों को दो सेर गौ के दूध में रातभर भिगो दे, प्रातःकाल गाँठों को निकाल कर दिन भर धूप में सुखावे, जो दूध बचे उसे खाने के काम में ला सकते हैं। इस प्रकार सात दिन तक रात्रि भर हलदी को दूध में भिगोना, और दिन में सुखाना चाहिये। इन सात भावनाओं के बाद हलदी की गाँठों के चाकू से चार २ पाँच २ टुकड़े कर ले। फिर उन टुकड़ों को धूप में खूब सुखा ले। इस शुद्ध हलदी में से आठ तोला ले और गन्धक, संखिया, मैंनशिल, हरिताल इन चारों में से जिसका तेल निकालना हो चार तोले लेकर चूर्ण कर ले। इन बारह तोले दोनों चीजों को एक काच की बोतल में भरकर बालुकागर्भपातालयन्त्र की नांद के मध्य में जो छिद्र किया हुआ है उस छिद्र में बोतल का मुख औंधाकर घुसा दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि लोहे के तारों को हाथ से मलकर गोली सी (डाट) बनाकर बोतल के

मुख में घुसा दे, जिसमें संखिया का चूर्ण और हलदी के टुकड़े गिर नहीं सकें, और तेल चूने (टपकने) में प्रतिबन्ध नहीं हो। फिर उस बोतल को लोहे के नलके से ढांक कर उस नलके के अन्दर बालू भर दे, जिसमें बोतल बालू के अन्दर ढकी रहे। फिर नलिका के चारों तरफ जो नांदी (नांद) का अवकाश है उसमें उपला भरकर आग लगा दे। आग लगाने के बाद जब अग्नि निर्धूम हो जावे तब जितने उपला नांद में अट सकें उतने और भर दे। जब वे भो निर्धूमप्राय: हो जावें तब जिसके तलभाग में धूम निकालने को या वायु के सञ्चार के लिये छिद्र किया गया है उस लोहे की नांद को औंधी करके ढक दे। इस यन्त्र के बनाने की विधि यन्त्रप्रकरण में विस्तार पूर्वक मैं लिख चुका हूँ। इस प्रकार यन्त्र को सजाकर छोड़ दे। यन्त्र के नीचे बोतल के मुख के ठीक सामने काँच, पत्थर, चीनी आदि का प्याला रख दे। तीन घंटे के बाद तेल चूने लगेगा। वह पांच छ: घंटे में सब निकल [टपक] आवेगा। इन चारों चीजों के तेल निकालने में वैद्यराज को ऐसा भय नहीं करना चाहिये कि बोतल फूट जायगी तो तेल कैसे निकलेगा ? और यह भी शङ्का कदापि न करें कि जाने तेल निकले या न निकले ? और इस विधि से तेल निकालने में विषैले धूम के स्पर्श की तो संभावना ही नहीं हो सकती जिससे नेत्र आदि इन्द्रियों में पीड़ा पहुँचे, क्योंकि इस यन्त्र के पास बैठने की आवश्यकता ही नहीं होती ॥ १॥२॥३॥४॥

गन्धकादिचतुर्णां द्वितीय तैल निःसारण विधिः—

उक्तप्रकारेण च भावयित्वा
धत्तूरबीजानि प्रशोष्य चापि ।
गौरीरजोमल्लमनःशिलाला-
न्याकुट्य बीजेषु विनीय यन्त्रे ॥ १ ॥
भरेत वाह्निश्च ददीत धीमान्
पिधाय यन्त्रं समुपेक्ष्य तिष्ठेत् ।

यामत्रयं काचशराविकायां
परिस्रुतं तैलमुपाददीत ॥ २ ॥

गन्धक आदि चारों पदार्थों से तैल निकालने की दूसरी विधि—

जिस प्रकार हल्दी में गौ के दूध की सात भावना दी हैं उसी प्रकार धतूरे के बीजों में भी सात भावना दे, अर्थात् एक सेर धतूर के बीजों को (काले धतूर के बीज मिलें तो और भी अच्छे) दो सेर गौ के दूध में रात भर भिगो दे । प्रातःकाल दूध से बीजों को निकाल कर धूप में सुखा दे । परन्तु इस दूध को खाने के काम में नहीं ले नहीं तो मनुष्य पागल हो जायगा किन्तु फेंक दे, या जमाकर घी निकाल ले अथवा उसका तैल पका ले उसको वातव्याधि में शरीर के मालिश करने में लावे । इस प्रकार सात भावना देकर खूब सुखाकर रख छोड़े । बाद गन्धक संखिया मैंनशिल हरिताल इन चारों में से जिसका तेल निकालना हो उसको चार तोले कूटकर आठ तोले धतूरे के बीजों में मिलाकर बोतल में भरकर उक्त विधि से बालुकागर्भ-पातालयन्त्र के द्वारा तेल टपका ले ॥ १ ॥ २ ॥

अन्यस्य कस्यापि च तैल्यमात्र-
स्यापेद्यते तैलमिमं प्रकारम् । ।
कुर्वीत निःशङ्कमतिः प्रबोद्धा
तैलस्रुतिः स्याच्छपथोऽत्रविष्णोः ॥ ३ ॥

हरिताल, मैंनशिल और गन्धक के तेल को हम रक्तविकार [दाद-खाज आदि कुष्ठ विकारों] के खाने के लिये पान में चुपड़ कर दिया करते हैं, और संखिया के तेल को ताकत बढ़ाने को खिलाते हैं, और गलितकुष्ठ में इन चारों तेलों के लेप से उपकार होता है । परन्तु केवल लेप के काम में लेना हो तो हरिताल आदि चारों वस्तुओं के शोधन की आवश्यकता नहीं है । और जिन २ योगों में हरिताल मैंनशिल गन्धक का डालना लिखा है उन योगों में इस तेल के डालने से

जल्दी फायदा होता है, क्योंकि जितना जल्दी स्निग्ध पदार्थ शरीर में व्याप्त होता है, उतना जल्दी घन पदार्थ व्याप्त नहीं होता।

यह "बालुकागर्भपातालयन्त्र" जगदीश्वर की कृपा से ऐसा अच्छा निकला है कि इसके द्वारा किसी भी तैल्य [तैल प्रधान चिकनी वस्तु, उक्त भावना भावित धतूरे के बीज या हल्दी आदि सभी] पदार्थों से अनायास तेल टपक आता है। इस विधि से तेल निकालने में कोई सन्देह नहीं है, यह सब क्रिया मैंने अनुभूत करके लिखी है ॥३॥

हरितालादिचतुर्णां तृतीय तैल विधिः—

तालं पलं पादयुतश्च गञ्जा-
बीजानि तन्मानमितानि युग्मम् ।
संमर्द्य संमर्द्य करोतु चूर्णं
ताभ्यां समं रोहितपित्तमत्र ॥ १ ॥
दत्त्वा च दत्त्वा च पुनः पुनस्तत्
करोतु सुश्लक्ष्णतमं च कल्कम् ।
कलायमाना वटिका विधेया
छायाविशुष्काश्च करोतु सर्वाः ॥ २ ॥

हरिताल आदि चारों से तैल निकालने की तीसरी विधि—

पाँच तोले हरिताल, पाँच तोले गांजे (जिसको चिलम में रखकर नशेबाज पिया करते हैं) के बीज इन दोनों को खूब घोट २ कर चूर्ण कर ले। और इन दोनों की बराबर (आधपाव) रोहू मछली का पित्त थोड़ा २ दे देकर बार बार घोटकर खूब चिकनी लुगदी कर ले। बाद मटर के समान गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा ले ॥१॥२॥

भृत्त्वाऽथ ता मृत्पटकाचकूप्यां
पातालयन्त्रे खलु बालुकाङ्के, ।

निधाय तैलं परिपातयेत
कुष्ठादिलेपेषु बहूपकारि ।
मनःशिला गन्धकमल्लतैलं
चानेन मार्गेण परिस्रुतं स्यात् ॥ ३ ॥

जब गोलियाँ ऐसी सूख जाय कि धरती में डालने से "कट्ट" शब्द करने लगें तब उन गोलियों को कपरमिट्टी की हुई बोतल में भरकर बालुकागर्भपातालयन्त्र के द्वारा तेल निकाल ले । यह तेल भी कुष्ठ आदि में लेप करने से बहुत उपकारी है इसी प्रकार मैंनसिल गन्धक संखिया का तेल भी निकल आता है । शायद पाठक लोगों को यह शङ्का होगी कि इन तीनों प्रकार से तेल निकालने में स्निग्ध पदार्थों का सम्बन्ध हुआ है इसलिये हरिताल गन्धक आदि का तेल ठीक नहीं । इसका उत्तर यह है कि जो गन्धक आदि के तेल की प्रशंसा सुनी जाती है कि तप्त ताँबे पर डाल देने से सोना बन जाता है सो वो बात तो इन किसी तेल में नहीं है परन्तु औषधियों में उपयोगी अवश्य है ।। ३ ।।

मल्लतैलम्—

संशोधितायाः खलु सर्जिकायाः
पलं सुसंपेषितमल्लचूर्णम् ।
पलद्वयं लोहकटोरिकायां
निधाय ताभ्यां सह षट्पलानि, ॥१॥
जलस्य मन्दाग्नियुजा पचेत
यदास्ति किंचिज्जलमत्र शिष्टम् ।
तदाऽवतार्येत शराविका सा
तैलं भरेताऽथ च काचकूप्याम् ॥२॥

संखिया का तेल—

साफ की हुई सज्जी (सोड़ा) चार तोले और संखिया का चूर्ण आठ तोले दोनों को लोहे की कटोरी में धरकर चौबीस तोले जल भी

भर दे, और मन्द मन्द आँच लगावे। जब तोला दो तोला पानी रह जाय तब कटोरी को आँच से उतार कर जमीन पर रख ले। जब पानी सूख जाय तेल को शीशी में भर ले। पाँच तोला कडुवे तेल में एक तोला संखिया का तेल डालकर जिस अङ्ग में दर्द होता हो वहाँ पर मल दे, गरम करके ऊपर अंडोले (रेंडी) के पत्ते बाँध देने से दर्द मिट जायगा, अथवा खटिया के ऊपर अंडोले के पत्ते बिछाकर इस तेल को कमर में मलकर उन पत्तों पर सो जाय और खटिया के नीचे कोयले सुलगा दे तो भी कमर का दर्द दूर हो जाता है। जिस आदमी को ऐसा श्वास कास हो कि मारे खाँसी के रात भर बैठा रहता है और कफ से कण्ठ घिरा रहता है उसको पान के ऊपर थोड़ा सा लगाकर खिला देने से सौ वमन से कम न होगी। जब वमन होने से रोगी घबड़ा जाय तो मिश्री डालकर दूध पिलाने से तुरन्त वमन बन्द हो जायगी, गले पर जो कफ रुकता था उसका नाम निशान तक न रहेगा। जिस मनुष्य को सर्प काट खाय उस दंश पर लगाने से विष का जोर नष्ट हो जायगा॥ १॥ २॥

मल्लतैल द्वितीय विधिः—

सुवर्चिकापादमितञ्च मल्लं
सञ्चूर्ण्य लोहस्य कटाहिकायाम्, ।
धृत्वोपरिष्टादपि ताक्ष्यमत्र
प्रपूर्य तैलेन कटाहिकां ताम्॥१॥
सुवर्चिकामज्जनमानतोऽथ
निधाय चुल्ल्यां प्रददीत वह्निम्।
दूरे च तिष्ठेदवलोकमानो
यथाग्निधूमौ न च बाधनेशौ॥२॥

संखिया के तेल की दूसरी विधि—

पाव भर संखिया को कूट कर लोहे की कड़ाही में रख दे उसको कूटे हुए एक सेर कलमीसोरा से ढक दे उसके ऊपर कडुवा तेल या

तिल्ली का तेल उतना भर दे कि जिसमें सोरा डूब जाय। परन्तु यह स्मरण रहे कि तेल के ऊपर भी कढ़ाई का हिस्सा दो चार अंगुल निकसा रहे क्योंकि यदि छोटी कड़ाही के कारण किनारे तक तेल आ जायगा तो अग्नि लगने पर तथा कड़ाही से ज्वाला उठने पर तेल कड़ाही से बाहर गिर जायगा। उस कड़ाही को चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि दे, और आप दूर बैठकर उसको देखता रहे जिससे अग्नि और धूम अपने को नहीं लगे ॥१॥२॥

ज्वाला पुरा पञ्चषहस्तमानो-
स्तिष्ठेत्ततो मन्दरया ज्वलन्ती ।
तैलाल्पभावे शमनोत्सुका स्याद्-
यदापि तैलस्य सशेषता स्यात् ॥३॥
कटाहिकामाश्ववतारयेत
चुल्ल्यास्ततः पङ्कमिवाधिपात्रि ।
निःसार्य चन्द्राभिमरीचि दध्यात्-
पात्रीं यथा चन्द्रगतिभ्रमन्तीम् ॥४॥

जब अग्नि से तेल खूब तप्त हो जायगा तब प्रथम तो तेल से पांच छः हाथ ऊँची ज्वाला उठेगी बाद थोड़ी २ जलती रहेगी। जब सम्पूर्ण तेल जलने पर आवे, और अग्नि की लपट शान्त होने लगे, और तेल की कुछ तराई कड़ाही में रहे, उसी समय चूल्हे से कड़ाही को शीघ्र उतार कर जमीन पर रख दे। कड़ाही के उतारने की यह रीति है कि कड़ाही के दोनों कुन्दों में एक बाँस पोकर (डालकर) दो आदमी बाँस के दोनों सिरों को पकड़ कर उतार ले नहीं तो अग्नि की लपट हाथ को जला देगी। जब कड़ाही ठंढी हो जाय तब कड़ाही में जमी हुई जो सोरा और संखिया की कीचड़ सी है उसको चीनी की पात्री (थाली) में निकाल कर चन्द्रमा की चांदनी के सामने थाली को कुछ टेढ़ी करके रख दे जिसमें चन्द्रमा की चाँदनी कीचड़ पर पड़ती रहे और तेल बह बहकर थाली के एक किनारे पर जमा होता रहे। और ज्यों ज्यों चन्द्रमा

घूमता जाय त्यों त्यों थाली को भी चन्द्रमा की चांदनी की तरफ घुमाता जाय ॥३॥४॥

स्रुतं ततस्तैलमुपाददीत
दिने तमोराशितते प्रदेशे।
शीते सुरक्तेत्खलु पङ्कपात्रीं
दिनानि कुर्यादिति पञ्चषाणि ॥५॥

जब तक सूर्य का प्रकाश नहीं हो उससे पहिले ही मुरगा बोलने के समय थाली के किनारे पर बहकर इकट्ठे हुए संखिया के तेल को शीशी में रख ले, और उस कीचड़ की थाली को ऐसे मकान में रख दे कि जहाँ पर अन्धकार हो और जल की तराई से ठंढ हो। अर्थात् हवा, धूप, सूर्य का प्रकाश थाली को बिलकुल नहीं लगने दे, नहीं तो कीच कड़ा होकर सूख जायगा और तेल नहीं निकलेगा। और जब रात्रि में चन्द्रमा निकले तब पूर्व की तरह चन्द्रमा की चांदनी की तरफ थाली को टेढ़ी करके फिर रख दे और प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में निकले हुए तेल को शीशी में भर ले। इस प्रकार पांच छः दिन करने से सब तेल निकल आवेगा। परन्तु इस विधि को शुक्लपक्ष त्रयोदशी से कृष्णपक्ष की तृतीया तक करना अच्छा होगा क्योंकि इन छः दिनों में चांदनी अधिक रहती है ॥ ५ ॥

गङ्गाम्बुतुल्यं विमलञ्च तैलं
परिस्रवेन्मल्लजमिन्दुयोगात्।
युञ्जन्ति चेदं ध्वजभङ्गदोषे
शोषे कफस्यापि च वायुमोषे ॥६॥

यह तेल गङ्गाजल के समान बहुत निर्मल और सफेद निकलता है। इस तेल को सुपारी और सीमन को बचाकर लिङ्ग पर लेप करके ऊपर से नागरपान बांध देने से हस्तक्रीड़ादि दोषजन्य क्लीवत्व दूर हो जाता है। और पान पर चुपड़ कर खिलाने से कफ को वमन द्वारा निकाल कर अवशिष्ट अंश को सुखा देता है। और वातव्याधि में भी मलने से बहुत उपयोगी है ॥ ६ ॥

हरितालादि विकारशान्तिः—

दिनानि सप्त सेवेत षड्गुणगन्धरञ्जितम् ।
सूतं तालादिजातानां शान्तिकामो रुजां नरः ॥ १ ॥

हरितालादि के विकारों की शान्ति—

षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस को सात दिन तक दो दो रत्ती मधु और सितोपलादि चूर्ण आदि अनुपान के साथ सेवन करे तो हरिताल संखिया मैंनशिल के सेवन करने से उत्पन्न हुए विकारों की शान्ति होती है ॥ १ ॥

॥ इति तालादि विधिः ॥

शङ्खशुक्त्यादीनां ग्राह्यता—

तारवद्धवले शङ्खशुक्ती ग्राह्ये कपर्दिका ।
ग्रन्थिला पृष्ठतः पीता सार्द्धनिष्का च वर्त्तुला ॥ १ ॥
दन्तैर्द्वादशभिर्ग्राह्या वराटी चापराऽवरा ।
शम्बूकः शङ्खवद्ग्राह्यो रक्तवर्णस्तु विद्रुमः ॥ २ ॥

ग्रहण योग्य शङ्खादिक—

चाँदी के समान सफेद, वजन में भारी शङ्ख और मोती की सीप दवा के लिये ग्रहण किये जाते हैं । और कौड़ी जो पीले वर्ण की हो, और जिसकी पीठ पर गाँठ हो, और गोल तथा जिसके नीचे ऊपर बारह २ दाँत हों, वजन में छः मासे हो वह दवा के लिये उत्तम होती है । इसको लहिया शब्द से कहा करते हैं । जिसमें ये लक्षण नहीं घटें वह कौड़ी अल्प गुणकारी होती है । और सुकला (घोंघा) भी शङ्ख के समान सफेद वर्ण का अच्छा होता है । और मूँगा जितना लाल होता है उतना ही अच्छा होता है उसके अभाव में मूँगा की शाखा (लकड़ी) भी ली जाती है ॥ १ ॥ २ ॥

शङ्खादीनां भस्म विधिः—

शङ्खशम्बूकशुक्तीनां कपर्द्या विद्रुमस्य च।
कन्यायां पुटनात् भस्म जायते सकृदुत्तमम्॥ १॥

शंख आदि का शोधन मारण—

शंख, सुकला (घोंघा), सीप, कौड़ी, मूँगा, इनको कपरमट्टी की हुई हांड़ी में रखकर और इनके नीचे ऊपर घृतकुमारी का गूदा रखकर सर्वार्थकरी भट्टी में अथवा गजपुट में फूंक देने से एक ही बार में उत्तम सफेद भस्म हो जाती है॥ १॥

शोधनं चापि सर्वेषां गोमूत्रपटुनिम्बुभिः।
खराऽग्नौ पाचनाद् यामौ जायते क्षालनाज्जलैः॥ २॥

और इनका पृथक् २ शोधन भी गोमूत्र, नोंन और नींबू का रस इन तीनों के साथ दो पहर तक इनको तेज अग्नि में उबालने के बाद जल में धो डालने से हो जाता है। पांच सेर गोमूत्र में एक सेर सैंधानोंन और आधपाव नींबू का रस डाला जाता है। परन्तु इतनी तेज अग्नि भी नहीं देनी चाहिये कि गोमूत्र उफन जाय। पांच सेर गोमूत्र में शंखादिकों में से जिसका शोधन करना हो उसको एक सेर तक डाले॥ २॥

शङ्ख गुणाः—

शंखो लेखी सरः शीतः पौष्टिको बलकृत् कटुः।
ग्रहणीगुल्मशूलाऽक्षिपुष्पाऽजीर्णविषार्त्तिहृत्॥ १॥

शंख के गुण—

शंखभस्म, लेखी (दोषों को खुरच कर निकालने वाली) दस्त साफ करने वाली, ठंढो पुष्टिकारक, बलकारक, और कटु रस वाला होती है। तथा संङ्ग्रहणी, गुल्म, शूल, नेत्र का फूला अजीर्ण रोग, विष दोषों को नष्ट करती है॥ १॥

दक्षिणाऽऽवर्त्तकस्त्वेषः पुण्यसङ्घैरवाऽऽप्यते ।
यद्ध्वनेः प्रेतदैन्यानि पलायन्तेऽतिदूरतः ॥ २ ॥

परन्तु दक्षिणावर्त शंख बड़े पुण्यों से मिलता है जिसकी ध्वनि से प्रेतबाधा और दारिद्र्याऽवस्था डर कर दूर भाग जाती है ॥ २ ॥

शम्बूक गुणाः—

विस्फोटान् नेत्ररोगाँश्च शीतज्वरमरोचकम् ।
शम्बूका घ्नन्ति ते तीक्ष्णा ग्राहिदीपनपाचनाः ॥ १ ॥

घोंघा के गुण—

घोंघा (सुकला) की भस्म के खाने से तथा लगाने से फोड़ा और नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं तथा शीतज्वर, भोजन में अरुचि, भी नष्ट हो जाते हैं । और घोंघा तीक्ष्ण, दस्त को गाढ़ा करने वाले, जठराग्नि को दीपन तथा अन्न के पकाने वाले होते हैं ॥ १ ॥

मुक्ताशुक्ति गुणाः—

मुक्ताशुक्तिः कटुः स्वादुः शूलश्वासनिवर्हिणी ।
रुच्या प्रदीपनी स्निग्धा भवेद् हृद्रोगनाशिनी ॥ १ ॥
स्नायुरोगाञ् ज्वरान् कासान् व्रणानेषा नियच्छति ।
भेदिनी शिशिरा रक्तपित्तपीडां व्यपोहति ॥ २ ॥

मोती की सीप के गुण—

मोती की सीप कडुवी, मधुर, चिकनी, शूल, श्वासों के नाश करने वाली, रुचिकारक जठराग्नि को दीप्त करने वाली, तथा हृदय रोग की नाशक होती है ॥ १ ॥

स्नायु के रोग, ज्वर, खांसी, व्रण (घाव) को नष्ट करने वाली, तथा दस्तावर, ठंढी तथा रक्तपित्तरोग की नाशक है ॥ २ ॥

जलशुक्ति गुणाः—

जलशुक्तिस्तु पूर्वस्या अवराऽवरगुणप्रदा ।
बल्या नेत्र्या कटुश्चैषा नदीतीरेषु लभ्यते ॥ १ ॥

जलसीप के गुण—

जल की सीप मोती की सीप से न्यून गुण वाली है इसी लिये पूर्व की अपेक्षा अल्प गुण करती है। बलकारक, नेत्र हितकारक (खाने से और अञ्जन में डालने से) होती है। यह नदियों के किनारों पर बहुत मिलती है। परन्तु मोती की सीप तो समुद्र में ही मिलती है ॥ १ ॥

कपर्दी गुणाः—

कपर्दी शीतला नेत्र्या स्फोटक्षयविनाशिनी ।
कर्णस्रावाऽस्रपित्तघ्नी वृष्या दीपनपाचनी ॥ १ ॥
गुल्मशूलव्रणान् हन्ति वातं च ग्रहणीं कफम् ।
श्रेष्ठा पीताऽतिनिष्काऽऽढ्या ग्रन्थिला रसकर्म्मणि ॥ २ ॥

कौड़ी के गुण—

कौड़ी ठंढी, नेत्रहितकारक, और शरीर के फटने, क्षयरोग, कर्णस्राव, रक्तपित्त की नाशक होती है। और पौष्टिक, अग्नि को दीप्त करने वाली, तथा पाचक है ॥ १ ॥

गुल्म रोग, शूल, व्रण, का नाश करती है। तथा वातव्याधि, सङ्ग्रहणी, और कफरोग को दूर करती है। और जो कौड़ी पीले वर्ण की, तौल में छः मासे की, तथा गाँठ वाली होती है वह रसक्रिया में उत्तम होती है ॥ २ ॥

विद्रुम गुणाः—

स्निग्धःस्थूलोऽव्रणो रक्तो विद्रुमो गुणवत्तमः ।
सुपुष्टौ वीर्यवृद्धौ च कान्तौ माङ्गलिकौ धृतौ ॥ १ ॥

मूंगा के गुण—

जो मूंगा चिकना, मोटा, बिना गड्ढे का, सिन्दूर के समान लाल वर्ण होता है वह पुष्टि में, बलवृद्धि में और शरीर की कान्ति में बहुत प्रभावशाली होता है। और इसकी माला बनाकर पहिरने से मङ्गलकारी है। इससे विपरीत गुण वाला त्याज्य है ॥ १ ॥

अम्लस्वादुरसो हन्ति श्वासं कासं क्षयं ज्वरम् ।
पाण्डुं मेदोबलासोत्थान् रक्तपित्तं विषं गदान् ॥ २ ॥

इसका स्वाद खट्टा और मधुर होता है। इसकी भस्म के सेवन करने से श्वास, कास, क्षय, ज्वर, पाण्डुरोग, मेदोरोग, कफरोग, रक्त-पित्त और विषदोष नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

दीपनः पाचनश्चैष दीर्घकालनिषेवितः ।
शुक्रस्तम्भं बलस्तम्भं वयःस्तम्भं करोति च ॥ ३ ॥

तथा अग्नि को दीप्त करने वाला और पाचक है। यदि इसका वर्ष दो वर्ष सेवन किया जाय तो शुक्रस्तम्भ, बल की स्थिरता, आयु की स्थिरता हो ॥ ३ ॥

शोधने मारणे चाऽस्य नैव क्लेशोऽपि न क्वचित्, ।
दौर्लभ्यं पथ्यबाहुल्यं व्ययाधिक्यं च नो भवेत् ॥ ४ ॥

इसके शोधन मारण में भी कोई क्लेश नहीं है। और यह ऐसी दुर्लभ चीज भी नहीं है जिसका कोई सङ्ग्रह न कर सके, क्योंकि गाँव गाँव शहर शहर में इसकी शाखाएँ मिल सकती हैं। और इसमें कुछ विशेष पथ्य पालना भी नहीं पड़ता। केवल तेल, खटाई, मैथुन मात्र के त्याग से ही पथ्य की पूर्णता हो जाती है। तथा इसमें बहुत खर्चा भी नहीं पड़ता ॥ ४ ॥

॥ इति शङ्खशुक्त्यादीनां विधिः ॥

रसायनसार सारः—

यद्वा किं बहु वाग्जालैः सर्व्वे धातूपधातवः ।
ज्ञाता वाऽज्ञातरूपा वा यद्विधिर्नापि विश्रुतः ॥१॥
कल्पनास्वामिनां हस्ते त्वागता भिषजामिमे ।
भस्मीभूयाऽवतिष्ठन्ते सूतगन्धकयोगतः ॥ २ ॥

रसायनसार पुस्तक का सार—

अथवा बहुत लिखने से क्या फायदा है सम्पूर्ण रसायनसार पुस्तक का सार ही लिखे देता हूँ । सम्पूर्ण धातु और उपधातु अथवा इनके अलावे जो ज्ञात धातु हैं, अथवा जो कृत्रिम (बनावटी) धातु हैं, और उनके मारण की विधि कहीं भी देखी सुनी नहीं गई, वे धातु और उपधातु किसी गुणी वैद्य के हाथ में पड़ जाँय तो पारद गन्धक के योग से सभी की भस्म हो जाती है । अर्थात् शुद्ध की हुई धातु उपधातुओं को पारद गन्धक की कज्जली के साथ नलिकाडमरुयन्त्र में या शीशी में पकाने से उनकी भस्म हो जाती है । और क्वाथ रस आदि की भावना देना, या द्विगुण चतुर्गुण षड्गुण आदि गन्धक जारण करना यह सब बुद्धि के हाथ है ॥ १ ॥ २ ॥

दोषांश्चाऽमुत्र तैलादेः पञ्चकं नाऽवशेषयेत्
सूतः काये यथा रोगाञ्छतगन्धेन रञ्जितः ॥ ३ ॥

और उनकी शुद्धि भी किसी शास्त्र से या किसी वैद्य से नहीं सुनने में आई हो तो "तैले तक्रे गवांमूत्रे काञ्जिके च कुलत्थके" इत्यादि न्याय से तेल, तक्र, गोमूत्र, कांजी, और कुलत्थी का काढ़ा, इन पाँच चीजों में जगत् भर की धातु उपधातु शुद्ध हो जाती है । यद्यपि ताम्र, पीतल आदि धातु उक्त पाँच चीजों में सात सात बार बुझाने पर भी पूर्ण शुद्ध नहीं होते हैं; इसलिये उनकी विशेष शुद्धि करने की शास्त्रकार महर्षियों ने व्यवस्था दी है । तथापि सात सात बार की जगह इक्कीस बार बुझाने से विशेष शुद्धि करने की भी आवश्यकता

नहीं पड़ती। और सम्पूर्ण चिकित्साकाण्ड का भी यह सार है कि हिङ्गुलोत्थपारद में मेरी लिखी हुई विधि के अनुसार शतगुण गन्धक जारण करने से शरीर में कोई रोग मात्र नहीं रहता। परन्तु किसी रोगी को वमन विरेचनादि कराकर शतगुण गन्धक जारित पारद सेवन कराना होता है, किसी को विना ही कोष्ठ शुद्धि किये सेवन कराया जाता है, किसी को कोई अनुपान के साथ में दिया जाता है। ये सब विधि, और इनके तालसिन्दूर आदि सैकड़ों भेद प्रभेद करना वैद्य की कल्पना पर निर्भर है। और शतगुण गन्धकजारण करना भी नलिकाडमरूयन्त्र के सामने कोई बड़ी बात नहीं है। जिन वैद्यों को मेरी बनाई हुई रसायनसार पुस्तक के याद करने में क्लेश मालूम हो, वे महाशय एक बार रसायनसार पुस्तक को आद्योपान्त बाँच समझ कर इन तीन श्लोकों को भी याद रखें तो भी उनको अनेक प्रकार से औषधी बनाने की बुद्धि स्वयमेव उत्पन्न हो सकती है। और इन्हीं तीन श्लोकों के आश्रय से बुद्धिमान् पुरुष दूसरी भी रसायनसार पुस्तक तैयार कर सकता है॥ ३॥

काचभस्म विधिः—

सर्वार्थकर्या घृतलोहजाले-
रिङ्गालदह्नौ बहु तप्ततप्तम्।
कृष्णं च काचं शतवारमेव
कन्याद्रवे संशमयेत वैद्यः॥१॥

काचभस्म—

सर्वार्थकरी भट्ठी के डंडाओं पर लोहजाली को रखकर पत्थर के कोयले भर दे, नीचे के दोनों दरवाजों में लकड़ी की आँच दे। जब कोयले सुलग जाँय तब काले रङ्ग के काँच को लोहे के तसला में रखकर तपा २ कर सौ बार घृतकुमारी के रस में बुझावे। रस के बदलने की कोई आवश्यता नहीं है, जिसमें बुझा चुके उसी में बुझाया करे॥ १॥

एवंकृते चन्द्रिकया विमुक्तं
काचस्य भस्मानुकुमारिकायाम्, ।
मन्दारदुग्धेऽपि च भावयित्वा
विधाय चक्रींश्च पुटेद्गजाख्ये ॥ २ ॥

ऐसा करने से काँच की भस्म सफेद बनेगी और चमक बिलकुल नहीं रहेगी, फिर उस भस्म को घृतकुमारी के रस में भावना देकर टिकिया बना ले, और गजपुट में फूँक दे। फिर उन टिकियाओं को मंदार के दूध में घोटकर टिकिया बना ले। जब टिकिया खूब सूख जाँय तब सम्पुट में फूँक दे। यह भस्म वातव्याधि के लिये बहुत अच्छी चीज है। इसकी मात्रा सहद में दो रत्ती की है। यदि गरमी मालूम पड़े तो मिश्री डालकर दूध पीवे ॥ २ ॥

काचसुवर्णभस्म—

सुवर्णसिन्दूरविधौ कदाचित्
कथञ्चिदग्नेर्विपरीततायाम् ॥
द्रुतौ च कूप्या यदि हेमकाचौ
संमिश्रितौ स्तश्च निरुक्तरीत्या ।
रसे कुमार्याः परिवापणेन
कुर्वीत निश्चन्द्रमतन्द्रितस्तत् ॥ १ ॥
अज्ञातमार्गेण मया तु पूर्वं
त्विसं सुवर्णं बत काचमिश्रम् ।
सेटस्य पादांशमितं कृतं त-
न्निश्चन्द्ररूपं पुनरित्थमार्याः ! ॥ २ ॥

काच और सुवर्ण की भस्म—

पारद में सोना घोटकर गन्धक के साथ कज्जली करके जो सुवर्ण-सिन्दूर बनाया जाता है, उसमें प्रायः कभी ऐसा भी हो जाता है कि

अग्नि की तेजी से शीशी गल जाती है तब सुवर्ण और काँच दोनों परस्पर मिल जाते हैं। सुवर्णसिन्दूर तो शीशी के गलने पर चढ़ जाता है परन्तु सुवर्ण में काँच मिल जाने से बिचारे वैद्य लोग उसको फेंक देते हैं क्योंकि उसको यदि कोई रोगी खा जाय तो उसकी आंतें कट जाँय। एक बार मैंने सुवर्णभस्म बनाने के लिये आध सेर हिङ्गुलोत्थ पारद में पाव भर सुवर्ण घोटकर पिट्ठी बनाई थी। उसमें आध सेर गन्धक डालकर तीन दिन की अग्नि दी। मेरा ऐसा विचार था कि आध सेर सुवर्णसिन्दूर बन जायगा, और पावभर सुवर्ण-भस्म शीशी के तलभाग में मिलेगी। परन्तु दुर्भाग्यवश शीशी में अधिक आँच लगने से काँच और सुवर्ण मिलकर एक होगये। स्वाङ्ग-शीतल होने पर शीशी फोड़ी तब गले पर आध सेर सुवर्णसिन्दूर तो मिला, यह तो खुशी हुई, परन्तु सुवर्ण में काँच मिल जाने से बहुत दुःख हुआ। अनेक वैद्यों से पूछा गया कि इस काँच मिले सुवर्ण को मैं किस काम में लाऊँ? परन्तु किसी ने व्यवस्था नहीं दी। वर्ष दो वर्ष तो उसको मैंने रख छोड़ी, इस इच्छा से कि यदि कोई व्यवस्था मिल जावे तो पाँच सौ रुपये का सोना बच जाय। आखिर निराश होकर उसको फेंक दिया। परन्तु "रीते भरे भरे ढलकावै महर करे तो फेर भरै, अलख पुरुष कर्त्ता की करनी क्यार करंता क्यार करे"

इस कहावत के अनुसार फिर उसी परमेश्वर की कृपा से एक महात्मा ऐसे मिले कि उन्होंने काँचभस्म बनाने की विधि मुझे बतलाई, जिस विधि को मैं ऊपर लिख चुका हूँ। और महात्मा का यह भी कहना था कि इस काँच की भस्म से पक्षाघात भी अच्छा हो जाता है, परन्तु काले काँच की भस्म अधिक गुण करती है। वास्तव में वह कहना सत्य हुआ, बहुत उत्तम सफेद भस्म बनी। तब मैंने पश्चात्ताप किया कि वह पाव भर सोने के साथ मिला हुआ काँच यदि संरक्षित रहता तो इसी विधि से आज एक अपूर्व रस तैयार होता। फिर सुवर्ण काँच को मिलाकर भस्म की गई, तब बहुत अच्छी निश्चन्द्र भस्म बनी। यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि ऐसी घटना के उपस्थित होने पर अन्य वैद्य नुकसान न उठावें ॥ १ ॥ २ ॥

शुद्ध टङ्कण गुणाः—

लाजीभवन् भवेच्छुद्धष्टङ्कणो भेदकः कटुः ।
रूक्षः प्रदीपकास्तिक्तः पटुः पित्तप्रदीपकः ॥ १ ॥
द्विधा विषं वमिं वातं वातरक्तं कफं ज्वरम् ।
श्वासं कासं च मन्दाग्निं नाशयेद् यदि सेवितः ॥२॥

शुद्ध सुहागे के गुण—

तवे पर भून कर लावा (खील) बना लेने से सुहागा शुद्ध हो जाता है । यह दस्त को साफ करने वाला, कड़वा, रूखा, अग्नि को दीप्त करने वाला, और तिक्त, नमकीन, तथा पित्त का प्रकोपक है ॥ १ ॥

स्थावरविष और जङ्गमविष, वमन, वायु, वातरक्त रोग, ज्वर, श्वास, कास, मन्दाग्नि, इनको नष्ट करता है यदि यह औषधियों के साथ सेवन किया जाय ॥ २ ॥

शुद्ध कांक्षी गुणाः—

कांक्षी शुद्धा भवेत्फुल्ला वह्नौ कण्ठ्या व्रणाऽपहा ।
नेत्र्या केश्या विषघ्नी च श्वित्रवीसर्पनाशिनी ॥१॥

फिटकिरी के गुण—

तवे पर भून कर फुला लेने से फिटकिरी शुद्ध हो जाती है । यह कण्ठ, नेत्र, केशों को हितकारक, और घाव को अच्छा करने वाली तथा विष, सफेद कोढ़, विसर्प, रोगों को नष्ट करती है ॥ १ ॥

विष शुद्धिः—

शृङ्गिकं वत्सनाभं च गोमूत्रे त्रिदिनं क्षिपेत् ।
प्रत्यहं परिवर्त्यं च गोमूत्रं विषशुद्धये ॥ १ ॥

विष की शुद्धि—

सींगिया विष और बछनाभ विष को तीन दिन तक गोमूत्र में डाल दे, परन्तु रोज रोज गोमूत्र को निकाल कर नवीन नवीन डालता रहे ।

बाद उसके छोटे छोटे टुकड़े करके धूप में सुखाकर रख छोड़े । जिस योग में विष का काम पड़े उसमें इसमें से डाले ॥ १ ॥

सुवर्णगैरिकस्य शुद्धिर्गुणाश्च—

दुग्धघृष्टं तु शुद्धं स्याद्गैरिकं वाऽऽज्यभर्जितम् ॥
बल्यं नेत्र्यं हिमं हिक्कां दाहं पित्तं कफं वमिम् ।
स्फोटं दग्धव्रणं चार्शो रक्तनेत्रव्यथां जयेत् ॥ १ ॥

गेरू को

गौ के दूध में घोटने से सोनागेरू शुद्ध हो जाता है । अथवा घी में भूँजने से भी शुद्ध हो जाता है । यह बलकारक, नेत्रों को हितकारक, शीतल है । और हिचकी, दाह, पित्त, कफ, वमन, फोड़ा, जला हुआ घाव, बवासीर, रक्तरोग, नेत्र की पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १ ॥

जैपाल शुद्धिः—

माहिषे गोमये धृत्त्वा त्रिदिनं प्रहरद्वयम् ।
गोमूत्रे पाचयेद् भूयो जैपालान् परिशोधयेत् ॥ १ ॥

जमालगोटे की शुद्धि—

जमालगोटे के बीजों को तीन दिन तक भैंस के गोबर के अन्दर दबा दे । तीन दिन के बाद गोमूत्र में दो पहर तक कड़ाही में डालकर पकावे ॥ १ ॥

अपनीय तुषं तेषां गोदुग्धे दाहशान्तये ।
पचेत्तान् जिह्वयाऽपेतान् कृत्वा निम्बुरसेन च ॥ २ ॥
घृष्ट्वा कल्केन तेन त्रिर्नान्दीं लिप्त्वाऽपनोदयेत् ।
स्नेहं विड्रोधकं तेन जैपाला यान्ति शुद्धताम् ॥ ३ ॥

फिर धूप में सुखाकर उनको हाथ से मलकर ऊपर के छिलके को उतार दे । फिर उनकी मीगियों को गौ के दूध में तीन चार घण्टे तक पकावे, जिसमें उनकी गरमी शान्त हो जाय । बाद उनको बीच से चीर

कर उनकी जिह्वा को निकाल दे क्योंकि जिह्वा में अधिक विष होता है। बाद उनको नींबू के रस में घोटकर कोरी नाँद के ऊपर लीप दे, जिसमें उनके तेल को नाँद सोख लेगी, और जमालगोटे बिना चिकनाई के धूली के समान हो जायँगे। परन्तु पूर्व की तरह नींबू के रस में घोट घोट कर तीन बार कोरी नाँदों के ऊपर लीपने से उनकी सब चिकनाई निकल जायगी। चिकनाई के रहने से दस्त खुलासा नहीं होता। जो वैद्य चिकनाई को नहीं निकालते हैं उनके इच्छाभेदी आदि रस ठीक काम नहीं देते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

भल्लातक शुद्धिः—

पुरीषे दिवसान् सप्त माहिषे निखनेत्ततः।
गवाँ मूत्रे पचेद्धौतान् नारिकेलजले दिनम्, ॥ १ ॥

भिलावों की शुद्धि—

भिलावों को सात दिन तक भैंस के गोबर में गाड़ दे बाद गोमूत्र में मन्दी मन्दी आँच से दिनभर पकावे। फिर दूसरे दिन नारियल की गिरी के पानी में एक दिन उबाले। (जहाँपर नारियल तोड़ तोड़कर बेचे जाते हैं, वहांपर नारियल का पानी बहुत इकट्ठा हो जाता है, उसको मेवाफरोस फेंक दिया करते हैं, वही पानी अपने को इष्ट है) ॥ १ ॥

गवां दुग्धेऽपि भल्लातान् पक्त्वा किञ्चिद् दधि क्षिपेत्।
दिनानामष्टके जाते भल्लाता यान्ति शुद्धताम् ॥ २ ॥

बाद उन भिलावों की टोपी उतारकर गौ के दूध में पकावे। जब दूध आधा रह जाय तब उसको चिकने बर्तन में भरकर थोड़ा दही (जामन) डाल दे। परन्तु टोपी उतारने के समय उनके तेल से बचता रहे, नहीं तो देह में फलक पड़ जायँगे। इसी प्रकार आठ दिन तक दही को सड़ने दे। बाद दही में से भिलावों को निकाल ले। ऐसा करने से भिलावें शुद्ध हो जाते हैं ॥ २ ॥

तद्दध्नो मन्थितादाऽऽज्यं कर्षेत् पक्त्वाऽथवा दधि ।
तत्र गोधूमचूर्णेन भर्ज्जितेन सितातिलान् ॥ ३ ॥
संमेल्य मोदकाः कार्य्याः पौष्टिका वातनाशकाः ।
बुभुक्षोद्बोधका नृणां प्रातराशोपयोगिनः ॥ ४ ॥

उस सड़े हुए दही को मथकर घी निकाल ले । अथवा दही को कड़ाही में पकावे, जब कुछ पानी की तराई रहे, तब उसको कपड़े में डालकर निचोड़ने से भी घी निकल आता है । परन्तु मथने से अधिक निकलता है । उस घी के बराबर गेहूँ का आटा डालकर आटे को भूँज ले, और आटे की बराबर काले तिलों का चूर्ण और मिश्री डालकर लड्डू बनाकर रख छोड़े । ये लड्डू पौष्टिक हैं, वातनाशक हैं, भूख लगाते हैं, और प्रातःलाल कलेवा (जलपान) के लिये बहुत अच्छे हैं । इनमें मेवा डालने की इच्छा हो तो रुचि के अनुसार डाल सकते हैं ॥३॥४॥

अथ पुष्परागादिरत्नानां शोधनमारणे—

पुष्परागं च माणिक्यं स्फटिकं मौक्तिकं तथा ।
तैलाऽऽदौ कोद्रवक्काथे स्वेदनात् परिशुध्यति ॥ १ ॥

पोखराज आदि रत्नों का शोधन मारण—

पोखराज, माणिक, स्फटिक मणि, मोती, इनको तैल, तक्र, गोमूत्र काँजी, कुल्थी का काढ़ा, कोदों के अन्न का काढ़ा, इन छः चीजों में दोलायन्त्र से दो दो पहर स्वेदन करने से इनकी उत्तम शुद्धि हो जाती है ॥ १ ॥

पुष्परागादिकं तप्त्वा कुमार्य्यां शतवापितम् ।
शिलालसूतगन्धानां कज्जल्यां टङ्कणस्य च ॥ २ ॥
पाचनाद् म्रियते कूप्यां मन्दमध्यादिपावकैः ।
मौक्तिकं कन्यकाद्रावे म्रियते पुटनात् सकृत् ॥ ३ ॥

पोखराज, माणिक, और स्फटिकमणि, इन तीनों को सर्व्वार्थकरी भट्ठी पर या शोधनार्थ भट्ठी में कलछा में रखकर, तपाकर घीकुआर के

रस में सौ बार बुझावे । बाद शुद्ध किए मैनशिल, तबकिया हरिताल, हिङ्गुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध चौकिया सुहागा, इन चार चीजों का सम भाग लेकर कज्जली कर ले और इस कज्जली से चतुर्थांश उक्त तीनों रत्नों का चूर्ण मिलाकर आतशीशीशी में भरकर सिन्दूररस की विधि से मन्द मध्यम तीव्राग्नि द्वारा पकावे तो उक्त रत्नों की भस्म हो जाती है । परन्तु मोतियों की भस्म तो कपरमट्टी की हुई हाँड़ी में घृतकुमारी के रस के मध्य में रखकर वराहपुट में फूँक देने से एक ही बार में हो जाती है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ चिकित्सा काण्ड प्रकरणम् ।

ज्वराधिकारः ।

महाज्वरारि रसः—

चन्द्रोदयः पारदगन्धकौ च समानभागाः समपिप्पलीकाः ॥
क्षौद्रेण लीढाः पवनादिजातान्
सर्वान् ज्वरान्घ्नन्ति बुभुक्षयन्ति ।
विष्टम्भकं कासमथाऽपि कुक्षे-
रुजं समस्ताङ्गभवाञ्च शीघ्रम् ॥ १ ॥
कञ्चिच्च कालं यदि सेविताः स्यु-
रावल्यनाशाय महौषधानि ।
महाज्वरारीत्यभिधो रसोऽयं
धनाढ्यनॄणां परितोष हेतुः ॥ २ ॥

महाज्वरनाशक रस—

षड्गुण गन्धकजारित चन्द्रोदय चार तोले, शुद्ध पारद चार तोले, शुद्ध आमलासार गन्धक चार तोले, तीनों की कज्जली करके बारह तोले छोटी पीपल (कपड़छन की हुई) मिला दे । यह महाज्वरारि

रस बना । इसको दो रत्ती से चार रत्ती तक बलानुसार सहद के साथ चाटे । एक खुराक प्रातःकाल, एक खुराक सायंकाल, एक खुराक रात्रि के सोते समय, इसको ले तो वातज्वर, कफज्वर; पित्तज्वर, द्वन्द्वज, सन्निपात ज्वर, दूर होते हैं । और मन्दाग्नि, विष्टम्भ, खांसी, कुक्षिशूल, सर्वाङ्ग की वेदना, बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती है । यदि इसको कुछ काल तक सेवन करे तो कमजोरी दूर करने के लिये भी एक ही महौषध है । (जिस वैद्य के पास चन्द्रोदय नहीं हो तो वह षड्गुण-गन्धकजारित स्वर्णसिन्दूर ले । और जिसके पास स्वर्णसिन्दूर भी नहीं हो तो वह षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस ले । परन्तु यह षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस शीशी का बना हुआ हो । यदि हाँड़ी में गन्धक जारण किया हो तो कम से कम द्वादशगुणगन्धक जारित हो । इन सबों के बनाने की विधि बहुत आसानी के साथ पारद प्रकरण में लिख चुका हूँ ।) जो राजा महाराज, सेठ शाहूकार कड़वी दवा नहीं खा सकते हैं, और जल्दी आराम चाहते हैं उनके लिये इस रस को मैंने बनाया है ॥ १ ॥ २ ॥

आरग्वधादि कषायः—

विष्टम्भनिःशेषविधौ तु रोगी
सेवेत योगं शतशोऽनुभूतम् ।
आरग्वधो रोहणिकाऽर्धचन्द्रा
द्राक्षा तथा हेमदला वयःस्था ॥१॥
पुष्पश्च शुष्कं शतपत्रिकायाः
समानि सर्वाणि तदर्धभूता ।
सम्मूर्च्छिता शर्करया सुवृत्ता
पलार्द्धकल्पाः कथिताः प्रपेयाः ॥ २ ॥

आरग्वध कषाय—

ज्वर के दूर हो जाने पर यदि विष्टम्भ (कब्जियत) रहे तो इस आगे लिखे हुए काढ़े को पीवे, जो मेरा सैकड़ों बार का अनुभूत

है। अमलतास का गूदा दो तोला, कुटकी दो तोला, निसोथ दो तोला, मुनक्का (बीज निकाली हुई) पाँच नग, सनाय की पत्ती दो तोला, बड़ी हड़ की छाल दो तोला, सूखे हुए गुलाब के फूल दो तोला, (यदि गीले होंय तो चार तोले) सब औषधियों से आधा गुलकन्द। इन आठों चीजों में से अमलतास का गूदा, दाख, गुलकन्द, इन तीन चीजों को छोड़कर बाकी पाँचों चीजों को कूटकर चूर्ण कर ले, पीछे इन तीनों चीजों को भी मिलाकर कल्क कर ले। इस कल्क में से दो अढाई तोले के अन्दाज पावभर पानी में डालकर अधोंट काथ कर पीवे तो एक दो दस्त खुलकर हो जाते हैं, उदर का दोष निःशेष हो जाता है और भूख खूब लगती है ॥ १ ॥ २ ॥

ज्वरारि रसः—

खट्वाङ्गयन्त्रेण समुद्धृते द्वे
मल्लस्फटी तुल्यतया गृहीते।
कृष्णोषणे तद् द्विगुणे स्फटीं तां
कन्याद्रवै श्लक्ष्णतरं विमर्द्य ॥१॥
वटीर्विधायाथ ददीत मुद्ग-
मानां द्विसन्ध्यं ज्वरिताय चैकाम्।
जलानुपानेन रसो ज्वरारि-
र्निरस्य रोगं सुखितं करोति ॥२॥

ज्वरारि रस—

आधपाव संखिया विष, आधपाव गुलाबी फिटकिरी, दोनों को खरल में घोटकर डमरूयन्त्र में रखकर चार पहर की अग्नि दे। यन्त्र के स्वाङ्गशीतल होने पर ऊपर की हाँड़ी में लगे हुए संखिया के फूल को तो जुदा निकाल ले। और नीचे की हाँड़ी के तल में जमी हुई फिटकिरी की खील, खील से दुगनी २ छोटी पीपल और कालीमिरच को कूट कपरछन करके तीनों चीजों को घृतकुमारी के रस में खूब

घोटकर मूँग के समान गोली बनाकर सुखा ले । ज्वर वाले रोगी को एक प्रातःकाल एक सायंकाल पानी से साबुत निगलवा दे । यह ज्वरारि रस दो तीन दिन में ज्वर को निकाल कर सुखी कर देता है । इस योग में जो संखिया डाली जाती है उसको नींबू के रस में या घृतकुमारी के रस में घोटकर शुद्ध कर ले, बाद फिटकिरी में मिलावे । और ऊपर की हाँड़ी में लगे हुए संखिया के फूल को एक शीशी में रख छोड़े, उसकी भी समभाग सूखी तमाखू व कालीमिरच मिलाकर ज्वरवटी बना ले ॥ १ ॥ २ ॥

ज्वराङ्कुशो रसः—

शुद्धे शिलाले रसगन्धकौ च मन्दारदुग्धेन करोतु पिष्टिम् ।
तुत्थोत्थताम्रस्य दलानि मध्ये निधाय तत्र प्रविधाय गोलम् १
धत्तूरपत्रैरपिधाय सम्यक् पुटेत्पुटे कुक्कुटनामधेये ।
शीते स्वतो जातगुणप्रकर्षो ज्वराङ्कुशोऽयं सितया प्रदेयः
शीते ज्वरे मङ्क्षु बहूपकारी दुग्धौदनं पथ्यमुषन्ति वैद्याः।२।

ज्वराङ्कुश रस—

शुद्ध मैंनशिल, शुद्ध हरताल, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक, इन चारों की कज्जली करके मंदार (आक) के दूध में घोटकर पिट्ठी कर ले । फिर तूतिया से निकाले हुए शुद्ध ताम्बे के पत्रों को पिट्ठी के बीच में रखकर गोला बना ले । उस गोले के ऊपर धतूरे के पत्ते लपेट कर सात कपरमट्टी करके, कुक्कुटपुट में हाँड़ी के सम्पुट में रखकर फूक दे । जब स्वाङ्गशीतल हो जाय तब यह ज्वराङ्कुश रस तैयार होता है । इसको मिश्री की चासनी के साथ देने से शीतज्वर शीघ्र शान्त होता है इसके ऊपर दूध भात का पथ्य है । इसमें जितने ताम्बे के पत्र लिये जाँय उनसे दूने मैंनशिल आदि चारों पदार्थ ले, अर्थात् शुद्ध किए

हुए ताम्बे के पत्र यदि आधपाव हों तो मैंनशिल आदि चारों वस्तु छटाँक २ रहें । यदि रस बनने पर ताम्र पत्र कुछ कच्चे निकलें तो फिर उनको मंदार के दूध में घुटी हुई पिट्ठी के अन्दर रखकर पूर्ववत् फूँक दे । फिर सब रस को कूट कपरछन कर रख छोड़े ।। १ ।। २ ।।

महाज्वराङ्कुशो रसः—

सूतश्च गन्धं विषमाददीत
समानमानानि समानि चापि, ।
धतूरबीजानि चतुःसमानाः
शुण्ठीकणावल्लकरञ्जसाराः ॥१॥
नैम्बूकपानीयसुभाविताना
मुद्गप्रमाणा वटिका विधेयाः ।
सर्वज्वराणां विषमत्वजानां
शीतज्वराणां च नवज्वराणाम् ॥
महाङ्कुशोऽसावनुपानयोगै-
र्ज्वरार्तजन्तूनरुजीकरोति ॥२॥

महाज्वराङ्कुश रस—

एक तोला शुद्ध पारा, एक तोला शुद्ध गन्धक, एक तोला बछनाग (अथवा सींगिया विष), तीन तोले धतूरे के बीज, एक तोला सोंठ, एक तोला पीपल, एक तोला कालीमिरच, एक तोला कंजा की गिरी, आठों चीजों में से पहिले पारद गन्धक की कज्जली करके बाकी छः चीजों को भी कूट कपरछन कर ले । फिर नींबू के रस में सब चीजों के चूर्ण को एक दिन तक घोटकर मूंग की बराबर गोलियां बना ले । एक गोली सायंकाल, एक गोली सबेरे, आदी के रस और सहद के साथ खाने से सर्व विषमज्वरों को ये गोलियां दूर कर देती हैं । (कोई ज्वर सन्ध्या की सन्ध्या, और कोई ज्वर एक दिन बीच देकर, कोई दो दिन बीच देकर, आता है सभी की विषमज्वर संज्ञा है)

जिनको इकांतरा, तिजारी, चौथैया आदि शब्दों से कहा करते हैं। पित्तज्वर में भुना हुआ जीरा, बड़ी इलायची, आमला, और मिश्री के साथ दे। कफज्वर में शहद और बहेड़े के साथ दे। बातज्वर में रेंडी (अरण्डी) के बीज की मींगी और शहद के साथ दे। दाहज्वर में कपूर और कत्था के चूर्ण में गोली को मिलाकर, चन्दन और गुरुच (गिलोय) के काढ़े के साथ दे। अथवा सर्व प्रकार के ज्वर में गुरुच, धनियाँ, नीम की छाल, लालचन्दन, पद्माखकाठ इन पांच चीजों के काढ़े में दे। अथवा कोई भी अनुपान समय पर नहीं जुट सके तो केवल ताजा पानी के साथ दे। शीतज्वर में अथवा नवज्वर में सोंठ, मिरच, पीपल, गिलोय के काढ़े, के साथ दे। आयुर्वेद में जिस जिस ज्वर की जो जो दवाइयां लिखी हैं उनके साथ देने से सभी ज्वरों को ये गोलियां तत्काल नष्ट कर देती हैं ॥ १ ॥ २ ॥

ज्वरशतघ्नी—

चन्द्रोदयो यो विषसंज्ञया वा
सिन्दूरनामा दशगन्धजारी ।
मल्लाभिधो वा ज्वरिदत्तमात्रः
शतघ्निकाकर्म करोति मङ्क्षु ॥१॥

विसूचिकाद्याश्च परेऽपि रोगाः
पलायमानाः शतशोऽनुभूताः ।
इयं शतघ्नी यदि कुण्ठिता स्यात्
नितान्तमन्तं कुरुते कृतान्तः ॥२॥

निराचरीकर्त्ति समस्तरोगान्
योगानुसारेण शतघ्निकेयम् ।
संचर्स्करीति प्रवलावलानां
वालावलानामपि कायमेषा ॥३॥

ज्वर के लिये तोप—

"षड्गुणगन्धकजारित "विषचन्द्रोदय" अथवा दशगुणगन्धक-जारित-सुवर्णसिन्दूर का बनाया हुआ "विषसुवर्णसिन्दूर", अथवा "दशगुणगन्धकजारित विषसिन्दूर" अथवा "दशगुणगन्धकजारित मल्लसिन्दूर" इन चारों में से कोई भी क्यों न हो सब का नाम "ज्वर शतघ्नी" (तोप) है, अर्थात् ज्वर के उड़ाने के लिये ये चारों प्रयोग तोप के समान हैं । इनकी खुराक एक रत्ती से दो रत्ती तक तरुण पुरुष के लिये है। सन्निपात आदि तत्काल मारक व्याधियों में इसका प्रत्यक्ष फल देखा गया है । हैजा, अतीसार आदि व्याधियाँ तो एक दो ही खुराक में जाने कहां चली जाती हैं । यदि इस तोप के छोड़ने पर भी रोगी के प्राण नहीं बचें तो उस रोगी की मृत्यु अन्य योग से टल भी नहीं सकती । कास श्वास साधारण ज्वर आदि रोगों में भी अपने अनुपान के साथ पाव रत्ती (चौथाई रत्ती) देने से तत्काल काम करती है । और जो अत्यन्त दुर्बल बाल वृद्ध अबला आदि जन इसको एक २ चावल प्रति दिन सेवन किया करें तो उनके शरीर को भी दिनोंदिन संस्कार-युक्त (नया) कर देती है । वैद्य लोगों को यह फिकिर नहीं करना चाहिये कि यह शतघ्नी कैसे बनेगी ? यद्यपि चन्द्रोदय बनाने में तो अवश्य भारी परिश्रम है क्योंकि बुभुक्षित पारद में बहुत दिन लग जाते हैं। तथापि दशगुणगन्धकजारित सिन्दूररस की तो बात ही क्या है ? शत-गुण-गन्धकजारित सिन्दूररस भी परिश्रम से साध्य हो सकता है, इस बात को गन्धकजारण प्रकरण में लिख चुका हूँ ॥१॥२॥३॥

पञ्चामृतपर्पटी—

गन्धद्विभागं रसभागमेकं
कृत्वा मसीं लोहकटाहिकायाम् ।
प्रद्राव्य पूर्वं बदरीन्धनेन
लोहाभ्रताम्राणि समानि दत्त्वा ॥१॥

रम्भादले लिम्पतु गोमयस्थे
द्वितीयपत्रेण पिधाय चापि ॥
पुनर्ददीतापि च गोमयं सा
पाञ्चामृती पर्पटिका ज्वरघ्नी ॥
कासातिसाराग्निहतीश्च हन्या-
ज्जीर्णज्वरं मेहमपीयमस्येत् ॥२॥

पञ्चामृतपर्पटी—

दो भाग गन्धक (शुद्ध किया हुआ), एक भाग शुद्ध पारद दोनों की कज्जली करके लोह की कड़ाही में डालकर मन्द २ बेर की लकड़ियों की अग्नि दे, जब कज्जली द्रुत हो जाय तब शतपुट अभ्रक, और लोहभस्म, निरुत्थ ताम्रभस्म, पारद के समान २ डालकर कलछी से मिला दे, फिर पृथ्वी में गौ का गोबर बिछाकर उसके ऊपर केले का पत्ता रखकर कड़ाही की कीचड़ सी दवा को उस केला के पत्ते पर इस तरह से लीप दे जिसमें पापड़ सा बन जाय, उसके ऊपर दूसरा केला का पत्ता ढककर गोबर बिछा दे। जब वह दवा ठंडी हो जाय तब पापड़ी को निकाल ले। इसी को पञ्चामृतपर्पटी कहते हैं। इसकी मात्रा १ रत्ती से दो रत्ती तक है। इसके सेवन करने से सन्नि-पात आदि सब प्रकार के ज्वर, खांसी, अतीसार, मन्दाग्नि, 'जीर्णज्वर, प्रमेह, मिट जाते हैं। और इनके सिवाय हैजा आदि तत्काल मारक व्याधियों में भी यह बहुत उपकारक है। परन्तु जिस प्रकार मैंने शतपुट लोह आदि की क्रिया लिखी है, उसी विधि से बनाई हुई भस्में डाली जाँय तभी इसमें इतनी उग्र शक्ति होती है, साधारण लोहभस्म, अभ्रक-भस्म आदि के डालने से तो फायदा जरूर होता है, पर इतना नहीं। और मात्रा भी दो रत्ती से चार रत्ती तक देनी पड़ती है ॥१॥२॥

शीतज्वराङ्कुशः—

शुक्तेश्च चूर्णं हरितालजश्च
तुर्यांशतुत्थोत्थित चूर्णकश्च ।

अश्वत्थवृक्षोद्भवपल्लवेभ्यः
सङ्कुट्य जातेन रसेन सर्वम् ॥१॥
कन्यारसेनापि च भावयित्वा
त्रिस्त्रिश्च संशोषवतीश्च चक्रीम्।
उपर्यधः शुक्तिजभस्ममध्ये
निधाय हण्ड्याश्च पिधाय मल्लम् ॥२॥
विधाय मुद्रामथ चुल्लिकायां
संधाय चेतश्च ददीत वह्निम्।
क्रमेण वृद्धं दिनरात्रिमेकां
पुटे गजाख्ये च पुटेत्ततोऽपि ॥३॥
कन्याद्रवेणैव करोतु भस्म
शुक्तेस्तु वैद्योहि पुटे गजाख्ये।
पुनः कुमारीस्वरसेन खल्वे
संमर्द्य संमर्द्य पुटेत् त्रिवारान् ॥४॥
शीतात्कफाद्वा जनितज्वराणां
महाङ्कुशो बुद्बुदसार्थवाही।
औष्ण्याप नोदाय पिबेत्पयोऽपि
पत्थ्यं नराणां दधिभक्तसेवा ॥५॥

शीतज्वराङ्कुश—

शुद्ध सीप का चूना (जिसको हाँड़ी में भरने के लिये इसी प्रयोग में लिखा है) एक भाग, शुद्ध हरिताल का चूर्ण एक भाग, तूतिये का चूर्ण एक भाग से चतुर्थांश, इन तीनों चीजों में पीपल के नवीन पत्तों के स्वरस की तीन भावना दे, बाद घृतकुमारी के रस की तीन भावना दे, [कोई २ वैद्य केवल मंदार के दूध ही की तीन भावना देते हैं परन्तु उसमें मंदार का दूध चार दिन के निरन्तर घोटने के योग्य होना चाहिये, यह प्रकार भी अच्छा है] सबकी एक टिकिया बनाकर खूब

सुखा ले, फिर एक हाँड़ी के गले को लोहे के तारों से बाँधकर कपरमट्टी करके सुखा ले, और उस हाँड़ी में, ऊपर नीचे सीप का चूना भरके उस टिकिया को बीच में रख दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि सीप का चूना खूब दाब दाब कर भरा जावे। उस हाँड़ी पर शराव रखकर मुद्रा कर दे, जब मुद्रा खूब सूख जाय तब मन्द आदि क्रम से एक अहोरात्र चूल्हे पर यन्त्र को रखकर अग्नि दे। बाद उस हाँड़ी को गजपुट में रखकर फूँक दे। परन्तु हाँड़ी में भरने के लिये सीप का चूना ऐसे बनावे कि, एक हाँडी में नीचे ऊपर घृतकुमारी का गूदा भर दे, बीच में सीपों को भरकर गजपुट में फूँक दे [सर्वार्थकरी भट्ठी के मुख पर रखे हुए लोहे के चूल्हे के अन्दर रखने से भी आसानी से फुँक जाता है, और जो खास कोई कार्यारम्भ कर रक्खा हो वह भी सिद्ध होता रहता है।] इस सीप की भस्म को तीन बार गजपुट देने से सीप का चूना तैयार हो जाता है। इस ज्वराङ्कुश की दो रत्ती की मात्रा बतासे में रखकर खिलाने से शीतज्वर और कफज्वर तत्काल नष्ट हो जाते हैं। दवा खाने से यदि गरमी लगे तो मिश्री डालकर गरम २ या धारोष्ण गोदुग्ध पीवे। इसमें पथ्य दही भात का है, परन्तु दही घर का जमा हुआ मीठा होना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

जयवटिका—

सूते शिलातालशिवारजांसि
समानि सर्वार्धमिते प्रमदर्थे ।
ताम्रस्य भस्मापि समस्ततुल्यं
मन्दारदुग्धेन रसेन वापि ॥ १ ॥
व्याघ्रीगुडूचीत्रिफलाग्निचव्य-
क्काथेन संमर्द्य विधाय गोलम् ।
संशोष्य दद्याद् दशमृत्पटानां
योगान् पचेत् कुक्कुटनामधेये ॥२॥

विषं कणां भर्जिततङ्कणञ्च
बलं समस्तार्धमथापि शुद्धम् ।
जैपालचूर्णञ्च तदर्धमेव
निम्बूकनीरेण च मर्दयेत ॥ ३ ॥
आर्द्राम्बुना चापि वटी विधाय
मुद्गप्रमाणा ज्वरिशर्म हेतोः ।
श्वासेषु कासेषु च वह्निमान्द्ये
चार्शःसु पाण्डौ च भगन्दरेषु ॥४॥
वहूपकुर्युर्वटिका मलानां
संशोधने तु प्रवरा मताः स्युः ।
योग्यानुपानेन समस्तरोगान्
जयन्ति शीघ्रञ्च नयन्तिशर्म ॥५॥

जयवटी- (ज्वरादिकों पर)

एक तोला शुद्ध मैंनशिल, एक तोला शुद्ध हरिताल, एक तोला शुद्ध गन्धक, डेढ़ तोला पारा, सब को मर्दन करके कज्जली करले। फिर उसमें साढ़े चार तोले ताम्रभस्म (कपरछन की हुई) डालकर मंदार के दूध के साथ (यदि दूध नहीं मिले तो मंदार के पत्तों के स्वरस के साथ) और कटेरी (भटकटैया) गुरुच, त्रिफला, चित्रक, चव्य, इनके क्वाथ के साथ दो दिन मर्दन करके गोला बना ले। फिर सुखा कर दस कपरमट्टी उस गोला के ऊपर कर दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि जब गोला के ऊपर कपरमिट्टी करने लगे तब गोला को पहले मंदार के पत्तों से ढँक दे नहीं तो गोला के मट्टी लग जाने से दवा खराब हो जावेगी। जब कपरमट्टी सूख जाय तब कुक्कुटपुट में फूँक दे। स्वाङ्गशीतल होने पर उस दवाई को तौलकर देखे। यदि सात तोले दवाई हो तो ग्यारह मासे शुद्ध बछनाभ विष, ग्यारह मासे पीपल, ग्यारह मासे भुना हुआ चौकिया सुहागा, ग्यारह मासे कालीमिरच, इन सबका कपरछन चूर्ण करके और साढ़े तीन तोले शुद्ध जमालगोटे

का चूर्ण उस सात तोले दवा में मिलाकर नींबू के रस के साथ घोट कर एक भावना दे । फिर आदी के रस के साथ घोटकर मूँग की बराबर गोलियां बनाले । एक गोली सायङ्काल, एक गोली प्रातःकाल, बतासे में रखकर या मधु के साथ देने से सर्व प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं, कफज्वर और वातज्वर में विशेष उपकारक है । और श्वास, कास, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग, भगन्दर, रोगों में इनका उपकार प्रत्यक्ष देखा गया है । और कोष्ठ की मल शुद्धि करने के लिये भी ये गोलियां एक ही चीज हैं । इनके खाने से दो तीन दस्त खुलासा हो जाते हैं ज्वर तत्काल उतर जाता है । और योग्य अनुपान से सभी रोगों में फायदा करने वाली चीज हैं ॥१॥२॥३॥४॥५॥

पित्तज्वराङ्कुशः—

द्राक्षाशिवामुस्तकरोहिणीनां
मानं समानं कृतमालरेण्वोः ।
आदाय तज्जातकषायकेण
सिन्दूरमद्याज्ज्वरपैत्तिकत्वे ॥ १ ॥

पित्तज्वराङ्कुश—

मुनक्का (दाख), बड़ी हर्ड की छाल, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास, पित्तपापड़ा, इन छओं चीजों को बराबर बराबर लेकर कूटकर दो तोले को डेढ़ पाव जल में काढ़ा करें। जब चतुर्थांश पानी रह जाय तब काढ़े को कपड़े से छानकर एक रत्ती सिन्दूररस बतासे से या मधु से खाकर ऊपर से काढ़े को पीवे । इस योग से पित्तज्वर दूर हो जाता है, और दाह भी शान्त हो जाता है । परन्तु यह सर्वत्र के लिये याद रहे कि जब काढ़ा करना हो तब मट्टी ही के पात्र में करे ॥ १ ।

पाचकावलेहः—

सेटोन्मिते निम्बुरसे प्रदद्या-
त्तदर्धशम्याकमहर्द्वयं ज्ञः ।
पटेन शुद्धेन ततः प्रगाल्य
ददीत चूर्णं दशकस्य चास्य ॥१॥

पाचक चटनी—

नींबू के एक सेर रस में आधसेर अमलतास की फलियों को कूटकर डाल दे, दो दिन तक भीगने के बाद धुले हुए स्वच्छ वस्त्र में डालकर हाथ से हिला हिला कर छान ले। यह उत्तम खटाई बन गई। इसमें आगे लिखी हुई दस चीजों के चूर्ण को कपरछन करके डाल दे ॥ १ ॥

तनुत्वचा नागर वल्ल कृष्णा
वाल्ही वयःस्था द्वयकर्षभागाः।
सिन्धूद्भवं शूलहृ कृष्ण बीजं,
श्वेतं नवं जीरकमक्षकर्षाः ॥२॥

दालचीनी, सोंठ, कालीमिरच, छोटीपीपल, हींग, छोटी अथवा बड़ी इलायची के दाने, ये छः चीज दो दो तोले ले और सेंधानोंन, कालानोंन, कालादाना, (जिसको जुलाब के काम में जमालगोटे की जगह वैद्य तथा डाक्टर लिया करते हैं, सभी शहरों में पंसारी की दूकान पर मिलता है) नवीन सफेद जीरा (जिसका दाल साग में छौंक लगाते हैं) ये चारों चीज पांच पांच तोले ले ॥ २ ॥

आज्येन भृष्टे ननु हिङ्गुजीरे
नदीरजःस्वेव च कृष्णवीजम्।
संकुट्य सर्वं पटगालितञ्च
विनीय लेहं निदधीत पात्रे ॥३॥
मन्दाग्निमालस्यमपाकरोति
करोति शुद्धिं जठरस्य पुंसाम्।
स्वादिष्ठवर्यो ननु लेहराजो
रुचिप्रदो भोजनसन्निधाने ॥४॥

परन्तु हींग और जीरे को मन्दी मन्दी आँच से घी में भून ले।

और कालेदाने को लोहे के तसला में चलनी से छानी हुई बालू में डालकर चूल्हे पर रखकर मन्द मन्द आँच दे । जब दाने खिलने लगें और "पटपट" शब्द करने लगें तब तुरन्त तसला को उतार कर चलनी में डालकर हिलावे । ऐसा करने से बालू छन कर सब निकल जायगी बीज चलनी में रह जायँगे । हींग, जीरा और कालादाना इनको सिल पर खूब पीस डाले, बाकी ऊपर लिखी सात चीजों को लोहे की खरल में कूटकर, कपरछन कर ले । सब चूर्ण को ऊपर कही हुई खटाई में मिलाने से बहुत स्वादु पाचकावलेह (पाचक चटपटी चटनी) बन जाता है । इसकी खुराक तीन मासे से एक तोले तक की है । इसके चाटने से मन्दाग्नि, आलस्य दूर हो जाते हैं । रात्री को चाटकर सोने से प्रातःकाल दस्त साफ हो जाता है । चित्त खूब प्रसन्न रहता है । भोजन में यदि रुचि नहीं हो तो दो घण्टे पहिले चाट लेने से भोजन में रुचि हो आती है । प्रायः बुखार में मुख का स्वाद बिगड़ा रहता है, इसके चाटने से वह दोष दूर हो जाता है । आज कल सभी लोगों को नमक सुलेमानी, लवणभास्कर आदि पाचक चूर्णों की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यह चटनी जिसकी जिह्वा पर लग जायगी उसको किसी चूर्ण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी ॥३॥४॥

पञ्चकर्षा यदि द्राक्षा तावानेव रसो भवेत् ।
पक्वदाडिमबीजानां स्वादुः सौम्यश्च जायते ॥५॥

यह अवलेह कुछ गरम होता है इसलिये पांच तोले दाख को नींबू के रस के साथ सिल पर पीस कपरछन कर अवलेह में डाल दे और पके हुए अनार के दानों का रस डाल दे, तो वे सब गरमी को शान्त कर स्वाद को बढ़ा देंगे (यह स्मरण रहे कि इस अवलेह को मिट्टी, पत्थर, चीनी, काँच, काष्ठ, आदि के पात्र में बनावे, अर्थात् पीतल काँसी आदि किसी धातु का संपर्क न होने दे, नहीं तो अवलेह का स्वाद बिगड़ जायगा और चाटते ही चित्त खराब हो जायगा । और जिसको नमक का अधिक अभ्यास है वह अधिक भी डाल ले ॥५॥

दाहज्वरघ्न वटी—

सेवन्त्युशीरयष्टीनां कषायोद्भावितं ज्वरी ।
स्वर्णसिन्दूरमम्भोऽपि तासां सेवेत दाहयुत् ॥१॥

दाहज्वर की गोली—

यदि रोगी दाह से और ज्वर से अत्यन्त पीड़ित हो तो गुलाब के फूल, खस, मुलहठी इनके काढ़े में भावना देकर स्वर्णसिन्दूर को बतासे, पान, मधु प्रभृति के साथ सेवन करे और जब प्यास लगे तब उसी काढ़े को या उनके फाण्ट को पीवे ॥ १ ॥

ज्वरलङ्घने युक्तिः—

पक्वाऽऽशयस्थोऽग्निरपेक्षणीयै-
र्दोषै स्त्रिभिश्चाऽऽससहायतोऽन्नम् ।
आमाऽऽशयस्थं पचतीति यात्रा
शारीरकी निर्वहते नराणाम् ॥१॥

ज्वर में लङ्घन करने में युक्ति—

जैसे चूल्हे में जलती हुई अग्नि ऊपर रखे हुए पाकपात्र को अपनी लपटों से तप्त करती हुई दाल भात आदि अनेक पाकों को सिद्ध कर देती है । परन्तु यदि चूल्हे में तेज अग्नि हो जाय तो अंदाज से जल का छींटा भी दिया जाता है या अग्नि कम जलती हो तो पंखे से वायु की सहायता भी पहुँचानी होती है और यदि अग्नि का परिमाण अल्प हो तो लकड़ी लगाकर या अङ्गारे पटक कर अग्नि पूर्ण की जाती है । तभी पाक रसीला बनता है । तैसे ही पक्वाऽऽशय में रहने वाली जठराग्नि अंदाज के वात, पित्त, कफ की सहायता लेकर पक्वाऽऽशय के उपरिभाग में स्थित आमाऽऽशय के अन्न को ठीक समय पर पकाती है, इसी से मनुष्यों की शरीर यात्रा का ठीक ठीक निर्वाह

होता है अर्थात् वात, पित्त, कफ जठराग्नि के अनुकूल रहने से ही शरीर को धारण करते हैं ॥ १ ॥

दुष्टाऽन्नवृत्तैः कुपितास्त एव
सामत्वहेतोर्विषतोपपन्नाः ।
क्षमा ज्वरायाऽग्निमपास्य तेन
पाकार्थमामस्य करोत्वभुक्तिम् ॥२॥

परन्तु मिथ्या आहार और आचार से कुपित होकर वे ही वात, पित्त, कफ जठराग्नि को दुर्बल करके जठराग्नि से नहीं पकाए हुए आम [अन्न के कच्चे रस] के सम्बन्ध से विष-रूपता को धारण करते हुए जठराग्नि को अपने स्थान से निकाल कर फेंक देते हैं; इसीलिये वह अग्नि सर्व शरीर को गरम करती हुई ज्वर रूप से प्रतीत होती है । उस आम के पकाने के लिये ज्वर में लङ्घन कराना अत्यावश्यक है । क्योंकि लङ्घन करने से जठराग्नि आम को पकाती रहेगी तो वात, पित्त, कफों के निराम हो जाने से मनुष्य नीरोग हो जायगा ॥२॥

ज्वरे प्रस्वेदः—

वराऽमृताकषायेण स्वेदनं ज्वरिणे हितम् ।
पीनसाऽङ्गव्यथाश्वासाऽनिलश्लेष्मभिराहतौ ॥१॥

ज्वर में पसीना [बफ़ारा]—

यदि ज्वर रोगी को जुकाम, सर्वाङ्गपीड़ा, श्वास, वायु, कफ जन्य भी क्लेश हो तो त्रिफला और गुरुच के काढे में गरम की हुई ईंट डाल कर प्रस्वेद देने से वे पीड़ा शान्त हो जाती हैं । परन्तु रोगी को और क्वाथ के पात्र को चारों तरफ कपड़े से ऐसा ढाँक दे जिसमें क्वाथ की ऊष्मा बाहर निकलने नहीं पावे किन्तु रोगी के ही शरीर में समा जाय ॥ १ ॥

ज्वरिभोजनम्—

शाकं हितं पर्पटकारवेल्ल-
वार्ताकनिम्बोत्थपटोलकानाम् ।
मुद्गादिसूपश्च सदाडिमःस्या-
ल्लाजा यवाग्वादिषुतण्डुलानाम् ॥१॥

ज्वर रोगी का भोजन—

ज्वर वाले पुरुष को भूख लगने पर बलाऽबल देखकर जूष–मण्ड, विलेपी [कलछी के लगने लायक पतला दरिया] यवागू (गाढा दरिया) देने के लिये चावलों की लावा (खीलों) का दे । और शाक में–पित्तपापड़ा, करेला, बैंगन, नीम के पत्ते, परवल के पत्ते या फलों का हितकारक है। दाल–मूँग, अरहर की अच्छी होती है। फल–मीठे अनार, मीठे अंगूर, मुनक्का (दाख) आदि अच्छे होते हैं। और विस्तार से भोजन का वृत्तान्त "भोजन विधि" नामक पुस्तक में लिखूँगा ॥ १ ॥

॥ इति ज्वराधिकारः ॥

अथातीसारे षड्योगाः—

समाऽहिफेनः सिन्दूरो जीर्णः षड्गुणगन्धकैः ।
मर्दितो निम्बुनीरेणाऽऽश्वतीसाराऽऽदिनाशकः ॥१॥

अतीसार पर छः योग—

एक तोला षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस (चन्द्रोदय या स्वर्णसिन्दूर हो तो और भी अच्छा) एक तोला अफीम, इन दोनों को नींबू के रस में घोटकर मूँग के समान गोलियां बनाकर रख ले, एक गोली प्रातःकाल एक गोली सायंकाल खाने से अतीसार का प्रवाह तुरन्त रुक जाता है ॥ १ ॥

बिल्वमज्जासिताऽम्भोभिर्लोहभस्म निषेवते ।
यद्येतस्यातिसारोत्था पीडा नश्यति दुर्धरा ॥२॥

दूसरा योग यह भी है कि दो रत्ती लोहभस्म को एक तोला सूखे बेल का गूदा, एक तोला मिश्री के चूर्ण के साथ खाकर छटाँक भर पानी पीले, तो भी दो तीन बार दिन भर में खाने से अतीसार दूर हो जाता है ॥ २ ॥

लोकनाथं रसं यद्वा स्वर्णपर्पटिकामपि ।
गङ्गाधरेण चूर्णेन भुङ्क्तेऽतीसारशान्तये ॥३॥

अथवा दो रत्ती लोकनाथ रस गंगाधर चूर्ण के साथ, अथवा स्वर्णपर्पटी को गंगाधर चूर्ण के साथ खाये तो अतीसार रोग नष्ट हो जाता है, अथवा केवल गंगाधर चूर्ण को ही छाछ के साथ अथवा पानी के साथ छः मासे से एक तोला तक खाया करे ॥ ३ ॥

अतीसारान्तकं यद्वा रसं संसेवते यदि ।
गोरसेन तदा तस्य पीडा जातु न जायते ॥४॥

अथवा अतीसारान्तकरस को छाछ के साथ खाया करे तो भी अतीसार रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

लोकनाथ रसः—

भागैकसूतो द्विगुणोऽत्र गन्ध-
स्तज्जां मषीं पीतवराटिकासु ।
भृत्त्वाऽथ मुद्रां कुरु टङ्कणस्य
गोमूत्रपिष्टस्य करोतु शुष्काम् ॥१॥

लोकनाथ रस की विधि—

एक छटाँक हिंगुलोत्थ पारद आध पाव गन्धक इन दोनों की कज्जली करके शोधी हुई पीली कौड़ियों में भर दे, बाद गोमूत्र में घोटे हुए शुद्ध चौकिया सुहागे की पिट्ठी से कौड़ियों के मुख को बन्द कर दे ॥१॥

कपर्दिकास्ता ननु शङ्खचूर्णे
धृताः कृताः सम्पुटगाश्च यन्त्रे।
प्रदाय मुद्रां तु पुटेद् गजाऽऽख्ये-
ऽतीसारनाशाय हि लोकनाथः ॥२॥

उन कौड़ियों की मुद्रा को सुखाकर; एक हाँड़ी में चलनी में छाना हुआ शङ्ख का चूर्ण नीचे ऊपर रखकर बीच में उन कौड़ियों को रखकर हाँड़ी पर मुद्रा कर दे। जब मुद्रा सूख जाय तब सम्पुट को गजपुट में फूँक दे, स्वाङ्गशीतल होने पर शङ्ख के चूर्ण के बीच से कौड़ियों को निकाल कर कूट कपरछन करके रख छोड़े यह लोकनाथ रस कहलाता है॥ २ ॥

स्वर्णपर्पटी—

कर्पूराद्धिङ्गुलाद् वाऽपि सूतं कर्षेत् पलद्वयम्।
हेमभस्माऽष्टमो भागः शुद्धं शुद्धोऽपि गन्धकः ॥१॥
तेषां कृत्वा मसीं कुर्य्यात् पर्पटीं क्षयनाशिनीम्।
ग्रहण्याश्चातिसारस्य वृद्धमात्रां विनाशिनीम् ॥२॥

स्वर्णपर्पटी की विधि—

गोलकयन्त्र द्वारा रसकपूर से आठ तोले पारद निकाल ले। रसकपूर नहीं हो तो हिंगुल से ही निकाल ले। इस पारद में आठ तोले शुद्ध आमलासार गन्धक, एक तोला सुवर्णभस्म इन तीनों की कज्जली कर स्वर्णपर्पटी बना ले। अर्थात् लोह की कड़ाही में कज्जली को डाल कर मंदी २ आँच दे, जब कज्जली द्रुत हो जाय तब गौ के गोबर पर केला का पत्ता रख कर उस पर कज्जली की द्रुति को पतली पतली फैला दे, और उसके ऊपर भी केले का पत्ता ढाँक कर ऊपर गोबर रख दे॥ १ ॥

दो घण्टे के बाद पापड़ के समान जमी हुई दोनों पत्तों के बीच से स्वर्णपर्पटी को निकाल ले। इसकी मात्रा दो रत्ती से शुरू करे और बढ़ाते बढ़ाते एक मासे तक दही और शहद के साथ या नागरपान के रस

और शहद के साथ देने से अतीसार, संग्रहणी, और क्षयरोग, अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

गङ्गाधर चूर्ण रसौ—

धातकीमुस्तकालिङ्गमोचस्त्रावकपीतनैः ।
सलोध्रैरतिसारघ्नश्चूर्णो गङ्गाधरो लघुः ॥१॥

गङ्गाधर चूर्ण और रस की विधि—

धाय के फूल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, मोचरस, बेल का गूदा, पठानीलोध, इन छः चीजों का चूर्ण लघुगङ्गाधर नाम से प्रसिद्ध है ॥१॥

धातकी कुटजस्यत्वङ् मोचस्त्रावकपीतनौ ।
लोध्रमुस्तौ बलीशौ च रसो गङ्गाधरः स्मृतः ॥२॥

धाय के फूल, कुड़ा की छाल, मोचरस, बेल का गूदा, पठानीलोध, शुद्ध गन्धक, हिंगुलोत्थ पारद, ये समान समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर ले बाद उनके चूर्ण को मिला दे। यह लघु-गङ्गाधर रस नाम से प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

उदश्वित्पानतो मात्रामेतयोर्बलकाङ्क्षिणीम् ।
गृह्णीयात् केवलां वाऽपि पथ्यतक्रोदनाऽन्विताम् ॥३॥

रोग के बल और रोगी के बल के अनुसार इन दोनों गङ्गाधरों की छः मासे से दो तोले तक की मात्रा छाछ के साथ दी जाती है। और इनके अनुपान से लोकनाथ रस देने से अतीसार में तत्काल फायदा होता है। इसमें पथ्य मठा भात का दिया जाता है ॥ ३ ॥

अतीसारान्तको रसः—

सुवर्णसिन्दूररसेन मर्दिता
कर्पूरकृष्टेन रसेन निर्म्मिता ।
सूतार्द्धकार्त्तस्वरभस्मपर्पटी
रुणद्ध्यतीसारप्रवाहमन्तकम् ॥१॥

अतीसारान्तक रस की विधि—

षड्गुण गन्धक जारित सुवर्णसिन्दूर के समान भाग, और रस-कपूर से निकाले हुए पारद से बनाई हुई, तथा पारद से आधी सुवर्ण-भस्म के साथ ढाली हुई, सुवर्णपर्पटी कैसा ही भारी अतीसार का प्रवाह क्यों न हो तुरन्त रोक देती है। सुवर्णपर्पटी बनाने के लिये सुवर्णभस्म लेने से अधिक गुण होता है, पारद में सुवर्ण घोटकर पर्पटी बनाने से अल्प गुण होता है ॥ १ ॥

अथ सङ्ग्रहणी चिकित्सा—

नारायणेन चूर्णेन सेवेतोक्तरसान् यदि।
ग्रहणीप्रमुखान् रोगान् नैव पश्यति दुर्धरान् ॥१॥

सङ्ग्रहणी रोग की चिकित्सा—

अतीसार पर जो जो सिन्दूरबटी आदि रस लिख चुका हूँ उनको नारायण चूर्ण के साथ सेवन करे तो संग्रहणी आदि बड़े कठिन जितने कोष्ट के विकार हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

लाईचूर्णेन सेवतातीसारस्यान्तकं रसम्।
बुभुक्षुस्तत्र पीयेत तक्रं गव्यं पयोऽथवा ॥२॥

अथवा लाई चूर्ण के साथ अतीसारान्तक रस की दो रत्ती से एक मासे तक मात्रा का सेवन करे और भूख लगने पर यदि केवल गौ की छाछ या गौ का दूध पीवे तो संग्रहणी अवश्य नष्ट हो।

नारायण चूर्ण और लाई चूर्ण प्रसिद्ध हैं उनकी यह विधि है—

हिंगुल का पारा, शुद्ध आमलासार गन्धक, अभ्रकभस्म, भुनी हुई हींग, इलायची, तज, पत्रज, जायफल, लवङ्ग, कूठ, जीरा, कुलींजन, सोंठ, मिरच, पीपल, मोचरस बेल का गूदा, सौंफ, कालानोंन, सेंधानोंन, सांभरनोंन, कचियानोंन, खारीनोंन समुद्रनोंन (पांगानोंन) ये सब छः छः मासे ले। पारे गन्धक की कज्जली करके इन औषधियों के चूर्ण को भी मिला दे और सब

चूर्ण की बराबर मन्दी आँच से भुनी हुई भांग । इसको लाईचूर्ण कहते हैं । यह केवल भी अतीसार संग्रहणी प्रवाहिका को उत्तम है ॥ २ ॥

चित्रक, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, सफेद जीरा, हाऊबेर, वच, अजवाइन, पीपलामूल, सौंफ, बनतुलसी, अजमोद, कचूर, धनिया, बायविड़ङ्ग, मँगरेला, सनाय की पत्ती, पोहकरमूल, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानोंन, साँभरनोंन, कालानोंन, खारीनोंन, पांगानोंन, कूठ इन चीजों को दो दो तोले ले । इन्द्रायन की जड़ (अनारनी की जड़) चार तोले, निशोथ छः तोले, शुद्ध किया जमालगोटा छः तोले, दण्डाथूहर का गूदा आठ तोले, इन सबों को कूट छानकर रख ले यह नारायणचूर्ण कहलाता है । यह बहुत उत्तम चीज है वैद्य लोगों के यहाँ सदा सङ्गृहीत रहना चाहिये । छः मासे से दो तोले तक इसकी मात्रा है । इसके सेवन करने से कोष्ठ शुद्धि उत्तम होती है और सङ्ग्रहणी, अतीसार, पाण्डुरोग, हृद्रोग, श्वास, कास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कुष्ठ, आध्मान, अम्लपित्त, आदि अनेक रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथाऽर्शःकुठारो रसः—

पारदाद् द्विगुणो गन्धस्तत्तुल्यौ व्योमतीक्ष्णकौ ।
विल्वमज्जाशिवाऽग्नित्रिकटुदन्त्यो रसोन्मिताः ॥१॥

अर्शकुठार रस—

एक छटाँक शुद्ध पारद, आध पाव गन्धक, आध आध पाव अभ्रक-भस्म और फोलाद लोहभस्म व बेलगिरि, बड़ी हरड़े, चित्रक, सोंठ, मिरच, पीपल, शुद्ध जमालगोटा एक एक छटाँक ॥ १ ॥

टङ्कणं सैन्धवं यावक्षारा भागाश्च पञ्चशः ।
द्वात्रिंशद्भागगोमूत्रं तावद्भागा स्नुही भवेत् ॥२॥

सुहागे की खील (लावा), सेंधानोंन, जवाखार पाँच पाँच छटाँक । बत्तीस छटाँक गोमूत्र, बत्तीस छटाँक थूहर का दूध, इन औषधियों में कूटने योग्य औषधियों को कूटकर कपरछन कर ले ॥२॥

पक्त्वा मन्दाग्निना सर्वं द्विमाषप्रमिता वटी।
प्रत्यहं सेवनीया स्यादर्शोवनकुठारिका ॥ ३ ॥

सब चीजों को लोहे की कड़ाही में मन्दी मन्दी आँच से पकावे। जब गाढ़ा हो जाय तब सबको खरल में घोटकर दो दो मासे की गोलियाँ बना ले। एक गोली प्रातःकाल रोज रोज गरम जल के साथ सेवन किया करे तो बवासीर के मस्से नष्ट हो जायँ ॥ ३ ॥

अर्शो लेपः—

खरनादोक्ततैलेन लेपयेद् गुदजाङ्कुरान्।
वलीर्न दूषयेदेतदङ्कुरांश्च व्यपोहति ॥१॥

बवासीर के मस्सों पर लेप—

खरनाद महर्षि का बनाया हुआ शार्ङ्गधर लिखित कासीस आदि तैल भी बवासीर के मस्सों पर लगाने के लिये बहुत उत्तम है। जो गुदा के अंदर की वलि में मस्से हों तो अङ्गुली से या पिचकारी से तेल पहुँचा दे। यदि मस्से बाहर दीखते हों तो उन पर तेल चुपड़ दे।

उस तेल की विधि इस प्रकार लिखी है—हीराकसीस, कलयारी, कूठ, सोंठ, पीपल, सेंधानोंन, मैंनशिल, कनेर की जड़, बायविड़ङ्ग, चित्रक, अरडूसा, जमालगोटे की जड़ (इसके अभाव में जमालगोटे के बीज), कड़ूई तोरई के बीज, चौंक हरिताल, इतनी चीजों को एक एक तोले लेकर कपरछन कर ले। बाद एक सेर तिल के तेल को खूब पकाकर ठंढा कर ले, फिर इस पके हुए तेल में ऊपर लिखी हुई चीजों के चूर्ण को डालकर आध पाव थूहर का दूध, आध पाव मन्दार का दूध, चार सेर गोमूत्र भी डालकर सब चीजों को मन्दी मन्दी आँच से पकावे। जब गोमूत्र आदि सब जल जाँय तब कड़ाही को चूल्हे से उतार कर ठंढी कर दे। इस तेल को कपड़े में छान कर चिकने पात्र में या शीशियों में भरकर रख छोड़े। इस तेल के लगाने से बवासीर के मस्से नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

अर्शश्छेदी लेपः—

घृते पले वा प्रतिसारणीयं
कर्षप्रमाणं परिघर्षणीयम् ।
लिप्त्वाऽङ्कुरास्तेन प्रधूपनीयाः
कर्पूरयुक्ताऽऽमलकैश्च रात्रौ ॥ १ ॥

मस्सों पर दूसरा लेप—

परिभाषा प्रकरण में कहा हुआ प्रतिसारणीयक्षार एक तोला, चार तोले गौ का घृत, इन दोनों को खरल में घोट कर एक जीव कर ले। (घी के साथ क्षार को घोटने का यह अभिप्राय है कि केवल क्षार के प्रयोग को रोगी सह नहीं सकेगा और पाँच ही मिनट में सब मस्सों के गल कर गिर जाने से घाव भी हो जायगा, इसलिये घृत में घोटकर प्रतिसारणीयक्षार के प्रयोग करने से पाँच सात दिन की देर तो होगी परन्तु रोगी को कष्ट नहीं होगा) इस क्षार मिश्रित घृत को मस्सों पर थोड़ा लगाकर, छः मासे कपूर आध पाव आँवला इन दोनों को पुरवा में भरी हुई आँच के ऊपर डाल कर मस्सों पर धूनी दे, और चारों तरफ से एक चादर इस प्रकार ढाँक दे कि जिसमें धूम बाहर न जाने पावे। इस प्रकार सोते समय रात्रि को रोज धूनी दिया करे ॥ १ ॥

विष्टम्भविध्वंसविधौ तु चूर्णं
नारायणं प्रातरथाऽऽश्यमेव ।
रात्रौ तु चन्द्रोदय एव सेव्यो
गुदाङ्कुरास्तेन पतन्ति मूलात् ॥ २ ॥

परन्तु बवासीर रोग में दस्त की कब्जियत कभी नहीं होनी चाहिये, उसका यह उपाय है कि प्रातःकाल एक तोला के अंदाज नारायण चूर्ण जल के साथ खाया करे और रात्रि को सोते समय एक रत्ती चन्द्रोदय या षड्गुण गन्धकजारित स्वर्णसिन्दूर अथवा षड्गुण गन्धकजारित

सिन्दूररस खाया करे तो बवासीर के मस्से काले पड़ कर स्वयं गिर जायँगे और शरीर में अशक्ति भी नहीं होने पावेगी ॥ २ ॥

अथ बुभुक्षुवल्लभारसः—

सूतगन्धकसिन्दूरशङ्खशुक्तिवराटिकाः ।
तुवरी टङ्कणं फुल्ले पञ्चकोलाश्च तत्समाः ॥१॥

भूख लगाने वाले रस—

एक तोला पारद, एक तोला गन्धक इन दोनों की कज्जली, एक तोला षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस, एक तोला शङ्ख की भस्म, एक तोला सीप की भस्म, एक तोला पीली कौड़ी की भस्म, एक तोला फूली हुई फिटकिरी, एक तोला फूला हुआ चौकिया सुहागा, और आठ तोले कपरछन किया हुआ पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, इन पांच चीजों का चूर्ण ॥ १ ॥

वीजपूराम्बुना कृत्वा वटीः सेवेत प्रत्यहम् ।
बुभुक्षार्थी मिताऽऽहारैरजीर्णै नाऽभिभूयते ॥२॥

सबको बिजौरे नींबू के रस में अथवा कागजी नींबू के रस में घोटकर चने की बराबर गोलियाँ बना ले। एक एक गोली सायंकाल प्रातःकाल भोजनोत्तर व मध्याह्नकाल खाया करे और जितना पचे उतना अन्न खाया करे तो अजीर्ण रोग भी नष्ट हो, और समय समय पर भूख लगा करे ॥ २ ॥

यद्वा भल्लाततैलेन गालितं परिवापितम् ।
वीजपूराऽप्सु गन्धैकं लिह्यात् क्षौद्रेण भुक्तये ॥३॥

अथवा भिलावें के तेल में गन्धक को मन्द मन्दाग्नि से गलाकर बिजौरे नींबू के रस में ठंढी कर दे। इस प्रकार शुद्ध की हुई आमलासार गन्धक को तीन मासे से छः मासे तक शहद के साथ चाटने से भी अजीर्ण रोग नष्ट हो जाता है। परन्तु शुद्ध की हुई गन्धक को गुलाबजल के साथ या अनारदाने के रस के साथ दो पहर तक घोट

कर खूब बारीक कर ले, क्योंकि मोटी गन्धक पूर्ण गुण नहीं करती । इसी प्रकार गन्धकवटी आदि प्रयोगों में जहाँपर गन्धक डालने की आवश्यकता हो उन प्रयोगों में इसी प्रकार गन्धक को घोटकर डाले ॥३॥

ईश्वरानुगृहीतश्चेच्छतगन्धेन रञ्जितम् ।
स्वर्णसिन्दूरमेवाऽद्यादजीर्णादिरुजाऽपहम् ॥४॥

अथवा यदि परमेश्वर की दी हुई विभूति घर में हो तो नलिका-डमरूयन्त्र द्वारा शतगुणगन्धकजारित स्वर्णसिन्दूर बनवा कर अपने घर में रख छोड़े । एक रत्ती से दो रत्ती तक बलाबल देखकर पान मे, मलाई में, मक्खन में या शहद में खाया करे तो अजीर्ण आदि कोई रोग पास नहीं खड़े रह सकते ॥ ४ ॥

गन्धकवटी:—

वराऽग्निरम्भाचणकाऽर्कजातं
क्षारं च पुष्पं नवसादरस्य ।
सुधाऽम्बुघृष्टं पुटितं वितस्तौ
पुटे समानं पटुपञ्चकं च ॥१॥
तदर्धगन्धं च चतुर्गुणाश्च
व्योषाग्निसंभर्जित जीरबाह्लीः ।
घृष्ट्वाज्यभृष्टे लशुनेऽम्लनीरे
वटीःकरोत्वग्निमयीरजीर्णे ॥२॥

गन्धक वटी—

त्रिफला, चित्रक, केले की जड़ चना के क्षुपक (वृक्ष), मन्दार का पञ्चाङ्ग, इनके पृथक् पृथक् क्षार बना ले, जैसा कि परिभाषाप्रकरण में लिख चुका हूँ । और नवसादर को डमरूयन्त्र में रखकर दो पहर की अग्नि से उसका फूल उड़ा ले । इन सब क्षारों के समान समान भाग लेकर प्रतिसारणीयक्षार के साथ घोटकर हँड़िया के सम्पुट में रखकर

कुक्कुटपुट में फूँक दे तो अपूर्व क्षार बन जायगा। इस क्षार के समान पांचो नमक [सेंधानोंन, कालानोंन, साम्हरनोंन, खारीनोंन समुद्रनोंन] डालकर और कुल चीजों से आधी शुद्ध गन्धक डालकर बिजौरे नींबू के रस के साथ अथवा कागजी नींबू के रस के साथ घोटे। बाद सोंठ, मिरच, पीपल, चित्रक, घी में भुनी हुई हींग, और घी में भुना हुआ सफेद जीरा, ये सब औषधी गन्धक से चतुर्गुण लेकर अमलवेत के काथ के साथ, और घी में छौंके हुए लशुन के रस के साथ, घोट कर गोलियाँ बना ले। ये गोलियाँ अजीर्ण, अतीसार, हैजा, सङ्ग्रहणी, आदि अनेक रोगों को नष्ट करने वाली हैं और बहुत स्वादिष्ट हैं ॥ १ ॥ २ ॥

भोजनाऽन्तेऽवलेहः—

कटुत्रयोग्राः सुरसेन्द्रपुष्पं
जीरद्वयं बाह्लि अकल्लकश्च ।
समाःसमे स्तः पटुनी सिता च
रसाधिका द्वीपभवाऽऽर्द्रकंच ॥१॥

भोजन के अन्त में चाटने योग्य चटनी—

सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, अजमोद, दालचीनी, लवङ्ग, सफेद जीरा, कालाजीरा, ❀ हींग, अकरकरा, इन सब चीजों को एक एक तोला ले, परन्तु दोनों जीरे और हींग इन चीजों को अलग अलग थोड़े से घी में मन्दी मन्दी आँच से भूँज ले, बाद वजन करे। और ग्यारह तोले सेंधानोंन, ग्यारह तोले कालानोंन, ग्यारह तोले मिश्री, इन सब चीजों को कूटकर कपड़े में या महीन तारों की चलनी में छान ले, और ग्यारह तोले किसमिस, ग्यारह तोले गुठली निकाले हुए छुहाड़े, ग्यारह तोले आदी के टुकड़े ॥ १ ॥

❀ कालाजीरा कडुआ भी होता है उसको नहीं लेना, नहीं तो चटनी का स्वाद कडुआ पड़ जायगा।

निमज्जनार्हं खलु निम्बुनीरं
निधाय पात्रे समुपेक्ष्य पक्षम् ।
सेव्योऽवलेह्यो यदि भोजनाऽन्ते
भुक्तिर्जरामेति यथाऽन्नकालम् ॥२॥

इन सब चीजों को घी के चिकने बर्तन में या चीनी, पत्थर, काँच के पात्र में डालकर नींबू का रस इतना भर दे कि जिसमें सब चीज डूब जाँय । बाद लकड़ी से सब चूर्ण को मिलाकर बर्त्तन को ढाँककर पन्द्रह दिन तक छोड़ दे । पन्द्रह दिन के बाद इस चटनी में से थोड़ी २ भोजन के बाद खाया करे तो चित्त खूब प्रसन्न रहे, और समय समय पर भूख लगती रहे, अजीर्ण रोग की शिकायत कभी नहीं हो, यह बहुत स्वादिष्ट चटनी बनेगी ॥ २ ॥

अथ कृमिकालकूटो रसः—

सूतेन्द्रगन्धाऽभ्रकलोहभस्म वर्धिष्णुमात्रं प्रथमाद् द्वितीयं
विषं रसेन्द्रेण समं विडङ्गं समस्ततुल्यं कूटजत्वगर्धा ।
संमर्दितोऽयं क्रिमिकालकूटः कर्षाऽर्द्धमात्रः क्रमिपीडिताय १

क्रमिकालकूट रस—

हिङ्गुलोत्थ पारद एक तोला, शोधित आमलासार गन्धक दो तोले, अभ्रकभस्म तीन तोले, लोहभस्म चार तोले, शुद्ध किया हुआ बछनाभ विष एक तोला, बायविड़ङ्ग पांच तोले, कुड़ा की छाल ढाई तोले, इन चीजों में से प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करके बाद अभ्रकभस्म और लोहभस्म को भी डालकर खूब घोटे । बाद सब चीजों को कूट कपरछन करके इस कज्जली में डालकर मर्दन करे । जब सब चीज मिल जाँय तब शीशी में भरकर रख छोड़े, यह क्रमिरोग के नाश करने के लिये कालकूट के समान है । इसकी मात्रा छः मासे तक की है । शहद के साथ या गरम पानी के साथ दे सकते हैं ॥ १ ॥

क्रिमिघ्नं चूर्णम्—

पालाशबीजं कुटजत्वचा च समे विडङ्गं ह्युभयोः समानम्।
चूर्णंक्रिमिघ्नं पलपादमात्रं कदुष्णतोयेन निषेवणीयम् ॥१॥

क्रमि रोग का नाशक चूर्ण—

ढाक के बीज एक छटाँक, कुड़ा की छाल एक छटाँक, बायविड़ङ्ग आध पाव, इन तीनों को कूट छान कर रख छोड़े। इसकी मात्रा एक तोले की है, शौचक्रिया के बाद गरम जल के साथ सेवन करने से पांच चार दिन में ही उदर के कीड़े सर्व नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

जन्तुघ्नं केवलं यद्वा प्रातः सेवेत शुद्धिमान्।
तप्तकोष्णेन तोयेन जन्तुरोगापनुत्तये ॥ २ ॥

अथवा शौचक्रिया के बाद एक तोला केवल बायविड़ङ्ग का चूर्ण ही फाँककर आध पाव गरम जल पी लिया करे तौ भी क्रमि रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

अथ पाण्डुकथाशेषो रसः—

तुल्यताम्राभ्रलोहानां वस्त्रपूतेषु भस्मसु।
तुल्यहारिद्रचूर्णेषु गोमूत्रं षड्गुणं पचेत् ॥ १ ॥

पाण्डुकथाशेषरस की विधि—

तूतिया, तांबा, अभ्रक, लोह, इन चारों चीजों की कपड़छन की हुई दो दो तोले भस्मों में आठ तोले हल्दी का चूर्ण मिलाकर सवा सेर गोमूत्र में मन्दी मन्दी आंच से लोह की कड़ाही में पकावे ॥ १ ॥

हंसमण्डूरतुल्यं तद् गन्धतक्रेण चेद्भजेत्।
पाण्डुर्हलीमकं चापि कथामात्रेण शिष्यते ॥ २ ॥

जब गोमूत्र सूख जाय तब इन भस्मों की बराबर (१६ तोले) हंसमण्डूर मिलाकर कपरछन करले। (हंसमण्डूर की विधि लिख चुका

हूँ ।) इसकी मात्रा तीन मासे से छः मासे तक गौ की छाछ के साथ सेवन करे तो पाण्डुरोग और हलीमक रोग नष्ट हों ॥ २ ॥

अथ श्वासकासाऽधिकारः ।

शृङ्गाराऽभ्रकम्—

कृष्णाऽभ्रभस्माऽस्तुपलं हिमांशु-
जातीफलत्वक्कणिकाऽम्बुमांस्यः ।
तालीसपत्रं गजपिप्पलीन्द्र-
पुष्पं वरा पत्रजराजपुष्पौ ॥ १ ॥
कटुत्रयं चोचमथाऽपि धात्री
शाणार्द्धशाणार्द्धमितं ददातु ।
शाणद्वयं जातिफलं तथैला
कोलार्द्धकोलौ रसगन्धकौ च ॥ २ ॥

शृङ्गाराभ्रक की विधि—

कृष्ण वज्राभ्रक की भस्म आठ तोले, कपूर, जावित्री, पीपल, नेत्रवाला, जटामासी, तालीसपत्र, गजपीपल, लवङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आमला, तेजपात, नागकेसर, सोंठ, मिरच, पीपल, तज, धाय के फूल, ये सब औषधि डेढ़ २ मासे और जायफल, छोटी इलायची के दाने, छः छः मासे । तीन मासे पारद छः मासे गन्धक इन दोनों की कज्जली ॥ १–२ ॥

सर्वस्य चूर्णस्य वटीर्विधाय
कलायमानाः कलिभूरुहाऽद्भिः ।
आर्द्राम्बुताम्बूलरसेन सेव्याः
प्रातर्विशुद्धेन मिताश्चतस्रः ॥३॥

इन सब चीजों के चूर्ण को कपरछन करके बहेड़े के क्काथ के

साथ मटर समान गोलियाँ बनाले । प्रातःकाल शौच क्रिया से निपट कर चार गोली पान और आदी के रस के साथ खाया करे ॥ ३ ॥

शृङ्गारमभ्रं निकरोति रोगान्
कासाग्निमान्द्यज्वरशूलशोथान् ।
श्वासप्रमेहोदरनेत्रजातान्
मेदोऽम्लपित्तास्रतृडर्त्तिपाण्डून् ॥४॥
छर्द्याऽऽमगुल्मक्षयकोष्ठदोषान्
प्लीहार्त्तिदोषाऽमृतसम्भवांश्च ।
बल्यश्च वृष्यं निखिलार्त्तिहन्तृ
वर्ज्याऽम्लशाकं घृतदुग्धसेवम् ॥५॥

इस शृङ्गाराभ्रक के सेवन करने से खाँसी, मन्दाग्नि, ज्वर, उदरशूल, सूजन, श्वांस, प्रमेह, उदररोग, नेत्रविकार, वृथापुष्टि, अम्लपित्त, रक्तपित्त, प्यास, पाण्डुरोग, छर्दी (वमन), आम, गुल्म, क्षय, और कुष्ठ के विकार, प्लीहा, वात, पित्त, कफ का प्रकोप, विषजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। और यह शृङ्गाराभ्रक बलकारी है। रतिशक्ति बढाने वाली है। और इसके अतिरिक्त सभी रोगों में देने योग्य है। यदि इसमें दो तोले चन्द्रोदय या चार तोले स्वर्णसिन्दूर और दिया जाय तो लिखे हुए रोग बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन करने वाले पुरुष को चाहिये कि शाक खटाई कुछ नहीं खाय किन्तु दूध घृत आदि के पदार्थ यथेच्छ सेवन करे ॥ ४-५ ॥

श्वासकासहरः कल्कः—

पिप्पली मरिचं शुण्ठी सममानाश्चतुर्गुणाः ।
दाडिमीफलजात्वक्स्यात् प्राचीनो द्विगुणो गुडः॥१॥
तत्कल्कं दिवसे द्वित्रान् वारान् भुञ्जीत कासवान् ।
श्वासवानुष्णतोयेन श्वासकासाऽपनुत्तये ॥२॥

श्वासकास का नाशक कल्क—

एक तोला पीपल, एक तोला कालीमिरच, एक तोला सोंठ, चार तोले अनार के फल की छाल, आठ तोले तीन वर्ष का पुराना गुड़, पहिली चार चीजों को कूट छानकर गुड़ में खूब मिलाकर रख छोड़े इसमें से छः मासे से एक तोला तक की खुराक दिन में दो तीन बार गरम जल के साथ या वैसे ही खाया करे तो पाँच चार दिन में ही खाँसी तो तुरन्त नष्ट हो जाती है, और श्वास भी आठ दस दिन में दूर हो जाता है ॥ १-२ ॥

त्रिबङ्गभस्म विधिः—

जसदं बङ्गनागौच समसूतेन मेलयेत् ।
घृष्ट्वा निम्ब्वम्बुना तालं गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥१॥

त्रिबङ्गभस्म की विधि—

पाँच तोले जस्ता, पाँच तोले राँगा, पाँच तोले शीशा, इन तीनों को गलाकर पन्द्रह तोले हिङ्गुलोत्थ पारद को मिला दे। इन चारों चीजों की पीठी को नींबू के रस के साथ घोटकर पानी से धो डाले। इस पिट्ठी में कपरछन की हुई पन्द्रह तोले तबकिया हरिताल और पन्द्रह तोले गन्धक डालकर कज्जली कर ले ॥ १ ॥

खट्वाङ्गनलिकायन्त्रे मन्दादिक्रमवह्निना ।
धूमनिर्गमनस्याऽन्ते पक्त्वा शीतं समुद्धरेत् ॥२॥

इस कज्जली को नलिकाडमरुयन्त्र में रखकर मन्दमध्यादि क्रम से दो दिन तक आँच दे। जब नली से धूम निकलना बन्द हो जाय, तब स्वाङ्गशीतल कर दे ॥ २ ॥

नलीस्थं तालसिन्दूरं त्रिबङ्गं तलसंस्थितम् ।
सङ्गृहीतं पृथग् वाऽपि वासाक्षौद्रेण सेवताम् ॥३॥

यन्त्र के ठंडे हो जाने पर नली के चारों तरफ तालसिन्दूर मिलेगा, और नीचे की हाँड़ी में त्रिबङ्गभस्म मिलेगी। तालसिन्दूर

और त्रिबङ्गभस्म इन दोनों को मिलाकर घोटकर सेवन करे, अथवा केवल त्रिबङ्गभस्म सेवन करे। इसका अनुपान अरडूसा के क्वाथ को ठंडा करके छः मासे शहद डालकर सेवन करते हैं। यदि क्वाथ करने में परिश्रम मालूम हो तो तीन मासे चूर्ण ही ले। इस रस की मात्रा एक रत्ती से चार रत्ती तक देते हैं। अरडूसा के साथ प्रयोग करने से बहुत शीघ्र फल होता है क्योंकि "वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च रक्तपित्ती क्षयीरोगी किमर्थमवसीदति ?" यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

कासः श्वासः क्षयो रक्तपित्तं कुष्ठं प्रमेहकः।
आबल्यं वह्निमान्द्यं च मुक्त्वा गच्छन्ति रोगिणम्॥४॥

त्रिबङ्ग के सेवन करने से खाँसी, श्वास (दमा), क्षयरोग, रक्तपित्त; कुष्ठ, प्रमेह, दुर्बलता, मन्दाग्नि, नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

तारस्य जसदस्थाने योजनेनाऽपि सिध्यति।
त्रिबङ्गाऽऽख्यो रसस्तस्य बलीयांसो गुणास्ततः॥५॥

इस त्रिबङ्ग के बनाने के लिये जस्ते की जगह पाँच तोले शुद्ध की हुई चाँदी को डालने से भी पूर्वोक्त विधि से त्रिबङ्गभस्म तैयार हो जाती है। परंतु पूर्व त्रिबङ्ग की अपेक्षा चाँदी की त्रिबङ्ग में प्रबल गुण होते हैं ॥ ५ ॥

वमन विधिः—

यष्टिकामदनक्वाथे भावितं मदनं रजः।
पिबेत्तद्वारिणा वम्य आपित्तपरिदर्शनम्॥१॥

वमन की विधि—

मुलहटी और मैंनफल के क्वाथ में मैंनफल की गरी को घोटकर सुखा ले। फिर दो तोले मुलहटी और पाँच तोले मैंनफल में एक सेर पानी डालकर पकावे जब आधा पानी रह जाय, तब उसको कपड़े में छानकर रोगी का बलाबल देख कर एक तोले से चार तोले तक

मैनफल के चूर्ण को फाँक कर उक्त काथ द्वारा निगल जाय। ऐसा करने से आठ दस कय (उलटी) खुलकर होंगी। यदि वमन में पीला पीला पित्त निकलता हुआ बन्द नहीं हो तो एक दिन का अन्तर देकर फिर वमन करावे ॥ १ ॥

बलासे वान्तिनिष्क्रान्ते कासरोगी सुखं व्रजेत् ।
त्रिबङ्गे तत्र दत्ते तु कासःश्वासो न शिष्यते ॥ २ ॥

वमन के होने से सम्पूर्ण दुष्ट कफ निकल जायगा तो रोगी को सुख प्राप्त होगा। इसके बाद त्रिबङ्ग का प्रयोग करने से श्वास कास जड़ से निकल जायँगे ॥ २ ॥

श्वासकासारिः प्रयोगः—

व्याघ्रीचूर्णमधुभ्याश्चेज्ज्वरशूलेभकेशरी ।
सेवितस्सन्ध्ययोर्येन कासःश्वासोऽस्य न प्रभुः ॥१॥

श्वासकासारि प्रयोग—

भटकटैया का चूर्ण छः मासे, शहद एक तोला, ताम्रभस्म प्रकरण में लिखा हुआ ज्वरशूलगजकेशरी एक रत्ती, प्रातःकाल व सायङ्काल चाटने से श्वासकास कुछ असर नहीं कर सकते ॥ १ ॥

शिला बालासकी यस्य वक्षःस्था नापसर्पति ।
ओषधिः प्रथमं तस्य ब्रह्मणो दन्तधावनम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्य की छाती के अन्दर कफ की शिला किसी प्रयोग से नहीं हटती हो वह मनुष्य एक हाथ लम्बी ब्रह्मदतौन को गले द्वारा घुसा कर जैसे बन्दूक में गज ठोकते हैं उस प्रकार उसे चार पाँच बार थोड़ा थोड़ा निकाले तथा घुसावे। बाद सम्पूर्ण को बाहर निकाल कर हाथ से पोंछ डाले तो कफ के छीचरे के छीचरे उस दांतुन के ऊपर से निकलेंगे। दूसरे दिन भी इसी प्रकार गले द्वारा बार बार घुसाकर निकाले। ऐसे आठ दस दिन करने से वक्षःस्थल साफ हो

जाता है। खाँसी के मारे मेरा गला ऐसा बैठ गया था कि जोर से बोलने पर भी छात्रगण बहुत कान लगाने से सुनते थे, तब मैं इसी प्रयोग से अच्छा हुआ था। ब्रह्म दांतुन प्रसिद्ध चीज है। जिस प्रकार घोड़े के मारने की चाबुक बनती है; ठीक उसी प्रकार सूत की बनाई जाती है। जब वह लकड़ी के समान कठिन बनकर तैयार हो, तब इसके ऊपर आँच पर टिघला हुआ मोम लपेट दिया करते हैं। इससे वह बहुत चिकनी हो जाती है, और नाभि तक पहुँचने से भी कुछ क्लेश नहीं मालूम होता। जब तक दातुन करे तब तक केवल घी चीनी के साथ भात खाया जाता है। वक्षःस्थल में कुछ दर्द मालूम होता है, पर कुछ फिकिर की बात नहीं। दो तीन दिन में स्वयं शान्त हो जाता है। यह हठयोग का प्रयोग है ॥ २ ॥

ततोऽस्मिन् केवलो व्यघ्रीयोगोपि क्षौद्रमिश्रितः।
क्षमते जर्जरीकर्तुं श्वासं कासञ्च निश्चितम् ॥ ३ ॥

इसके करने से जब वक्षःस्थल साफ हो जाय तब केवल भटकटैया (कटेरी) का चूर्ण और शहद दोनों को चार पाँच दिन तक चाटने से, या कटेरी के क्वाथ में शहद डालकर पीने से, जरूर श्वासकास मिट जाते हैं ॥ ३ ॥

रक्तपित्ताऽन्तको रसः—

सूतद्विभागे वलिमाक्षिके च
शिलाजमेतत्त्रयतुल्यमस्य, ।
तुल्या गुडूची हिमधान्यधात्री
द्राक्षा किरातेन्द्रयवद्रुमत्वक् ॥ १ ॥

रक्तपित्तान्तक रस—

एक तोला पारद, दो तोला गन्धक, दो तोला स्वर्णमाक्षिक की भस्म इन तीनों की कज्जली करके तीन तोले शुद्ध शिलाजीत को

मिला दे । बाद एक तोला गुरुच, एक तोला मलयगिरि चन्दन का चूर्ण, एक तोला धनिया, एक तोला दाख, एक तोला चिरायता, एक तोला कुड़ा की छाल ॥ १ ॥

वासारसोद्भावितशुष्कपिष्टं
नीतं सितायष्टिमधुप्रमाणम् ।
धारोष्णदुग्धेन निषेवणीयम्
पित्ताऽस्त्ररोगं नयतेऽन्तमेतत् ॥ २ ॥

इन चीजों के कपरछन किये हुए चूर्ण में उस कज्जली को मिलाकर अरडूसे के रस की भावना दे जब रस सूख जाय तब सब चूर्ण के समान भाग (सोलह तोले) मिश्री, सोलह तोले मुलहठी का चूर्ण, सोलह तोले शहद, इस चौसठ तोले पदार्थ को मिलाकर किसी काँच के पात्र में रख छोड़े । इस रस का नाम रक्तपित्तान्तक है । इसमें से दो तोले औषध प्रातःकाल दो तोले सायंकाल धारोष्ण दूध (ताजा दूध) के साथ सेवन करे तो रक्तपित्त रोग नष्ट हो ॥ २ ॥

रक्तपित्तशमको रसः—

षड्गन्धजीर्णेन रसेन हेम-
माक्षीकभस्म द्विगुणं प्रघृष्टम् ।
पित्ताऽस्त्ररोगोपशमाय सेव्यं
वासाम्बुना माक्षिकमिश्रितेन ॥ १ ॥

रक्तपित्तशमक रस—

षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस एक तोला, स्वर्णमाक्षिक की भस्म दो तोले इन दोनों को घोटकर रख छोड़े इसकी दो रत्ती मात्रा को चार तोले अरडूसे के रस में एक तोला शहद डालकर सेवन करे तो रक्तपित्त रोग नष्ट हो ॥ १ ॥

क्षयरोगे राजमृगाङ्को रसः—

त्रिकर्षः स्वर्णसिन्दूरो हेमतारोत्थभस्मनोः ।
कर्षमाने शिलागन्धतालास्तु द्वितयोन्मिताः ॥ १ ॥

क्षय रोग पर राजमृगाङ्क रस—

तीन तोले स्वर्णसिन्दूर, एक एक तोला सोना चाँदी की भस्म, दो दो तोले शुद्ध की हुई मैनशिल, गन्धक, हरिताल ॥ १ ॥

एतच्चूर्णेन भर्त्तव्याः पीतवर्णाः कपर्द्दिकाः ।
छगलीदुग्धपिष्टेन टङ्कणेन च मुद्रयेत् ॥ २ ॥

इनके चूर्ण को बारीक पीसकर पीले वर्ण की कौड़ियों में भरदे । बाद बकरी के दूध में पीसे हुए सुहागे की कौड़ियों पर मुद्रा कर दे ॥२॥

शङ्खचूर्णधृतास्ताश्च पुटेच्छीतं समुद्धरेत् ।
ख्यातो राजमृगाङ्कोऽयं वासानीरेण भावितः ॥३॥

मुद्रा सूख जाने पर हाँड़ी में नीचे ऊपर शङ्ख का चूर्ण भरकर बीच में उन कौड़ियों को रख कर हाँड़ी के मुख पर मुद्रा करके गजपुट में फूँक दे । ठंढा होने पर उन कौड़ियों के सहित रस को पीस कर अडूसे के रस की भावना देकर रख छोड़े ॥ ३ ॥

सितोपलाऽऽदिचूर्णेन योगेनाप्यपरेण वा ।
दीयमानो नयेच्छीघ्रं रोगराजं क्षयं क्षयम् ॥ ४ ॥

इस रस की मात्रा एक रत्ती से दो रत्ती तक सितोपलादि चूर्ण के साथ या आयुर्वेदोक्त क्षयरोग नाशक दूसरे योग के साथ दे तो क्षयरोग शीघ्र नष्ट हो जाय ॥ ४ ॥

क्षयकुन्तनो रसः—

शिलासूतोत्थकज्जल्या मारितं शुद्धशीशकम् ।
शुद्धमाक्षिकतुल्यं तं कज्जलीं द्विगुणां नयेत् ॥ १ ॥

क्षयकृन्तन रस—

शुद्ध मैंनशिल, शुद्ध पारद, इन दोनों की कज्जली करके नलिका-डमरूयन्त्र में कज्जली के बीच में शुद्ध किये हुए शीशे के पत्रों को रखकर मारण कर ले। यदि एक बार में अग्नि के कम लगने के कारण भस्म नहीं हो तो दूसरी बार इसी विधि से कर ले। इस नागभस्म की तुल्य शुद्ध की हुई स्वर्णमाक्षिक के चूर्ण को मिला कर पूर्वोक्त मैंनशिल पारद की द्विगुण कज्जली के साथ घोटे ॥ १ ॥

मर्दन्मन्दारदुग्धेन चक्रीं शुष्कां धरेत्तले ।
यन्त्रस्यार्द्धं भरेच्चूर्णं शङ्खजं वह्निना पचेत् ॥ २ ॥
मन्दमध्यमतीव्रेण दिवसात्रितयं ततः ।
चक्रीं पिष्ट्वा घने वस्त्रे चालयेत्क्षयकृन्तनम् ॥ ३ ॥

मंदार के दूध की एक भावना देकर सब की एक टिकिया बना कर सुखा ले। इस टिकिया को नलिकाडमरूयन्त्र के तलभाग में रखकर यन्त्र के नीचे की हाँड़ी के आधे भाग तक शङ्ख का चूर्ण भर कर मन्दादिक्रम के अनुसार तीन दिन तक बराबर अग्नि दे। बाद टिकिया को निकाल कर तथा घोट कर गाढ़े कपड़े में छान कर रख छोड़े। यह क्षयकृन्तन नामक रस है ॥ २ ॥ ३ ॥

आज्यमाक्षिकयोगेन सिताक्षौद्रेण वा रसम् ।
लिह्याद् गुञ्जाद्वयं रोगी सर्वव्यायामवर्जितः ॥ ४ ॥

इसे घी शहद के साथ या मिश्री शहद के साथ क्षय रोगी दो रत्ती रोज चाटा करे, और मानसिक परिश्रम तथा शारीरिक परिश्रम नहीं करे ॥ ४ ॥

स्वर्णगर्भपोटली—

सुवर्णभस्मनो भागाश्चत्वारः पारदस्य च ।
अष्टौ गन्धस्य ताम्रस्य वङ्गस्यैकैकभागकः ॥ १ ॥

कपर्दीशङ्खयोर्भस्मभागौ द्वौ द्वौ च टङ्कणात् ।
शुद्धाच्चैकश्च मुक्तानां भागास्स्वर्णसमा मताः ॥ २ ॥
पञ्चकोलशृतेनैव सर्वं तद्भावयेत् त्रिधा ।
शिखराऽऽरम्भिका कार्य्या पोटली घर्म्मशोषिता ॥ ३ ॥

सुवर्णगर्भपोटली रस—

चार मासे सुवर्णभस्म, चार मासे हिङ्गुलोत्थ पारद, आठ मासे गन्धक, एक मासे ताम्रभस्म, एक मासे बङ्गभस्म, दो मासे कौड़ी की भस्म, दो मासे शङ्ख की भस्म, एक मासे चौकिया सुहागे की खील (लावा), चार मासे मोती की भस्म, इन सबकी कज्जली करके पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, इन पाँचों चीजों के काढ़े की तीन भावना देकर शिखर वाली एक पोटली (गुटिका) बनाकर धूप में सुखाले ॥ १-२-३ ॥

वस्त्रबद्धा बलिस्था सा पाचनीयाऽल्पवह्निना ।
घटिकाद्वितयं शीतां पोटलीं मञ्जुदर्शनाम् ॥ ४ ॥

इस पोटली को वस्त्र में बाँधकर एक हँड़िया में बिछाई हुई गन्धक के ऊपर रखदे, और उस पोटली को गन्धक के चूर्ण से ढाँक दे। बाद मन्दी मन्दी आँच से एक घण्टा तक हांडी को पकावे। ऐसा करने से "स्वर्णगर्भ पोटली" पककर मजबूत हो जायगी। बाद पोटली को ठंढी करके चाकू से थोड़ी थोड़ी घिस कर सुन्दर बनाले। और घिसने से जो कुछ चूर्ण बिखरे उसको भी सुरक्षित रखले ॥ ४ ॥

ग्रहण्यां क्षयरोगे चाऽतीसारे ज्वरकासयोः ।
बाले वृद्धेऽतिमन्दाग्नौ द्वित्रिगुञ्जां प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

इसकी दो रत्ती तक मात्रा बलाबल देखकर घृत मधु आदि अनुपान के अनुसार सङ्ग्रहणी, क्षयरोग, अतीसार, सर्व प्रकार के ज्वर, खाँसी रोगों में दे। और यह स्वर्णगर्भपोटली बाल वृद्ध मन्दाग्नि पुरुषों को परम हितकारी है ॥ ५ ॥

हेमगर्भपोटली—

स्वर्णसिन्दूरकं तज्जं स्वर्णभस्म सुमौक्तिकम् ।
स्वर्णतुल्यं समं गन्धं त्रयाणामपि मर्दयेत् ॥ १ ॥

हेमगर्भपोटली—

षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस एक तोला, और सुवर्णसिन्दूर के बनाते समय जो शीशी में सुवर्णभस्म बचती है उस सुवर्णभस्म में से तीन मासे, मोती की भस्म तीन मासे, गन्धक डेढ तोला, इन तीनों को कज्जली कर ले ॥ १ ॥

ताम्रवङ्गभुजङ्गानां भस्मान्यत्रानु पातयेत् ।
सिन्दूरसममानानि मर्दयेदर्कदुग्धतः ॥ २ ॥

बाद ताम्रभस्म, बङ्गभस्म, नागभस्म, एक एक तोले डालकर सम्पूर्ण छः तोले भस्म में मन्दार से दूध की एक भावना दे ॥ २ ॥

शुष्कां कज्जलिकामेतां वराटीष्वेव पूरयेत् ।
मन्दारपयसा पिष्टटङ्कणेन च मुद्रयेत् ॥ ३ ॥

जब बिलकुल कज्जली सूख जाय तब इसको शुद्ध पीली कौड़ियों में भर कर मन्दार के दूध के साथ घोटे हुए सुहागे के कल्क से कौड़ियों के मुख पर मुद्रा कर दे ॥ ३ ॥

शङ्खचूर्णे धृता एताः पुटित्वा गजसंज्ञके ।
पोटलीं पूर्ववत् कृत्वा दिष्टरोगेषु योजयेत् ॥ ४ ॥

जब मुद्रा सूख जाय, तब उन कौड़ियों को हाँड़ी में भरे हुए शङ्ख चूर्ण के बीच में रखकर गजपुट में फूँक दे । यह स्मरण रहे कि जहाँ पारद गन्धक का योग देकर जिस रस को गजपुट में फूँकना हो उस रस के सम्पुट को खाली हाँड़ी में रखकर न फूँके; नहीं तो पारद उड़ जाने से रस निस्सार पड़ जायगा; किन्तु शङ्ख चूर्ण या बालूरेता प्रभृति के मध्य में रखकर ही फूँका करे, जिसमें पारद की रक्षा रहे ।

स्वाङ्गशीतल होने पर कौड़ियों सहित सम्पूर्ण "हेमगर्भपोटली" रस को कूट कपरछन करके पूर्व की तरह गन्धक में पकाकर पोटली बना ले और सङ्ग्रहणी राजयक्ष्मा आदि रोगों में मधु मिश्री प्रभृति के साथ सेवन करे । इस रस के सेवन करने से क्षय आदि पूर्व्वोक्त रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

पक्कमात्रा विधिः—

चन्द्रोदयमुखान् ताल—शिलामल्लादिचिह्नितान् ।
ईषद्गोलादिजाम्भोभिस्तन्तुलैर्मर्दयेद् दृढम् ॥ १ ॥

पक्की मात्रा—

रसायनशाला में चन्द्रोदय, तालचन्द्रोदय, मल्लचन्द्रोदय, ताल-मकरध्वज, मल्लमकरध्वज, तालस्वर्णसिन्दूर, स्वर्णसिन्दूर, तालसिन्दूर, शिलासिन्दूर रससिन्दूर आदि आदि हजारों प्रकार के जितने रस बन कर तैयार हुए हैं; उन सब को पृथक् पृथक् घोटकर कपरछन कर ले । बाद रात्रि को आध पाव इसबगोल में आध सेर गरम पानी डालकर रखदे; प्रातःकाल हाथ से मथकर उसको कपड़ा में छान ले । ऐसा करने से ईसबगोल का रस लुआबदार बनकर तयार हो जायगा । बाद चन्द्रोदयादि जिस रस की पक्की मात्रा बनानी हो उसको उसी लुआब में खूब घोटे ॥ १ ॥

कुर्य्यात्पोटलिकां स्वेष्टां तन्मुद्रामुद्रितामपि ।
स्वसञ्ज्ञाचिह्नितां चापि छायाशुष्कां करोत्वपि ॥२॥

बाद लम्बी, चौड़ी, गोल शिखरदार चौखूंटी जैसी अपने को इष्ट हो, वैसी पोटली (गुटिका) बनाले । और एक उलटे अक्षरों वाला लकड़ी का या लोह का ठप्पा (मोहर) बनवा कर रख छोड़े, जिसमें अनेक प्रकार के रसों के नाम और वैद्यराज का नाम खोदा रहे, उसी ठप्पे पर उस गुटिका को जमा देने से नाम भी गुटिका के ऊपर साफ साफ उघड़ आवेगा । बाद उस गुटिका को छाया में सुखा ले ॥ २ ॥

कोर्षीं कौशेयवस्त्रोत्थामर्द्धभागे प्रपूरयेत् ।
गन्धकेनाऽन्तरस्थां तां पोटलीं गन्धकाऽऽवृताम् ॥ ३ ॥

जब पोटली सूख जाय तब रेशमी वस्त्र की ऐसी कोथली बनावे, जिसमें गुटिका भी अट जाय, और गुटिका के चारों तरफ आध आध अङ्गुल गन्धक का चूर्ण भी अट सके। उस कोथली में अर्द्ध भाग तक गन्धक का चूर्ण भर दे। उस चूर्ण के ऊपर पोटली को रखकर ऊपर भी गन्धक भर दे अर्थात् पोटली गन्धक के अन्दर रहनी चाहिये ॥ ३ ॥

कुर्व्वीताऽथ सीव्येत्तां कोर्षीं कौशेयतन्तुभिः ।
पुनश्चापरकोर्षीस्थां गन्धकाऽऽवृतरूपिणीम् ॥ ४ ॥
कोर्षीं कृत्वा च तद्वक्त्रं दृढं सीव्येच्चिकित्सकः ।
ऊर्ध्वोऽधो गन्धकं दत्त्वा हण्ड्यां धृत्त्वा पचेदिमाम् ॥५॥

बाद उस कोथली के मुख को रेशमी डोरा से सीमकर फिर दूसरी रेशमी वस्त्र की ऐसी कोथली बना ले कि जिसके अन्दर वह छोटी कोथली भी समा सके और उसके चारों तरफ गन्धक का चूर्ण भी अट सके। उस कोथली के भी अन्दर आधे भाग में गन्धक भर के बीच में पोटली वाली कोथली को रखकर और उसके ऊपर गन्धक का चूर्ण भरकर, उस कोथली के भी मुख को रेशमी डोरा से सीम दे। बाद एक हँड़िया के अन्दर ऊपर नीचे गन्धक का चूर्ण भरकर तथा उस गन्धक के बीच में उस कोथली को रखकर उस हाँड़ी को चूल्हे पर बैठाकर मन्दी मन्दी आँच से पकावे ॥४॥५॥

परीक्षेताऽथ घट्यन्ते चोत्थाप्याऽयःशलाकया ।
वस्त्रे दग्धे तु निस्सार्य्य पोटलीं स्वाङ्गशीतलाम् ॥
घृष्ट्वा चेनां तु कुर्वीत पोटलीं मञ्जुदर्शनाम् ॥६॥

एक घड़ी के बाद लोह की शलाका से कोथली को उठाकर देखे जो ऊपर की कोथली और भीतर की कोथली के वस्त्र जलकर फटने

लगें तो हाँड़ी को चूल्हे से उतार कर और कोथलियों से पोटली को निकालकर ठंढी कर दे। बाद पोटली के ऊपर से जली हुई गन्धक को खुरच कर और पोटली को कपड़े घिसकर चिकनी कर ले। यह पोटली देखने में बहुत सुन्दर जिसके ऊपर दवाई का नाम तथा वैद्यराज का नाम खुदा हुआ मिलेगा। जली हुई गन्धक भी फिर पोटली बनाने के काम में आवेगी, इसलिये उसको भी सुरक्षित रखे ॥ ६ ॥

कूपीसङ्ग्रहणे दुःखं दुःखं भारोद्वहे परम् ।
दुःखं वा दालिकाभङ्गादौषधक्षयजं महत् ॥ ७ ॥

मुसाफिरी में चन्द्रोदयादि की शीशियों को सुरक्षित रखने में, और उतने भार को ले चलने में, बहुत दुःख उठाना पड़ता है। कहीं शीशियों के या पुड़ियाओं के फूट फट जानेपर औषध परस्पर मिल जाती हैं व बिखर जाती है, तो बड़ा क्लेश होता है ॥ ७ ॥

विधिनाऽनेन भैषज्य-प्रकारो भाति शोभनः ।
इत्याकलय्य निर्म्माति पोटलीं श्यामसुन्दरः ॥८॥

इस विधि से पोटली बनाकर रखने से उक्त क्लेश उपस्थित नहीं होता तथा दवाइयों का प्रकार भी अच्छा मालूम पड़ता है। इसीलिये मैंने इस पोटली के बनाने की विधि लिखी है कि जिसमें किसी शीशी का तथा पुड़ियाओं का सङ्ग्रह करना नहीं पड़े ॥ ८ ॥

तृषादौ चन्द्रसुधारसः—

स्वर्णसिन्दूरताम्राऽभ्र-बङ्गलोहकमाक्षिकाः ।
भस्मितास्तुल्यमानास्ते भीमसेनेन्दुमर्दिताः ॥१॥

चन्द्रसुधा रस—

स्वर्णसिन्दूर, ताम्रभस्म, वज्राभ्रकभस्म, बङ्गभस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, भीमसेनी कपूर, ये सब एक एक तोला लेकर मर्दन करे ॥ १ ॥

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनो दीच्यनागरैः ।
भावितास्त्रिस्ततः कृष्णा-द्राक्षैलायष्टिमाक्षिकैः ॥२॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, नेत्रबाला, सोंठ, इनके क्वाथ की तीन भावना दे। बाद भुनी हुई पीपल, मुनक्का (काली दाख), इलायची के बीज, मुलहठी, इनके समान समान भाग लेकर कूट छान कर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण में से एक तोला लेकर और एक एक तोला शहद और मिश्री भी मिलाकर दो रत्ती चन्द्रसुधारस में से लेकर चाटे ॥ २ ॥

ससितैरवलीढास्ते रत्तिकाद्वयमात्रकाः ।
घोरां तृष्णां ज्वरं दाहं मूर्च्छां हिक्कां वमिं तमिम् ।
हन्याचन्द्रसुधाऽरोचं भुक्तये लाजलेपिका ॥३॥

इसके चाटने से बड़ी उग्र पिपासा, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, हिचकी, वमन, ग्लानि, अरुचि नष्ट हो जाते हैं। और भोजन के लिये धान की खीलों का पतला दरिया खावे। जो मीठे पर रुचि हो तो मिश्री डाल-कर बनावे, या नमकीन बनावे ॥ ३ ॥

उन्मादहरा योगाः—

नैपालं शोधितं शुल्वं शिलागन्धकमारितम् ।
द्विगुणं स्वर्णसिन्दूरात् ताम्रतुल्या मनःशिला ॥१॥

उन्मादनाशक योग—

शुद्ध मैनशिल और गन्धक के योग से बनाई हुई शोधित नैपाली ताँबे की भस्म एक तोला, स्वर्णसिन्दूर छः मासे, शुद्ध मैनशिल एक तोला ॥ १ ॥

कृष्णधत्तूरबीजानामर्द्धं द्वेधा विषं वचा ।
मर्द्दिता भाविताः क्वाथे वचाजे वटिकीकृताः ॥२॥

काले धतूरे के बीज सवा तोला, (काले धतूरे के बीज नहीं हों तो कोई भी धतूरे के बीज ले सकते हैं) शुद्ध वछनाभ विष सवा तोला

और बच सवा तोला इन सब के चूर्ण को बच के काथ में भावना देकर दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बना ले । इसका नाम उन्मादहर रस है ।। २ ।।

द्वित्रगुञ्जोन्मिता देया उच्यतेऽत्रानुपानकम् ।
येनाऽनुपानयोगेन न च्यवन्ते स्वकान्फलात् ।।३।।

अब इस रस का अनुपान लिखता हूँ, जिसके साथ सेवन करने से तत्काल फल मिले ।। ३ ।।

अन्तर्धूमहृताऽऽकाश-वल्लीकर्षेण मिश्रितः ।
उग्राद्वादशवर्षस्थ-गुडजातः कषायकः ।।४।।

आकाशबेल को हाँड़ी में भरकर हाँड़ी के ऊपर शराव रखकर मुद्रा कर दे । बाद प्रथम मन्दी मन्दी आँच देकर तेज अग्नि करता रहे । इस प्रकार दो पहर आँच लगाने से आकाशबेल* की भस्म हो जायगी ।

इसकी भस्म में से एक तोला ले, और दो तोले बच, तीन तोले बारह वर्ष का पुराना गुड़ (बारह वर्ष का न मिले तो तीन वर्ष से अगाड़ी का जहाँ तक मिले उससे ही काम चलावे) इन दोनों चीजों का क्वाथ करके एक तोला भस्म को भी क्वाथ में मिला दे ।। ४ ।।

चत्वारिंशतमब्दाँश्च स्थापितेन घृतेन युक् ।
नस्याऽर्हेणाऽपि पीतोऽत्रोन्मादाऽपस्मृतिनाशकः ।।५।।

और इसी क्वाथ में चालीस वर्ष का पुराना घी भी अंदाज छः मासे के डाल दे (यदि चालीस वर्ष का घी न मिले तो कम से कम दस वर्ष का हो ।। पुराने दूकानदारों के यहाँ सौ वर्ष तक का घी संगृहीत रहता है) केवल इस घी की नस्य [सूंघनी] देने से भी उन्माद और

* काशी प्रान्त में "बावर" ब्रजमण्डल की तरफ "अमरबेल" कहते हैं । यह पीले वर्ण की सूत की तरह वृक्षों पर चढ़ी रहती है । इसमें फल-फूल कुछ नहीं लगता । इसकी जड़ भी नहीं होती है, इसीलिये इसको निमूली भी कहते हैं । इसी के विषय में यह भी कहावत है कि "अमरबेल के जड़ नहीं कौन करे प्रतिपाल, तुलसी रघुवर छोड़ के और बताऊँ काय ?" यह सभी देशों में प्रायः सुलभ है ।

मिरगी नष्ट हो जाती है । इस क्वाथ के साथ उन्माद रोगहर की मात्रा के सेवन करने से उन्माद और मिरगी दोनों रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

नागकेशरधतूर-वचाद्योवल्लिसाधितः ।
सार्षपस्नेह उन्मादेऽपस्मृतौ नस्यतो हितः ॥६॥

एक छटांक नागकेसर, एक छटांक काले धतूरे के बीज, एक छटांक बच इन तीनों को दो सेर गरम पानी में डालकर रात भर भिगो दे; प्रातःकाल इसका क्वाथ करे आध सेर जल रह जाय, तब कपड़े में छानकर इस क्वाथ में अमरबेल के एक सेर रस को मिलाकर आध सेर सरसों का तेल डाल कर पकावे । परन्तु यह स्मरण रहे कि प्रथम तेल को पूड़ी उतारने लायक पका कर क्वाथ में डाले । नहीं तो तेल ऊफन जायगा । जब सम्पूर्ण क्वाथ और रस जल जाय और तेल में बबूला (बुदबुद) उठने बन्द हो जाँय और कुछ क्वाथ की तराई रहे, तब तेल को पका हुआ समझ कर चूल्हे से कड़ाही को उतार कर ठंढो कर दे और तेल को कपड़े में छान कर शीशी में रख छोड़े । इस तेल की मात्रा तीन मासे से छः मासे तक रोगी को सीधा लिटाकर नाक में डाले तो इस तेल की नस्य भी उन्माद और मिरगी के लिये बहुत उत्तम चीज है ॥ ६ ॥

वातरोगे अनुभूत योगः—

वातव्याधितमानुषो व्यवहरेत् संमर्दने कट्फलै—
स्तैलं सार्षपमल्पवह्निकालिकापक्वं घृतं चाशने ॥
तत्किट्टोद्भवपोटलीजनितया तप्त्या च सद्याऽऽतपं
चैरण्डोद्भवतैलतोऽभ्यवहरेद् योगेश्वरं गुग्गुलुम् ॥१॥

वातव्याधि के ऊपर अनुभूत प्रयोग—

रसायनसार ग्रन्थ बनाने के लिये बड़े उत्साह के साथ मैंने कापियाँ लिख लिख कर रख छोड़ी थीं; और छपाने के उद्योग में लगा हुआ

था परन्तु "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" इस न्याय से एकाएक मुझको गृध्रसी नामक वातव्याधि ने पकड़ा। नितम्ब स्थल से लेकर पाद पर्य्यन्त सर्वाङ्ग व्यर्थप्राय हो गया था; और जिस पैर से मैं काम लेता था वह उलटा भारभूत होगया। मेरी ऐसी इच्छा होती थी कि किसी डाक्टर से इस पैर को कटा दिया जाय तो भी अच्छा? मेरी अक्ल काम नहीं करती थी और "मोरफ़िया" की पिचकारी वगैरह अनेक उपाय डाक्टरों से तथा वैद्यों से कराये परन्तु आश्वास नहीं मिला। उस समय मैं जिस योग से अच्छा हुआ उस योग को पाठकों की सेवा में लिखता हूँ।

आध सेर कायफल को कूट कर तारों की चलनी में छान ले। बाद एक सेर कडुआ तेल कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर मन्दी-मन्दी आँच से पकावे और एक एक तोला कायफल के चूर्ण को डालता जाय। इस प्रकार तीन चार घण्टे में सब चूर्ण को जला दे। बाद इस तेल को कपड़े में छान ले। जब कपड़ा स्पर्श करने लायक ठंडा हो जाय, तब दोनों हाथों से दबा कर तेल को निचोड़ ले। बाद कपड़े के किट्ट को चिकनी हाँड़ी में भर कर रख छोड़े और तेल को भी चिकनी हाँड़ी में भर दे। जब तेल का मल हाँड़ी के तलभाग में बैठ जाय, तब नितरे हुए तेल को बोतल में भर कर रख छोड़े और हांड़ी में की गाद को उसी किट्ट में मिला दे। जिस अङ्ग में जहाँ पर पीड़ा हो उस अङ्ग को दो घण्टे तक नौकर से मलवावे। परन्तु सुलगे हुए कोयले पास में रखे रहें उन पर अपने हाथों को गरम कर करके नौकर मालिश करे। दो घण्टे के बाद उस हाँड़ी के किट्ट को कड़ाही में गरम करके कपड़े की पोटली बना ले उस पोटली से धीरे धीरे अङ्ग को सेंके। जब सहने योग्य किट्ट गरम रहे, तब उसी कपड़े पर बिछा कर उस अङ्ग के ऊपर बांध दे। इसी प्रकार रोज तेल से मालिश करना और किट्ट से सेंकना। उस किट्ट को फेंकने की कोई आवश्यकता नहीं है, उसी किट्ट से रोज सेंका करे। इस कायफल के तेल में थोड़ी अफीम जला ली जाय तो और भी अच्छा है।

आध सेर कायफल में चार सेर पानी डाल कर काथ कर ले।

जब जलते जलते दो सेर रह जाय तब क्वाथ को छान कर दो सेर घी में मिला कर मन्दी मन्दी आँच से घी को पकावे, जब क्वाथ जल जाय तब घी को छान कर रख छोड़े। इस घी का स्वाद वैसा ही बना रहता है। इसी घी में से रोगी खाया करे। यदि अधिक खाने की इच्छा नहीं हो तो दो तीन तोले तो अवश्य खाया करे; यह भी बहुत उत्तम चीज है।

और जिसकी विधि अगाड़ी लिखी है इस योगराज गूगल को खाया करे। तीन चार दिन में ही चमत्कार दीख पड़ता है।

इस तेल की विधि मुझे काशी-निवासी नैपाल सरकार के राजवैद्य, महाराज श्रीश्रीश्री १०८ श्री पुरुषोत्तमदास महन्तजी से मिली है ॥१॥

ता० २७-२-१४ के अङ्क श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार से उद्धृत—

उपयोगी गूगल—

इस पत्र में "रसायनसार" के लेखक रसायनशास्त्री श्रीश्यामसुन्दराचार्यजी वैश्य ने काशी से नीचे लिखे दो उपयोगी नोट लिख भेजे हैं—

योगराज गूगल—

योगराज गूगल बहुत उपयोगी औषधी है। इसके बनाने की विधि यह है—सोंठ, छोटी पीपल, चव्य, पिपलामूल, चित्रक की छाल, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, सफेद जीरा, काला जीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढल, बायविडङ्ग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच और मूर्वा (मुरैड़फली), ये बीस औषधियां एक एक तोले ले, और त्रिफला ४० तोला ले। सब को कूट कपड़छन कर ले। सब की बराबर (६० तोले) शुद्ध भैंसा गूगल ❀ को पाव भर पानी के साथ कड़ाही में चढा कर मन्द २ अग्नि दे। जब गूगल पानी में घुलकर और अवलेह जैसा हो जाय, तब ऊपर लिखे ६० तोले चूर्ण को डाल दे, और ४ तोले चन्द्रोदय, २ तोले सुवर्णभस्म, ४ तोले चाँदी की भस्म, ४ तोले बङ्गभस्म ४ तोले नाग (सीसा)

❀ जिसमें भैंसा के नेत्र की समान लाल लाल रङ्गत हो उसको महिषाक्ष गुग्गुलु (भैंसा गूगल) कहते हैं। दवा के काम में यही गूगल लिया जाता है।

की भस्म, ४ तोले फौलाद लोह की भस्म, ४ तोले शतपुटी वज्राभ्रक-भस्म, ४ तोले मण्डूरभस्म। कपड़छन की हुई; इन आठ चीजों को भी डालकर कलछी से मिला दे। फिर सब को पत्थर के खरल में डाल कर चार चार तोले घृत डाल डालकर कूटे। जब लक्षाघात हो जाय, तब मटर के समान गोलियाँ बना ले। इसी को योगराज गूगल कहते हैं। यह योग शार्ङ्गधर में लिखा है; परन्तु उसमें सिन्दूररस डालना कहा है। मैंने उसके स्थान में चन्द्रोदय डाला है, और सुवर्णभस्म अधिक डाली है। जिस वैद्य के पास चन्द्रोदय नहीं हो वह स्वर्णसिन्दूर डाले। स्वर्णसिन्दूर भी नहीं हो तो रससिन्दूर ही डाले। सुवर्णभस्म नहीं हो तो नहीं डाले। अथवा ऊपर लिखी हुई आठों भस्मों में कोई भी नहीं हो, तो केवल काष्ठौषधियां ही डालकर उक्त विधि से योगराज गूगल तैयार कर ले। बहुत अच्छी चीज है; वैद्य तथा गृहस्थियों के घर में बनी हुई तैयार रहे। श्वास, कास, वातव्याधि, मन्दाग्नि, बवासीर, भगन्दर, प्रमेह आदि अनेक रोगों में इसका प्रत्यक्ष फल है।

गूगल शुद्ध करने की विधि—

एक सेर त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आमला) और आधा सेर गुरुच (गिलोय) में १० सेर पानी डालकर चार पहर भिगो दे। बाद चूल्हे पर रख कर अग्नि दे। जब आधा पानी जल जाय, तब कपड़े में छान कर क्काथ को लोहे की कड़ाही में चढ़ा दे। कड़ाही के दोनों कुन्दों में एक बांस का डण्डा पो (डाल) दे, उस डण्डे में नवीन कपड़े की झोली सी बाँध कर उस कपड़े में एक सेर भैंसा गूगल डाल दे। वह गूगल क्काथ के अन्दर लटकता रहे। साधारण अग्नि लगावे। लोह की डोहरी में (जैसी हलुवाई लोग रखते हैं) क्काथ को भर भर कर कपड़े के अन्दर डालता जाय और कलछुली से चलाता जाय। पांच सात बार क्काथ के डालने से सब गूगल छनकर कड़ाही में निकल जायगा। गूगल का मैल कपड़े में रह जायगा तब कपड़े को निकाल डाले और कड़ाही के गूगल मिले हुए

काथ को धीरे २ दूसरी कड़ाही में बारीक धार बाँध कर गिरावे । जो मिट्टी होगी, सो कड़ाही के पेंदे में जम जायगी, सार माल दूसरी कड़ाही में आ जायगा । फिर उस कड़ाही को अग्नि पर चढ़ा कर काथ को गाढ़ा कर ले, झरने से चलाता जाय जिससे पेंदे में गूगल लगे नहीं । गूगल हाथ में चिपट जाता है । इस लिये हाथों में घृत चुपड़ कर गोली बना कर सुखा ले । यह शुद्ध गूगल हो गया । जब किसी दवा में गूगल डालना हो तो इसी में से डाले ।

जिन कड़ाहियों में गूगल शुद्ध किया है उनको साफ करना बड़ा मुश्किल है, इसलिये उनमें गौ का गोबर डालकर मले । बहुत आसानी से कड़ाही साफ हो जायगी । जिस कड़ाही में तैल पकाया है उसकी चिकनाई भी गोबर से तत्काल निकल जाती है ।

इस योगराज गूगल की छः मासे मात्रा को एक छटांक रेंड़ी के तेल में डाल के गरम करे, बाद आध सेर गरमागरम दूध, छटांक भर मिश्री, डाल कर पी जाय तो हड्डी में प्रविष्ट हुई वातव्याधि कैसी भी क्यों न हो सर्व नष्ट हो जाती है । रेंड़ी के तेल के पीने से चार पाँच दस्त भी होते हैं परन्तु शक्ति नहीं घटती । भोजन के समय सीरा, चूरमा, घृत डाल कर खिचड़ी, गरमागरम खाय ।

नमक, मिरच, जीरा, धनियाँ, हींग, सोंठ, पीपल, अजवायन, पोदीना और लहसन इतनी चीजों को नींबू के रस में घोट कर चटनी खाय । यह चटनी बहुत स्वादिष्ट बनती है । लशुन और हींग को घृत में भून कर डालने से दुर्गन्ध नहीं आती और स्वाद अधिक हो जाता है । जिसको लहसन डालना पसन्द न पड़े वह नहीं डाले ।

रात्रि को बन पड़े तो भीमसेनी कपूर (बरास) कस्तूरी, लोंग आदि के साथ घोटे हुए स्वर्णसिन्दूर की दो रत्ती मात्रा को शहद के साथ चाट कर सोवे ।

शूलहरो रसः—

सिन्दूरताम्राभ्रविषाणि गन्धैः
समानि तत्तुल्यसहस्रवेधी ।

दीप्याकणाः पञ्चपटूनि हिङ्गु
आर्द्राद्धिरामर्घ्य च शूलहानि ॥१॥

शूलहर रस—

रससिन्दूर, ताम्रभस्म; अभ्रकभस्म, वछनाभ विष और गन्धक एक एक तोले, अमलबेत पाँच तोले, अजवायन, पीपल, जीरा व हींग ये चारों चीज पाँच तोले, पाँचों नमक पाँच तोले ले। प्रथम सिन्दूरादि पाँचों चीजों को आदी के रस में घोटकर, बाकी बची हुई चीजों को भी कपरछन करके मिला दे। फिर सब चूर्ण को आदी (अदरक) के रस में चने की बराबर गोलियाँ बना ले। परन्तु हींग और जीरे को घृत में भून कर वजन करे। अनुपान गरम पानी। जिसके पास रससिन्दूर आदि न हों वह अमलबेत आदि का ही चूर्ण बना कर आदी के रस में घोट कर दो चने की बराबर गोलियाँ बना ले। इन चीजों में एक अमलबेत ही ऐसी चीज है कि "लोहसूचीद्रवत्वकृत्" लोह की सुई को भी गला देती है॥ १॥

इच्छाभेदी रसः—

सूतशुण्ठ्याग्निकोलानां समानामर्द्धगन्धकः।
निशोथस्तत्समस्तुल्या जैपालाः स्नेहवर्जिताः॥ १॥
भावयित्वाऽम्बुना वह्नेश्चणकप्रमिता वटीः।
कुर्य्यात्सर्वस्य चूर्णस्य क्रूरकोष्ठोऽपि रिच्यते॥ २॥

इच्छाभेदी जुलाब—

हिङ्गुल का पारद, सोंठ, चित्रक, कालीमिरच, एक एक तोले, दो तोला शुद्ध गन्धक लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर ले। बाद सोंठ, मिरच, चित्रक के चूर्ण को भी मिला दे। इस चूर्ण में छः तोले निसोथ के चूर्ण को और बारह तोले शुद्ध जमालगोटे के चूर्ण को डाल कर घोटे। इस चूर्ण में चित्रक के काढ़े की भावना देकर चने के समान गोलियाँ बना ले। बलाबल देखकर एक गोली से चार गोली

तक ताजा पानी के साथ या धारोष्ण [ताजा] दूध के साथ देने से मनुष्य कैसा ही क्रूर कोष्ठ क्यों न हो जुलाब अवश्य होता है ॥१।२॥

द्वितीय इच्छाभेदी रसः—

टङ्कणं पिप्पली शुण्ठी हिङ्गुलुर्निम्बुशोधितः ।
हेमपत्रा त्रिवृद्दन्ती तिस्रो द्विद्विगुणाः क्षिपेत् ॥ १ ॥

दूसरा इच्छाभेदी जुलाब—

अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा, पीपल, सोंठ, नींबू के रस में शोधा हुआ शिंगरफ ये चारों चीज एक एक तोले सनाय की पत्ती दो तोले, निसोथ चार तोले, शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण आठ तोले ले ॥१॥

चूर्णं धारोष्णदुग्धेन गिलेद् गुञ्जात्रयोन्मितम् ।
इच्छया भेदकं नैतत् पच्यते रेचनं विना ॥ २ ॥

इस चूर्ण की मात्रा कम से कम तीन रत्ती लेकर ताजा दूध के साथ पीवे । यह यथेष्ट दस्त कराता है इसलिये इसको इच्छाभेदी रस कहते हैं । यह रस बिना दस्त कराये पच नहीं सकता ॥ २ ॥

गुल्मं विष्टम्भकं हन्यादुदावर्त्तमरोचकम् ।
अर्शोभगन्दरादीनां योगैस्सेवेत कालवित् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से विष्टम्भ रोग, गुल्म रोग, उदावर्त्त रोग, अरुचि, नष्ट हो जाते हैं और शास्त्र-लिखित बवासीर, भगन्दर रोगों के प्रयोगों के साथ इसके सेवन करने से रोगी सुखी हो जाता है ॥३॥

मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः—

स्थाली पूर्णार्द्धपानीया पिधेया तनुवाससा ।
बद्ध्वा सूत्रेण तद्वक्त्रं श्रीवासं च प्रसारयेत् ॥ १ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस [सूजाक पर]

आधी बटलोई को पानी से भरकर उसके मुख को पतले कपड़े से ढाँक कर डोरा से बाँध दे और उस कपड़े पर आध पाव तीन छटाँक के करीब गन्धाबिरोजा (बेरजा) फैला दे ॥ १ ॥

पचेन्मन्दाग्निना तावद् यावद् द्रुत्वा जले पतेत्-
श्रीवासःस्वाङ्गशीतेऽत्र क्षिप्त्वा पानीयमाहरेत् ॥ २ ॥
तलस्थं घनमस्यांऽशं चाष्टमं मकरध्वजम् ।
षड्गुणगन्धजीर्णं वा सिन्दूरं रसमुत्तमम् ॥ ३ ॥

उस बटलोई को चूल्हे पर रख कर मन्दी आँच तब तक दे जब तक पानी की बाफ़ से तप कर गन्धाविरोजा कपड़े से छनकर बटलोई के अन्दर पानी में गिर जाय। बाद बटलोई को चूल्हे से उतार कर धरती पर रख दे जब पानी बिल्कुल ठंढा हो जाय तब पानी को निकाल दे और बटलोई के तलभाग में जमे हुए बिरोजे को निकाल ले। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ गन्धाविरोजा चार तोले और मकरध्वज या षड्गुणगन्धकजारित सिन्दूररस छः मासे लेकर दोनों को खरल में घोटकर शीशी में रख छोड़े ॥ २।३ ॥

खादेन्माषद्वयीं मात्रां मूत्रकृच्छ्रान्तकाद्रसात् ।
श्रीवासः केवलो वैष सफलः सितया युतः ॥ ४ ॥

इस मूत्रकृच्छ्रान्तक रस की दो मासे मात्रा ताजा दूध के साथ या ताजा पानी के साथ या मिश्री के साथ सेवन करने से सूजाक नष्ट हो जाता है। यदि किसी के पास मकरध्वज या सिन्दूररस नहीं हो तो पूर्व्व रीति से शुद्ध किया हुआ केवल गन्धाविरोजा भी सूजाक में उपकारी है ॥ ४ ॥

सूजाक पर पिचकारी—

दमुल अखवायन ६ मासे, काशगरीसफेदा ६ मासे, संग जराहत ६ मासे; कत्था ६ मासे, तवे पर भूंना हुआ तूतिया ६ मासे, गिलोय अरमनी ६ मासे, इन ६ चीजों को कूट कर कपरछन कर ले। बाद इस चूर्ण को खरल में डाल कर छटाँक भर दही के पानी (तोर) में घोट कर पाव भर दही का पानी और डाल दे। सब को हाथ से घोल कर तीन घण्टे रख दे, बाद निर्मल जल को निकाल कर किसी शीशी में भर ले। इसमें छटाँक भर गुलाबजल भी डाल सकते हैं। इस

जल में से दो तोले के अन्दाज पिचकारी में भर कर लिङ्ग के अन्दर डाल कर लिङ्ग के मुख को इस तरह दबावे जिसमें पानी लिङ्ग से बाहर न निकलने पावे। पाँच मिनट के बाद लिङ्ग के मुख को छोड़ दे जिसमें पानी बाहर निकल जाय। इसी प्रकार दो बार फिर भी पिचकारी से लिङ्ग के अन्दर वही पानी भर दे इस रीति से सायंकाल प्रातःकाल पाँच छः दिन तक पिचकारी देने से मवाद (राधलोहू) गिरना बंद हो जायगा और अन्दर का सब घाव पूर (भर) जायगा।

यह विधि मुझे एक कन्हैयालाल जी हकीम से मिली है और मैंने कई बार इसको अजमाई है बहुत अच्छी विधि है ।

उपदंश चिकित्सा—

देवधूपमधूच्छिष्टश्रीवासान् समभागकान् ।
ढक्कायन्त्रे निधायाऽनुसन्धितारैरयोमयैः ॥ १ ॥
बद्ध्वा गाढं च कुर्वीत मृत्पटान् सप्त तद्बहिः ।
चुल्यां तिर्यग्ददीताऽग्निं मन्दं हण्डीं स्पृशेत्पराम् ॥२॥

लिङ्ग की चाँदी [गरमी] का इलाज—

राल, मोंम, गन्धाविरोजा इन तीनों को आध आध पाव लेकर डमरूयन्त्र की नीचे की हाँड़ी में रख दे। दोनों हांड़ियों के मुखों को मिला कर लोहे के बारीक तारों से खूब मजबूत बाँध दे जिसमें कहीं से खसकने नहीं पावे। फिर उन तारों के बन्धन के ऊपर सात कपरमट्टी करके सुखा ले। इस डमरूयन्त्र को लिटा कर ऐसी युक्ति से चूल्हे पर रखे कि जिसमें नीचे की हाँड़ी में ही आँच लगे और ऊपर की रीती (खाली) हाँड़ी चूल्हे से दूर रहे। तब मन्दी मन्दी आँच लगाना शुरू करे एक घण्टे के बाद चूल्हे से बाहर निकली हुई खाली हाँड़ी के तलभाग को स्पर्श करके परीक्षा करे कि राल, मोंम, गन्धाविरोजे का सार भाग दूसरी हाँड़ी में उड़ कर आया कि नहीं ॥ १ ॥ २ ॥

ज्ञात्वा स्पर्शासहां यन्त्रं शीतयेदवतार्य तत् ।
आज्यं तत्कर्दमोन्मानं तद्द्वयं बन्हिगालितम् ॥ ३ ॥

जब हाँड़ी ऐसी गरम हो जाय कि उसमें हाथ नहीं लग सके तब समझ ले कि उन तीनों चीजों का सारभाग इस हाँड़ी में आ चुका है, तब यन्त्र को धीरे से उतार कर पृथ्वी में रख दे जिसमें वह घण्टे आध घण्टे में ठंढा हो जाय, बाद डमरूयन्त्र की मुद्रा को खोल कर दूसरी हाँड़ी में जमे हुए उन तीनों चीजों के कीच के समान घनभाग को निकाल ले। उसमें से एक छटाँक लेकर एक छटाँक घी के साथ कटोरी में रख कर अग्नि पर पिघला ले, जब घी और कीच एक जीव हो जाँय तब कटोरी को अग्नि से उतार कर रख ले। यह गरमी [आतशक] के घावों की उत्तम मलहम बन कर तैयार हो गई ॥ ३ ॥

उपदंशव्रणे लेप्यं क्षालयेत् त्रिफलाजलैः ।
त्रिफलामेव सेवेत ताम्रभस्मयुतां व्रणी ॥ ४ ॥

इस मलहम को लिङ्ग के ऊपर घावों पर दिन में दो दफे लगावे परन्तु प्रथम त्रिफला के काढ़े से घावों को धो लिया करे और छटाँक भर त्रिफला के काढ़े को प्रातःकाल और रात्रि को पीया भी करे। त्रिफला पीने के बाद या पहिले ही एक रत्ती ताम्रभस्म मधु के साथ चाट लिया करे। ताम्रभस्म नहीं हो तो केवल त्रिफला से भी काम चल सकता है। त्रिफला के काथ की पीने की इच्छा नहीं हो तो एक तोला कपरछन किया हुआ त्रिफला का चूर्ण शहद के साथ दोनों समय चाटा करे ॥ ४ ॥

यद्वा तत्तैलमाकर्षेन्नलीयन्त्रेण बुद्धिमान् ।
तुल्यसैन्धवपङ्केन बालुकापादपूरणात् ॥ ५ ॥

अथवा इन तीनों चीजों के सार का तेल ही निकाल ले। उसकी विधि यह है कि—नलीयन्त्र (भबका) के चतुर्थांश भाग में बालु रेता भर दे बाद उस सार के समान सेंधानोंन मिला कर (कोई कोई वैद्य चतुर्थांश चतुर्थांश हरिताल और गन्धक भी मिला दिया करते हैं) उसे बालू पर रख दे और उस यन्त्र को ढक्कन से ढंक कर तेल गिरने वाली नली के तरफ किंचित् झुका कर भबकायन्त्र को चूल्हे पर रखे

जिसमें बाहर टपकने वाले तेल को नली तक दूर नहीं जाना पड़े। जब नली के द्वारा तेल टपकना शुरू हो तब उसके नीचे एक प्याला रख दे। परन्तु यह स्मरण रहे कि भबका के ढक्कन में बारंबार पानी भरता रहे और गरम होने पर निकालता रहे। (भबका का चित्र देखो और उसके बनाने की विधि भी परिभाषा प्रकरण में देखो) इस प्रकार भी संखिया, गन्धक, गन्धाविरोजा, मोंम, हरिताल, मैंनशिल आदि का तेल अच्छी तरह से निकल आता है। परन्तु गन्धक हरिताल के योग से ताम्बे का भबका पांच चार बार में ही बेकार हो जाता है इसलिये हरिताल गन्धक आदि के तेल निकालने के लिये लोह का बना हुआ भबका जुदा ही रहना चाहिये। उसमें सौंफ, गुलाब वगैरह किसी चीज का अर्क न निकाला जाय, नहीं तो उस अर्क को पीने वाले मनुष्य मरेगें नहीं तो आसन्नमृत्यु जरूर हो जायंगे ॥ ५ ॥

तत्तैललेपनाद्धाऽपि व्रणा गच्छन्त्यशेषताम् ।
शुष्कप्रायेषु जातेषु वराचूर्णं वचूर्णयेत् ॥ ६ ॥

इस तेल को उपदंश के घावों पर लगाने से सब घाव अच्छे हो जाते हैं। और इनके अलावे सर्व प्रकार के घाव नष्ट हो जाते हैं। जब घाव सूखा सा हो जाय तब उसके ऊपर गाढे कपड़े में छाना हुआ त्रिफला का चूर्ण बुरक (छोड़) देना चाहिये। (कोई कोई वैद्य त्रिफला की भस्म को भी बुरकते हैं) ॥ ६ ॥

इच्छेद्भूयोऽपुनर्भावमुपदंशं यदि व्रणी ।
वराक्काथं भजेन्मासं गन्धकं वा समाक्षिकम् ॥ ७ ॥

यदि ऐसी इच्छा हो कि फिर गरमी उत्पन्न ही नहीं होने पावे अर्थात् जड़ से ही निकल जावे तो वह रोगी छटांक भर त्रिफला के क्वाथ को अथवा शहद के साथ एक तोले गन्धक को प्रतिदिन एक महीने तक सेवन करे ॥ ७ ॥

प्रत्यहं चित्रकक्काथैः पटुत्यागस्वतन्त्रतः ।
लेप्यं वा तालजं तैलं गान्धं वा सर्व्वमिश्रितम् ॥ ८ ॥

परन्तु गन्धक चाटने के बाद दो तोले चित्रक का क्वाथ भी पीना

चाहिये। यदि गन्धक सेवन के समय नमक न खाये तो अच्छी बात है, यदि नमक बिना नहीं रहा जाय तो जहाँ तक हो सके थोड़ा थोड़ा खाया करे। नमक के खाने से कुछ विशेष शङ्का की बात नहीं है, किन्तु गन्धक का अल्प गुण हो जाता है।

जिस प्रकार ,राल मोंम गन्धाविरोजे का तेल गरमी के घावों को अकसीर है उसी प्रकार हरिताल का या गन्धक का तेल भी बहुत उत्तम है ॥ ८ ॥

मूत्राघाताऽवरोध चिकित्सा:—

मौत्रे घातेऽवरोधे वा भजेत्कूष्माण्डजं रसम्।
अध्यर्द्धपलमानाऽऽढ्यं कर्षद्वयसितायुतम् ॥
यावक्षारार्धकर्षेण मिश्रितं मूत्ररेचकम् ॥ १ ॥

चिनग और मूत्रावरोध का इलाज—

जिस मनुष्य के चिनग हुई हो अथवा मूत्र बन्द हो गया हो तो पेठे का रस छः तोले लेकर उसमें दो तोले मिश्री और छः मासे जवाखार डाल कर।पीवे, मूत्र साफ़ उतरता है। चनग रोग या मूत्र के बंद होने की शिकायत नहीं रहती है ॥ १ ॥

प्रमेह चिकित्सा—

शोध्यः प्रमेही कृतशुद्धिरश्न-
ञ्छिलाजतून्मानरसायनानि।
नागाभिधादीनि विमुच्यतेऽत-
श्चन्द्रोदयं वा दशगन्धजीर्णम् ॥ १ ॥

प्रमेह की चिकित्सा—

यदि प्रमेह रोगी वमन विरेचन के योग्य समझा जाय तो उसको वमन-विरेचन (नारायण चूर्ण से या इच्छाभेदी रस आदि के प्रयोग से) कराकर; समान भाग शुद्ध शिलाजीत मिलाकर "नागरसायन" या "वङ्गरसायन" सेवन करावे। अथवा दशगुणगन्धकजारित चन्द्रोदय

का ही सेवन करावे (चन्द्रोदय नहीं हो तो केवल दशगुणगन्धकजारित सिन्दूररस से भी काम चल सकता है) ॥ १ ॥

धात्रीहरिद्रामृतबङ्गसेवी
तद्धेतुवर्जी यतिधर्मचारी ।
भवेत्प्रमेही यदि तज्जपीडा
कृतास्पदा जातु न जायतेऽस्मिन् ॥ २ ॥

अथवा शहद इलायची के चूर्ण के साथ दो रत्ती बङ्गभस्म को चाट कर ऊपर से छटाँक आँवले के क्वाथ में १ तोला हलदी के चूर्ण को डाल कर पीया करे तो भी प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है। परन्तु जिन कारणों से प्रमेह उत्पन्न हुआ है, उन (मधुर, अम्ल, लवण, चिकना, भारी, ठंडा पदार्थ भोजन, नवीन अन्न, मदिरा, जलप्रान्त के जीवों का मांस-भक्षण, दिवा-शयन, रात्रि-जागरण, बहुत बैठक का काम करना, इत्यादि) प्रमेह के कारणों को सेवन नहीं करे और ब्रह्मचर्य पाले ॥ २ ॥

गुग्गुल्वादिवटीमेंही सायंप्रातर्भजेद् यदि ।
सेतुना जलधारेव मेहधारा निरुध्यते ॥ ३ ॥

शुद्ध किये हुए पाव भर भैंसा गूगल में पाव भर पानी डाल कर लोह की कड़ाही में मन्दी मन्दी आँच से गला ले । बाद इसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, हलदी, रूमीमस्तंगी, सालममिश्री और इलायची के बीज, इन दस चीजों को दो दो तोले लेकर कूट कपरछन करके मिला दे । जब गूगल का और चूर्ण का एक जीव हो जाय तब गोली बना कर सुखा ले । इन गुग्गुल्वादि वटी की ३ मासे की खुराक होती है । गरम जल के साथ सायंकाल प्रातःकाल इन गोलियों के सेवन से भी सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं, जैसे सेतु से जल का प्रवाह ॥ ३ ॥

प्रांहयक्ष्मचिकित्सा—

सूताम्लसाराभ्रमनःशिलाऽय-
स्तुत्थार्कशङ्खाऽमृतमुष्टितालान् ।

वराटिकाः क्षारयुगं च जाती-
फलं स्नुहीदुग्धरसाञ्जनानि ॥ १ ॥
जैपालहिङ्गुत्रिकटुत्रिपट्वी-
र्यथायथं शोधितमारितानि ।
तुल्यानि सर्वाणि विचूर्णितानि
अद्भिः प्रघर्षेच्छरपुङ्खजाभिः ॥ २ ॥
सेवेत तक्रेण पलार्द्धमानं
मृत्युञ्जयं लोहमहर्द्धिसन्ध्यम् ।
प्लीहायकृद्गुल्ममुखोदरस्थाः
शोथाश्च नश्यन्ति विकारजाताः ॥३॥

वरवट पिलही की चिकित्सा—

पारद, आमलासार गन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्ध मैनशिल, लोहभस्म, तूतिया की भस्म, ताम्रभस्म, शङ्खभस्म, शुद्ध कुचला, शुद्ध हरिताल, पीली कौड़ियों की भस्म, जवाखार, सज्जीखार, जायफल, थूहर का दूध, रसौत, शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण, घी में भूनी हुई हींग, सोंठ, कालीमिरच, पीपल, सेंधानोंन, सांभरनोंन, और कालानोंन, इतनी चीजों को समान भाग लेकर कूट कपड़छान कर ले। परन्तु यहां पर इतना विशेष समझ लेना चाहिये कि सम्पूर्ण चूर्ण में जितने थूहर के दूध की भावना हो सके इतना थूहर का दूध दिया जाय। बाद सरफोंका के क्वाथ की या स्वरस की एक भावना सम्पूर्ण चूर्ण में और दे ले ॥ १ ॥ २ ॥

इसको "लोहमृत्युञ्जय रस" कहते हैं। इसकी एक एक तोले की मात्रा सायङ्काल प्रातःकाल तक्र के साथ सेवन करने से प्लीहा, यकृत्, गुल्म आदि उदर के रोग और शोथ नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

शङ्खेषु निम्बम्बुभृतेषु वह्नौ-
धृतेषु हण्ड्यां परितापितेषु ।

मृतेषु सम्यक् छरपुङ्खचूर्णे
चतुर्गुणे घर्षितमिश्रितेषु ॥ ४ ॥
प्लीहार्त्तिरुग्णाय समर्पितेषु
कर्षद्वयोन्मानमितेषु तेषु ।
गवां जलेनोष्णजलेन वापि
प्लीहायकृचाऽस्य निरेति मुक्त्वा ॥ ५ ॥

सफेद वर्ण के शंख को पहिले कही हुई विधि के अनुसार शुद्ध करके इसमें नींबू का रस भर दे, बाद इस शंख को हाँडी में रख कर सर्वार्थकरीभट्ठी की अग्नि पर रख कर या गजपुट में फूँक दे। स्वाङ्ग-शीतल होने पर शंखभस्म से चतुर्गुण सरफोंका के चूर्ण को डाल कर घोटे। जब दोनों का एक जीव होजाय तब इस चूर्ण में से एक एक तोले मात्रा सायंकाल व प्रातःकाल गोमूत्र के साथ या गरम जल के साथ सेवन करे तो इस योग से भी प्लीहा व यकृत नष्ट हो जाते हैं ॥४॥५॥

सर्व-कुष्ठ चिकित्सा—

क्षाराक्तकुष्ठे सितरक्तरूपे
तालाग्निकासीसवरासुगन्धैः ।
लेपो गलत्कुष्ठहरं तु भस्म
तालस्नुहीसैन्धवजं निरुद्धम् ॥ १ ॥

सर्व प्रकार के कुष्टों की चिकित्सा—

सफेद या लाल वर्ण के कोढ के चकत्तों पर प्रतिसारणीय क्षार (परिभाषा प्रकरण में कहे हुये) को चुपड़ कर हरिताल, चित्रक, कसीस, त्रिफला, गन्धक के समान २ भागों को पानी में पीस कर लेप करे। इस प्रकार सात दिन लेप करने से सफेद, लाल कोढ जाते रहते हैं। क्षार के लगाते ही चमड़ा उतर जायगा बाद लेप करना अच्छा है। परन्तु प्रति दिन क्षार चुपड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। पांच तोले

हरिताल, पांच तोले सेंधानोंन थूहर के डंडे में भर कर कपरमट्टी करके इस डंडे को हांड़ी में रख कर और मुद्रा कर के भस्म कर ले। इस भस्म में कड़ुवा तेल मिला कर लुगदी बना ले। इस लुगदी को गलत्कुष्ठ के घावों में भरने से मरे हुए जन्तु घावों से निकलेगें और घाव भी पुरने (भरने) लगेगें ॥१॥

वलीशधत्तूरविपक्वतैलाऽऽक्ताङ्गो
वराक्काथसमूष्मिताङ्गः।
कुष्ठघ्नसंशोधितगन्धमश्नन्
पामादिमुक्तो भवति स्मराङ्गः॥ २ ॥

छटांक पारद, छटांक गन्धक की कज्जली करके, पका कर ठंडे किये हुये आध सेर कड़ुवे तेल में डाल दे, और धतूरे के पत्तों का स्वरस एक सेर डाल कर मन्दाग्नि से पकावे। इसी कीच के समान तैल को सर्व शरीर में लगा कर त्रिफला के क्वाथ का बफारा ले, और चारों तरफ चादर से शरीर को ढांक ले जिसमें ऊष्मा (बाफ) बाहर न जाने पावे। इस प्रकार पांच चार दिन ही करने से शरीर से खाज, खुजार, लूखस जाने कहां चली जाती हैं। परन्तु सर्व प्रकार के कुष्ठों में, कुष्ठहर औषधियों में शोधी हुई गन्धक मधु के साथ चाटा करे। जैसे भिलावें के और जमालगोटे के तेल में गन्धक को गला कर त्रिफला के काढे में शोधना कुष्ठ को उत्तम है ॥ २ ॥

मृत्स्नेहगन्धाक्ततयाऽऽतदद्रु-र्वा
टङ्कणाऽऽलेपविमुक्तदद्रुः।
कृच्छ्रे तु धात्रीसुशिवाकलिद्रु-
क्काथोष्मतः स्यादपि नष्टदद्रुः॥ ३ ॥

दादों के ऊपर मट्टी के तेल में घोटी हुई गन्धक को लगा कर दो घंटे धूप में बैठ जाय तो दाद जल भुंन कर भस्म हो जाते हैं। ऐसा तीन दिन करना काफी है। वर्षों तक दुःखी रहने की अपेक्षा तीन दिन का थोड़ा दुःख भोगना अच्छा है। यदि यह मंजूर नहीं हो तो पानी में पीस कर चौकिया सुहागा ही लगाया करे। इसमें क्लेश भी नहीं,

दुर्गन्ध भी नहीं और कपड़े भी खराब नहीं होंगे । यदि दोष अधिक हो तो त्रिफलादि कुष्ठहर औषधियों के काढे का स्वेद भी देना चाहिये और उक्त तेल की मालिश करनी चाहिये ॥ ३ ॥

शिरस्यनस्यम्-

आकाशवल्लीभसितं शिवायाः
कुम्भ्याश्च चूर्णं परिभावयेत ।
मन्दारदुग्धेन चतुर्थभागं
सुवर्णसिन्दूरमथो प्रदाय ॥ १ ॥
आर्केण दुग्धेन विमर्द्य भूयो
द्विधा प्रशुष्कं पटगालितश्च ।
नस्यं शिरस्यं स्मृतिकृच्छिरोर्त्तिं
छिक्काप्रवृत्तेश्च तनूकरोति ॥२॥

शिर के हितकारक सूंघनी—

अमरबेल की भस्म, हरड़े का चूर्ण, कायफल का चूर्ण, तीनों एक एक तोला लेकर मन्दार के दूध की भावना दे । बाद तीन मासे षड्गुण गन्धक जारित सुवर्णसिन्दूर इस चूर्ण में डाल कर दो भावना मन्दार के दूध की और दे। जब बिलकुल सूख जाय तब कपरछन करके रख छोड़े । यह नस्य मस्तक के लिये बहुत हितकर है। इसके सूँघने से छींक भी खूब आती हैं व मस्तक की पीड़ा तत्काल शान्त हो जाती है और जिसका मस्तक सनक गया हो जिससे स्मरण शक्ति नष्ट हो गई हो तो यह नस्य स्मरणशक्ति को भी बढ़ाती है । यदि सुवर्णसिन्दूर नहीं डाले तो भी उपकारक है । इस चूर्ण को दो रत्ती मात्रा बदाम के हलुआ में रख कर इस प्रकार निगले कि चूर्ण का स्वाद न मालूम हो, नहीं तो जी मचलाने लगेगा ॥१॥२॥

नेत्रपोटली शुक्लाञ्जनञ्च—

दार्वीशिवागैरिकशर्करारसाऽ-
ञ्जनेन्दुफुल्लस्फटिकाःसमोन्मिताः ।
एकाष्टमोन्मानमिताऽहिफेनकं
सङ्कुट्य शुद्धेन पटेन बन्धयेत् ॥ १ ॥

दूखती आँखो की पोटली और शुक्लाञ्जन—

दारुहल्दी, बडी हरड़े, सोंनागेरु मिश्री, रसौत, कपूर, अग्नि पर फुलाई हुई फिटकरी इन सातों चीजों को तीन तीन मासे ले और तीन चार रत्ती के अन्दाज अफीम डाले इन आठों चीजों के चूर्ण को धुले हुए साफ कपड़े में बँधवा ले ॥ १ ॥

गवादिदुग्धेन युनक्तु पोटलीं
नेत्रेषु रुग्णेषु सुखं विधात्रिकाम् ।
ज्वालामभिष्यन्दमपि प्रवेदनां
शमंनयन्तीं चहर्ति निरुन्धतीम् ॥ २ ॥

बाद इस पोटली को मट्टी के सकोरा में भरे हुए तोले दो तोले दूध में भिगो भिगो कर नेत्र के ऊपर लगावे और पोटली के दूध को नेत्र के अन्दर भी टपकावे । दूध—गाय, बकरी, भैंस किसी का ही हो परन्तु स्त्री का दूध सुलभ हो तो और भी अच्छा । इस पोटली को नेत्र के ऊपर लगाने से दुःख के बदले उलटा आनन्द पड़ता है, और नेत्र का दाह, बहना, पीड़ा आदि सब नष्ट हो जाते हैं । और दूखते नेत्रों का इलाज नहीं करने से नेत्र के नष्ट होने की शङ्का रहती है । इस पोटली के सेवन करने से सैकड़ों आदमी अच्छे हो गये और नेत्र भी दर्पण के समान हो गये ॥ २ ॥

शिवाशिलासैन्धवशङ्खतुत्थ
सुवर्णमाक्षीकसुगैरिकाणि ।

समुद्रफेनं मरिचं च कुर्याद्
वस्त्रेणपूतं परिकुट्य सर्वम् ॥ १ ॥

बड़ी हरड़ शुद्ध मैंनशिल, सेंधानोंन, शङ्खभस्म, शुद्ध तूतिया, सुवर्णमाक्षिक की भस्म, सोंनागेरू, समुद्रफेंन, कालीमिरच इन सब को समान भाग लेकर कूट कपरछन कर ले ॥ १ ॥

एतच्छुक्लाञ्जनं सर्वान् नेत्ररोगान् निरस्यति ।
नूतनान् वर्त्मशुक्लादीन् माक्षिकेण सहाञ्जनात् ॥२॥

इस चूर्ण को मधु के साथ रात्रि को सोते समय लगाने से रतौंदा, नेत्र का बहना, कीच का आना, पढ़ने में नेत्र का थकना, आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं, और थोड़े दिन का फूला, पलकों का फूलना भी नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

नेत्रपीयूषाञ्जन विधि—

सीसे (नाग) को अग्नि में तपा तपा कर त्रिफला क्वाथ, भांगरे का स्वरस, गोघृत, कमल की डंठो का स्वरस, बकरी का दूध इन पाँच चीजों में सात सात बार बुझावे । और जो शीशे का किट्ट बचता जाय उसमें गुड़ नवसादर डाल कर तपाने से जो सीसा बह कर इकट्ठा होता जाय उसे भी शोधता जाय । जब पाँचों चीजों में पैंतीस बार बुझने से सीसा शुद्ध हो जाय तब इसी की तो सलाई बनवा ले जिससे अञ्जन लगाया जायगा। और इस सीसे को अग्नि पर पिलघा (टिलघा) कर समान २ भाग शुद्ध पारा व गन्धक और दोनों से द्विगुण शुद्ध काला सुरमा मिला कर इतना बारीक घोटे कि जिसके आँजन से नेत्र में कड़के (गड़े) नहीं । बाद पारद के समान बरास या भीमसेनी कपूर मिला कर घोटे । इस ठंडे सुरमा के नित्य लगाने से नेत्र सम्बन्धी शिकायत कभी नहीं हो और नेत्र के अनेक रोग नष्ट हों । इस अञ्जन की तो क्या बात है ? शास्त्रकार तो इस प्रकार शोधे हुए सीसे की सलाई के ही विषय में लिखते हैं कि—"सञ्जना

ञ्जना वा" अर्थात् इस सलाई को अञ्जन के साथ लगावे या केवल सलाई को ही नेत्र में फेरा करे तो नेत्र को परम हित करे।

किसी वैद्यराज की सम्मति है कि नेत्रपीयूषाञ्जन में पारद से अष्टमांश भूँना हुआ तूतिया भी डालना चाहिये, क्यों कि तूतिया में स्रावण रोपण पूरण प्रसादनादि अनेक गुण हैं। हाँ? यह कहना अच्छा ही है, तूतिया के बहुत गुण देखे जाते हैं जैसे—मुख में कैसे ही छाले पड़ गये हों कि जिसके मारे बोला भी न जाय, खाया भी न जाय, उस अवस्था में भूँने हुए तूतिया के समानभाग गेरू मिला कर छटाँक भर गरम पानी में डाल कर मुख में दो मिनट रख कर कुल्ला कर देने से ही मुख के छाले जाने कहाँ चम्पत हो जाते हैं। तथा नेत्राञ्जन, सुजाक, गर्मी के घाव आदि अनेक कार्यों में तूतिया का गुण छिपा हुआ नहीं है।

भीमसेनी कपूर की विधि—

कपूर ८ तोले, छोटी इलायची के दाने २ तोले, समुद्रफेन १ तोला, रसौत १ तोला, केसर ६ मासे, कस्तूरी ३ मासे, नागरमोथा १ तोला, निर्मली (कतक) १ तोला, अगर १ तोला इन ९ चीजों को गुलाब-जल में खूब बारीक पीस कर एक पूड़ी के समान चौड़ी टिकिया बना कर कांसी की थाली में रख कर ऊपर से कांसी का कटोरा ढांक दे, और उरद के चून (आटे) को गरम पानी में सान कर थाली व कटोरा की सन्द में मुद्रा करके नीचे घृत का दीपक जला कर एक पहर अग्नि दे। अग्नि की कलिका तर्जनी अङ्गुली के समान मोटी होनी चाहिये। और कटोरा के ऊपर पानी का भीगा हुआ कपड़ा आठ परत करके ढाँक दिया जाय। यदि कुछ सूखा सा होने लगे तो थोड़ा थोड़ा पानी का टपका डालता रहे। एक पहर के बाद स्वाङ्ग-शीतल होने से कटोरे के पेंदे में लगे हुए भीमसेनी कपूर को निकाल ले। नेत्राञ्जन में या चन्द्रोदयादि रसों में इसी को डाला करते हैं। यह भीमसेनी कपूर नेत्रों का परम हितकारी एवं शरीर का पौष्टिक है।

प्रसूतस्त्रीबाल चिकित्सा —

प्रसूतनारी दशमूलजातं
काथं सचन्द्रोदयराजमत्तु ।
वराकषायेण च धौतयोनि-
श्चन्द्रोदयाऽऽसेवीभवेत्तु बालः ॥ १ ॥

प्रसूता स्त्री, दशमूल (शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, बेलगिरी, अरनी, सोनापाठा, कंभारी, पाढल) के काथ को पीकर ऊपर से १ रत्ती चन्द्रोदय या षड्गुण गन्धकजारित स्वर्ण-सिन्दूर मधु के साथ या पान में खाया करे, और त्रिफला के काढे से योनि को अन्दर व बाहर पिचकारी से धोया करे तो कोई विकार नहीं हो, और जात विकार शान्त हो जाँय । परन्तु बच्चों के लिये चन्द्रोदय एक चावल भर मधु विषम (मधु से कम या अधिक) घृत के साथ देना अत्युत्तम है ॥ १ ॥

ग्रन्थोपसंहारः—

कैःकैश्चिदज्ञैरपि मामकीनं
धनं क्रियासिद्धिमिषेण भुक्तम् ।
भस्मापि नीतं तदपि व्यरंसं
नाहं क्रियाया व्यसनानुरागात् ॥ १ ॥

यस्यार्थराशिर्विपुलोऽस्ति गेहे
स तस्करैर्लुण्ठ्यतइत्यवैमि ।
दृष्टःश्रुतो वा नहि भैक्ष्यभोजी
विलुण्ठ्यमानः खलु चौरसङ्घैः ॥ २ ॥

आदाय शास्त्रस्य मतं बुधां च
परिश्रमं बुद्धिबलं च शश्वत् ।

ग्रन्थे कृतेऽप्यत्र यदि प्रमादा-
त्कापि त्रुटिःस्याद् विबुधैरुपेक्ष्या ॥३॥
योह्यश्वमारोहति युद्धकर्मा
स्खलत्यपि क्वापि कदापि भूमौ ।
गृहीतसंपेषणिका वराकी
योषित् पतन्ती क्च केन दृष्टा ? ॥ ४ ॥
आतुरसन्तोषार्थं वैद्यकशास्त्रोन्निनंसया चापि ।
भवतु सूतपरिचर्य्या भिषक्सपर्या मदीयेयम् ॥ ५ ॥

भूमिमुन्यङ्कचन्द्राब्दे वैक्रमे भौमवासरे ।
पौषे पक्षे सिते षष्ठ्यां ग्रन्थः पूर्त्तिमगादयम् ॥

(पौष सुदि ६ सं० १९७१ मङ्गलवार)

इति रसायनशास्त्रि पण्डित श्यामसुन्दराचार्य वैश्य कृते रसायनसार ग्रन्थ भागपञ्चके प्रथमो भागः । शिवार्पणमस्तु ।

रसायनसार ग्रन्थान्ते मंगलम्-

पद्मबन्धश्लोकः—

मास्यरसाऽप्रमादाय यदाऽऽमाधानशालिमा ।
मालिशालाधमालोकाकालोमायाशिरस्यमा ॥१॥

व्याख्या—अयि अल्पवयस्क ! यदाऽऽमाधानेन अपरिपक्वरसरक्तादिप्राप्त्या शाल्यते तच्छीला मा सौन्दर्य्यं जायते तदाऽप्रमादाय चित्तस्थैर्यलाभाय अस्य समक्षवर्त्तिकामसेवनादेः 'कर्मणः संबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी' मारस-न भुङ्क्ष्व । वीर्यपरिपाकमन्तरेण कामादिसेवनं विषायितमित्यर्थः । तत्कारणीभूताऽधमजनसङ्गेन महानर्थागम आपतेदित्याह मालीति । मालिनां रलयोः सावर्ण्यान्मारवतां कामिनां शालायां सदस्यधमानां दुःसङ्गिनामालोकेन सङ्गेनाऽकालोऽकालमरणरूपा मायाऽघटघटनापटीयसीश्वरशक्तिः शिरसिअमा तद्दुःसङ्गेन सहैव तत्कालमेवेत्यर्थः स्यादिति शेषः । यदि जिजीविषास्ति तदा लम्पटानां सङ्गं दूरतः परिहरेति बालानामुपदेशः ॥ १ ॥

अर्थ—आरोग्य के लिये ही आयुर्वेद शास्त्र का उपदेश है; उस आरोग्य का प्रधान कारण ब्रह्मचर्य पालन ही है इसलिये पद्मपठित

श्लोक में ब्रह्मचर्य का ही उपदेश किया जाता है कि—अरे विद्याभ्यासि बालकों ! यदि तुमको अपने चित्त को स्थिर करके कुछ दिन काम करना है, तो जब तक तुम्हारे रस रक्तादि शुक्र पर्य्यन्त सर्व धातु परिपक्व नहीं हों, तब तक बुद्धि के बिगाड़ने वाले कामादिकों के सेवन की तरफ मत झुको । और विशेष करके उधर की तरफ झुकाने वाले काम लम्पट अधम लोगों का जहाँ पर सञ्चार हो उधर की तरफ नजर उठा कर भी मत देखो । क्यों कि *"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते"* इस भगवद्वाक्य से निश्चय है कि विषयों का ध्यान होने पर पुरुष का उनमें अत्यन्त प्रेम हो जाता है जिससे वह किसी भी दीन का नहीं रहता । अरे प्यारे बालकों ! यदि इस उपदेश को तुम नहीं मानोगे तो पूर्ण अवस्था नहीं भोग कर, शीघ्र ही अकालमृत्यु को प्राप्त करोगे ॥१॥

द्वितीय व्याख्या— रसे पारदे विषये अप्रमामज्ञानं द्यति खण्डयति एवंभूत आयो बोधो यस्य तत्संबुद्धौ हे रसाऽप्रमादाय ! चन्द्रोदयादिनिर्माणकुशलवैद्यवर ! यत् आमाधानशालि अग्निक्रमभङ्गेनाऽपरिपक्वमौषधं स्यात् तन्माऽस्य न क्षिप (असु क्षेपणे) नोदास्वेत्यर्थः । कर्मणि देवसहायतां दर्शयति मेति-यतो लिशालायां श्रमशालायां रसायनशालायामित्यर्थः (लिःश्रमेऽन्ते विनाशे च साम्ये चैक्येपि दृश्यते) यो धम औषधपरीपाकस्तदालोकेनैव कृपाकटाक्षदृष्ट्याऽकं दुःखमालाति गृह्णातीति लिशालाधमालोकाकाला एवंभूता या उमा रससिद्धिप्रदा भगवती सा (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्) शिरस्यमा शिरसिजाता शिरस्या मा शिरोघ्राणरूपं मातृत्वं वात्सल्यं यस्या इति मामाः न जानासि ? औषधपरिपाकाभावेपि भगवतो विश्वासेन कर्मैव कुरु इति प्रघट्टकार्थः ॥ १ ॥

दूसरा अर्थ—*"तुरी चढंता गिरें, गिरें क्या पीसनहारी । धनवंता सब लूटें, लूटें नहीं सुने भिखारी"* इस कहावत से यह प्रसिद्ध है कि

चढ़ेगा सो गिरेगा भी । इस लिये वैद्यराज महाशय ! रस-क्रिया में कुशल होने पर भी कदाचित् कथञ्चित चन्द्रोदयादि रस के परिपाक करते समय, अग्नि क्रम के भङ्ग होने से शीशी का रस कच्चा निकले, तो आप उसको फेंक कर उदास न होंय; किन्तु उसके पकाने में पुनः यत्न करें। और यह विश्वास रखें कि रसायनशाला की अधिष्ठात्री देवता शङ्करजी की अर्द्धाङ्गी, माता भगवती हमारे सिर पर जब पूर्ण-वात्सल्य भाव से विराजमान हैं, तो अब नहीं तो फिर हम कृतकृत्य होंगे। अर्थात् जब धनी लोगों के सेवक भी हीनावस्था को नहीं भोगते, और किसी कार्य में पराभव नहीं पाते, तो परमेश्वर-सेवी किस प्रकार फल से शून्य रह सकता है ? ॥ १ ॥

चक्राऽरश्लोकौ— **चक्रनेमिश्लोकः—**

रसेन्द्रसिद्धिः कुशलप्रम**श्री**-	*	**श्री**पतिदृ**श्या**-
साधूत्तमैस्त्वां-यदि- पात्रप**श्या**		**श्या**नसुपद्**म**-
यत्नैश्च पुण्यैश्च कदापि ना**म**		**म**ध्ययिया**सुं**
नतैः सुनीता कृतितां विधित्**सुं**		**सुं**भितमोद् !
शाधि त्वमेनामितराँश्च धी**द्** !		**द्**क्षविचा**रा**-
लाभर्द्धिरेषाम ऽ लघु–प्रचा**रा**		**रा**धितचर्**चा**
कामं भवेदेव च विद्वदर्**चा**		**चा**कय मेऽ**र्य**-
शिक्षाक्रमैः स्या बहुबुद्धिरा**र्य** !॥२॥३॥		**र्य**स्य मनः**श्री** ॥४॥

चक्राऽरश्लोकयोर्व्याख्या—

व्याख्या—अयि भिषक्चक्रचूड़ामणे ! रसेन्द्रसिद्धिश्चन्द्रोदयादिनिर्माण–पारदभस्मीकरण–बन्धनादिरूपा यदि नतैर्नमस्कृतैः कुशलप्रमश्रीसाधूत्तमैर्यथार्थक्रियाक्रमविज्ञमहात्मप्रवरैः कर्तृभिर्यत्नैर्महाप्रयासैः, पुण्यैश्च पूर्वजन्मार्जितसुकृतसम्भारैः कृत्वा कदापि नाम कृतितां विधित्सुं कौशलं चिकीर्षुं त्वां

नीता स्यात् "प्रधाने नीहृकृष्वहामि" ति प्रधानकर्मणिक्तः । पात्रे ह्युपदेशः फलतीति सापि पात्रं पश्यतीति पात्रपश्या ("पाघ्रे" ति शःप्रत्ययः "पाघ्रे" तिपश्यादेशश्च) एनां रसेन्द्र सिद्धिं त्वमितरांश्च लोकान् शाधि "शाहौ" इतिशादेशः शिक्षय । नह्येकाकिना भुक्तं फलं शोभते इति भावः । हे धीद ! बुद्धिप्रद ! एषां तवशिष्यानां लाभर्द्धिः पारदसिद्धिप्राप्तिसम्पत् अलघुप्रचारा महाप्रचारा स्यादितिशेषः । यदि तवशिष्या रसक्रियायां कुशलाः स्युस्तदा तेप्यन्याञ्छासतो बहु तां प्रचरिष्यन्तीत्यर्थः । नत्वेतावानेव लाभः किन्तु जगज्जात प्राणोद्धर्त्तृ रसबोधप्रचारेण विदुषामर्चा पूजा च कामं पर्याप्त-रूपा भवेदेव । किञ्च "गोक्षीरं वाटिकापुष्पं विद्या कूपोदकं धनं, दानेन वर्द्धते नित्यमदानेन विनश्यति" इति न्याया-च्छिक्षाक्रमैराद्यन्तसूतक्रियाध्यापनपरम्पराभिः आर्य विचार-शील ! त्वमपि पूर्वापेक्षया बहुबुद्धिः स्याः । निष्कपट-बुद्ध्याऽध्यापनक्रियाभिः स्वयं रसक्रियामधिचरीकृदनुगृहाण लोकानितिभावः ॥ २ ॥ ३ ॥

अर्थ— हे कृपाशील शिष्यवत्सल वैद्यरत्नजन ! आप बहुत दिन से गवेषणा में लगे हो कि हम पारद को सिद्धि करके कुशल हो जाँय; परन्तु यह भी सिद्धान्त है कि शुद्धान्तःकरण से जो मनुष्य भारी काम में प्रवृत्त होता है, उसकी परमात्मा कभी न कभी सुनते ही हैं । इसलिये यत्न करते करते, विशिष्ट ज्ञानी महात्मा लोगों की सेवा से, और जन्मा-न्तरार्जितपुण्यपरिपाक से कदाचित् आप लोगों को पारदसिद्धि (चन्द्रो-दयादि बनाना, पारदभस्म विधि, पारद बन्धन विधि, आदि लोकोपकारक वस्तुओं की सिद्धि) यदि प्राप्त हो जाय, तो इसको अन्य मनुष्यों को भी अवश्य सिखलाइयेगा । क्यों कि इन लोगों को भी पारदसिद्धि की प्राप्ति होने से आयुर्वेद विद्या का बहुत प्रचार होगा । और सभी लोग

यह चाहते हैं कि हम विद्वानों की सेवा करके कुछ देशभक्ति करें; सो यह मनोरथ भी अपनी जानी हुई विद्या के सिखलाने से भलीभांति सिद्ध हो जायगा। क्यों कि *"अन्नदानं महादानं विद्यादानं ततोऽधिकम् अन्नेन क्षणिका तुष्टियावज्जीवं तु विद्यया। विद्यादानैः समं नास्ति पुण्यं पाथेयसाधनं संसारपथखिन्नानाममुत्रेह च शर्म्मकृत्"* इस न्याय से विद्या सिखलाने के समान संसार समुद्र से पार उतरने के लिये दूसरा साधन नहीं है। और रसेन्द्र-सिद्धि के प्रकाश करने से केवल पूर्वोक्त ही लाभ नहीं है; किन्तु आप लोगों का ज्ञान भी पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक हो जायगा। सङ्कुचित हृदय मनुष्य ही ऐसा समझते हैं कि यदि हम अपनी दुखार्जित विद्या को अन्य मनुष्यों को सिखलावेंगे तो हमारी विद्या दूसरे मनुष्यों के पास चली जायगी, इस लिये नहीं सिखलाना अच्छा है। परन्तु वे लोग कालान्तर में स्वयं विस्मृतविद्य होकर अज्ञों के समान हो बैठते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

चक्रनेमिश्लोकस्य व्याख्या—

हे सुंभितमोद! शोभितानन्द परमात्मन्! श्रीपतिना त्वया दृश्याभिः (कीर्त्ति–दया-क्षमा-धृतिभिर्दैवसम्पद्भिरोंकारमुपासीनाभिः) अश्यानं पोषितं यत् सुपद्मं तन्मध्ये यियासुं प्राप्तोच्छाशीलाम् (चित्रपद्मवर्त्तिनीं पद्मालयां "मा" शब्द-बोधितां लक्ष्मीम्) मे मच्चं चाकय प्रसादयेत्यर्थः (चक तृप्तौ प्रतीघातेचेतिण्यान्ताद् धातोर्मध्यमपुरुषैकवचनम्) कीर्त्ति-दया-क्षमा-धृतिमत्स्वेव लक्ष्मीः प्रसीदतीतिभावः। दक्षविचारैर्महाबुद्धिशालिभिराराधिताऽहर्निशं विमर्षिता चर्चा तत्प्रसादनोपायो यस्याः सा श्री लक्ष्मीः पुनः (उणादौ ङीप्प्रत्ययान्तोपि श्रीशब्दःसाधितः) अरीणां बाह्याभ्यन्तरशत्रूणाम् अर्य्यस्य स्वामिनः सतः (अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः) इति सूत्रेण साधुः। मे मम मनः चाकयतु (विभक्तेर्विपरिणामोऽर्थ-

वशात्) तर्पयतु । इहलोके शरीरयात्रानिर्वाहेण परत्र च श्रीमन्नारायणशरणप्राप्त्या प्रसादयत्वित्यर्थः ।

अर्थ— हे सच्चिदानन्द ! आप अपनी विभूति— (मन्दिरों की ध्वजाओं पर विराजी हुई कीर्ति- दया- क्षमा- धृति) यों करके ओंकारोपासना श्लोकों द्वारा पोषित किये हुए, मनोहर पद्म के मध्य में विराजी हुई "मा" लक्ष्मी को मेरे ऊपर प्रसन्न करें । अभिप्राय यह है कि जो पुरुष कीर्ति- दया- क्षमा- धृति का प्रेमी है, उसी धर्म्मात्मा के लिये परमेश्वर लक्ष्मी को प्रदान करते हैं । और जिसके अन्वेषण में बड़े बड़े विचारवान् पुरुष लगे हुए हैं, वह लक्ष्मी भी मेरे मन को प्रसन्न करे । अर्थात् इस लोक में शरीर का निर्वाह कराके धर्म्मार्जन द्वारा परमात्मा की प्राप्ति प्रदान करे । तात्पर्य यह है कि धर्म्मात्मा पुरुष को ही लक्ष्मी देवी सुख देती है । अन्यथा कोई प्रकार से लक्ष्मी को पाकर भी मदोन्मत्त होकर जो पुरुष दया धर्म्म परायण नहीं होते, उनके शरीर में रोग होने से अथवा चोरी या आग लग जाने से, वे लक्ष्मी का सुख नहीं भोग सकते ॥ ४ ॥
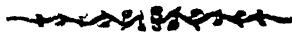
ओँकारोपासना

(मोक्षस्य सोपानचतुष्टयम्)

अकारमुपास्ते कीर्त्तिदेवी—

रसर्क्प्रजेशोपनिषत्प्रदीप–गार्हाग्निषु व्याप्तमकारमंशैः ।
इवान्तरिक्षादिषु चापि कीर्त्तिः दृश्यं च दध्याविह चेतनेप्सा १

व्याख्या—"प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा पृथिव्यकारः सा ऋग्भिर्ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः" इत्यादि माण्डूक्यनृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषन्मन्त्रप्रामाण्यात् ओंकारस्य प्रथमा मात्राऽकारः । सः रसा (पृथिवी), ऋक् (ऋग्वेदः), प्रजेशः

(ब्रह्मा), उपनिषत्प्रदीपः (गायत्री), गार्हाग्निः (गार्हपत्याग्निः), एतेषु पञ्चसु व्याप्तः "आप्नोतीत्यकारः, आदित्वाद्वाऽकारः" इतिश्रुत्या मोक्षस्य प्रथमसोपानत्वाच्चेतनाऽचेतनसंसृष्टिरूपेण बोधकारकः। तथांऽशैरास्वादमयीभिः स्वप्रभाभिरिव तु अन्तरिक्षादिषु (उकारमकाराऽर्द्धचन्द्रविषयेषु अन्तरिक्षद्योसोम–यजुःसामाथर्व–विष्णुरुद्रविराट्–त्रिष्टुब्जगतीभास्वती,—दक्षिणाहवनीयसंवर्त्तकाग्निषु च व्याप्तः (अल्पाभासमानाऽऽस्वादकत्वरूपेण च प्रवर्त्तकः; दृश्ये पाञ्चभौतिकस्थूलशरीरे जाग्रदवस्थायाञ्च व्याप्तः। अंशैरव्यक्तभाभिस्तु स्वप्नसुषुप्तितुरीयाऽवस्थासूकारमकारार्द्धचन्द्रविषयभूतासु सूक्ष्म वीजसाक्षित्वरूपेण व्याप्तः। एवंभूतमऽकारं कीर्त्तिर्देवी चेतनेप्सा (ब्रह्मपदमारुरुक्षुः) सती इह [ओंकारोपासनायाम्] दध्यौ सर्वं जगद् अकारात्मकत्वेनाऽकारं चात्मरूपेण पश्यन्ती समाधिपरा बभूवेत्यर्थः ॥ १ ॥

अर्थ— ओंकार की उपासना करने वाले साधक लोगों के हितार्थ माण्डूक्यनृसिंहपूर्वोपतापनीयोपनिषद् की श्रुतियों ने मोक्षमन्दिर (ब्रह्मपद) की प्राप्ति के लिये अकार, उकार, मकार, और अर्द्धचन्द्राकार ये चार ओंकार के अवयवरूप मोक्ष की चार सोपान (सीढ़ियाँ) रखी हैं। जिस पुरुष के पहिली सीढी हस्तगत हो जाती है, वह दूसरी सीढी का अधिकारी हो सकता है। इसी क्रम के अनुसार ब्रह्मपदारुरुक्षु पुरुष चारों सीढियों को यदि हस्तगत करले, तो भली भांति मोक्षपद (ब्रह्मपद) को प्राप्त हो सकता है। वेद के नियमानुसार कीर्त्ति देवी आयुर्वेद के प्रथमोपदेष्टा ब्रह्माजी के मन्दिर की ध्वजा पर बैठी हुई ब्रह्मपद की प्रथम सीढी आकार की उपासना करती है— "प्रणवस्य या पूर्वामात्रा पृथिव्यकारः" इत्यादि नृसिंहपूर्वोपतापनीयोपनिषद् की श्रुति को देखने से यह निश्चय होता है कि अकार की उपासना करने से पृथिवी, ऋग्वेद, गायत्री छन्द, गार्हपत्याग्नि, पाञ्चभौतिक शरीर,

जाग्रत् अवस्था-स्वरूप ब्रह्म के स्थूलरूप (जड़ चेतन मिले हुए स्वरूप) का तो पूर्णरूपतया ज्ञान हो जाता है। और उकार मकार और अर्द्ध चन्द्राकार से जिन जिन विषयों का ज्ञान होने वाला था, उन (अन्तरिक्ष स्वर्ग-सोमलोक यजुः सामअथर्ववेद, विष्णु रुद्र विराट् देवता, त्रिष्टुप् जगती, भास्वती छन्द, दक्षिणआहवनीय-संवर्त्तकअग्नि, स्वप्नसुषुप्तितुरीयावस्था, सूक्ष्मबीजसाक्षिस्वरूप) इतनी वस्तुओं का भी अव्यक्त रूप से ज्ञानाऽऽस्वाद भासता है। इसमें प्रमाण यह है कि उक्त श्रुति ने आकार को जगन्मय बतला कर, अकार की यह व्युत्पत्ति की है कि "आदित्वात् अकारः" "आप्नोतीत्यकारः" अर्थात् अकार मोक्ष की पहिली सीढी है। इसी लिये असावधान पुरुष इससे गिर भी सकता है। और यह जड़ चेतन का सामान्य रूप से ज्ञान करा कर, और उकार, मकार अर्द्धचन्द्र के विषयों का भी अव्यक्ताह्लादरूप से ज्ञान करा कर सर्वज्ञ बना देता है। जीवात्मा की भी उक्त श्रुति में चार अवस्था मानी हैं— स्थूल शरीरावस्था (जागृदवस्था) सूक्ष्मशरीरावस्था (स्वप्नावस्था) वीजशरीरावस्था (सुषुप्ति अवस्था जिसमें न तो जागृद-वस्था का कार्य्य शरीर सम्बन्धी खान पानादि ही है, और न स्वप्नावस्था के कार्य मनः सम्बन्धी विषय भोग हैं। किन्तु सर्व्व विषयों की विस्मृति-रूप अज्ञानावस्था), और चौथी साक्षी अवस्था (जो कि शुद्ध चेतन चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप, और तीनों अवस्थाओं की दशा का तटस्थ-रूप से देखने वाला निर्विकार चेतन स्वरूप है। जिसकी प्राप्ति के सामने सम्पूर्ण संसार का सुख तृण के समान भी नहीं है)। इस चौथी अवस्था के स्पष्ट रूप से समझने के लिये यह दृष्टान्त है कि—

किसी ब्राह्मण के एक स्त्री और दूसरा परम सुपात्र तरुण पुत्र था। वह ब्राह्मण स्वप्न देखता है कि पुत्र मर गया। तब बिरादरी के लोगों ने कह सुन कर दूसरी शादी करादी। उस ब्राह्मणी के भी दो पुत्र हुए। वे भी पढ़े लिखे परम सुपात्र तैयार हुए। फिर देखता है कि उन दोनों पुत्रों का भी स्वर्गवास हो गया। तब तो ब्राह्मण को बड़ा क्लेश हुआ। उसी क्लेश से पीड़ित होकर उसी स्वप्नावस्था में रुदन कर रहा था। इधर जागृदवस्था का जो सुपात्र पुत्र था; उसका सचमुच

अन्तकाल हो गया। तब ब्राह्मणी ने अपने पति को जगाया, और कहा कि हमारी तो सम्पूर्ण सम्पत्ति लुट गई। ब्राह्मण बड़ा आश्चर्य में पड़ गया कि स्वप्नाऽवस्था के दो बेटे, और जागृद्वस्था का एक बेटा, ये तीनों ही मुझको परम प्रिय थे। अब मैं किसका शोक करूँ ? ब्राह्मणी ने पूछा कि आप विचारने क्या लगे ? यहाँ तो सर्वस्व नाश हो गया, और तुमको कुछ भी शोक नहीं, इसका क्या कारण है ? ब्राह्मण ने स्वप्नावस्था की सब कथा कह सुनाई। और पूछा कि तू एक पुत्र का शोक मनवाती है कि दो का ? ब्राह्मणी ने उत्तर दिया कि स्वप्नावस्था के दो पुत्र तो मिथ्या थे; जागृद्वस्था का जो सच्चा पुत्र था; उसीका शोक करो। परमेश्वर की कृपा से ब्राह्मण की दृष्टि लक्ष्य पर पहुँच गई; और ब्राह्मणी को उत्तर दिया कि देवि ! मुझे स्वप्नावस्था में वे दो पुत्र ही सत्य प्रतीत होते थे, और यह मिथ्या प्रतीत होता था। जागने पर यही पुत्र सत्य भासता है। इससे मुझे तो निश्चय हो गया कि तीनों ही पुत्र मिथ्या हैं। मैं तो अब साक्षीअवस्था [तुरीयाऽवस्था] का सेवन करूंगा; जहाँ पर ऐसे बखेड़ों का नाम भी न सुना जाय।

बस इसी दृष्टान्त से चतुर्थाऽवस्था का पूरा पता लग जाता है, जहाँ पर बाह्य प्रपञ्च के कार्यों की गन्ध भी नहीं पहुँचती। किन्तु *"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी"* इस भगवद्-वाक्य से परम जागरूक चैतन्याऽवस्था में रह कर आन्तर्यसमाधिकृत्य हुआ करते हैं। उक्त पहिली अवस्था तो अकार का मुख्य विषय है, बाकी तीन अवस्था गौण विषय हैं। अर्थात् जो कुछ जगत में विख्यात वस्तु हैं, वे सब कुछ अकार रूप ही हैं। क्यों कि *"आप्नोतीत्यकारः"* अर्थात् सम्पूर्ण जगत् को प्राप्त होने वाला ओंकार का अकार है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मपद को आरुरुक्षु प्राणियों के लिये मोक्षरूपी महल पर चढ़ने के लिये यह पहिली सीढ़ी है। इस प्रकार कीर्त्तिदेवी जगत् को अकारमय देखती हुई, और उस अकार के साथ अपने आत्मा में अभेद भावना करती हुई, क्रम से उकार मकार अर्द्धचन्द्राकार की उपासना रूपी सोपान [सीढियों] से पार उतर कर ब्रह्मस्वरूप बनने के लिये ओंकार की उपासना में लगी है। इस प्रकार उपासना को करती हुई

कीर्त्तिदेवी आत्मार्थी संसार के जनों को सिखलाती है कि जो मनुष्य संसाराग्नि से निर्मुक्त होना चाहे, वह अनेक मन्त्रों की उपासना में नहीं भटक कर सर्व्व-शास्त्र और सर्व-लोक के सारभूत ओंकार की ही शरण ले।

लोक-व्यवहार में भी देखा जाता है, कि जो विद्यार्थी केवल लघुकौमुदी रघुवंश-काव्य पढ़ कर वेद वेदाङ्गों का अर्थ गुरुमुख से नहीं श्रवण करके भी स्वयं पाठ करने लगता है, तो उस अभ्यास-पुण्य से अन्तःकरण इतना शुद्ध हो जाता है, जिससे वेद वेदाङ्गों का अर्थ अव्यक्तानन्दरूप से कुछ २ भासने लगता है। इसी प्रकार अकार की उपासना करने वाली कीर्त्तिदेवी के भी शुद्धान्तःकरण में उकार मकार अर्द्धचन्द्रकारों के विषयभूत अन्तरिक्ष स्वर्ग सोमलोकादि पदार्थों का अव्यक्तरूप से प्रकाश होना युक्ति-सिद्ध है, और अगाड़ी चढ़ने का उत्साह-दायक उपाय है ॥१॥

उकारमुपास्ते दयादेवी—

यथाविधि व्योममुखं दयाऽप्यनू-
पास्त नाकादि कटाक्षयन्ती।
उत्कर्षकोकारमुपारुरुक्षुः
याताऽनुरागं च जनार्दनेन ॥२॥

व्याख्या—"द्वितीयान्तरिक्षं स उकारःस यजुर्भिर्यजुर्वेदो विष्णूरुद्रास्त्रिष्टुब् दक्षिणाग्निः 'स साम्नो द्वितीयः पादो भवति" इति श्रौतप्रामाण्यात् ओंकारस्य द्वितीया मात्रा उकारः साच यथाविधि पूर्वोक्तरीत्या व्योममुखम् अन्तरिक्षादि। साक्षाद्रूपेण अन्तरिक्षलोक-यजुर्वेद-विष्णुदेवता-त्रिष्टुपछन्दो-दक्षिणाग्निस्वरूपः। अंशैश्च मकाराऽर्द्धचन्द्राकार-विषयान् द्योसोमलोक–सामाथर्व-रुद्र विराड्-जगती भास्वती आहवनीयसंवर्तक-बीजसाक्षि-सुषुप्तितुरीयावस्थासूत्कर्षको य उकारस्तमप्यनूपास्त दयादेवी। अयमभिप्रायः "उभयत्वादु-

कार उत्कर्षतीत्युकारः” इतिश्रुत्युक्तव्युत्पत्त्या द्वितीयसोपानमारूढानामसावधानानां पातभीतिः स्यात्। जडचेनसामान्यरूपेण ज्ञातेषु पदार्थजातेषु जडचेतने विविच्य ज्ञानं ददात्युकारः। अस्मिन् द्वितीयसोपानेऽपि हेयोपादेयतारूपा विशेषतृप्तिर्न जायते किन्तु आह्लादातिशयेन ब्रह्मपदारुरुक्षा भवतीति। एवमुकारमुपासीना दयादेवी “अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवः” इति सुश्रुतप्रामाण्यात् शल्यचिकित्साप्रधानीभूताऽऽयुर्वेदोपदेष्टृधन्वन्तरिबद्धानुरागा सती तदीयध्वजमध्यास्तइत्यर्थः ॥ २ ॥

अर्थ—“*द्वितीयान्तरिक्षं सउकारः*” इस मण्डूक्यनृसिंहोपतापनीय श्रुति के प्रामाण्य से अकारोपासना के अनुसार अन्तरिक्षलोक, यजुर्वेद विष्णुदेवता, त्रिष्टुप् छन्दः, दक्षिणाग्नि, स्वप्नाऽवस्था, और सूक्ष्मशरीर को तो उकार अभिधाशक्ति से बोधन करता है। और लक्षणावृत्ति से स्वर्ग, सोमलोक, सामाऽथर्ववेद, रुद्रविराट्देवता, जगती भास्वती छन्द, आहवनीय संवर्तक अग्नि, सुषुप्तितुरीयावस्था, तथा बीज साक्षियों को बोधन करता है। तात्पर्य यह है कि “*उभयत्वादुकारः*” “*उत्कर्षतीत्युकारः*” इन दो व्युत्पत्तियों में प्रथम व्युत्पति से यह दिखलाया है कि उकार की उपासना करने वाले पुरुष ने मोक्ष की दो सीढ़ियों को तो अवश्य हस्तगत की हैं। और अग्रिम दो सीढ़ियों के आनन्द का अव्यक्त-रूप से ज्ञान करके ऊपर चढ़ने का उत्साह प्राप्त किया है। और जाग्रदवस्था तथा स्थूल-शरीर के साथ अभ्यास को छोड़ कर स्वप्नावस्था और सूक्ष्म-शरीर के साथ रमण करके अपनी उपासना को भी बहुत उच्च कोटि पर चढ़ाई है। इसी वास्ते “*उत्कर्षतीत्युकारः*” यह व्युत्पत्ति भी उकार की स्पष्ट रूपेण अनुभूत होती है। परन्तु जड़ चेतन का पृथक् २ भाग होने पर भी पूर्ण रीति से हेयांश (प्राकृतिक जड़ांश) का परित्याग पूर्वक उपादेयांश (आध्यात्मिक केवल ब्रह्मानन्द) का ग्रहण नहीं होने से असावधानता के कारण द्वितीय सोपानाऽऽरूढ़ योगी च्युत भी हो सकता है। इस प्रकार उपासना करती हुई और शल्य-

चिकित्सा के प्रधानाचार्य्य धन्वन्तरिजी की ध्वजा पर बैठी हुई दया-देवी ब्रह्मपद के आरोहण की इच्छा से साकार-ब्रह्म "विष्णु" की उपासना करती है। क्योंकि सालम्बन समाधि (सम्प्रज्ञातसमाधि) में गिरने से भय बहुत कम रहता है॥ २॥

मकारमुपास्ते क्षमादेवी—

शान्तानुबन्धक्षमया त्वनक्ष—
लोकादिरूपश्च मकारभूमा।
ध्यातो मिनोतीत्यपवर्गमित्रं
चास्मा ययाऽऽरोहणमुक्तिमाला॥ ३॥

व्याख्या—"तृतीया द्यौः स मकारः स सामभिः सामवेदो रुद्रा आदित्या जगत्याऽऽहवनीयः स साम्नस्तृतीयः पादो भवति" इतिश्रुतिप्रामाण्यात् अनक्षलोकादि [अतीन्द्रियस्वर्ग प्रभृति] रूपः, द्योसामरुद्रजगत्याऽऽहवनीयसुषुप्तिवीजस्वरूपश्च, लक्षणया तु सोम लोकाऽथर्ववेदविराड्भास्वतीसंवर्त्तकाऽग्नि-साक्षितुरीयाऽवस्थारूपश्च मकारभूमा [मकारब्रह्म] शान्तो-ऽनुबन्धोजाग्रतस्वप्न—स्थूलसूक्ष्म शरीरात्मकः संसारहेतुर्यस्या एवंभूतया तया क्षमया देव्या ध्यातः। यो हि मकारभूमा मिनोति हेयं प्राकृतांशं क्षिपति चेतनांशमुपादायेत्यपवर्ग-मित्रम्। अपवर्गमित्रत्वं चास्योपासनामारूढानां पातभीतेर-भावादपवर्गजनकत्वेन। प्राप्तमकारोपासनो हि योगीअपवर्ग-मेव लभते, नतु संसारे पातमित्यभिप्रायः। यया क्षमादेव्या शङ्करध्वजासीनयाऽरोहणमुक्तिमाला तृतीयसोपानमोक्षपरम्परा आप्ता स्वायत्तीकृतेत्यर्थः। योगाऽऽरूढ़ा चेयं "युञ्जानयोगिनी," नतु कीर्त्तिदग्नवदारुरुक्षुरिति भावः॥ ३॥

अर्थ—"*तृतीया द्यौः*" इत्यादि श्रुति के अनुसार अभिधावृत्ति से मकार का द्युलोक, सामवेद, रुद्र-देवता, जगतीछन्द, आहवनीयाग्नि, सुषुप्ति-अवस्था, बीजशरीर; और लक्षणावृत्ति से चन्द्रलोक, अथर्ववेद, विराट्‌देवता, भास्वतीछन्द, संवर्त्तकाग्नि, तुरीयावस्था, साक्षिचेतन विषय हैं। इस प्रकार क्षमादेवी शङ्करजी की ध्वजा पर बैठी हुई स्थूल-सूक्ष्म-शरीर को, तथा जागृत स्वप्नअवस्था को त्याग कर, सुषुप्ति अवस्था और बीज शरीर को धारण करती हुई मोक्ष सिद्धि के कारणभूत मकार का ध्यान करती है। क्यों कि "*मिनोतीति मकारः*" इस श्रुति बोधित व्युत्पत्त्यनुसार मकार की उपासना करने वाला योगी प्रकृति पुरुष-मय संसार के स्वरूप को अच्छी तरह जान कर प्राकृतांश को त्याग कर केवल चेतन सम्बन्धी चिदानन्द का आस्वाद करता है। और पुत्र कलत्रादि—सर्व मायिक पदार्थों में घृणा मानता है। इसी लिये क्षमादेवी ने तृतीय सोपान (सीढ़ी) आदि मुक्तिपरम्परा का ग्रहण उत्तम रीति से कर लिया है; अर्थात् इस तृतीय भूमिका से गिरने का भय इसलिये नहीं हो सकता, कि जब संसार के पदार्थों को "*परिणामतापसंस्कार दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः*" इस योग सिद्धान्त से दुःखमय समझ लिया है, तब उनकी तरफ पतन कदापि नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

अर्द्धचन्द्रमुपास्ते धृतिदेवी—

कामानतीता धृतिरिन्दुलोक-
मुखात्मकेन्द्वर्द्धनिमग्नचित्ता ।
निर्दग्धबीजा प्रणवध्वनीनां
मेघाम्बुधारेव ययाऽन्ववेशि ॥४॥

व्याख्या—"*याऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्द्धमात्रा सा सोमलोक ओंकारः सोऽथर्वणैर्मन्त्रैरथर्ववेदः संवर्त्तकोऽग्निर्मरुतो विराडेक ऋषिर्भास्वती सा साम्नश्चतुर्थः पादो भवति*" इति श्रुतिप्रामा-

गयात्सोमलोका–ऽथर्ववेद–संवर्त्तकाग्नि-विराड्देवता-भास्वतीछ-न्दस्तुरीयावस्था–साक्षिस्वरूपेऽर्द्धचन्द्रे ब्रह्मणि पूर्वसोपानत्रयो-त्तीर्णत्वेनानवकाशलक्षणावृत्तिका धृतिदेवी सर्वान्कामान् वाञ्छितार्थान् अतीताऽस्ति । नह्यस्याःकोपि कामःकाम्यता-माधत्ते; यतः “सर्वसंसारिणां सौख्यं संघीभूतं भवेद् यदि । ज्ञान जन्यस्य सौख्यस्य कलां नार्हति षोडशीम्” इत्यभिधा-नात् । अस्या वीजं संसृतिकारणं प्रारब्धं सञ्चितं च कर्माऽपि-निर्दग्धम् । यया धृतिदेव्या प्राणवध्वनीनां संसाराग्निनिष्टप्त-जन्तुदाहनिर्वापणैकस्वरूपमधुराऽव्यक्तौंकारकलरवानां मेघा-म्बूनामिव धाराऽन्ववेशि निर्भुक्ता । “ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दीर्घसंज्ञिता । तृतीया तु प्लुताऽर्द्धाख्या वचसःसा न गोचरा। निर्गम्या योगिगम्या च प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते पिपी-लिकागतिस्पर्शा याऽनुच्चार्या विशेषतः” इत्युक्तेः । ननु प्रारब्ध कर्मणामपि ज्ञानाग्निना निर्दग्धत्वे कथं नित्यमुक्तानां ज्ञानिनां शरीरस्थितिः ? कथंवानिकटसंसाराणां तेभ्यएवोपदेशमुपलभ्य निर्मुमुक्षूणां जिज्ञासूनां “केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्” इतिसांख्योक्त केवलज्ञानप्राप्तिः ? इतिचेद् ब्रूमः–सहस्रजन्मपरम्पराजित-सुकृतसम्भाराणामत्र जन्मनि मोक्षं लप्स्यमानानां जिज्ञासूनां पुण्यसञ्चयो मा नाङ्क्षीदिति "तत्पुण्यैरेव ज्ञानिनां शरीर-स्थितिः। नहि कर्माभावे शरीराभाव इति व्याप्तिः, भगवदवतारे भक्तजनसुकृतैकहेतुके व्यभिचारात् । अतएव ज्ञानाग्निना सर्वकर्मनाशबोधकं “ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते-ऽर्जुन !” इति भगवद्वाक्यमपि संगच्छते । “प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः” इतिश्रुतिस्तु संसरत्कर्मविषया । अन्यथा सर्वशब्दमनुपादाय “ज्ञानाग्निश्चितकर्माणि भस्मसात् कुरुते-ऽर्जुन !” इत्येव वदेद् भगवान्कृष्णचन्द्रः । स्मृत्यर्थपर्यालोच-

नयैव श्रुत्यर्थव्यवस्थेत्यभियुक्ताः । प्रकृते तु वीजस्य लिङ्ग-शरीरस्य कार्मणशरीरापरपर्यायस्य निर्दग्धत्वेऽपि प्रारब्धकर्म हेतुकमेव धृतिशरीरं तिष्ठतु, अतः सिध्यतु च कीर्त्ति-दया-क्षमा-देवीनामुपदेश इति का नः क्षतिः ? । प्रारब्धकर्मणां बीजत्वं तु मोक्षप्रतिबन्धकत्वेन, आमोक्षात्सुखदुःखवेदनाजन-कत्वेन च भाक्तमेव । जैनागमेऽपि "संसारिणो मुक्ताश्च" इतितत्त्वार्थसूत्रे निर्दग्धघातिकर्मणामपि चरमशरीरिणां तीर्थ-कृतां संसारित्वाभिधानं दग्धप्रायत्वेनाऽकिञ्चित्कराणामायु-र्गोत्रनामवेदनीयकर्मणां मुक्तिसुखप्रतिबन्धकत्वेन भाक्तमेव । कथमन्यथा "अनन्तविज्ञानमनन्तदर्शनम् अनन्तसौख्यत्वमन-न्तपौरुषम् । दधाति योऽनन्त चतुष्टयं विभुः स शान्तिनाथो भवदुःखशान्तये" इति केवलिसिद्धयोः साम्यबोधकं तीर्थकृतां स्तवनं संगच्छते ? इति ॥ ४ ॥

अर्थ—"*याऽवसानेऽस्य चतुर्थ्यर्द्धमात्रा*" इस श्रुति के प्रामाण्य से सोमलोक— अथर्ववेद संवर्तकाऽग्नि-विराट्देवता—भास्वतीछन्द—तुरी-याऽवस्था-साक्षीचेतनस्वरूप अर्द्धचन्द्ररूपी ब्रह्म की उपासना करती हुई धृतिदेवी सम्पूर्ण काम्य पदार्थों को निरस्त कर चुकी है, और इसके प्रारब्ध कर्म्म और सञ्चित कर्म्म ये दोनों ही ओंकार ब्रह्म की उपासना से भस्मीभूत हो चुके हैं । इसी लिये सांसारिक घृणित वस्तु पुत्र कल-त्रादि में प्रेम लोकेषणा वित्तेषणा आदि कोई भी पदार्थ इसके चित्त को आकर्षित नहीं कर सकते । किन्तु जिस प्रकार दावाग्नि से पीड़ित जङ्गल के जन्तुओं को मेघ वर्षा परम शान्ति-प्रद और दाहनिर्म्मूलक होती है, और जिसका अनुभव करके वे अनिर्वचनीय आनन्द का आस्वाद करते हैं, उसी प्रकार धृतिदेवी भी संसार-दाह के शान्त होने से ओंकार की उस परमाऽमृत मधुर ध्वनि का आस्वाद करती है। इसी को जीवन-मुक्त अवस्था कहते हैं । यद्यपि माया पिशाची बहुत दूर तक जीवों का पीछा करती है; परन्तु "*मर्त्यो मृत्यु व्यालभीतः पलायन् सर्वांल्लोकान्*

निर्भयं नाऽध्यगच्छत् त्वत्पादाब्जं प्राप्य सदृच्छयाऽद्य । स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति" इस न्याय से जब समझ लेती है कि यह जन परमात्मा की अभय शरणागति को प्राप्त कर चुका, और मायिक काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि अन्तः शत्रुओं को भी ठोकर से ठुकरा चुका है, तब माया भी उसके पास जाने में भयभीत होती है । क्यों कि चिकने घड़े पर ही धूली जमती है, पत्थर के जोंक नहीं चिपटती ॥ ४ ॥

उपासनाश्लोकचतुष्टयस्य तात्पर्य्यम्—

कीर्तिं दयां च निजशिष्यतया विधाय ।
रौद्रे पदे स्थितपदा गतभीः क्षमेयम् ॥
संसारबीजमुपदह्य धृतिस्त्वमुष्याः, ।
शेषं पदं परिदिदृक्षुरिवैति मोक्षम् ॥१॥

उपासना के चारो श्लोकों का तात्पर्य—

अर्थ— अकार के ब्रह्माजी देवता हैं, इसलिये अकार की उपासना करने वाली कीर्त्तिदेवी ब्रह्माजी के मन्दिर की ध्वजा पर बैठ कर अकार की उपासना करती है । ब्रह्माजी का सृष्टि रचना रूप विशेष आडम्बर होने से ब्रह्माजी का कीर्त्ति के साथ अधिक सम्बन्ध है । तात्पर्य यह है किं जो मनुष्य कीर्त्ति के लोभ से भी धर्माचरण करने को भारी परिश्रम उठाते हैं; वे भी मोक्ष की पहली सीढ़ी के अधिकारी हैं । क्यों कि कीर्ति के लिये भी धर्माचरण करना अच्छे पुरुषों का काम है । यद्यपि कीर्ति वासना भी एक दोष है; परन्तु धर्म के प्रसाद से कालान्तर में वह दोष भी निकल जायगा ।

उकार के विष्णु देवता हैं, इसलिये उकार की उपासना करने वाली दयादेवी विष्णु के अवतार भगवान् धन्वन्तरि के मन्दिर पर बैठ कर उकार की उपासना करती है । विष्णु भगवान अपनी दयालुता का अवलम्बन करके संसार का पालन करते हैं, और अमृत का घट हाथ पर रख कर लोक-कल्याणार्थ धन्वन्तरि रूप से अवतीर्ण हुए हैं, इस लिये धन्वन्तरिजी का दया से अधिक सम्बन्ध है । तात्पर्य यह है

कि जो मनुष्य प्रतिष्ठा को सूकरीविष्टा समझ कर जीवमात्र में दया बुद्धि से धर्माचरण करते हैं, वे मोक्ष की द्वितीय सीढ़ी के अधिकारी हैं।

मकार के रुद्र देवता हैं, इसलिये मकार की उपासना करने वाली क्षमादेवी रुद्र (शङ्कर) जी की ध्वजा पर विराज कर मकार की उपासना करती है। प्रथम दो सीढी (अकार उकार की उपासना रूप) तो आरुरुक्षु योगियों की थीं। इस लिये वहाँ से कीर्तिदेवी और दयादेवी को गिरने की भी शङ्का थी। परन्तु क्षमादेवी को गिरने का बिलकुल भय नहीं है। इस लिये कीर्तिदेवी और दयादेवी क्षमादेवी की शिष्य हैं। जैसे रुद्र-भगवान् अपनी क्षमता (सामर्थ्य) से संसार का संहार करके अपने आत्मा में रमण करते हैं; तैसे क्षमादेवी ने भी सर्व प्रपञ्च जाल को काट कर मोक्ष का मार्ग लिया है। इस लिये शङ्कर जी का क्षमा (सामर्थ्य) के साथ अधिक सम्बन्ध है। तात्पर्य यह है कि जो धर्मात्मा पुरुष कीर्त्ति और दया की अपेक्षा नहीं करके केवल अपना कर्त्तव्य समझ कर धर्माचरण करते हैं, वे मोक्ष की तृतीय सीढ़ी के अधिकारी हैं। क्यों कि क्षमाशील पुरुष समझते हैं कि जब हमको परमेश्वर ने सामर्थ्यवान् बनाया है, तब हम अपनी सामर्थ्य से बाज क्यों आवें ?।

अर्द्धचन्द्र के विराट् देवता हैं, इस लिये अर्द्धचन्द्र की उपासना करने वाली धृतिदेवी विराट् स्वरूप शेषावतार भगवान् पतञ्जलि (चरकाचार्य) के मन्दिर की ध्वजा पर बैठी हुई अर्द्धचन्द्र की उपासना करती है। *"पोरपरार्द्धमनिशं परिबम्भ्रमीति ब्रह्माण्डमण्डलमाधि प्रतिरोम यस्य। देवःस एव धृतनिर्भरमास्थितो यं क्षेमङ्करः स भवताद् भगवाननन्तः"* अर्थात् जिसके रोम रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड घूमते फिरते हैं, उस परमेश्वर के उतने भार को लेकर और उतने बड़े ठाकुर को लेकर सोते हैं, और *"शिष्यते शेषसंज्ञः"* इस न्याय से प्रलयकाल में भी विद्यमान रहते हैं; वे महाविराट् मूर्त्ति भगवान् शेषजी आप लोगों के कल्याणकारी हों। इस सिद्धान्त से चरकाचार्य विराट् रूप हैं। धृति के अवलम्बन से ही शेष भगवान् सम्पूर्ण भूमण्डल को धारण करते हैं। इस लिये धृति का शेषजी के साथ अधिक सम्बन्ध है। धृति-

देवी ने संसार पर्यटन के बीजभूत सर्व कर्मों का क्षय करके अपने आत्मरमण को धारण किया है, और युञ्जानयोगिनी क्षमादेवी को भी शेष पद का उपदेश देकर मोक्षपद को धारण किया है, इसलिये यह क्षमादेवी से भी उत्कृष्ट "*युक्तयोगिनी*" है। तात्पर्य यह है कि जिन पुरुषों की संसार वासना नष्ट हो गई है, और अपना कर्त्तव्य शिष्य-प्रशिष्यों को सौंप कर आप केवल मोक्ष प्राप्ति के ही उपाय में लगे हैं; वे नित्यमुक्त "युक्तयोगी" अर्द्धचन्द्र के उपासक सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मस्वरूप महात्मा हैं ॥ १ ॥

धन्यास्तएव भिषजः समुपासते यान्, ।
कीर्त्यादयो यदुपयोगकृते व्यधायि, ॥
एषां त्रिजन्मतऋषिप्रवरैरतस्ते, ।
नारायणत्वपदवीभिरलङ्क्रियन्ते ॥२॥

धन्य है उन वैद्यराजों को जिनमें कीर्ति- दया-क्षमा-धृति आश्रयण करती हैं। तात्पर्य्य यह है कि "*अथाग्निवेशप्रमुखान् विविशुर्ज्ञानदेवताः । बुद्धिः-सिद्धिःस्मृतिर्मेधा धृतिः कीर्तिः क्षमा दया*" इस चरक प्रमाण से कोई वैद्य तो ऐसे होते हैं, जो अपनी कीर्ति के लोभ से चिकित्सा करते हैं। वे भी अच्छे महात्मा हैं। परन्तु उनसे भी उच्चकोटि के वैद्य समझते हैं कि "*प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठा*" इस न्याय से हमें कीर्त्ति से क्या लेना है ? हमको तो जीवमात्र के ऊपर दया करके चिकित्सा करनी चाहिये । जैसा कि—"*अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम् । आयुर्वेदप्रसादेन किन्न दत्तं भवेद्, भुवि । कपिला-कोटिदानादपि यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्फलं कोटिगुणितमेकातुर-चिकित्सया*" । परन्तु इन दोनों से भी उच्चकोटि के वे वैद्य हैं, जो कीर्ति- दया की अपेक्षा नहीं रख कर केवल यह समझते हैं कि हमारे जैसे क्षमताशील (सामर्थ्यवान्) वैद्य रहने पर भी रोगी लोग दुःखी क्यों रहें ? और इसी भाव को पूर्वोक्त दोनों वैद्यों को सिखलाते हुए मोक्ष की तृतीय सोपान पर आरूढ़ होते हैं। परन्तु जिन वैद्यों ने अपने जैसे सामर्थ्यवान् सैकड़ों शिष्य तैयार कर दिये, और अनेक

आयुर्वेदीय शास्त्र बनाकर आयुर्वेद—मार्ग का अच्छी प्रकार परिशोधन कर दिया, तब वे कृतकृत्य होकर धृतिमार्ग का अवलम्बन करके जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त करते हैं। आयुर्वेद-शास्त्र के ब्रह्मा, धन्वन्तरि, शङ्कर, शेषावतार चरकाचार्य पतञ्जलि महर्षि हैं, इस लिये कीर्ति की इच्छा करने वाले ब्रह्माजी के, दयालु वैद्य धन्वन्तरिजी के, क्षमाशील वैद्य शङ्करजी के और धृतिशाली वैद्य शेष भगवान् के उपासक समझे जाते हैं।

कीर्त्ति, दया, क्षमा, और धृति के सम्बन्ध से ही महर्षि लोगों ने *"जन्मना प्रथमं जाताः संस्कारैर्द्विजा मताः। आयुर्वेदैर्द्विजातीनां त्रिजन्मत्वमिति स्थितिः"* इस न्याय से वैद्यों का त्रिजन्मत्व संस्कार कहा है। और इन ही चारों देवियों के सम्बन्ध से *"वैद्यो नारायणो हरिः"* *"पीयूषपाणिः"* *"प्राणाचार्यः"* ऐसी ऐसी पदवियों से वैद्य लोग भूषित किये जाते हैं। और जिन वैद्यों में कीर्त्ति, दया, क्षमा, धृतियों का सम्बन्ध नहीं है, उनके लिये *"वैद्यराज! नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर! यमस्तु हरते प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च"* *"ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षन्ते स्खलन्ति च। खादन्ति ते परप्राणान् निजानि सुकृतानि च"* ऐसे वाक्य रखे हैं ॥२॥

ॐकारसृष्ट्युपासनयोर्बोधनप्रकारः—

ॐकारावयवस्थाऽङ्कैरङ्किताऽवयवा नरः।
गोहस्त्युष्ट्रमीनाद्या वेदमन्त्रैः प्रदर्शिताः ॥१॥

अर्थ— पूर्वोक्त श्रुति समूह ने जगत् को ॐकारमय बतलाया है। उसी पद्धति के अनुसार ॐकार के आठ हिस्से ❀ (अवयव) रखे हैं, और जिन जिन ॐकार के अवयवों से गौ, हाथी, ऊंट, पर्वत, नदी, शिव मंदिर, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, तिलक, शीशी, कमण्डल आदि आदि सृष्टि के पदार्थ बने हैं। उन अवयवों के संख्यांक देकर भी स्पष्ट रूप

❀ ॐकार की सृष्टि को चित्र में देखो। जो इसी "रसायनसार" ग्रन्थ के अन्त में रक्खा है। दूसरा ॐकारोपासना का चित्र भी उसी के पीठ पर है।

से समझाया है जिनके देखने से साफ मालूम होता है कि ॐकार से ही सर्व जगत बना है ॥ १ ॥

प्रणवोपासनायां च श्लोकैरष्टाभिरङ्कितम् ।
चित्रं स्वनामशालाभ्यां ग्रन्थान्ते परिदर्शितम् ॥२॥

"ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयम्" इस न्याय से ॐकारोपासना वाले दूसरे चित्र में, मध्य में तो पद्मबन्धश्लोक रखा है; जिसकी आठ कलियों के अन्तिम भाग पर "रसायनशाला काशि" ये आठ अक्षर निकाले हैं। और चक्र के आराओं में जो दो श्लोकों के आठ पाद हैं, उनका आरम्भ भी क्रमशः इनहीं आठ अक्षरों से होता है। चक्र की नेमि के श्लोक में ४० अक्षर हैं। यह श्लोक "श्री" से उठाया जाता है, और "श्या-म-सुं-द-रा-चा-र्य-" ये सात अक्षर दो दो बार बोले जाते हैं, तब "चम्पकमाला" नामक श्लोक "श्री" पर ही पूरा होता है। रहे ॐकार की उपासना के चार श्लोक, उनमें प्रथम श्लोक का पद्मगत "र" से आरम्भ "सा" पर विश्रान्ति, द्वितीय श्लोक का "य" से आरम्भ "न" पर विश्रान्ति होती है। एवं तृतीय श्लोक का "शा" से आरम्भ "ला" पर विश्रान्ति, चतुर्थ श्लोक का "का" से आरम्भ "शि" पर विश्रान्ति होने से ॐकारोपासना के चारों श्लोक समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार का विचित्र बन्ध आज तक किसी कवि ने नहीं बनाया है। यह मेरा कल्पित है ॥ २ ॥

ॐकारोपासकानामुपदेशः—

भो पान्थ ! निर्वाणपुरीं यियासो !
कान्ताकुचं दुर्गमपास्य गच्छेः
तत्र स्थितस्ते यदि कामचौरो
बुद्धिं हरेत्त्वं हतसाधनःस्याः ॥१॥

अर्थ—ऐ मोक्षपुरी के जाने वाले मुशाफिर! ॐकारोपासना करते समय यदि स्त्रियों के कुचरूपी-पर्वत रास्ते में मिलें, तो उन पर नहीं चढ़ना। किन्तु उनसे बच कर चलना। क्यों कि उन पर्वतों पर कामदेव-रूपी एक चोर रहता है। वह यदि आपकी बुद्धिरूपी सम्पत्ति को चुरा लेगा, तो रास्ते की खर्ची न रहने से मोक्षपुरी के पहुँचने में बड़ी दिक्कत पड़ेगी॥ १॥

भो मोक्षपान्थ! प्रणवोपसेवां
कुर्वन्न जिह्वामतिलालयेथाः।
चित्तं तवाऽश्वं यदि ताडयेत
लोभः कषाभिर्हृतवाहनःस्याः॥२॥

और, ऐ मोक्ष मुशाफिर! जब ओंकारोपासना-रूपी—मोक्षमार्ग में आप चलें, तब यदि भक्त लोग भक्ति में तत्पर होकर हलुआ, पूड़ी, मिठाई आदि अनेक पदार्थों को आपकी भेंट करें, तो जिह्वा का बहुत लालन नहीं करना। नहीं तो लोभरूपी— तस्कर आपके मनरूपी-घोड़े के ऊपर चाबुक फटकारेगा तो आपका मनरूपी-वाहन भाग जायगा जिससे बिना सवारी के मोक्षपुरी में पहुँचना मुसकिल होगा।

तात्पर्य यह है कि जिसका आत्मा प्रबल है, और परमेश्वर की जिसके ऊपर अखण्ड कृपा है, वह ऐन्द्रियक पदार्थों को भोगता हुआ भी "कुर्वन्नपि न लिप्यते" इस भगवद्-वाक्य से संसारासक्त नहीं हो सकता। परन्तु शिश्न-जिह्वा के वश करने से मोक्ष साधन में कोई प्रत्यवाय उपस्थित नहीं होता॥२॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

॥ इति ओंकारचित्रव्याख्या॥

रसायनसार के विषय में कतिपय विद्वानों और समाचार-पत्रों का मत

(१) महाराजा साहेब बहादुर बनारस का प्रमाण पत्र तथा अन्य रियासतों को सूचना

हम इस बात को प्रमाणित करते हैं कि "रसायनसार" पुस्तक जिसका निर्माण व प्रकाशन पंडित श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य ने किया है, वास्तव में यह पुस्तक बहुत लाभदायक और आयुर्वेदिक प्रयोग की बहुमूल्य सिद्ध हुई है। और हम इसके ग्रन्थकर्त्ता को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ऐसे उपयोगी विषय पर ऐसी मनोरञ्जक पुस्तक का निर्माण किया है।

हिजहाइनेस महाराजा साहेब ने "रसायनसार" की बहुत सी प्रतियें ग्रन्थकर्ता को प्रोत्साहन देने के लिये खरीदी हैं, और महाराजा बहादुर इस बात को पूर्ण आशा करते हैं कि, देश के सर्वसाधारण जन और विशेष करके देशी रियासतें इसी प्रकार से इस पुस्तक की बहुत सी कापियाँ खरीद कर ग्रन्थकर्ता के उत्साह को बढ़ावेंगे।

फोर्ट रामनगर
बनारस

कर्नैल. विन्ध्येश्वरी प्रसाद
चीफ सेक्रेटरी, एच० एच
महाराजा बनारस।

(२) मैं इस बात को प्रमाणित करता हूँ कि मैंने रसायनसार पुस्तक जिसको शास्त्री श्यामसुन्दराचार्य ने निर्माण किया है। देखा? मेरी समझ में यह बहुत अच्छी पुस्तक है और बहुत सी कापियां उसकी मैंने खरीदी हैं। पुस्तक के संबन्ध में समाचारपत्रों ने व उन

लोगों ने जिन्हों ने कि इसे पढ़ा है बड़ी प्रशंसा की है। ग्रन्थकर्ता की बुद्धि प्रशंसनीय है, मैं चाहता हूँ कि इस कार्य्य में उनको सफलता हो।

आनरेबुल

अजमतगढ़ पेलेस बनारस } राजा, मोतीचन्द सी० आई० ई०, रईस व जिमींदार।

(३) पं० रामलाल मिश्र रणवीर पाठशाला सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस से लिखते हैं कि:—रसायनशास्त्री श्री श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य की बनाई हुई रसायनसार पुस्तक अवश्य लोकोपकारक है, और इसके विषय तीन चार वर्ष से श्रीवेंकटेश्वरादि समाचार पत्रों में छपते रहे हैं, इस लिये इसके विषयों की सत्यता हम लोगों ने पुस्तक छपने के प्रथम ही निर्णीत कर ली है। यह पुस्तक सभी विद्यालयों में पठन पाठन के उपयोगी है। इसमें ग्रन्थकार के रचित श्लोक युक्ति और पाण्डित्य से परिपूर्ण हैं। इस ढंग की सरल और अनुभूतविषयक पुस्तक आज तक कोई देखने में नहीं आई।

(४) पं० रामरक्षपाल वैद्य शास्त्री, भिवानी, ज़ि० हिसार से लिखते हैं कि:—अनेक विद्या-विशारद सर्वोच्च-पदवी से भूषित अनेक प्रतिष्ठा-पत्रों से समलङ्कृत श्रीयुत श्यामसुन्दराचार्य्य जी! आशीर्वाद। श्रीमान् का भेजा हुआ रसायनसार रत्न देखा, इसके लिये मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। आयुर्वेद की उन्नति का कारण इस ग्रन्थ का परिश्रम बहुत प्रशंसनीय है, धन्य है आपके आयुर्वेदानुराग को और आपका अनेक शास्त्र-विषय का अभ्यास भी अत्यन्त आदरणीय है। कहां तक लिखें आयुर्वेद-प्रचारक, विद्वद्वर श्रीमान् को इस विषय में जितने धन्यवाद दिये जांय थोड़े हैं।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, सम्पादक "सरस्वती" प्रयाग—से लिखते हैं स्थानाभाव से केवल सारांश दिया है। मूल पुस्तक संस्कृत में है पर हिन्दी में उसकी व्याख्या कर दी गई है अतएव संस्कृत न जानने वाले भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। पुस्तककार एक अच्छे संस्कृतज्ञ ही नहीं किन्तु अच्छे कवि भी हैं। रसायन विद्या के तो वे शास्त्री ही हैं अतएव इस विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। आपने बड़ी अच्छी पुस्तक लिख कर प्रकाशित की है। वैद्यों और रसायन बनाने के प्रेमियों को आपकी पुस्तक का संग्रह अवश्य करना चाहिये। आपने पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर पुस्तक की प्रशंसा में लिखा है—"वर्षषट्कपरिश्रमेण दशसहस्रमुद्राव्ययेन च जातानुभवफलरूपो (रसायनसारः)" आशा है, इस पुस्तक की कदर करने में चिकित्सक और प्रणयी लोग आपके इस इतने बड़े खर्च का खयाल अवश्य ही करेंगे। इस सम्बन्ध में पण्डित श्याम-सुन्दराचार्य्यजी से हमारी तो यह प्रार्थना है—"न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते"।

---

[६] "सुधानिधि" प्रयाग के संपादक वैद्य-पञ्चानन पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल लिखते हैं कि:—

श्रीयुत रसायनशास्त्री पण्डित श्यामसुन्दराचार्य्यजी वैश्य ने वर्षों से रसायनशास्त्र के प्रयोगों अनुभवों और परीक्षाओं में जो अनुभव प्राप्त किये हैं वह सब रसायनसार पुस्तक में दर्ज किये गये हैं। इस पुस्तक के कुछ अंश का नमूना इस मासिकपत्र में छप चुका है, इस लिये हमारे पाठकों को न तो रसायनशास्त्रीजी का नये सिरे से परिचय कराना है, और न उनकी इस पुस्तक का। इसमें कहे गये अनुभवों के प्राप्त करने में रसायनशास्त्रीजी को छः वर्ष का समय और दश हजार रुपये की रकम लगानी पड़ी है। इसी से मालूम पड़ेगा कि पुस्तक कितनी मूल्यवान् हैं। यह इधर उधर की दश पाँच पुस्तकों से छांट कर ग्रन्थकार बनने की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये नहीं! बल्कि अपने प्राप्त अनुभव से अन्य भाइयों

को लाभ पहुँचाने के लिये तैयार हुई है। इस लिये प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इसे खरीद कर ग्रन्थकार का परिश्रम सफल करें। यह निसंकोच होकर कहा जा सकता है कि इस समय आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाली जो दो चार सर्वोत्तम पुस्तकें तैयार हुई हैं उनमें से यह एक है। इसमें पहले रसायन क्रिया में प्रयुक्त होने वाले, यन्त्र, भट्टी, मुद्रा, सम्पुट आदि विषयों का सचित्र वर्णन हुआ है। फिर पारद प्रकरण विशदरूप से कहा गया है। इसके पश्चात् धातुओं का शोधन मारण और फिर चिकित्साखण्ड का वर्णन है। कहीं कहीं आपकी विधियाँ बहुत ही विचित्र हैं, कम खर्च और एक ही क्रिया में कई वस्तुएँ तैयार हो जाती हैं और प्रयुक्त पदार्थों का कोई अंश बेकाम नहीं जाने पाता। आपने पुस्तक को संस्कृत श्लोकों में रचा है और साथ ही उसकी भाषा टीका भी बना दी है। इससे किसी तरह भ्रम या शंका नहीं हो सकती।

---

[७] "देशोपकारक" लाहौर लिखता है कि:—वैद्यगण श्री-श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य, गायघाट, काशी के नाम से परिचित ही हैं। आपके बहुत से लेख श्रीवेंकटेश्वरसमाचार आदि पत्रों में रसायन विषय पर निकलते रहे हैं। आपने अब अपने सारे परिश्रम का फल प्रकाश किया है। "*रसायनसार*" असंशय एक उत्तम रस ग्रन्थ है, और वैद्यों को इससे बहुत लाभ होगा। इसमें धातु उपधातु रस उपरस आदि के शोधन मारण की विधि भली प्रकार से वर्णित है, विशेष बातें यह हैं:—

१—*रसायनसार* में मूल श्लोक और हिन्दी टीका ग्रंथकार के ही रचित हैं।

२—कितने ही प्रयोग शास्त्रीय हैं और कितने ही स्वयं कल्पित हैं वे सर्व आचार्य्य जी के कथनानुसार स्वयं अनुभूत हैं।

३—जो यन्त्र रसक्रिया के व्यवहार में लाये गये हैं, उन्हीं के चित्र दिये गये हैं, उनमें कितने ही तो शास्त्रीय हैं और कितने ही स्वयं कल्पित हैं।

४—वैद्य लोग पारद गन्धक की कज्जली, मैनशिल, हरिताल, संखिया के योग से जो धातुओं की भस्म तैयार करते हैं; उस समय पारद आदि उड़ जाते हैं। परन्तु इस पुस्तक में यह विधि लिखी है जिसमें पारद आदि उड़े नहीं प्रत्युत गुणकारी दूसरा रस भी बन कर तैयार हो जाय।

५—कितने इस में नवीन आविष्कार हैं, जिनका खोज आज तक किसी वैद्य ने नहीं किया। जैसे एक ही बार में २० सेर पक्का मकरध्वज बनाना, शतगुण गन्धक जारण करना।

६—चिकित्साकाण्ड में भी वे ही प्रयोग दिये हैं, जिनको वह कहते हैं स्वयं अनुभूत कर लिये हैं।

—————
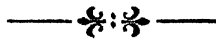
[८] "वैद्य" मुरादाबाद में सम्पादक, वैद्य शंकरलालजी जैन लिखते हैं कि—

रसायनशास्त्र सम्बन्धी यह एक नवीन ग्रन्थ है। ग्रंथ के टाइटिल पेज को देखने से मालूम होता है कि ग्रन्थकार का विचार इसको पाँच भागों में पूरा करने का है। उनमें यह पहिला भाग है। इसके प्रारम्भ में रसायन कार्य में आने वाले कितने ही यंत्र, भट्टी, पुट आदि के चित्र हैं। ग्रंथ चार भागों में विभक्त है। पहले परिभाषा प्रकरण में रसायनशाला बनाने की विधि विविध प्रकार की भट्टी, पुट, मुद्रा, यंत्र आदि का विशद रूप से वर्णन है। दूसरे पारदप्रकरण में पारद शुद्धि, गन्धक शुद्धि, पारद बुभुक्षा विधि और विविध प्रकार की चन्द्रोदयादि रसायन बनाने की विधियाँ बड़ी उत्तम रीति से वर्णित हैं। तीसरे प्रकरण में स्वर्ण, रौप्यादि सम्पूर्ण धातु उपधातुओं का शोधन, मारण लिखा गया है, और अन्तिम चिकित्सा प्रकरण में ज्वर, अतिसार, अर्श, रक्तपित्त, क्षय आदि कितने ही रोगों पर रस, चूर्ण, बटी, अवलेह, लेप आदि अनेक अनुभूत योग लिखे हैं। रसायनशास्त्री जी से रसायन के सम्बन्ध में जो अन्य वैद्यों से शास्त्रार्थ हुआ है वह भी इसमें शामिल कर दिया है। मूल ग्रंथ संस्कृत में है और नीचे उसकी विस्तृत हिन्दी व्याख्या है। संस्कृत श्लोक कुल आप ही के बनाये हुए हैं। रचना शैली सुंदर और सुखबोध है। भाषा भी सीधी सादी अच्छी है। इसकी प्रायः सभी

विधियाँ और योग ग्रंथकार के स्वानुभूत हैं। इसलिये यह बड़े आदर की चीज़ है। रसायनशास्त्री जी ने इस ग्रंथ को लिख कर सचमुच बड़ी उदारता का परिचय दिया है! इसके द्वारा वैद्यों का विशेष उपकार होगा। अनेक रसायन औषधियाँ जिनको क्रिया की क्लिष्टता के सबब साधारण वैद्य लोग नहीं बना सकते थे इसकी विधि से बना सकेंगे। ग्रंथ सम्पूर्ण वैद्यों और रसायन प्रेमियों के आश्रय देने और संग्रह करने योग्य है।

---

[९] "सद्धर्मप्रचारक" हरिद्वार गुरुकुल में सम्पादक, महात्मा मुन्शीराम (**स्वामी श्रद्धानन्द जी**) लिखते हैं कि— रसायनसार पं० श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य काशी निवासी ने बनाया। इसमें नाना प्रकार के रससिद्ध करने की विधियाँ स्वयंकृत कारिकाओं में वर्णन की हैं सर्वसाधारण के उपयोग के लिये सरल भाषा में भी बड़ी स्पष्टता से भस्मादि बनाने का प्रकार समझाया है। ऐसी पुस्तक एक न एक घर घर में अवश्य होनी चाहिये। इस पुस्तक में एक विशेषता यह है कि आदि में रसायनशाला और उसके उपकरणों के चित्र भी बड़ी स्पष्टता से दिये हैं। इतनी मूल्यवान् और उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ५) रक्खा है। इसकी प्रशंसा हम अपने मुख से नहीं करना चाहते। मँगाकर लाभ उठाने वाले स्वयं प्रशंसा करने में भाग लेंगे।

---
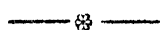
[१०] "वैदिकपत्रिका" पूना का पत्र लिखता है कि:— रसायनसार पुस्तक बनारस के रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य की बनाई हुई है। इसके ५ भाग में से पहिला भाग यह है। इसमें भट्ठी वगैरह के चित्र दिये हुये हैं। ग्रन्थकार के रचे हुए श्लोकों की हिन्दी भाषा टीका स्पष्ट रूप में लिखी हुई है और जहाँ जहाँ शास्त्र के कठिन कठिन विषय उपस्थित हुए हैं वहाँ वहाँ पर उनका खुलासा अच्छी तरह किया है हमारे मत से इस पुस्तक के खरीदे बगैर किसी वैद्य को छुटकारा नहीं है।

---

[११] "आरोग्यसिन्धु" विजयगढ़ लिखता है— जिन्हों ने श्रीवेंकटेश्वर समाचार, भारतजीवन, वैद्यकल्पतरु, सुधानिधि, प्रभृति पत्रों में

शास्त्रीजी के रसायन विषयक लेखों को देखा है वे जान सकते हैं कि आप कैसे क्रिया कुशल तथा अनुभवी और विद्वान हैं। आपने रसायनसार नामक एक बड़ा ग्रन्थ रचना प्रारम्भ किया है। यह उसका प्रथम भाग है। इसमें पारद की बुभुक्षाविधि, चन्द्रोदय, रससिन्दूर, तालसिन्दूर आदि बनाने की क्रिया हस्तामलकवत् लिखी है। स्वर्ण, तार, ताम्र आदि धातुओं का शोधन मारण, तथा उनके प्रयोग बड़े विचार से लिखे हैं। अपने अनुभव से कई प्रकार की भट्टियों को तथा नलिका-डमरु आदि यन्त्रों की निर्माण प्रणाली लिखी हैं, जिससे आसानी से वैद्य धातुओं की भस्म कर सकें, और उनके साथ पारदादि की हानि भी न हो।

मूल श्लोक लिखकर उसकी व्याख्या की गई है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। हम इसके लिये धन्यवाद देते हैं। वैद्यों को शास्त्री जी का अनुकरण करना चाहिये। और पुस्तक से लाभ उठाना चाहिये। पुस्तक के देखने से शास्त्री जी की विद्वत्ता का पूरा पता चलता है। पुस्तक के अन्त में ओंकारोपासना जो पद्मबन्ध श्लोकों में लिखी गई है आपके साहित्य ज्ञान का पूरा परिचय दिलाती है।

पं० रामप्रसाद दीक्षित वैद्य, नोहर बीकानेर।

(सुधानिधि वर्ष ४ संख्या ८ से उद्धृत)

[१२] श्रीयुत रसायनाचार्य श्यामसुंदराचार्य जी ने सुधानिधि में जो ताम्रभस्म करने की विधि लिखी थी उस पर अलीगढ़ के एक वैद्यरत्न जी ने कई प्रश्न और शङ्काएँ की थीं; परन्तु आपकी शङ्काएँ व्यर्थ हैं। रसायनाचार्य जी की विधि के अनुसार हमने भी दो तीन बार भस्म तैयार की है और वह ठीक उतरी है। शुद्ध ताम्र पारद में घोटने से पारद ताम्र पर चढ जायगा और फिर गन्धक मिलाकर घोंटने से कालापन आ जायगा, वही कज्जली है। ताम्र के छीलन कराने की आवश्यकता नहीं। मैंने इस प्रकार बनाया था—आध पाव ताम्र, आध पाव पारद और आध सेर गन्धक, तीनों को सात कपड़मिट्टी की हुई

आतशी शीशी में भर कर रससिन्दूर की विधि से चार अहोरात्रि तीव्र अग्नि देकर बनाया। स्वाङ्गशीतल होने पर देखा तो आध पाव ताम्र-भस्म शीशी के पेंदे में मिली और आध पाव पारद का रससिन्दूर शीशी के गर्दन में मिला। वास्तव में मैंने शीशी रससिन्दूर के लिये चढ़ायी थी; किन्तु एक पन्थ दो काज वाली बात हुई। आतशी शीशी वही थी जो दिल्ली में वैद्य लोग हरे रङ्ग की लेते हैं। हाँड़ी की जगह मैंने लोहे की कड़ाही ली थी। बालू जमुना जी की मोटी ली थी। कड़ाही के नीचे अग्नि मन्द, मध्य, तीव्र क्रम से चार अहोरात्रि तीव्र ही दिया। पाव भर पारद का चन्द्रोदय भी इसी लोहे की कड़ाही में बनाया था, जो ठीक पाव भर शीशी की गर्दन में मिला। इसमें ताम्र नहीं दिया गया था। चन्द्रोदय रसेन्द्रसार संग्रह के "पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रात्" इस पाठ के अनुसार बनाया था। ऐसी दशा में कैसे कहा जाय कि रसायनाचार्य जी की विधि अशुद्ध है। मेरी तीनों बार की क्रिया में न तो कोई शीशी फूटी और न गली। परन्तु आँच ठीक चार अहोरात्रि तीव्र ही लगनी चाहिये। चार पहर अग्नि का चन्द्रोदय अथवा रससिन्दूर कोई वैद्य चाहे बनाते हों; परन्तु मैंने कभी नहीं बनाया। बात यह है कि स्वयं क्रिया कुशल वैद्य को कटिबद्ध होकर काम करना चाहिये, नौकरों के भरोसे काम नहीं चलता। मैंने तो उसी कड़ाही में ही एक बार तीन शीशी चढ़ायी परन्तु वह भी ठीक उतरीं। रसायनाचार्य जी अपने अनुभव के प्रयोग सब वैद्यों को बता कर धन्यवाद के पात्र हो रहे हैं।*

—:०:—

[१२] श्रीमत्सु दयादाक्षिण्यादिगुणालंकृतेषु अधीतनिखिलनिगमनिकरेषु जीर्णशीर्णायुर्वेदोद्धारकेषु बुभुक्षित पारदाद्य अतौषधिनिर्माणकर्त्तृषु रसायनशास्त्रिषु श्रीश्यामसुन्दराचार्य महोदय करकमलेषु सादर-निवेदम्। महानुभाव! यह लिखना अत्युक्ति दोष से दूषित नहीं समझना कि भारतवर्ष का जो उपकार गणनाथसेन प्रभृति प्रसिद्ध वैद्यों से नहीं हुआ वह उपकार आपके द्वारा हो रहा है। आशा है

---

* रीवाँ के राजवैद्य चिकित्सक चूणामणि पं० वाल्मीकि जी भी इसी मत का अनुमोदन करते हैं।

परमेश्वर आपको चिरजीवी करे। भविष्य में पूर्ण उपकार होने की सम्भावना है। वैद्य कुलावतंस। *रसायनसार* पुस्तक को मैं वेद तुल्य मानता हूँ। अधिक प्रशंसा क्या लिखूँ मैं इस पुस्तक को अराधनीय देवता समझता हूँ। क्योंकि इस पुस्तक के लेखानुसार महाज्वरांकुश, गुग्गुलादि वटी, मल्लतैल (जो सोरा के योग से निकलता है) बङ्गभस्म श्वासकासहर अवलेह मण्डूरवटी इत्यादि अनेक योग बनाये गये हैं, और वे सभी लाभकारी सिद्ध हुए हैं। एतदर्थ आपको मैं असंख्य धन्यवाद देता हूँ। भवदीय—

पं० वैजनाथ त्रिवेदी, संस्कृत पाठशालाध्यापक।

अलसीसर पो० झूंझण जि० जयपुर।

श्रीयुत् तेजसिंह वर्मा आयुर्वेद विशारद (रसलामपुर, मथुरा)

सुधानिधि कार्तिक सं० ७२। वर्ष ५ सं० ८ से उद्धृत

[१४] मैंने काशी के श्रीमान् पं० श्यामसुन्दराचार्य जी वैश्य की रसायनशाला देख कर बहुत ही प्रसन्नता लाभ की। विशेष कर "नलिका-डमरूयंत्र का प्रकार बहुत प्रशंसनीय है। यह यंत्र पारद के साथ गन्धक जीर्ण करने में अत्यन्त उपयोगी है। मेरे सामने उक्त यंत्र से षड्गुण गन्धक जीर्ण किया गया, बिना किसी उपद्रव के बहुत आसानी से एक अहोरात्र में गन्धक जीर्ण हो गया। हाँ, यह जरूर था कि जो पारद ऊपर के पात्र में सिन्दूररस के आकार में लगा वह लाल नहीं किन्तु कुछ ललाई लिये काले रंग का था। वजन, पारद के वजन से कुछ ही ज्यादा था। जब उसे हंड़िया से खुरच कर थोड़ी सी गन्धक और देकर शीशी में पाक किया तब बहुत उज्वल वर्ण का और मुलायम रवादार रससिन्दूर तैयार हुआ। इस यंत्र द्वारा षड्गुण क्या शतगुण गन्धक भी बहुत ही आसानी से जीर्ण किया जा सकता है। इस यंत्र का वर्णन आप की रसायनसार पुस्तक में है। इस आविष्कार के लिये आप को अनेक धन्यवाद है।

[१५] काशी के रहने वाले पं० श्यामसुन्दराचार्य्य जी वैश्य अपनी रसायनसार नामक पुस्तक मेरे पास मेरे पढ़ने और समालोचना करने के लिये लाये हैं। मैं समालोचना करने के योग्य नहीं हूँ परन्तु आयुर्वेदियों ने इसको इस विषय पर एक बहुमूल्य पुस्तक कहा है। इस पुस्तक से मालूम होता है कि इसके लेखक ने इसको कई वर्षों के परिश्रम और शास्त्रों के पढ़ने और अपने जाँच करने तथा बहुत काल तक काम करने के बाद लिखा है। मुझको आशा है कि इस पुस्तक की उतनी ही उन्नति होगी जितनी कि होनी चाहिये और बहुत से रोगियों को इससे लाभ पहुँचेगा। इस पुस्तक में बहुत से संस्कृत के श्लोक हैं जो कि मुझको बहुत अच्छे मालूम होते हैं। पंडित जी से ज्ञात हुआ कि यह सब श्लोक इन्हीं के रचे हुये हैं यदि ऐसा है तो यह एक बड़े निपुण पंडित हैं।

डब्लू० जे० एस० लिप्टन० आई० सी० एस०
लेट कलेक्टर आफ मुरादाबाद,
सेक्रेटरी बोर्ड आफ रेवेन्यू (यू० पी०)

---

[१६] श्रीयुत रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य्य जी वैश्य, काशी।

आपकी लिखी हुई पुस्तक *रसायनसार* मिली! वास्तव में पुस्तक अपने ढंग की पहली है। इस प्रकार अनुभव करके आज तक ऐसी पुस्तक हिंदी ही क्यों अन्य देशीय भाषाओं में भी नहीं लिखी गई थी आपके इस सदुद्योग और परिश्रम से आयुर्वेद का सारा संसार कृतज्ञ है। आशा है इसी प्रकार उद्योग कर अगले अंक भी प्रकाशित करें पत्र दें कृपा रक्खें योग्य सेवा में स्मरण करें—

भवदीय—
व्यास पूरमचन्द तनसुख वैद्य,
म्युनिसिपल कमिश्नर ब्यावर।

---

[१७] श्रीमत्सु विविधपदवीसमलंकृतेषु रसायनप्रक्रियासमुद्धारकेषु प्रख्याततमेषु श्रीश्यामसुन्दराचार्येषु मथुरातो लक्ष्मणकृताः शुभाशिषः शमुल्लसन्तुतराम् अयि महानुभाव। भावत्कमतिरमणीयमतिवैद्यमति-

वैभवं रसायनप्रक्रियापारमधिजिगमिषूणामनपेक्ष्यकर्णधारं *रसायनसारं* नाम ग्रन्थमवलोक्य नंदति तितरां मानसं नः। अयं खलु वस्तुतः सारो रसायनशास्त्रस्य दुर्दैवविपाकाक्रान्तस्य शिथिलीभूतसकलकलस्य भारतस्य गौरवास्पदम्। एष किल क्षीरसार इव *रसायनसारः*। न बहुकालानन्तरं श्यामसुन्दरमुखान्निर्गत उपनिषत्सारो गीतेवासौ *रसायनसारो* वितरत्वध्यात्मोन्नतिं भारतीयानां भवतु पूर्णः प्राचारोऽस्य अनुभवतु च नैरुज्यानन्दममन्दं लोक इत्याशास्ते लक्ष्मणाचार्यो मथुरावास्तव्यः।

-:०:-

निखिलभारतवर्षीय मद्रास के षष्ठ वैद्यसम्मेलन की वार्षिक रिपोर्ट से उद्धृत।

[१८] श्रीयुत श्यामसुन्दराचार्य जी ने गाँठ के हजारों रुपये लगा कर छः वर्ष तक रसायनशास्त्र के विविध प्रयोगों का स्वयं अनुभव किया है और अनेक प्रकार की जाँच पड़ताल से जो सारांश निकाला है उसे अनुभव करके वर्णन सहित इस पुस्तक में दर्ज किया है। उसके सिवाय समाचारपत्रों में भी आप की कृतियों के सम्बन्ध में आलोचना होती रही हैं, उसका भी आपने शंका समाधान किया है। इस प्रकार यह पुस्तक अनुभूत और प्रामाणिक प्रस्तुत हुई है। इस हिन्दी युग में ऐसी उत्तम पुस्तक तैयार नहीं हुई थी। आपने पुस्तक संस्कृत श्लोकों में लिख कर उसका भाष्य भी स्वयं ही किया है। रसायन सम्बन्धी भट्ठी और यंत्रों में भी आपने अच्छा प्रकाश डाला है उनका भी सचित्र वर्णन पुस्तक के साथ कर दिया है। पारदप्रकरण बहुत विस्तृत है, धातुओं का शोधन मारण तथा चिकित्सोपयोगी कितने ही रसायन और रसौषधिओं का वर्णन है। दाम ५) रु०
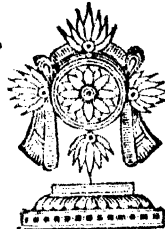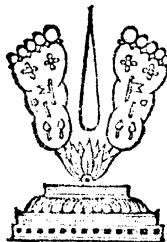
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्योभयवेदान्तप्रतिष्ठापनाचार्यैः श्रीमद्रामानुजापरावतारश्रीमद्वरवरमुनीन्द्राष्टदिग्गजप्रथमपरिगणितैः श्रीमद्रम्यजामातृयतिवरकृपालब्धश्रीवरमङ्गासमेतश्रीदेवनायकान्तरङ्गकैङ्कर्यैकधुरंधरैः अखण्डमहीमण्डलालंकारमहीपालकोटीरकोटिघटितमणिकिरणपटलपाटलितपादपीठपर्यन्ताचार्यैःपरमपुरुषार्थलक्षणविलक्षणमोक्षैक प्रयोजनार्थं पञ्चकज्ञानैकसाधनश्रीमदष्टाक्षरादिरहस्यत्रयजगदुज्जीवनाचार्यैः सकलमुनिजनमानसारविंदसन्दोहसमुल्लाससमुल्लसितश्रीराजहंसावतारैः श्रीभगवद्रामानुजसिद्धान्तनिर्धारचार्यसार्वभौमैः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रैः ।

श्रीतोताद्रिरामानुजयतीन्द्रैः

कृता श्रीकाशीधामवास्तव्ये रसायनशास्त्रिप्रभृतिपदविभूषिते श्रीमन्नारायणकैङ्कर्यपरायणे श्रीश्यामसुन्दराचार्य वैश्यमहोदये श्रीमन्नारायणस्मरणाशीः समुल्लसतु । कलिप्रभावात्प्रायः सर्वासां विद्यानां लोप इवलक्ष्यते विशेषतस्तु आयुर्वेदविद्यायाः । परमायुर्वेदविद्याप्रधानं रसायनशास्त्रन्तु वैद्यवराः स्वपुत्रेभ्योपि गोपयन्तीति कष्टस्थानं किन्तु वैद्यातुर सुकृतसंभारैः प्रेरितः श्रीमान् श्यामसुन्दराचार्य वैश्यो महतापरिश्रमेण स्वकीयद्रव्यव्ययेन च कष्टतमसाध्यन्यपि रसायनौषधानि भूयो भूयोऽनुभूयाऽऽयुर्वेदविद्योन्निनंसया समाचार पत्रेष्वपि प्रकाशयतीति नः परं परितापेः । *रसायनसार* पुस्तकं निर्माय सर्वजनताया यादृश आश्वासो व्यधायि स परिचित एव सर्वभारतवर्षे इति नैवास्ति विशेषवक्तव्य मित्यस्मै धार्मिकाय श्रीश्यामसुन्दराचार्यवैश्याय परितुष्टा वयं "*रसायनभास्कर*" इति पदवीं सुवर्णपदकं च प्रयच्छामः आशास्महे च श्रीमन्नारायणोऽस्य दीर्घमायुर्दत्तादिति शम् ॥ ता० १९।१।१९१६

॥ उपास्स्व वैष्णवान्नित्यमसतो मोपसीसरः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ।

श्रीमान्करिगिरिनिलयः कमलादयितःकरोतु कल्याणम् ।
श्रीदेवराजनामा परः पुमान् परमकारुणिकः ॥
मायिमतङ्गजमस्तककोटीपाटनपाटलपाणितलो यः ।
श्रुत्यटवीकुहरेषु समिन्धे स प्रतिवादिभयङ्करसिंहः ॥

नित्यं विष्णुपरं कर्म कुरु निन्द्यानि मा कृथाः ।
सदात्मानं विष्णुदास्ये मा कामेषु मतः कृथाः ॥

यजस्व नित्यमात्मेशं मानसीरन्यदेवताः ।
लक्षस्व लक्षणैर्भर्तुर्लक्षिष्ठा मान्यलक्षणैः ॥

श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्योभयवेदान्तप्रवर्तकाचार्याः— जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजमुनीन्द्रसंस्थापितचतुस्सप्ततिपीठाधिपतिमध्यपरिगणित श्रीमन्मुडुम्बैनम्बिवंशमुक्ताफलानाम्—श्रीमद्रामानुजयतिसार्वभौमापरावतार श्रीमद्वरवरमुनीन्द्रप्रतिष्ठापिताष्टदिऽगगजप्रधानानाम्—श्रीमल्लोकगुरुमहावंशसम्भूतानाम् — श्रीभाष्यसिंहासनाधिपतीनाम्— श्रीमद्रम्यजामातृयतिवरकरुणालब्धश्रीवेणुगोपालान्तरङ्गकैङ्कर्यधुरन्धराणाम्— अनन्यसाधारणप्रतिवादिभयङ्करविरुद्भाजाम् —श्रीमदखिलाण्डकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीवेङ्कटेशप्रसाद-

लब्धछत्रचामरकाहलीभद्रासनादिपरिच्छदादानाम् — श्रीहस्त्यद्रिनाथदेशिकेन्द्राणां सिंहासनमधितिष्ठन्तः परमपुरुषार्थलक्षणविलक्षण मोक्षैकप्रयोजनाऽर्थपञ्चकज्ञानकसाधन श्रीमदष्टाक्षरादिरहस्यत्रयतदर्थोपदेशपवित्रीकृतनिखिलजगदुज्जीवनाचार्याः—श्रीभगवद्रामानुजसिद्धान्तनिर्धारणधूर्वहाः—श्रीकाञ्चीप्रतिवादिभयङ्करश्रीमद्

अनन्ताचार्य देशिकेन्द्राः—

काशीनगर वासिने रसायनशास्त्रिणे श्रीश्यामसुन्दराचार्य महाशयायाऽनेक मङ्गलान्याशासते। महाशय! भवता प्रणीतो रसायनसारनामा ग्रंथोस्माभिर्दृष्टः। नूनमयमपूर्वोग्रन्थो निर्मितो भवता बहूपकरिष्यति वैद्यकसंघस्य। यद्यपि सन्ति प्राचीना नवीनाश्च रसायनग्रन्थाः केचन भारते, अयंतु ततोपि सत्यं विश्वासार्हो भवति, यतोऽत्र लिखितास्सर्वेपि प्रयोगाः स्वानुभवेन महता परिश्रमेण विष्कृता इति न मात्रयाप्यन्यथा सम्भावनार्हा भवन्ति। अद्य खलु चिकित्सासम्बन्धिग्रन्थप्रणेतारः प्रायः पूर्वग्रन्थान् दृष्ट्वा तत्सार मात्रं संगृह्णन्ति, नच स्वयमनुभवेन तेषां प्रयोगाणां परीक्षणे प्रयतन्ते। परमयं भवदीयो-रसायनसारः स्वानुभूतार्थप्रकाशनमात्ररूप इति तेभ्यो विलक्षणो भवति। ग्रन्थस्यास्य गद्यपद्यात्मकस्य संस्कृतहिन्दी भाषामयस्य च भाषाऽत्यन्तसरला, तेन मृदुलमतीनामप्यर्थबोधे न विशेषपरिश्रमस्सम्भाव्यते। मन्यामहे च भारतवासिन आयुर्वेदपक्षपाति नस्सज्जना नानारूपेण साहाय्याधानेन भवन्तं प्रोत्साहयिष्यन्ति, येनेतोप्येवमपूर्वार्थाविष्करणेन जनानामुपकाराधाने भवान्समर्थो भविष्यति। वयं चानेन भवतः कार्येण नितरां परितुष्टाः "नव्यनागार्जुन" इत्युपाधेः सुवर्णपदकस्य च प्रदानेन भवन्तं सम्भावयामः। प्रार्थयामश्च भगवन्तं कमलापतिं—दीर्घायुष्यादिदानेनानुगृह्णतां भवानिति।

अनलसंवत्सरे सिंहमासे कृष्णदशम्यां लिखितमिदं पत्रम्।

मुकाम- काशी
ता० २३-८-१६

ह० स्वामी अनन्ताचार्यः
(काञ्ची मठाधीश्वरः)

ॐ

श्री जगन्नाथो विजयतेतराम्

पदवीप्रदानपत्रम्—

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य-पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठ तपश्चर्याचरणचक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्राप्तषण्मतस्थापनाचार्य संख्यत्रयप्रतिपादकमार्गप्रवर्त्तक-निखिलनिगमागमसारहृदयश्रीमत्सुधन्व साम्राज्य-प्रतिष्ठापनाचार्य श्रीमद्राजाधिराजगुरु— भूमण्डलाचार्य - चातुर्वर्ण्यशिक्षक-महोदधितीरवास श्रीजगन्नाथपुर्य्यधीश्वर-पूर्वाम्नायश्रीमद्गोवर्द्धनपीठाधीश्वर—श्रीमद्राजराजेश्वर श्रीशङ्कराचार्यदामोदरतीर्थस्वामिवर्यचरणकमल-भृङ्गायमान **श्रीमधुसूदनतीर्थ स्वामिभिः** —

श्रीकाशीवास्तव्य श्यामसुन्दराचार्य वैश्यं प्रति प्रत्यग् ब्रह्मैक्यानुसन्धान नियत-नारायणस्मरण —संसूचिताशिषः समुल्लसन्तुतराम् जगद्गुरूणां महेश्वरापरावतारश्रीमच्छङ्करभगवत्पूज्यपादपादाचार्याणां प्रधान-स्थानजगन्नाथपुरीस्थ श्रीमद्गोवर्द्धनपीठगोचरा भक्तिरनवधिकश्रेयोनिदानमिति सार्वजनीनमेतद् ।

साम्प्रतं घोरे कलावपि काले पूर्वाचार्यसन्निबद्धवैश्यकुलमर्यादापरिरक्षणे बद्धपरिकरस्य, न्यायव्याकरणादिग्रन्थेषु लब्धकौशलस्य, प्राचीन-निबन्धानां चरकसुश्रुत वाग्भटानां दृढाभ्यासेन “रसायनसार” ग्रन्थप्रणयनेन च विद्वद्वरसमाजेषु प्राप्तप्रतिष्ठस्य, भवतः (वैश्य श्यामसुन्दराचार्यस्य) प्रौढगुणग्रामयशोविशेषसमृद्धा मुदन्तपरम्परा मनवरत मनुसन्दधानाः प्रमुदितान्तः करणा वयम् “आयुर्वेदभूषण” इति पदवीं भवते प्रयच्छामः। सा च विशुद्धभावनया परिरक्षणीयेति शम् । वीरविक्रममहाराजस्य १९७२ अब्दे श्रावण कृष्णत्रयोदश्यामादित्यवासरे (उदयपुरराजधान्याम्)।

॥ श्रीः ॥

अकुण्ठं सर्व्वकार्य्येषु धर्म्मकार्य्यार्थमुद्यतम् ।
वैकुण्ठस्य हि यद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः ॥

पदार्थविद्यामानपत्रम्

श्रीयुक्त श्यामसुन्दराचार्य्य वैश्य महाशय काशी ।

विद्यते तावदत्र परमपवित्रे भारतवर्षे संसारसागरपरपारैक-सुहृदशेषशान्तिसुखनिदानस्य परमात्मसाक्षात्काररूपनिर्व्वाणसोपानस्य बाह्याऽभ्यन्तरीणशुद्धिकारणस्य शिष्टानुष्ठितवर्णाऽऽश्रमाचारस्य सम्प्रति तत्त्वाऽननुशीलनकर्त्तव्योपेक्षणवितण्डादिदोषप्रच्छन्नज्ञानस्य सनातनधर्मस्य पुनः सम्यगभ्युदयाय सद्विद्याप्रचाराय साङ्गवर्म्मस्य पुनः प्रतिष्ठापनाय आर्य्यजातेः सर्व्वविधायाः श्रियः समधिकवर्द्धनाय च नरपतिगणपरिपोषिता विद्वद्वृन्दनिषेविता निखिलसम्प्रदायाऽनुमोदिताऽन्तर्भावितदेशाऽन्तर्देशा निखिलधर्म्मसमितिप्रतिनिधिः श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलाऽभिधाना श्रीमती समितिः ।

एषा खलु पदार्थविद्याशिल्पकलाविज्ञानादीनामभ्युदयाय बद्धपरिकरेति भवतो रसायन नैपुण्यमवलोक्याऽऽत्मगौरवं मन्यमाना गुणग्राहिणी धर्म्मसभेयं भवन्तं गुणाऽनुरूपेण "रसायनविशारद" इत्युपाध्यलङ्कारेणाऽलङ्कृत्य परमानन्दसन्दोहमनुभवन्ती कामयते साऽनुरागं सर्व्वशक्तिमतो भगवतश्चरणाऽरविन्देषु भवतः सत्पुरुषार्थशक्तिप्राचुर्य्यमाध्यात्मिकोन्नतिश्च भूयादिति ।

श्रीकाशीधाम्नि
श्रीभारतधर्ममहामण्डल
प्रधानकार्य्यालयः ।
चतुर्थी तिथौ कृ-पक्षे पौष मासे १९७२ वर्षे
रामचन्द्रनायक कालिया
प्रधानाध्यक्षः । (आनरेरी मजिस्ट्रेट)

विजयसिंह
(डूँगरपुराधिपति के. सी. एस. आई.)
सभापतिः
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलस्य ।
षष्ठमहाधिवेशनस्य ।

ग्राहक वैद्यराजों के पत्र—

—:※:—

श्रीमान् पं० श्यामसुन्दराचार्य जी ! जयगोपाल, अब से कुछ दिन पहिले जो रसायनसार प्रथम भाग पुस्तक मंगाई थी उसके प्रयोग और औषधी बनाने की विधि सब सच्ची हैं अब तक जो २ रस मैंने बनाये हैं वे अन्य बड़े २ वैद्यों से भी अति उत्तम रामबाण सिद्ध हुये हैं। आप ने वैद्यों की गिरी दशा में नैया का कार्य पुस्तक बना कर किया है जिसके लिये मैं आप को कोटानुकोट धन्यवाद देता हूँ तिसपर भी आप वैद्यों की सेवा के हेतु २५०) पर एक हजार रुपये की रसायन-शाला की बनी हुई औषधी वैद्यों को जग में यश प्राप्त करने के लिये दे रहे हो इससे बढ़ कर क्या उपकार होगा।

आपका—

ता० २१-६-१६ राधाकृष्ण वैद्यराज,

काटरसतपुला, जबलपुर

श्रीयुत,

आप का पत्र आज कई दिन बाद मिला क्यों कि मैं देश चला गया था अनुभूत प्रयोग और १६८०) की दवाई का अनुपान पत्र भी मिला। आप के अनुभूत प्रयोग बड़े ही उत्तम हैं तथा आप को भेजी हुई विसूचिकांतवटी और शूलवटी बड़ी ही अन्यर्थ औषधि है।

भवदीय—

ता० २१-८-१६ जानकीलाल त्रिवेदी, भिषगाचार्य

अध्यापक—श्रीविशुद्धानन्द विद्यालय

बड़तल्ला ष्ट्रीट कलकत्ता नं० ५७

माननीय रसायनशास्त्री जी ! जय श्री विश्वेश्वर जी की ? श्रीमान् की ओर से प्रेषित की हुई रसायनसार पुस्तक रत्न वी. पी. द्वारा प्राप्त

हुई। पंडित जी! आधुनिक समय में हमारी आयुर्वेद विद्या की जैसी अनिर्वचनीय अधोगति हो रही है उसे पुनः उद्धृत करके आर्य-पताका फहराने के लिये ही कदाचित् आप जैसे आचार्य उत्पन्न हुये हैं। इस ग्रन्थ की विशेष प्रशंसा करना सूर्य को दीपाग्नि से दिखाना है। मैं इस बात को निःसंकोच भाव से लिख सकता हूँ कि यदि सामयिक वैद्यगण गुणग्राही हंस स्वरूप हो जाँय तो इस ग्रन्थ रत्न से इहलौकिक और परमार्थिक दोनों कार्य सिद्ध हो सकते हैं। आचार्य जी! श्रीमान् के आदर्श कार्य की मैं किस मुख से प्रशंसा करूँ आप की इस रसायनशाला के आश्रयीभूत होकर मैं भी कुछ अपने देशभ्राताओं की सेवा करने के लिये उद्यत हुआ हूँ अतः मेरे ऊपर आप कृपानुग्रह करते रहा करें।

भवदीय कृपाकांक्षी—

पं० शिवनारायण तिवारी, मुख्याध्यापक पाठशाला

कुरज. पो. कांकड़ौली. मेवाड़ (यू. सी. रेलवे)

ॐ नमो नारायणाय।

विद्यैश्वर्य्यसंपन्न पं० श्यामसुन्दराचार्य जी रसायनशास्त्री महाशय का जय जयकार कारुणिक परमेश्वर स्वीकार करें; हमारी आयु इस समय ७० वर्ष की हुई है, कुछ काल तक मैंने वंगीयपुलिस में नौकरी करके वृद्धावस्था में सन्यास ग्रहण किया उपनिषदादि अनेक वेदान्त शास्त्रों का अध्यन किया हूँ और वैद्यराजों के संबन्ध से चरक सुश्रुतादि आयुर्वेद के ग्रंथ भी अच्छी तरह पढ़े हैं आजकल भिक्षावृत्ति से शरीर यात्रा करते हुये जनता को धर्मोपदेश देकर और योगाभ्यास से कालयापन कर रहा हूँ, इस अवसर पर आप के रसायनसार ग्रन्थ का हम अवलोकन कर रहे हैं, धन्य आप को जो हमारे पूर्वजों की महा-

निधि मिट्टी में गड़ी हुई थी, उसको फिर से उखाड़ आपने भारतवर्ष का मुख उज्ज्वल किया परमेश्वर आप को चिरजीवी करे—

आप का शुभाकांक्षी—

ता० ११-१-१७ श्रीयोगानन्द सरस्वती,

ठि० मुन्शी कैलाश बिहारीकुटी, पुराना भोजपुर

पो० डुमराँव (आरा)

पं० ठाकुरप्रसाद जी शर्मा द्विवेदी,

इन्सपेक्टर आफ संस्कृत पाठशाला यू० पी०

(यू० पी० गवर्नमेन्ट की ओर से आप उक्त पदासीन हैं।)

इस कहने में कुछ भी अत्युक्ति न होगी कि रसायनशास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य जी वैश्य ने चिकित्सा विषय में और क्रिया कुशलता में एक नूतन युग का आविर्भाव किया है। यदि रसायनसार जैसा ग्रन्थ किसी विश्वविद्यालय या कालेज द्वारा बनता तो भारतवर्ष क्या भूमण्डल भर में एक प्रकार की धूम मच जाती और अनेक प्रतियाँ पुस्तकालयों के लिये खरीद ली जाती। शोक है कि जैसा यह ग्रन्थ है वैसी गुण ग्राहिता नहीं हुई तथापि माननीय श्री ५ महाराजा काशी-नरेश, आनरेबिल राजा मोतीचन्दजी सी. आई. ई. तथा श्रीमती राजमाता भरतपुर ने कुछ पुस्तकें खरीद कर और उन्हें योग्य वैद्यों को दान करके अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया है। अतः इनको जहाँ तक धन्यवाद दिया जावे थोड़ा है। मुझे आशा है कि सर्व साधारण जन तथा शासक लोग आप के रसायनसार ग्रन्थ और औषधियों को खरीद कर उत्साह को बढ़ावेंगे।

नोट—बड़े २ राजा, महाराजा, अंग्रेज विद्वान, रईस तथा देश के महान २ वैद्य, सम्पादक और गुणज्ञों ने मुक्त कंठ से इस ग्रन्थ की प्रशंसा की है जिसे स्थानाभाव से लिखने में असमर्थ हैं। "प्रकाशक"